CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

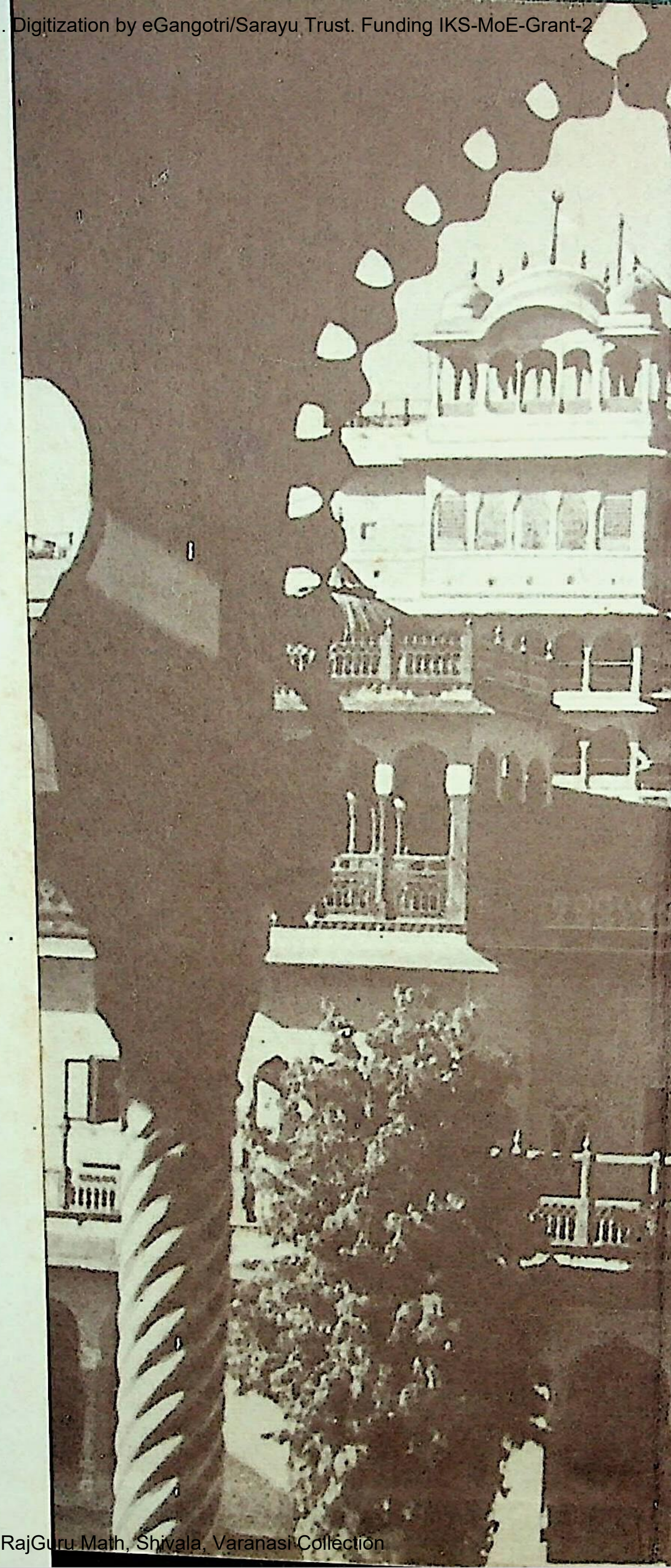

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

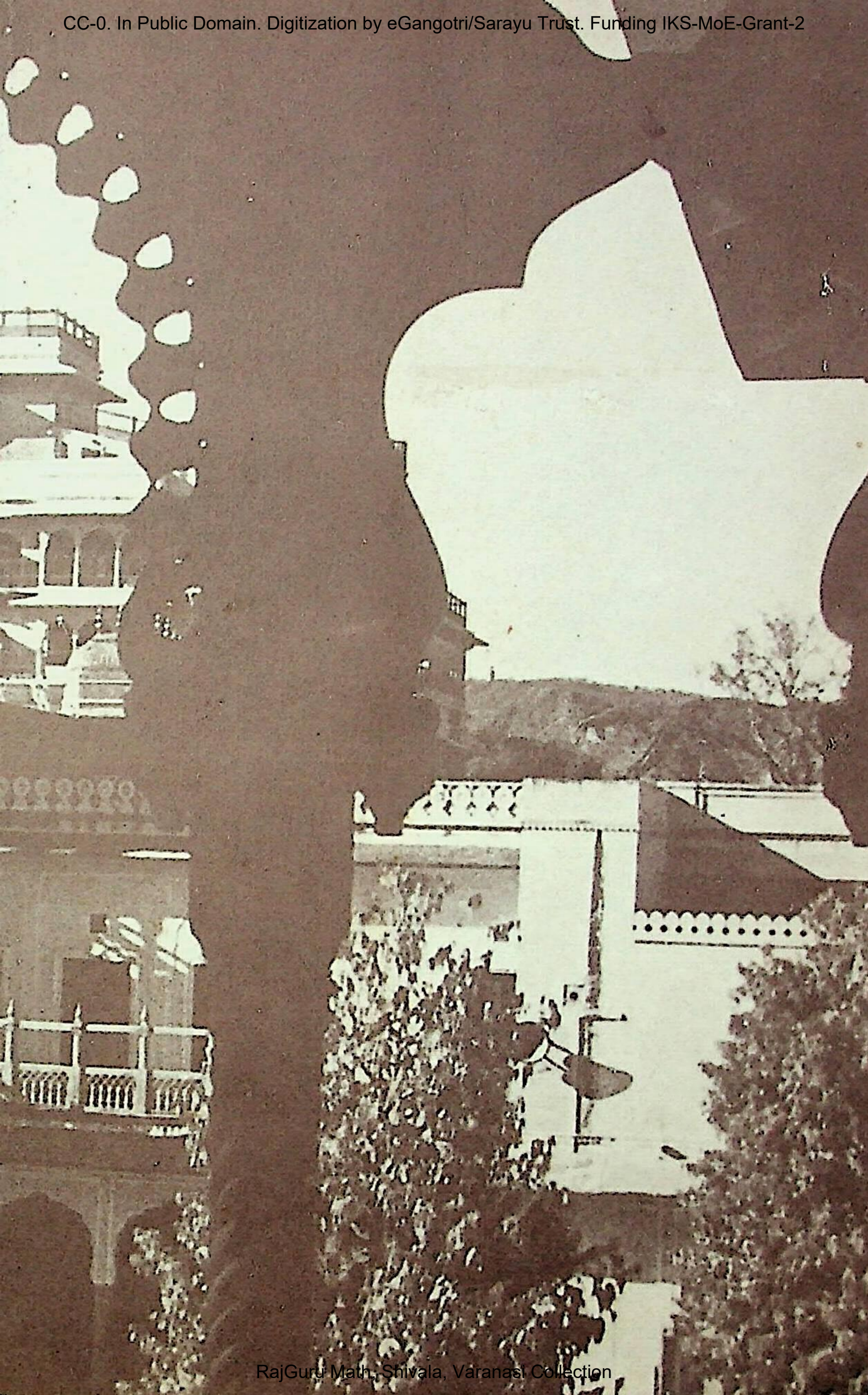

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारत के नगर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

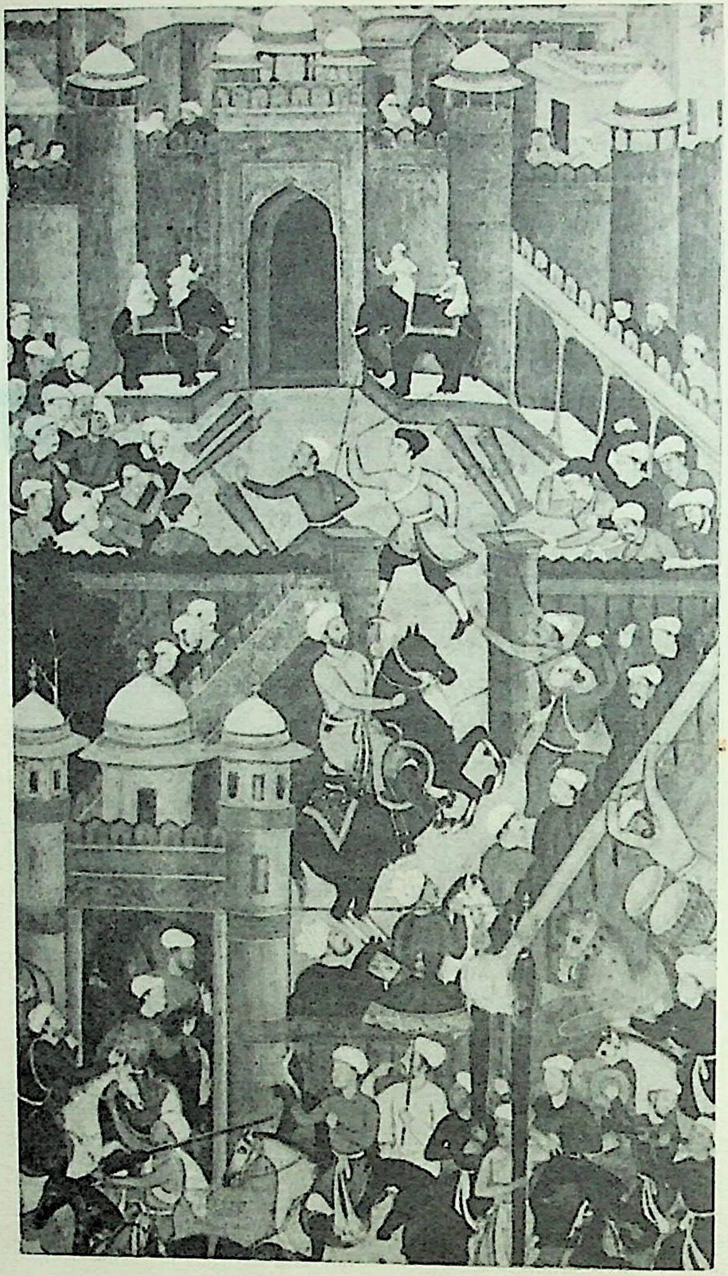

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अ० कोरोल्स्काया

भारत के नगर

राडुगा प्रकाशन
मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुवादक : बुद्धि प्रसाद भट्ट

Короцкая А.

ГОРОДА В ИСТОРИИ ИНДИИ

на языке хинди

Korotskaya A.

THE ROLE OF THE CITY IN THE HISTORY OF INDIA

in Hindi

पाठकों से

राडुगा प्रकाशन को इस पुस्तक की विषयवस्तु और डिज़ाइन के संबंध में आपकी राय जानकर और आपके अन्य सुझाव प्राप्त कर बड़ी प्रसन्नता होगी। अपने सुझाव हमें इस पते पर भेजें:

राडुगा प्रकाशन, १७, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।

© हिन्दी अनुवाद • राडुगा प्रकाशन • १९८४

सोवियत संघ में मुद्रित

K $\frac{4902030000-193}{031(01)-84}$ 408-84

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुक्रम

आमुख ७

भाग १। प्राचीन नगर

पहला अध्याय। हड़प्पा सभ्यता के नगर १७

दूसरा अध्याय। गंगा घाटी और उत्तर-पश्चिम भारत के नगर ४४

तीसरा अध्याय। नगर का प्राचीन भारतीय निदर्श ६६

भाग २। मध्ययुगीन नगर

पहला अध्याय। दक्षिण भारत के मंदिर-नगर ९३

दूसरा अध्याय। उत्तर भारत के राजधानी नगर १२०

तीसरा अध्याय। राजस्थान के नगर १४८

भाग ३। अर्वाचीन नगर

पहला अध्याय। औपनिवेशिक भारत में पूंजीवादी नगर का अभ्युदय १८१

दूसरा अध्याय। स्वाधीन भारत के नगर और नगर निर्माण की समस्याएं २०९

उपसंहार २५८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आमुख

इस पुस्तक का विषय है विगत तथा वर्तमान में भारत के नगर और नगर निर्माण कला। नगर और उसका विकास आज की एक सबसे सामयिक समस्या है। वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति के हमारे युग में क्रांतिकारी उपलब्धियों की सबसे ज्वलंत अभिव्यक्ति नगर में ही पायी जाती है। नगर सभ्यता के सभी फलों का नाभिक है और वह मुख्य बिंदु है, जिसमें आकर मानव नियतियों के जटिल ताने-बाने के बहुविध सूत्र अंतर्ग्रथित होते हैं। नगर और नगर निर्माण कला से संबंधित समस्याओं में वास्तुकारों, राजनेताओं तथा वैज्ञानिकों की रुचि दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

भारत के नगरों के बारे में हम अभी बहुत कम जानते हैं, हालांकि भारत, उसके इतिहास और संस्कृति के बारे में किताबों की कोई कमी नहीं है। इतिहासकार, कलाविद और दूसरे जिन्होंने भी भारतीय सभ्यता और भारतीय वास्तुकला के विषय में लिखा है, लगभग सभी ने भारतीय नगर के बारे में या तो चुप्पी बरती है या फिर उसका सरसरी तौर पर उल्लेख मात्र किया है। लेकिन ज्ञात है कि भारत नागर सभ्यता और एक सबसे प्राचीन संस्कृति की जन्मस्थली रहा है, विश्व के सबसे बड़े तथा जनबहुल देशों में से है, और आज बड़ी तेज़ी से सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति के पथ पर आगे बढ़ रहा है। अपने पांच हज़ार वर्ष के इतिहास में भारत ने अनगिनत नगरों को जन्म दिया है। बड़े नगरों के विकास और उनके उत्पादन कार्यकलाप तथा तकनीकी परिसज्जन के स्तर की दृष्टि से आज का भारत विश्व के किसी भी सर्वाधिक नगरीकृत देश से पिछड़ा हुआ नहीं है।

स्वयं भारत में भी और उससे बाहर भी भारतीय नगर, उसके इतिहास और भारतीय वास्तुकारों की नगर निर्माण कला के अपर्याप्त अध्ययन के कुछ ऐतिहासिक कारण हैं। १९वीं शती के अंत तक यूरोप में पूर्व के देशों के इतिहास और संस्कृति का कोई गंभीर अध्ययन नहीं किया गया था। तब तक यूरोप में औद्योगिक क्रांति और अनेकानेक बुर्जुआ आमूल परिवर्तन आ चुके थे और वह उत्पादक शक्तियों, विज्ञान तथा प्रविधि के विकास में विराट छलांग लगाकर पूर्व के देशों को, जिन्हें उसने अपना ग़ुलाम बना लिया था, बहुत पीछे छोड़ चुका था। पूर्व की तुलना में पश्चिम तब तक इतनी उन्नति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर चुका था कि पश्चिमी यूरोप के विज्ञानजगत में यूरोपकेंद्रिकता ने गहरी जड़ें जमा लीं और पूर्व के मुक़ाबले में पश्चिम को श्रेष्ठ सिद्ध करने के हेगेल के विचार व्यापक रूप से अपना लिये गये। मान्यता केवल यूनान तथा रोम की सुगवेषित प्राचीन सभ्यता की उपलब्धियों और पुनर्जागरण, बरोक तथा क्लासिकीवाद के काल के यूरोप की उपलब्धियों को दी जाती थी। नगर निर्माण संबंधी अनेक विधियों का मूल प्राचीन यूनान और रोम में खोजा जाता था और इसी दृष्टिकोण से विश्व नगर निर्माण कला के इतिहास से संबंधित अनेक तथ्यों तथा परिघटनाओं को देखा जाता था। इस तरह पूर्वी संस्कृतियों की उपलब्धियों की पूरी तरह उपेक्षा कर दी गयी।

१८वीं शती के उत्तरार्ध से पहले यूरोप में भारत और उसके अतीत के अध्ययन की कोई परंपरा न थी। प्राचीन भारत के इतिहास के बारे में तब तक यूनानी और रोमन स्रोत-ग्रंथों में यत्र-तत्र बिखरी हुई जानकारियां ही उपलब्ध थीं। भारतविद्या का विकास भारत पर ब्रिटिश आधिपत्य की स्थापना के बाद आरंभ हुआ और जब तक यह देश स्वतंत्र नहीं हो गया, इस क्षेत्र में प्रमुख विद्वान अंग्रेज़ों को ही माना जाता रहा। भारतविद्या की नींव रखने का श्रेय विलियम जोन्स (१७४६–१७९४) को दिया जाता है, जो कलकत्ता में न्यायाधीश थे। अपने काल के इस महान विचारक और भाषाविद ने प्राचीन भारतीय साहित्य की अनेक क्लासिकीय रचनाओं का संस्कृत से अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। १९वीं शती के उत्तरार्ध तक सभी देशों के भारतविद मुख्यतया लिखित स्रोत-सामग्री के आधार पर ही काम करते रहे, क्योंकि अन्य सामग्रियां उपलब्ध नहीं थीं। रूस में भारतीय संस्कृति का अनुशीलन १९वीं शती के मध्य में संस्कृत भाषा तथा साहित्य के अध्ययन के साथ आरंभ हुआ। प्राचीन भारतीय भाषा तथा धर्म के क्षेत्र में इ० मिनायेव, फ० श्चेर्बात्स्की, स० ओल्देनबुर्ग, आदि के शोधों को विश्वव्यापी ख्याति मिली। आज सोवियंत भारतविद अपने इन महान पुरोगामियों की उत्कृष्ट परंपराओं को जारी रखे हुए हैं। सोवियत विज्ञान अकादमी के प्राच्यविद्या संस्थान द्वारा चार खंडों में प्रकाशित भारत के आदि काल से लेकर वर्तमान तक के इतिहास को इतिहास लेखन के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण योगदान माना जाता है।

१९वीं शती के उत्तरार्ध से स्वयं भारत में भी अपने भारतविद और वास्तु-इतिहासविद प्रकट होने लग गये। देश में पहले विश्वविद्यालयों, संग्रहालयों, वैज्ञानिक पुस्तकालयों तथा प्रकाशन संस्थाओं की स्थापना हुई। इसके साथ ही प्राचीन भारतीय ग्रंथों का मुद्रण भी आरंभ हुआ। भारतीय विद्वान रामराज और पी० के० आचार्य ने वास्तुशिल्प और नगर निर्माण विषयक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के अंग्रेज़ी में अनुवाद प्रकाशित किये, किंतु, दुर्भाग्यवश, ये मूल्यवान प्रयास इने-गिने विशेषज्ञों का ध्यान ही आकृष्ट कर पाये।

प्राचीन भारत बहुत ही विपुल मात्रा में साहित्यिक कृतियां छोड़ गया है। किंतु अपनी कलात्मक, धार्मिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक अंतर्वस्तु के लिहाज़ से अत्यंत संपन्न तथा असामान्य रूप से मूल्यवान होने के बावजूद इन सभी रचनाओं में वास्तुशिल्प अध्येता की नज़र में एक गंभीर कमी है। उनके आधार पर भारतीय नगर के विकास का एक समीचीन चित्र उपस्थित कर पाना काफ़ी कठिन है। सामान्यतया उनमें अपने रचनाकाल और रचनास्थल का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। तैथिकी का, जो कि इतिहास का मुख्य आधार है, उनमें लगभग पूर्ण अभाव है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतवासी १९वीं शती के उत्तरार्ध तक एक विज्ञान के रूप में इतिहास से लगभग अनभिज्ञ थे और उसे समाज तथा प्रकृति की विभिन्न अवस्थाओं के परिवर्तन का एक स्थायी, ईश्वर-निर्धारित चक्र जैसा समझते थे।

भारत की ऐतिहासिक परिघटनाओं के संबंध में ऐसा आधिभौतिक दृष्टिकोण बहुत से पश्चिमी यूरोपीय विद्वानों और कलाविदों के बीच भी प्रचलित था। अंग्रेज़ भारतविदों की कृतियों में भारत का इतिहास सामान्यतया विभिन्न शासकों अथवा वंशों के परस्पर संघर्ष के रूप में चित्रित किया जाता था और जनता, अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक संबंधों की भूमिका को पूरी तरह अनदेखा कर दिया जाता था। कुछेक अपवादों को छोड़कर पश्चिमी लेखकों की भारतीय इतिहास विषयक कृतियों में वंशाधारित कालविभाजन के अलावा और कोई कालविभाजन नहीं मिलता था। उनके आधुनिक अनुवर्तियों के बीच आज भी यह धारणा व्याप्त है कि भारत एक ऐसा देश है, जिसका विकास सर्वथा विशिष्ट ढंग से हुआ है और जिसपर ऐतिहासिक प्रक्रिया के सार्विक वस्तुपरक नियम कतई लागू नहीं होते।

गत शती के अंत में पुरातात्त्विक, मानववैज्ञानिक और मुद्राशास्त्रीय साक्ष्यों ने भारतीय नगर और भारतीय वास्तुशिल्प के अध्ययन में उल्लेखनीय योग दिया। १८७१ में अंग्रेज़ विद्वान अलेक्ज़ैंडर कनिंघम के निदेशन में "उत्तर भारत पुरातत्त्व सेवा" की स्थापना हुई। तभी से भारत में पुरातात्त्विक खोजों की वार्षिक रिपोर्टों का प्रकाशन भी आरंभ हुआ।

भारत के वास्तुशिल्प के इतिहास पर पहला मौलिक ग्रंथ अंग्रेज़ इतिहासकार जे० फ़र्गूसन ने लिखा था, जो १८६७ में लंदन से प्रकाशित हुआ।* इसके

* Fergusson J., *History of Indian and Eastern Architecture*, London, 1867.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बाद जे० बर्जेस, एच० कजिंस, ए० लोंगहर्स्ट, आदि की भारत के विभिन्न प्रदेशों के वास्तुशिल्प से संबंधित कृतियां निकलीं, जिन्होंने प्राचीन और मध्ययुगीन भारतीय वास्तुशिल्प के क्षेत्र में नये अध्ययनों की नींव रखी। किंतु इन कृतियों में भी नगर और नगर निर्माण कला को कोई स्थान न मिल सका।

वर्तमान शती के आरंभ में भारत में पुरातत्त्व के क्षेत्र में बड़ी प्रगति हुई। बीस के दशक में पुरातत्त्ववेत्ताओं ने एक विश्व-ऐतिहासिक महत्त्व की खोज की: उन्हें सिंधु नदी की उपत्यका में विश्व की एक प्राचीनतम, अद्वितीय और बहुत ही विकसित नागर सभ्यता के अवशेष मिले। हड़प्पा संस्कृति के नाम से ज्ञात यह सभ्यता तीसरी सहस्राब्दी ईसापूर्व में अपने उत्कर्ष पर थी। जॉन मार्शल, ई० मैके, आर० डी० बनर्जी, आर० ई० मार्टीमर ह्वीलर, इत्यादि विख्यात पुरातत्त्वविदों ने उसके बारे में पुस्तकें लिखी हैं।* इस खोज ने विद्वानों को विश्व इतिहास में भारत की सभ्यता के बारे में अपनी पहले की धारणाएं बदलने के लिए विवश किया। किंतु नगर निर्माण के क्षेत्र में हड़प्पा संस्कृति की उपलब्धियां फिर भी एक अलग-थलग परिघटना-सी बनी रहीं और भारतीय वास्तुशिल्प के इतिहास विषयक सर्वज्ञात रचनाओं में स्थान न पा सकीं। हड़प्पा संस्कृति के नगरों का अध्ययन अब तक पुरातत्त्वविदों और इतिहासकारों द्वारा ही किया गया है और उन्हें वास्तुशिल्पीय विश्लेषण का विषय नहीं बनाया गया है। फलस्वरूप हड़प्पाई नगरों के अध्ययन के परिणाम नगर निर्माण विज्ञान की विश्व-निधि का अंग नहीं बन सके हैं।

ईसापूर्व सत्रहवीं–दसवीं शतियों में हड़प्पा संस्कृति की केंद्रीकृत बस्ती प्रणाली का लोप हो गया। उसमें जैसे शक्तिशाली नागर केंद्र पाये जाते थे और निर्माण का जो बहुत ही विकसित, प्राचीन विश्व में बेमिसाल प्ररूपण तथा समरूपण देखा गया था, उनकी भारत के इतिहास में फिर कभी पुनरावृत्ति न हो पायी। पर इसका अर्थ यह न था कि भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया का अंत हो गया। वास्तव में वह कुछ शतियों बाद नये आधारों पर और जैसा कि भारतीय नगर के ऐतिहासिक विकास का सारा क्रम और प्राचीन भारतीय ग्रंथों में उपलब्ध नगर निर्माण विषयक विचार दिखाते हैं, हड़प्पा काल की कुछ परंपराओं को जीवित रखते हुए फिर से शुरू हुई।

हड़प्पा संस्कृति के विनाश के बाद के जो सबसे प्राचीन नगर पुरातत्त्वविदों को मिले हैं, वे गंगा की उपत्यका में स्थित हैं और उनका आविर्भाव काल

---

* Marshall John H., *Mohenjo-Daro and the Indus Civilisation*, London, 1931; Wheeler Mortimer, *The Indus Civilisation*, 2nd ed., Cambridge, 1960.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

८वीं शती ईसापूर्व माना जाता है। सबसे अधिक विस्तार से उत्तर-पश्चिमी भारत में स्थित तक्षशिला नगर का अध्ययन हो पाया है, जिसकी स्थापना ६वीं शती ईसापूर्व में हुई थी और जिसने ५वीं शती ईसवी तक भारत के राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन में एक मुख्य भूमिका निभायी। प्राचीन और मध्ययुग की इमारतों में से हम तक सबसे सुरक्षित अवस्था में केवल कुछ मंदिर, विहार, स्तूप, मस्जिदें और मक़बरे ही पहुंच पाये हैं। उनके जैसे सुरक्षित राजप्रासादों, दुर्गों, आवासगृहों तथा अन्य नागरिक भवनों की संख्या नगण्य ही है और वे भी अधिकांशतः उत्तर मध्ययुगीन हैं।

अवशिष्ट वास्तुस्मारकों का धर्म के आधार पर वर्गीकरण करते हुए फ़र्गूसन ने भारतीय वास्तुशिल्प को बौद्ध, जैन तथा मुस्लिम, इन श्रेणियों में बांटा था। फ़र्गूसन के ज़माने में यूरोपीय कलाविद केवल असामान्य सार्वजनिक भवनों को ही अध्ययनयोग्य माना करते थे और वह भी नगर-स्थापत्य के संघटक अंग के तौर पर नहीं, अपितु अन्य भवनों तथा निर्मितियों से पृथक्, स्वसीमित भवनों के तौर पर। इसके अलावा वे उनके सौंदर्यात्मक पक्ष पर ही अधिक ध्यान देते थे। वास्तुशिल्प के महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में नगर निर्माण कला पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। फ़र्गूसन के वर्गीकरण की, जो वास्तुशिल्प के क्षेत्र में नागरिक भवनों तथा नगर निर्माण के स्मारकों को कोई स्थान नहीं देता, अन्य देशों के वास्तुशिल्प के इतिहास में एक भी मिसाल नहीं मिलती। वह स्वयं भारत के लिए भी स्वीकार्य नहीं हो सकता। इसके बावजूद पर्सी ब्राउन, बी० रोलैंड तथा बहुत से दूसरे कला-इतिहासविद, भारतविद और इतिहासकार भी आज तक उसका अनुकरण कर रहे हैं।* उल्लेखनीय है कि अपने काल में आनंद कुमारस्वामी, ओ० सी० गांगुली, टी० भट्टाचार्य, आदि भारतीय विद्वान ने इस वर्गीकरण को एकांगी ठहराया था।**

फ़र्गूसन के वर्गीकरण को मान्य ठहरानेवाले विद्वानों द्वारा भारतीय वास्तुशिल्प को धर्मप्रधान बताये जाने का कारण अवशिष्ट लौकिक स्मारकों की कमी और धार्मिक स्मारकों का बाहुल्य है। गत दो-तीन दशकों में बहुत बड़ी संख्या

* Brown Percy, *Indian Architecture (Buddhist and Hindu Periods)* Bombay, 1976; Brown Percy, *Indian Architecture (Islamic Period)*, Bombay, 1975; Rowland B., *The Art and Architecture of India. Buddhist, Hindu, Jain* Penguin Books, Melbourne, London, Baltimore, 1953.

** Coomaraswamy Anand K., *History of Indian and Indonasian Art*, New York, Leipzig, London, 1927.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में प्रकाशित भारतीय कला तथा वास्तुशिल्प संबंधी अधिकांश रचनाओं में प्राय: यह सिद्ध करने की प्रवृत्ति पायी जाती है कि भारतीय कला तथा वास्तुशिल्प सामान्य समझ से बाहर की चीज़ हैं। इन रचनाओं में रहस्यवाद, प्रतीकवाद तथा शृंगारिकता के प्रति भारतीय जनता के विशेष रुझान पर बल दिया जाता है और इस तरह भारतीय संस्कृति में जो भी तर्कबुद्धिपरक तत्त्व हैं, उन्हें नकार-सा दिया जाता है।

वर्तमान शती के आरंभ में ई० बी० हैवेल ने भारतीय कला के अध्ययन के क्षेत्र में अध्यात्मवादी अवधारणा का प्रतिपादन किया। वह उन लोगों में से थे, जिन्होंने विश्व कला के इतिहास में भारत को सम्मानपूर्ण स्थान दिये जाने का आग्रह किया। प्रमुख भारतीय विद्वान आनंद कुमारस्वामी (१८७७–१९५४), सुप्रसिद्ध अमरीकी भारतीय कला विशेषज्ञा स्टेला क्रेमरिश और कई अन्य सर्वमान्य विद्वान भी हैवेल जैसे ही विचार रखते हैं।*

अंग्रेज़ भारतविद ए० एल० बाशम का इस प्रश्न पर दूसरा ही मत है। उनके शब्दों में भारतीय कला का प्राण अमूर्त, निर्गुण ब्रह्म की साधना नहीं, अपितु परिवेशी जगत का उसकी अनंत गति और प्रचंड अभिवृद्धि में प्रतिबिंबन है। वह लिखते हैं, "हम नहीं मानते कि प्राचीन भारतीय वास्तुकार के चिंतन में विश्व-प्रतीकात्मकता कोई महती भूमिका अदा करती थी।"**

भारतीय वास्तुशिल्प विषयक विश्व-साहित्य में यद्यपि मंदिरों, मसजिदों और मक़बरों से संबंधित रचनाओं का ही प्राधान्य मिलता है, तथापि अनेक ऐसी कृतियां हैं, जिनमें भारतीय जनता के निर्माण क्रियाकलाप के एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग दुर्गों, प्रासादों तथा इन जैसे अन्य वास्तु-स्मारकों का सविस्तार वर्णन-विश्लेषण किया गया है।

भारत के वास्तुशिल्प के इतिहास से संबंधित सभी प्रसिद्ध रचनाएं सामान्यत: उत्तर मध्ययुग पर आकर समाप्त हो जाती हैं और औपनिवेशिक युग तथा स्वातंत्र्योतर वर्षों के भारत की वास्तुकला को उपेक्षित छोड़ देती हैं। अर्वाचीन काल के नगरों तथा बस्तियों का वर्णन अधिकांशत: भूगोल विषयक प्रकाशनों में ही मिलता है। इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय ओ० एच० स्पेट की विख्यात पुस्तक 'इंडिया एंड पाकिस्तान' और भारत के आर्थिक भूगोल तथा विभिन्न

* Havell E. B., *The Ancient and Medieval Architecture of India*, London, 1915; Havell E. B., *Indian Architecture, It's Psychology, Structure and History from the Mohammedan Invasion to the Present Day*, 2nd ed., London, 1927; Coomaraswamy Anand K., *op. cit.;* Kramrisch S., *Hindu Temple*, London, 1956.

** A. L. Basham, *The Wonder that was India*, London, 1956, p. 9.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रदेशों से संबंधित ग० व० स्दास्यूक एवं अन्य सोवियत भारतविदों की पिछले वर्षों में प्रकाशित कृतियां हैं। किंतु नगरों के वास्तुशिल्पात्मक पहलू को उनमें भी अछूता छोड़ दिया गया है।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारतीय संस्कृति के अध्ययन के क्षेत्र में काफ़ी प्रगति हुई है। भारत में अनेक वैज्ञानिक संस्थाएं काम कर रही हैं, बड़े पैमाने पर पुरातात्त्विक खोजें की जा रही हैं, नियमित रूप से इतिहासकारों तथा प्राच्यविदों के सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं, बड़ी संख्या में शोध-ग्रंथ तथा पत्रिकाएं प्रकाशित की जाती हैं और भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विषयक अनेक बहुखंडीय कृतियां निकली हैं, जिनमें अब तक की सभी खोजों का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। भारतविद्या के क्षेत्र में भारतीयों ने आज एक प्रमुख स्थान पा लिया है। १९५६ में दिल्ली में स्थापित नगर निर्माण संस्थान विजित घोष के निदेशन में भारतीय नगरों के अध्ययन की दिशा में मूल्यवान काम कर रहा है। सी० कोर्रेआ, ए० कानविंदे, बी० दोशी, आदि प्रसिद्ध वास्तुशिल्पियों ने आधुनिक नगर निर्माण की समस्याओं के बारे में काफ़ी कुछ लिखा है।

पिछले दशकों से सोवियत संघ में भारत विषयक शोधों का दायरा काफ़ी बढ़ गया है। किंतु वास्तुशिल्प और उसके महत्त्वपूर्ण अंग नगर निर्माण को इन शोधों में समुचित स्थान अभी भी नहीं मिल सका है।

हाल के वर्षों में विश्व के नगरों के बारे में छपनेवाली सामग्रियों में भारत का प्राय: उल्लेख मिलता है। भारत के नये नगरों में से सबसे अधिक प्रसिद्ध चंडीगढ़ है। बहुत-से नगर निर्माण और योजना विशेषज्ञों का ध्यान कलकत्ता और बंबई जैसे लाखों की आबादीवाले नगरों के परिप्रेक्ष्यात्मक विकास की ओर भी आकृष्ट हुआ है। यह स्वाभाविक ही हैं। नगरीकरण की प्रक्रिया आज इतनी तीव्र और कहीं नहीं है, जितनी कि स्वतंत्र आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर विकासमान देशों में। इसकी एक ज्वलंत मिसाल भारत है, जो कुछ ही दशकों में ब्रिटिश साम्राज्य के खेतिहर तथा कच्चा माल संभरक उपनिवेश से एशिया का एक प्रमुख औद्योगिक राष्ट्र बन गया है। जिस तीव्रता से भारत में नगरीकरण और औद्योगीकरण हो रहा है, जो दोनों ही परस्परसंवद्ध प्रक्रियाएं हैं, और इसके साथ ही वहां जो "जनसंख्या विस्फोट" देखने में आ रहा है, उनके प्रभावस्वरूप सन् २००० तक भारत की शहरी आबादी तीनगुना बढ़कर कम से कम ३० करोड़ हो जायेगी। भारतीय जनांकिकीविदों का अनुमान है कि तब देश के सबसे बड़े नगर कलकत्ता में कोई ३ करोड़ लोग रह रहे होंगे।

इससे नगर निर्माण संबंधी जो समस्याएं पैदा होंगी, उनकी जटिलता की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हम कल्पना भी नहीं कर सकते, विशेषत: इसलिए भी कि उनमें से बहुत सी समस्याएं बिल्कुल ही नये ढंग की होंगी। नगर निर्माण और नियोजन की समस्याओं के समाधान में आज साइबरनेटिकी, समाजविज्ञान, भविष्य-विज्ञान, मनोविज्ञान और बहुत सी दूसरी ज्ञान शाखाओं से मदद ली जा रही है। नगरों के अध्येता नगरों और उन्हें जन्म देनेवाले समाजों के इतिहास में अधिकाधिक पैठने लगे हैं। नगर जीवन के सतत प्रवाह का प्रतीक है। उसका वर्तमान और भविष्य अतीत से घनिष्ठत: संबद्ध होता है। फिर भी संभवत: शायद ही कोई अन्य देश अपने अतीत से यों अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ हो, जैसे कि भारत। भारत परंपराओं की भूमि है और किसी भी तरह की समस्याओं के समाधान में इन परंपराओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती – लाखों मानव नियतियों को अपने में समेटे हुए नगर के जीवन से संबंध रखनेवाली बुनियादी समस्याओं के समाधान में तो और भी।

जहां तक हमें मालूम है, भारत के नगरों के बारे में अभी तक ऐसी कोई पुस्तक नहीं लिखी गयी है, जिसमें आदि काल से आज तक के उनके विकास का समाहार तथा सिंहावलोकन पेश किया गया हो, उनके विकास का सामाजिक तथा आर्थिक प्रक्रियाओं से संबंध दर्शाया गया हो और भारतीय नगर निर्माण कला की अनन्य विशेषताओं का वास्तुशिल्प की दृष्टि से विश्लेषण किया गया हो।

प्रस्तुत पुस्तक इस बहुआयामीय, किंतु अल्पविवेचित विषय का सर्वांगीण अध्ययन होने का दावा नहीं करती। इसमें मात्र एक संक्षिप्त रूपरेखा दी गयी है और भारतीय नगर को एक ऐसे सजीव सामाजिक तथा वास्तुकलात्मक अवयवी के रूप में देखने तथा समझने का प्रयास किया गया है, जो हर युग में भारत की विशिष्ट परिस्थितियों में अपने ही ढंग से प्रकट नगर विकास के सार्वजनीन नियमों के अनुसार विकास करता रहा है।* विश्लेषण के लिए उन्हीं नगरों को चुना गया है, जिनके स्वरूप में उनके आविर्भाव स्थल तथा काल की और संवृद्धि की विशेषताएं सर्वाधिक स्पष्टता के साथ प्रतिबिंबित हुई हैं। साथ ही विश्व नगर निर्माण कला के इतिहास में उनके महत्त्व को भी इंगित किया गया है। इस प्रकार प्राचीन काल से लेकर आज तक भारतीय नगर के विकास-क्रम का निर्धारण तथा विवेचन किया गया है।

---

* इस पुस्तक में अपने ऐतिहासिक विश्लेषण में हमने भारत के विभाजन के समय (१९४७) तक समूचे भारतीय उपमहाद्वीप को एक ही इकाई के रूप में लिया है। हमारे मत में किसी भी वैज्ञानिक कृति में अतीत की सांस्कृतिक विरासत को, जो भारत तथा पाकिस्तान, दोनों की संयुक्त थाती है, विभाजित करना क़तई ठीक न होगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

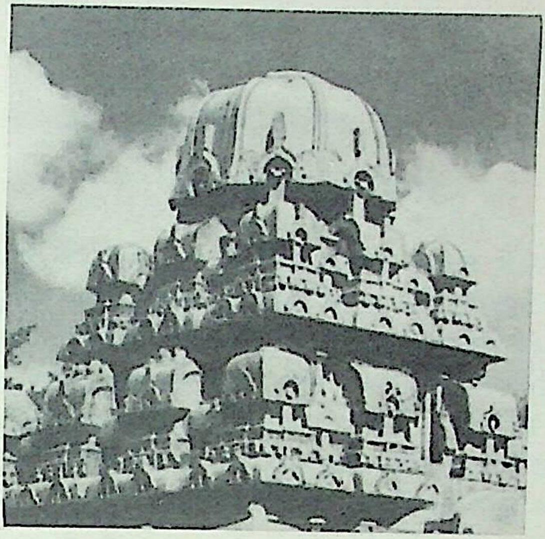

भाग १

प्राचीन नगर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहला अध्याय

हड़प्पा सभ्यता के नगर

हमारी शती के बीसवें वर्ष में विश्व-संस्कृति के क्षेत्र में एक महानतम खोज हुई – सिंध (सिंधु) घाटी में अपने लिए रणनीतिक दृष्टि से आवश्यक रेल मार्ग बिछाते हुए अंग्रेज़ों को मिट्टी की कई परतों में दबे पड़े ४००० वर्ष से भी ज़्यादा पुराने नगरों के अवशेष मिले। पक्की ईंटों से निर्मित बहुमंज़िले रिहायशी मकानों, सार्वजनिक जलनिकास प्रणाली, सामूहिक स्नानागारों और पेय जल के कूओं से युक्त ऐसे सुनियोजित नगर प्राचीन विश्व में एक अद्वितीय परिघटना थे। इस तरह के नगर न प्राचीन मिस्र में पाये गये थे, न मेसोपोटामिया में ही।

पुरातत्त्ववेत्ता जॉन मार्शल इस संबंध में लिखते हैं, "न तो पुरैतिहासिक मिस्र में, न मेसोपोटामिया में और न पश्चिम एशिया के किसी अन्य देश में ही, कुछ भी मोहेंजोदड़ो के निवासियों के भव्य स्नानागारों और खुले-खुले घरों की बराबरी नहीं कर सकता। उन देशों में अधिकतर ध्यान और साधन देवमंदिरों और राजप्रासादों तथा समाधियों के निर्माण पर व्यय किये जाते थे जबकि सामान्य जन को मामूली, कच्चे घरों से ही संतोष कर लेना पड़ता था। सिंधु घाटी में इसका विपरीत ही दृश्य मिलता है। यहां सबसे महत्त्वपूर्ण निर्मितियां वे थीं, जो नगरवासियों की सुविधार्थ बनायी गयी थीं, जैसे सामूहिक और निजी स्नानागार, मोहेनजोदड़ो में प्राप्त उत्कृष्ट जलनिकास प्रणाली, जो जहां तक हमें ज्ञात है, अपने प्रकार के पहले हैं।"*

भारत अब यूरोप को नये ही उजाले में दिखायी देने लगा। सिंधु घाटी में नागर सभ्यता की खोज ने अनेक देशों के इतिहासकारों तथा पुरातत्त्ववेत्ताओं का ध्यान आकृष्ट किया। तब से आधुनिकतम वैज्ञानिक अनुसंधान विधियों (रेडियो-कार्बन विधि, स्पेक्ट्रमी विश्लेषण विधि, तुलनात्मक अध्ययन

* Marshall J., *Mohenjo-Daro and the Indus Civilisation*, vol. I-III, London, 1931, vol. I, p. 49.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विधि, अन्य आधुनिक पुरातात्त्विक विधियों) के प्रयोग की बदौलत इस ऐतिहासिक परिघटना के बारे में हमारा ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता और गहनतर होता गया है।

फिर भी प्राचीन सभ्यताओं के इतिहास में हड़प्पा संस्कृति (सिंधु सभ्यता इस नाम से भी जानी जाती है, क्योंकि उसके अवशेष सबसे पहले सिंधु की सहायक नदी रावी के बायें तट पर स्थित हड़प्पा में ही पाये गये थे) एक अनबूझ पहेली बनी हुई है। उसकी चित्रलिपि को आज तक पूर्णतः नहीं पढ़ा जा सका है। हड़प्पा संस्कृति के उत्पत्ति-स्रोत, उसके विनाश के कारण, उसकी सामाजिक व्यवस्था, राज्य तथा नगर शासन-प्रणाली, उसके नागरिकों का धर्म-दर्शन, आदि अनेकानेक महत्त्वपूर्ण प्रश्न अभी काफ़ी हद तक अनुत्तरित ही पड़े हैं।* विद्वानों के लिए यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं है कि हड़प्पा संस्कृति के नगरों में मिस्र अथवा सुमेर जैसे भव्य मंदिर तथा राजप्रासाद नहीं मिलते हैं। इन सभी प्रश्नों के संबंध में अभी अटकलें ही लगायी जा सकी हैं। सिंधु सभ्यता के संदर्भ में उठाया गया एक महत्त्वपूर्ण, किंतु अभी अल्प-विवेचित प्रश्न यह भी है कि आज के भारत की सांस्कृतिक परंपराओं का उस सुदूर काल की परंपराओं से क्या संबंध है।

एक बात जिसे सभी विद्वान स्वीकार करते हैं यह है कि हड़प्पा संस्कृति एक मौलिक संस्कृति थी। उसके जनक आर्य या सुमेरी लोग न थे, बल्कि वे स्थानीय लोग थे, जिन्हें वैज्ञानिकों ने द्रविड नाम दिया है।**

पुरातत्त्ववेत्ताओं का सिंधु घाटी की नागर सभ्यता के जिस उच्च स्तर से साक्षात्कर हुआ है, उसपर पहुंचने में उसे संभवतः एकाधिक सहस्राब्दियां लग गयी थीं।

सिंधु और गंगा के बीच के उपजाऊ मैदान में स्थित चौथी सहस्राब्दी ईसापूर्व के आरंभ की आम्री, कुल्ली, घुंडई, कोटदीजी, आदि ग्राम-बस्तियों को हड़प्पा नगर संस्कृति के इतिहास की दहलीज़ माना जाता है।

ये बस्तियां किसी एकीभूत प्रशासन-प्रणाली का अंग न होकर अलग-थलग, एक दूसरे से स्वतंत्र आवासीय विरचनाएं थीं और सदियों तक, हड़प्पा संस्कृति के नगरों के साथ घनिष्ठ संपर्क के दौर में भी, विकास के एक ही चरण में बनी रहीं।

---

* हड़प्पा से प्राप्त कुछ वस्तुओं के आधार पर अनुमान किया जाता है कि इस संस्कृति के लोग उर्वरता पंथ, यानी मातृपूजा तथा लिंग उपासना में विश्वास करते थे।

** हड़प्पा के मूल निवासियों का उद्गम-स्थल अभी अज्ञात है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशाल पत्थरों से निर्मित दुर्गभित्तियों से घिरी आम्री की बस्ती (डाडू ज़िला, पाकिस्तान) कोई ८००० वर्गमीटर के क्षेत्रफल में फैली हुई थी। उसमें नियमित, योजनाबद्ध निर्माण के निशान नहीं पाये गये हैं। अधिकांश इमारतें दोमंज़िला, कच्ची ईंटों तथा पत्थरों से निर्मित और छोटे-छोटे कमरों (२.५×१.५ मीटर) से घिरे भीतरी अहाते (औसत आकार ५×५ मीटर) से युक्त हैं। बस्तियों के इलाक़ों में सिंचाई नहरों, बांधों, सीढ़ीनुमा खेतों और क़ब्रगाहों के अवशेष मिले हैं।

कोटदीजी (पाकिस्तान में खैरापुर के निकट) की खुदाई में शहरी आवासीय इमारतों के और परकोटे से घिरे एक बड़े वास्तु-समुच्चय के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिनकी तिथि अट्ठाईसवीं-छब्बीसवीं शती आंकी गयी है। क़ोटदीजी संभवत: हड़प्पाई नगर का आदिरूप था। उपमहाद्वीप के इस भाग में हड़प्पा संस्कृति की उत्तरी सीमा १९७० के दशक में निर्धारित की गयी थी, जब यहां जम्मू-कश्मीर प्रदेश में अख़नूर के निकट चिनाव के तट पर मंडा नामक स्थल पर एक हड़प्पाई बस्ती के अवशेष मिले थे।

गत वर्षों की वैज्ञानिक खोजों ने हड़प्पा संस्कृति के काल-विस्तार तथा क्षेत्रीय प्रसार की सीमाओं का अधिक सही-सही निर्धारण करने की संभावना दी है। यदि १९३० के दशक में इसका काल-विस्तार ३२५०–२७५० ईसापूर्व माना जाता था, तो अब यह २३००–१७५० ईसापूर्व माना जाने लगा है। भारत उपमहाद्वीप के विशाल भाग में फैली सभी हड़प्पाई बस्तियां – और उनकी संख्या काफ़ी बड़ी है – एक ही समय पैदा और विलुप्त नहीं हुई होंगी। मोहेनजोदड़ो का उत्कर्ष-काल २२वीं और १९वीं शती ईसापूर्व के बीच आंका गया है। कालीबंगन में हड़प्पा संस्कृति के आरंभिक संस्तरों को २२वीं शती ईसापूर्व और अंतिम संस्तरों को १८–१७ वीं शती ईसापूर्व का माना गया है।

काठियावाड़ प्रायद्वीप पर हड़प्पाई बस्तियां मोहेनजोदड़ो और हड़प्पा जैसे मुख्य केंद्रों के अपकर्ष के बाद भी दीर्घ काल तक, १०वीं शती ईसापूर्व तक, फलती-फूलती रहीं। अपने उत्कर्ष-काल में हड़प्पा संस्कृति पश्चिम से पूर्व तक १६०० किलोमीटर लंबे और उत्तर से दक्षिण तक ११०० किलोमीटर चौड़े भूभाग में फैली हुई थी। उसका कुल क्षेत्रफल प्राचीन राज्य युग के मिस्र का दोगुना और सुमेर का चारगुना था।

सिंधु घाटी में स्थित अपने मुख्य केंद्रों से हड़प्पाई लोग शनैः-शनैः दक्षिण की ओर बढ़े। यह देशांतरण अथवा विस्तार चूंकि मुख्यत: समुद्री मार्ग से हुआ था, इसलिए अरब सागर के किनारे-किनारे हड़प्पाई बस्तियों की एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लंबी शृंखला मिलती है। सबसे पश्चिमवर्ती बस्ती सुतकगंदोर थी, जो एक बंदरगाह था और कराची से ५०० किलोमीटर पश्चिम में स्थित है। पूर्व में हड़प्पाई बस्तियों के अवशेष पश्चिमी उत्तर प्रदेश में आलमगीरपुर (मेरठ ज़िला) तक फैले हुए हैं। पुरातत्त्ववेत्ताओं को १९५०–१९७० के बीच ८० से अधिक हड़प्पाई बस्तियां मिली हैं, जिनमें से ४० को शहरी ढंग की बस्तियां कहा जा सकता है।

इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण लोथल नाम का बंदरगाह-नगर था, जो आधुनिक अहमदाबाद से ८३ किलोमीटर दक्षिण में स्थित है। लोथल हस्त उद्योगों और व्यापार का भी एक बहुत बड़ा केंद्र था। उसकी खंभात की खाड़ी के काफ़ी अंदर ऐसी जगह पर अवस्थिति, जहां जहाज़ छोटे-मोटे ज्वारों के समय भी माल उतार सकते थे, उसके उत्कर्ष में बड़ी सहायक सिद्ध हुई। यहां प्राचीन विश्व के सबसे बड़े नौकाघाट, पोतनिर्माण गोदी और नौकाओं के आने-जाने योग्य नालियां और जलद्वार पाये गये हैं, जो उनके निर्माताओं के उच्चस्तरीय इंजीनियरी ज्ञान व कौशल का परिचय देते हैं। उल्लेखनीय है कि लोथल में अल्पमूल्य रत्नों के मनकों और कंठहारों का उत्पादन सुविकसित था और आज भी यह इस इलाक़े का एक मुख्य उद्योग है। इससे परंपराओं के सातत्य का अतिरिक्त प्रमाण मिलता है।

लोथल प्रायः बाढ़ के प्रकोपों का शिकार बनता था और उसके निवासियों को चार बार उसका पुनर्निर्माण करना पड़ा। फलस्वरूप जिन चबूतरों पर इमारतें खड़ी की जाती थीं, उनकी ऊंचाई हर बार बढ़ती गयी। लगभग १००० ईसापूर्व में लोथल का अस्तित्व समाप्त हो गया। उसके अंतिम निवासी देशांतरण करके काठियावाड़ के भीतरी भागों और गंगा घाटी की ओर चले गये।

सिंध से सौराष्ट्र के व्यापार मार्ग पर रंगपुर नाम का एक बड़ा हड़प्पाई नगर स्थित था। यहां से बलूचिस्तान की बस्तियों के साथ बड़े पैमाने पर व्यापार किया जाता था। मकरान तट पर स्थित सुतकगंदोर, जो नदी मार्ग के ज़रिये अरब सागर से जुड़ा हुआ था, दूसरे ही प्रकार का व्यापार केंद्र था। यहां हड़प्पाई व्यापारियों ने पहाड़ों से घिरी एक सुविधाजनक जगह चुनकर वहां पहाड़ी पर अपना क़िलेनुमा नगर बसाया। उसके चारों ओर परकोटों के कई घेरे थे, जिनमें मज़बूत द्वार बने हुए थे।

पुरातत्त्ववेत्ताओं ने उत्तरी राजस्थान की घग्घर और चौटांग नदियों को, जो आज मात्र सूखे नाले रह गये हैं और जिनके किनारे बहुसंख्य प्राचीन बस्तियों के अवशेष मिले हैं, पौराणिक सरस्वती और दृषद्वती बताया है। घग्घर के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तट पर कालीबंगन नामक बड़ा हड़प्पाई नगर स्थित था। अपने क्षेत्रफल और अभिन्यासात्मक संरचना के लिहाज़ से, जिसमें दुर्ग भी सम्मिलित है, कालीबंगन मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा से टक्कर लेता प्रतीत होता है।

भारत के क्षेत्र में लोथल, कालीबंगन, रोपड़, आदि कई बड़े हड़प्पाई नगरों का विस्तृत अध्ययन हो चुका है। किंतु ग्रामीण बस्तियों की ओर विद्वानों ने अभी लगभग कोई ध्यान नहीं दिया है। हड़प्पा संस्कृति के नगरों में सबसे विशद और सर्वांगीण अध्ययन उसके दो विशालतम केंद्रों – मोहेंजोदड़ो तथा हड़प्पा – का हुआ है, यद्यपि उन्हें भी पूरी तरह नहीं खोदा गया है।

अतः बस्ती संरूपों, नगर-प्रकारों के वर्गीकरण, उनकी संरचना और नगर में सार्वजनिक केंद्रों की भूमिका, महत्त्व तथा स्थान के बारे में अंतिम रूप से कुछ कह पाना काफ़ी कठिन है। इस संबंध में हम केवल कुछ प्राक्कल्पनाएं ही प्रस्तुत कर सकते हैं।

हड़प्पा संस्कृति व्यापक भूभाग में फैली हुई थी और उसकी बहुसंख्य बस्तियों में हमें छोटे-छोटे ग्रामों से लेकर महानगरों अथवा बड़े राजधानी-नगरों तक सभी प्रकार के आबादी केंद्र मिलते हैं। कराची से ३२० किलोमीटर उत्तर में सिंध नदी के दायें तट पर स्थित मोहेंजोदड़ो और रावी नदी के बायें तट पर स्थित हड़प्पा राजधानी-नगरों की कोटि में ही आ सकते हैं। राजस्थान में घग्घर के तट पर बसे कालीबंगन की संरचना भी बहुत कुछ ऐसी ही थी।

हड़प्पाई बस्तियों को पांच वर्गों में बांटा जा सकता है: १) राजधानी-नगर, जिनमें दुर्ग भी होता था और जो हस्तशिल्पों तथा घरेलू व विदेश व्यापार के केंद्र थे; २) बंदरगाह-नगर – सामान्यतया ये भी दुर्गयुक्त और शिल्प तथा व्यापार के केंद्र होते थे; ३) दुर्ग रहित नागर बस्तियां; ४) प्राचीरयुक्त सीमांत चौकियां; ५) ग्राम। हड़प्पाई नगर-निर्माण-कला का चरमोत्कर्ष हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो नगरों में पाया जाता है।

इन दो नगरों की भौगोलिक स्थिति, विशेषतः उनका नदीतटों पर बसा होना, समुद्री व्यापार के विकास में और उनकी शक्ति एवं समृद्धि की वृद्धि में सहायक थे। यहां स्थानीय और विदेशी व्यापारियों का तांता लगा रहता था। व्यापक व्यापारिक संपर्कों की वजह से धातु की वस्तुओं, मिट्टी के बरतनों, सूती कपड़ों, आदि के उत्पादन का विकास हुआ। दोनों नगर निश्चय ही देश में व्यापार और हस्तशिल्पों के सबसे बड़े केंद्र थे।

इसके अतिरिक्त, उपलब्ध संकेतों के अनुसार, दोनों नगर स्थायी तौर पर, अथवा बारी-बारी से, सारे देश के प्रशासन केंद्र की भूमिका भी अदा करते थे। दोनों राजधानियों की देश के भीतरी भाग में स्थिति संयोगवश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं चुनी गयी थी। यहां वे न केवल शत्रु के आक्रमणों के सहज लक्ष्य नहीं बन सकते थे, अपितु यहां से देश पर प्रशासनिक नियंत्रण बनाये रखना और समीपवर्ती गांवों से नागरिक आबादी को खाद्य पदार्थों की पूर्ति की व्यवस्था करना भी सुविधाजनक था। इन कारणों से मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा सहस्राब्दियों तक एक बहुत ही विशाल राज्य की राजधानियां बने रह सके। राजधानी केंद्र का ऐसा ही सातत्य प्राचीन सुमेर में भी दिखायी देता है। प्राचीन मिस्र में राजधानियां कई बार बदलीं और जहां भी शासक का निवासस्थल होता था, राजधानी वहीं अंतरित कर दी जाती थी।

राज्य के जीवन में राजधानी के नाते मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा की दीर्घकाल तक जो स्थायी भूमिका रही, वैसी भूमिका कालीबंगन या लोथल न निभा सके, जो व्यापार और हस्तशिल्प के वैसे ही महत्त्वपूर्ण केंद्र थे और जिनका अस्तित्व राजधानियों के विनाश के बाद भी कई शताब्दियों तक बना रहा।

प्रश्न उठता है: हड़प्पा राज्य के इन दो प्रशासनिक केंद्रों के बीच आपस में क्या संबंध था और यदि वे एक दूसरे के स्थानापन्न थे, तो इसका क्या कारण था? ज्ञात है कि सिंधु की बाढ़ों से तटवर्ती नगरों का जीवन प्रायः अस्त-व्यस्त हो जाता था। संभवतः इसी कारण दो और राजधानियां बनाने की आवश्यकता पड़ी। यदि एक राजधानी आपद्ग्रस्त हो जाती थी, तो दूसरी राजधानी इस बीच काम कर सकती थी।

हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो एक दूसरे से ६६० किलोमीटर के फ़ासले पर स्थित थे और आपस में सड़कों तथा जलमार्गों से जुड़े हुए थे। वे मानो हड़प्पा राज्य के दो नेत्र थे, जिनसे उनके इर्द-गिर्द फैले विशाल दीर्घवृत्ताकार क्षेत्र पर सतत निगरानी रखी जा सकती थी।

हड़प्पा के आसपास १४ छोटी, क़सबानुमा बस्तियां थीं और मोहेंजोदड़ो भी ऐसे १७ "उपनगरों" से घिरा हुआ था। इन बस्तियों के अलावा, निस्संदेह, बहुसंख्य ग्रामीण बस्तियां भी रही होंगी, जिनके कोई निशान नहीं बचे हैं, क्योंकि उनमें सभी इमारतें अदीर्घजीवी होती थीं। हर राजधानी आसपास के उपनगरों तथा गांवों के साथ मिलकर, जो सड़कों के ज़रिये भी और अपने प्रकार्यात्मक प्रयोजन के ज़रिये भी आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे, एक अविभाज्य सोपानिक बस्ती प्रणाली थी, जिसे एक प्रकार से आधुनिक संकुल-नगर का पूर्वगामी कहा जा सकता है।

हड़प्पा संस्कृति के नगर यूनानी नगर-राज्यों जैसे स्वशासी स्वतंत्र राज्य थे अथवा एक ही राज्य के अंतर्गत अविभाज्य बस्ती प्रणाली से युक्त कई प्रशासनिक राजनीतिक केंद्र थे—यह ऐसा प्रश्न है, जिसका उत्तर विशेष अनुसंधानों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के बाद ही दिया जा सकेगा।

अधिकांश विद्वानों के अनुसार हड़प्पा संस्कृति के प्रसार क्षेत्र में एक अथवा दो राजधानी केंद्रोंवाला एक राज्य भी हो सकता था और अपनी पृथक् राजधानी से युक्त कई राज्य भी हो सकते थे। सोवियत अकादमीशियन व० स्त्रूवे तथा जर्मन भारतविद वाल्टर रूबेन के मत में हड़प्पाई समाज दासप्रथात्मक था और उसकी राजनीतिक प्रणाली बहुत कुछ सुमेर जैसी थी। कुछ हद तक ऐसी ही धारणा भारतीय विद्वान डी० डी० कोसांबी ने भी व्यक्त की है। जैसा कि ज्ञात है, मेसोपोटेमियाई राज्यों का संचालन-सूत्र पुरोहित वर्ग के हाथों में था और सारी भूमि मंदिरों की संपत्ति थी। इस संबंध में अंग्रेज़ विद्वान मार्टीमर ह्वीलर लिखते हैं "सत्ता का स्रोत कोई भी क्यों न रहा हो, उसमें प्रमुखता संभवतः धर्म को ही प्राप्त थी। हड़प्पा के शासक देश तथा राजधानी का उन्हीं तरीक़ों से शासन चलाते थे, जिनसे कि सुमेर तथा अक्काद के शासक, जो स्थान तथा काल की दृष्टि से उनसे कोई बहुत दूर न थे।"*

उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार देश में एक अति सुगठित केंद्रीकृत प्रशासन प्रणाली का अस्तित्व था। हड़प्पाई बस्तियों में हम नगर निर्माण से लेकर सामान्य घरेलू वस्तुओं तक मानव कार्यकलाप से संबद्ध हर किसी चीज़ का तत्कालीन पैमानों की दृष्टि से अभूतपूर्व और आज भी असाधारण-सा प्रतीत होनेवाला पूर्ण एकरूपण पाते हैं।

ऐसी बात अन्य प्राचीन सभ्यताओं में नहीं देखी जाती है। उसका भौगोलिक पैमाना ही – काठियावाड़ से लेकर मकरान तट तक और उत्तर में हिमालय की तराई तक – आश्चर्यजनक न था, उसका कई सदियों तक यथावत् बने रहना भी असामान्य था।

हड़प्पा सभ्यता के सारे क्षेत्र में एक ही जैसी तसवीर पायी जाती है। विभिन्न हड़प्पाई नगरों और क़सबों का निर्माण विभिन्न कालों में हुआ था, फिर मानो उन्हें एक ही आदर्श योजना के अनुसार, एक ही निदर्श के अनुसार बनाया गया था। सभी मकान लगभग एक ही जैसे थे और उनमें प्रयुक्त पक्की ईंटें भी एक ही आकार की थीं। सभी हड़प्पाई बस्तियों में एक ही तरह की लिपि, एक ही तरह की दशमलव माप-पद्धति, एक ही जैसी तौल-पद्धति और समान आकार-प्रकार के मिट्टी के बरतन तथा अन्य हस्तशिल्प की वस्तुएं मिलती हैं।

हड़प्पा की ४० से अधिक नागर बस्तियों में यदि एक ही जैसी नहीं,

---

* Wheeler M., *The Indus Civilisation*, 2nd ed., Cambridge, 1960, p. 47.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो एक दूसरे से काफ़ी मिलती-जुलती वास्तु एवं अभिन्यांसात्मक संरचना पायी जाती है, जो नगर को न्यूनाधिक एक जैसे मुहल्लों में विभाजित करनेवाले सड़कों के समकोणिक ग्रिड पर आधारित थी। पुराने स्थान पर नगर का पुनर्निर्माण किये जाने पर भी यह संरचना अपरिवर्तित रहती थी। नदीतटों पर स्थित नगरों का प्रायः पुनर्निर्माण करना पड़ता था। बाढ़ों की विनाश-लीला निवासियों को अपने ध्वस्त नगरों को फिर से बनाने पर विवश कर देती थी।

उदाहरण के लिए मोहेंजोदड़ो में सदियों के दौरान हुए निक्षेपण में एक दूसरे के नीचे दबे हुए एक जैसे नौ नगर पाये गये हैं, जिनकी भौतिक संस्कृति में ७०० वर्षों की अवधि में भी कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं आये। ऐसा ही हड़प्पा के एक दूसरे के नीचे दबे छह संस्तरों और लोथल के चार संस्तरों में भी देखा जाता है। इन नगरों के सारे अस्तित्वकाल में ताम्र और कांस्य का प्रयोग होता रहा और लौह नहीं पाया गया। नगर अभिन्यास और विभिन्न वास्तु तथा नगर निर्माण युक्तियों में कोई परिवर्तन नहीं आया। संभवतः पीढ़ी दर पीढ़ी नागरिकों की जीवन-पद्धति भी वैसी की वैसी बनी रही।

इस प्रकार यदि सहस्राब्दियों तक नहीं, तो शताब्दियों तक अवश्य ही हड़प्पाई लोगों पर अटूट परंपरा का बोझ लदा रहा।

इसका क्या कारण था? क्या यह एक ऐसे बेमिसाल वैचारिक रूढ़िवाद के प्रकट होने का परिणाम तो न था, जो समाज के शेष विश्व से एक अनवगम्य अलगाव के शिकंजों में फंसने के फलस्वरूप पैदा हुआ और जिसने अंततः उसे गतिशून्य करके पतननोन्मुख वना डाला?

इसके अकाट्य प्रमाण मौजूद है कि हड़प्पा के निवासी शेष विश्व से कटे हुए न थे। सुमेर, मिस्र, क्रीट और हड़प्पा की प्राचीन शक्तिशाली सभ्यताओं के हज़ारों वर्ष लंबे अस्तित्वकाल में उनके बीच व्यापारिक और सांस्कृतिक संपर्क बारंबार स्थापित और भंग होते रहे थे। परंतु अन्य सभ्यताओं से संपर्कों का हड़प्पाई समाज पर क्या प्रभाव पड़ा – अपर्याप्त अध्ययन और विवेचन के कारण यह प्रश्न अभी अनुत्तरित ही पड़ा हुआ है।

नगर निर्माण और नागर संस्कृति में प्ररूपण और एकरूपण की व्यापकता निश्चय ही एक सकारात्मक परिघटना है और एक ऐसे अत्यंत सुगठित शासनतंत्र की विद्यमानता की परिचायक है कि जो जनजीवन में शासकों की निरंकुशता और किन्हीं सांयोगिक नवाचारों के लिए कोई भी गुंजायश न छोड़नेवाली सुनिश्चित और अटल व्यवस्था बहुत शतियों तक बनाये रख सकता था।

प्रत्यक्ष प्रमाणों के अभाव में भी अनुमान किया जा सकता है कि सामाजिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और प्रशासनिक व्यवस्था के अनुरक्षण में धर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही होगी, जो स्थापित सांस्कृतिक परंपराओं और क़ानूनों को पवित्र ठहराता था।

तथापि मुख्य तौर पर यह उत्पादन रीति की अपरिवर्तनशीलता और तदनुरूप अपरिवर्तित सामाजिक संरचना ही थीं कि जिन्होंने हड़प्पा काल में प्रचलित मानव सहजीवन के रूपों को इतना दीर्घजीवी बनाया।

हड़प्पा परिघटना का नकारात्मक पक्ष प्रगति के प्रति झुकाव के अभाव में प्रकट होता है, हालांकि प्राचीन विश्व में अन्यत्र भी सामाजिक और आर्थिक प्रक्रियाओं की गति अत्यंत धीमी रही थी। हड़प्पाई समाज के विकास में मुख्य बाधा संभवतः उसके अपरिवर्तित उत्पादन संबंध थे। ये उत्पादन संबंध कैसे थे, यह प्रश्न भी अभी अपने समाधान की प्रतीक्षा कर रहा है।

हड़प्पा राज्य के विदेश व्यापार ने निश्चय ही उत्पादक शक्तियों के विकास को प्रेरित किया होगा। फिर भी, जैसा कि पुरातात्त्विक तथ्यों से पता चलता है, उसकी अर्थव्यवस्था का आधार सिंचित कृषि थी।

वेशक हड़प्पा संस्कृति के प्रसार क्षेत्र में हमें वैसी बड़ी सिंचाई प्रणालियों के अवशेष नहीं मिले हैं, जैसी कि, मिसाल के लिए, मिस्र में बनायी गयी थीं और जिनके लिए वहुत अधिक श्रम-शक्ति तथा साधनों की आवश्यकता होती थी। किंतु उस काल में जलवायु आज की अपेक्षा अधिक नम थी और फ़सलें उगाने के लिए वर्षा और जलाशयों तथा कूओं का पानी पर्याप्त सिद्ध हो जाता था। जलाशय और कूएं किसानों द्वारा निजी तौर पर अथवा सारे ग्राम समुदाय द्वारा सामूहिक रूप से बनाये जा सकते थे। हड़प्पा में सिंचाई प्रणालियों के निर्माण में राज्य की भूमिका, उदाहरणार्थ, मिस्र की अपेक्षा कहीं नगण्य थी। इससे निष्कर्ष निकलता है कि वहां मिस्र जैसी निरंकुश शासन प्रणाली का अभाव था। इसके अतिरिक्त, नगरीकरण का उच्च स्तर भी शासन के अधिक जनवादी रूपों, व्यापारी तथा कारीगर तबक़ों की सहभागितावाले रूपों के प्रचलन को अनिवार्य बना देता है।

नगर-बस्ती का वह विशेष रूप है, जिसमें उत्पादन प्रक्रियाएं सर्वाधिक कारगर ढंग से साकार बनती हैं और लोग एक दूसरे के प्रगाढ़तम संपर्क में आते हैं। नगर की आवश्यकता उत्पादक शक्तियों और उत्पादन संबंधों के विकास के एक निश्चित स्तर पर पहुंचने पर ही पैदा होती है।

हड़प्पाई समाज में व्यापारी और शिल्पी तबक़ों के लोगों का विशिष्ट स्थान था। बड़े नगरों का अस्तित्व इसकी पुष्टि करता है। नगरीकरण का उच्च स्तर तभी पाया जा सकता है, जबकि शिल्प और व्यापार सुविकसित हों। दूसरी ओर, शिल्प और व्यापार के विकास के लिए बेशी उपज देनेवाली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन्नत, कारगर कृषि का होना ज़रूरी है, जो शिल्पोत्पादन तथा विनिमय के लिए पर्याप्त कच्चा माल तथा अनाज दे सके।

हड़प्पा के दुर्ग में विशाल अन्न भंडार और अनाज की सफ़ाई, कुटाई, पिसाई, आदि के चबूतरे पाये गये हैं। संभवतः हड़प्पाई समाज में श्रम का सामाजिक संगठन प्रचलित था और इसकी बदौलत राज्य के पास अन्न के प्रचुर भंडार थे। उस युग में, जैसा कि पुरातात्त्विक खोजों से पता चला है, गेहूं, जौ, धान और चने की खेती की जाती थी। (मोहेंजोदड़ो में एक घर के अहाते में रोटी पकाने के लिए तंदूर भी पाया गया है।)

कताई और बुनाई के धंधे भी विकसित थे। खुदाई में हड़प्पा की मुहर लगे सूती कपड़े के अवशेष मिले हैं। अन्य शिल्पों में सबसे अधिक प्रचलित तथा विकसित मृण्भांड शिल्प था।

हड़प्पाई नगरों के खंडहरों से प्राप्त सोने, चांदी, मणियों तथा फ़ायन्स के आभूषणों, तांबे के बरतनों और धातु के उपकरणों तथा हथियारों से पता चलता है कि सिंधु सभ्यता के लोग धातुओं की गलाई तथा ढलाई के हुनर से भली भांति परिचित थे और आभूषण निर्माण में अत्यंत निपुण थे। इस काल में ताम्र के अलावा कांस्य भी अर्थव्यवस्था तथा शिल्पों में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता था।

खुदाई में मिले अनगिनत बाट और तराजू उस काल में व्यापारिक गतिविधियों के बृहद् पैमाने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। स्वर्ण और क़ीमती पत्थर दक्षिण भारत से आयात होते थे। माल-विनिमय के लिए विभिन्न आबादी केंद्रों और इलाक़ों के बीच आवश्यक संपर्क जल तथा स्थल मार्गों द्वारा स्थापित किये जाते थे।

संचार प्रणाली के विकास में पहियेदार परिवहन-साधन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। पुरातत्त्ववेत्ताओं को खुदाई में मिली दोपहिया खिलौना-बैलगाड़ी ऐसे परिवहन-साधनों की विद्यमानता की पुष्टि करती है (प्रसंगतः यह पहियेदार परिवहन का विश्व में सबसे प्राचीन प्रमाण भी है)। ठीक ऐसी ही बैलगाड़ी भारत की सड़कों पर आज भी देखी जा सकती है। पहिये के आविष्कार ने संचार प्रणाली के विकास में और फलस्वरूप मानवजाति की प्रगति में जो भूमिका अदा की, उसके महत्त्व का अतिमूल्यांकन असंभव है। भारत में पहिया – चक्र – प्राचीन काल से ही गति और विकास का प्रतीक माना जाता रहा है। अतः बिल्कुल संभव है कि पहिये का आविष्कार हड़प्पा के प्राचीन निवासियों ने ही किया हो।

सिंधु सभ्यता के लोगों के परस्पर संपर्क और संप्रेषण का एक महत्त्वपूर्ण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साधन लेखन कला थी। हड़प्पा संस्कृति की स्थलियों से पत्थर अथवा मिट्टी की लेखयुक्त १००० से अधिक मोहरें पायी गयी हैं, जिनपर तरह-तरह के कोई ४०० ध्वन्यात्मक और चित्रलिप्यात्मक चिह्न बने हुए हैं। ऐसे चिह्न मृण्भांडों और ताम्र फलकों पर भी मिले हैं। प्राय: मोहरों पर पशुओं, पक्षियों, मछलियों, मनुष्यों, आदि के अत्यंत निपुणतापूर्वक निर्मित उद्‌भृत चित्र भी पाये जाते हैं। बहुत-सी मोहरों को तावीज़ या मालों पर लगायी जानेवाली मोहर-छापें माना जा सकता है। उल्लेखनीय है कि भारत में प्राचीन काल में भी और मध्ययुग में भी हस्तशिल्प की वस्तुओं और मालों पर शिल्पियों तथा व्यापारियों की मोहरें लगाने की प्रथा थी। संभवत: यह रिवाज हड़प्पा काल से चला आ रहा था।

हड़प्पाई नगरों के पश्चिम और मध्य एशिया के देशों के साथ घनिष्ठ व्यापारिक संपर्क थे। सोवियत पुरातत्त्वविदों ने सिंधु घाटी और दक्षिण तुर्कमानिस्तान की बस्तियों के बीच संपर्क के प्रमाण पाये हैं। बलूचिस्तान, अफ़गानिस्तान और मेसोपोटामिया से धातुएं आयात की जाती थीं। हड़प्पाई नगर सुमेर को वस्त्र निर्यात करते थे। बहरीन उनके बीच पुनर्निर्यात केंद्र का काम करता था।

इन सबका प्रमाण उपरोक्त देशों के विभिन्न भागों में प्राप्त हड़प्पाई वस्तुओं से मिलता है (उदाहरणार्थ, हड़प्पाई मोहर की छाप से युक्त वस्त्र के अवशेष, आदि)। हड़प्पाई व्यापारियों की सागरपार यात्राओं की चर्चा अक्कादी अभिलेख भी करते हैं।

मोहरों पर अंकित मस्तूलदार पोतों के चित्र बताते हैं कि जहाज़रानी कितनी अधिक विकसित थी। तीसरी सहस्राब्दी ईसापूर्व के हड़प्पाई लोगों द्वारा निर्मित पोत भारत के मूल निवासियों द्वारा आजकल बनाये जानेवाले उन पोतों से किसी भी प्रकार छोटे न थे, जिनकी भारवहन क्षमता ५ से ६० टन के बीच होती है और जो कराची से बसरा तक की २००० किलोमीटर से ज़्यादा दूरी को दो महीने में तय कर लेते हैं। हड़प्पा काल में पोतनिर्माण और समुद्रगमन अत्यधिक विकसित होने की पुष्टि लोथल में हुई असामान्य खोजों से भी होती है। जनश्रुतियों के अनुसार सागरदेवी वनुवती सिकोतरीमती लोथल की संरक्षिका थी। यहां इस नगर में प्राचीन विश्व के सबसे बड़े पोतनिर्माण उद्योग की विद्यमानता के भौतिक प्रमाण पाये गये हैं, जैसे आयताकार (२१८×३७ मीटर) पोतनिर्माण गोदी, नौका घाट, पत्थर के लंगर, इत्यादि। पोतों की आकृति का अनुमान यहीं से प्राप्त एक पक्वमृत्तिका खिलौना-नौका से लगाया जा सकता है, जिसमें मस्तूल के लिए छेद भी बना हुआ है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निर्माण उद्योग सुसंगठित, बृहद्स्तरीय और प्राविधिक दृष्टि से काफ़ी उन्नत था, जो कि वास्तु तथा नगर निर्माण विज्ञान के उच्च विकास की परिस्थितियों में ही संभव हो सकता था (यद्यपि इस संबंध में कोई प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं)।

सिंधु सभ्यता के सारे क्षेत्र में मानकीत आकार की ईंटों और म्यूनिसिपल मलजलवाह प्रणाली के लिए पकी मिट्टी की बनी नालियों तथा खपुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाता था। ईंटों का उत्पादन संभवतः राज्य द्वारा स्वयं किया जाता था अथवा अपनी देखरेख में करवाया जाता था। निर्माण में पकी ईंटों के व्यापक प्रयोग में जलवायु और प्रकृति सहायक थे। ईंटें बनाने के लिए चिकनी मिट्टी और काष्ठ ईंधन की कमी न थी। हड़प्पा क्षेत्र पर फैले घने वन आज लुप्त हो गये हैं।

पकी ईंटों से रिहायशी मकान, सार्वजनिक इमारतें, कूएं, तालाब और नगर दुर्ग के परक़ोटे, और घरों तथा चौकों के फ़र्श बनाये जाते थे। नगर दुर्ग के बाहर कच्चे घर भी होते थे।

उस काल की बेहद नम जलवायु में पकी ईंटों के बिना काम चल भी नहीं सकता था। इसके अलावा वही ईंटें बार-बार प्रयोग होती थीं। पुरानी, बेकार इमारतें तोड़ दी जाती थीं और उनकी ईंटें नयी इमारतों में इस्तेमाल हो जाती थीं। मोहेंजोदड़ो में ऐसी पुरानी ईंटों के बहुत से ढेर पाये गये हैं, जो नये घरों के निर्माण के लिए तैयार की गयी थीं।

पकी ईंटों के अतिरिक्त कच्ची ईंटें भी इस्तेमाल होती थीं। बहुत-सी इमारतें ऐसी हैं कि जिनकी दीवारें भीतर से कच्ची ईंटों और बाहर से पकी ईंटों से बनी हैं। सिंध में ऐसी प्रथा आज भी विद्यमान है।

सिंधु सभ्यता के सारे इतिहास के दौरान ईंटों की चिनाई के तरीक़ों में कोई परिवर्तन नहीं आया। डाट; मेहरावें और गुंबद केवल "दिखावटी" बनाये जाते थे और इसके लिए ईंटों की क्षैतिज क़तारों के क्रमिक अतिच्छादन की विधि प्रयोग की जाती थी। उल्लेखनीय है कि कीलदार डाट का निर्माण न केवल हड़प्पा काल में प्रचलित न था, अपितु भारत के प्रस्तर-वास्तु में बहुत बाद तक–तेरहवीं शती तक–भी उसका प्रचलन न हो सका।

ईंटें और मृण्भांड पकाने के भट्टे नगर के बाहर होते थे। नगर के भीतर उन्हें बनाना संभवतः धूएं तथा कालिख के कारण अस्वास्थ्यकर और आग लगने की संभावनाओं के कारण ख़तरनाक माना जाता था। भारत में आज भी छोटे भट्टे भी बस्ती के बाहर ही बनाये जाते हैं।

यह ज्ञात नहीं है कि निर्माण में काष्ठ का प्रयोग कितना व्यापक था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खुदाइयों में कुछ जले हुए शहतीर पाये गये हैं, जो छत में प्रयोग किये गये थे। कच्चे मकानों में काष्ठ संभवतः दीवारों के ढांचे के तौर पर भी प्रयोग होता था, जैसा कि सिंध और काठियावाड़ में आज भी होता है। पत्थर का प्रयोग अति विरल था। वह दुर्ग-भित्तियों में प्रयोग होता था और अधिकांशतः अनतराशे खंडों के रूप में ही।

पूर्वनिर्मित प्रायोजनाओं के आधार पर नगर निर्माण किसी केंद्रीकृत शक्तिशाली राज्य में ही संभव है, और हड़प्पा इसी प्रकार का राज्य था। सभी हड़प्पाई नगरों का सुनियोजित अभिन्यास स्वयं ही एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। किंतु क्या ये नगर आरंभ से ही किसी निश्चित योजना के अनुसार बसाये और बनाये जाते थे या उनकी अभिन्यास योजना उनके पुनर्निर्माण के दौरान शासकों की इच्छानुसार क्रियान्वित होती थी, यह प्रश्न अभी असमाधित ही है।

विदित है कि सुमेर में नगरों के ज्यामितीय अभिन्यास की प्रायोजना पहले ही तैयार कर ली जाती थी। हड़प्पा की नगर सभ्यता के उच्चतर स्तर को देखते हुए हम कह सकते हैं कि नगरों का योजनाबद्ध ढंग से निर्माण करने का विचार हड़प्पाइयों को भी ज्ञात था। नगर आयोजना की प्रणाली अथवा उसकी अभिन्यासात्मक संरचना मनुष्य, प्रकृति और समाज के परस्पर संबंधों के नियमन की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी का काम करती है।

हड़प्पाई बस्तियां चाहे छोटी रही हों या बड़ी और प्रकार्यात्मक दृष्टि से चाहे उनका कोई भी प्रयोजन क्यों न रहा हो, सभी का अभिन्यास समकोणिक और ग्रिडनुमा होता था। विश्व नगर निर्माण कला में दो मुख्य देशिक संकल्पनाएं ज्ञात हैं, जिनमें से एक वृत्ताकार योजना पर आधारित है और दूसरी आयताकार योजना पर।

वृत्ताकार बस्तियों के अभाव को हड़प्पा सभ्यता की एक महत्त्वपूर्ण विभेदक विशेषता माना जाना चाहिए। उल्लेखनीय है कि भारतीय नगर निर्माण कला की यह विशेषता आनेवाले युगों में भी बनी रही। यूरोप में व्यापक रूप से प्रचलित नगर अभिन्यास की अरीय वृत्तीय प्रणाली भारत में मध्य युग में भी न फैल सकी। प्राचीन भारतीय शिल्पग्रंथों में उसकी आपवादिक मामलों में ही संस्तुति की गयी है।

सुमेर में वृत्ताकार अभिन्यास को प्राथमिकता दी जाती थी। विशेषज्ञों के अनुसार बस्तियों के ऐसे अभिन्यास का जन्म या तो क्रोमलेक (शिला-स्मारकों) से हुआ अथवा उसे प्रतिरक्षा की आवश्यकता के कारण अपनाया गया था। प्राचीन विश्व की आदिकालीन बस्तियों में वृत्ताकार अभिन्यास प्रायः पाया जाता है। प्राचीन मिस्र की चित्रलिपि में वृत्त नगर का प्रतीक था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चीनी मंडल बस्तियों और घरों के लिए वृत्त, आयत और वर्ग, तीनों आकृतियां सुझाता है, यद्यपि अधिकांशतः ज़ोर वर्ग पर ही दिया जाता है। मध्ययुगीन यूरोप में प्रतिरक्षा की दृष्टि से वृत्ताकार अभिन्यास को आदर्श माना जाता था।

भारत ने वृत्तीय अभिन्यास पर आधारित नगर योजना को क्यों नहीं अपनाया? ध्यान रहे कि किसी भी बस्ती की अभिन्यासात्मक संरचना दो मुख्य और अन्योन्याश्रित घटकों से बनती है, जो उस बस्ती को जीवनक्षम बनाते हैं। ये हैं संचार और प्रकार्य।

नगर की प्रायोजना और स्थापना सदा संचार व्यवस्था – मार्गों – से आरंभ होती है। ज्यों-ज्यों नगर बनता और बसता जाता है, उसकी परिवहन धमनियां नगर-मार्गों में परिवर्तित होती जाती हैं। नगर का संचार तंत्र उसका आधारभूत ढांचा है। नगर संरचना का यह स्थायी घटक यथासंभव नगर के प्रायोजित अथता सुस्थापित प्रकार्यों के अनुरूप विकास करता जाता है, किंतु नगर के प्रकार्य, जो उसे जन्म देनेवाले समाज की सभी जीवनीय प्रक्रियाओं तथा सतत वर्धमान आवश्यकताओं को प्रतिबिंबित करते हैं, परिवर्तनशील होते हैं, जबकि मार्गों का जाल मुश्किल से और नगर के पुनर्निर्माण की अवस्था में ही बदल पाता है।

नगर की अभिन्यासात्मक संरचना के निर्माण को प्रभावित करनेवाला एक अन्य महत्त्वपूर्ण घटक उसका प्राकृतिक और भौगोलिक पर्यावरण है।

हड़प्पाई बस्तियों में टेढ़ी-मेढ़ी गलियां तो थीं, मगर मुख्य मार्ग सदा सीधे और समकोण पर मिलते हुए होते थे।

प्राचीन मिस्र में मुख्य मार्ग सदा चतुर्दिक्मुखी होते थे, किंतु हड़प्पाई नगरों में ऐसा हमेशा नहीं पाया जाता, क्योंकि यहां प्रायः इस इलाक़े की तेज़ हवाओं, विशेषतः उत्तरी हवाओं की दिशा को भी ध्यान में रखना पड़ता था। घर और सार्वजनिक भवन सड़कों की दिशाओं के अनुसार बनाये जाते थे। चीनियों की भांति मिस्री भी मुख्यतया सूर्योपासक होने के कारण दक्षिणाभिमुखता पसंद करते थे। उल्लेखनीय है कि सुमेर में मुख्य मार्गों को नहीं, अपितु विकर्णी सड़कों को, जो आयताकार बस्तियों के कोनों को जोड़ती थी, चतुर्दिक्मुखी बनाया जाता था। मुख्य हवाओं की दिशा को भी यहां ध्यान में रखा जाता था।

हड़प्पाई नगरों में गौण सड़कें और गलियां किसी भी दिशा में बनायी जा सकती थीं, लेकिन उनके बीच आपस में समन्वय अवश्य होता था और वे सर्पिल गलियों की भूलभुलैयों का भ्रम नहीं पैदा करती थीं, जो कि अनियंत्रित रूप से विकसित नगरों की एक ख़ास विशेषता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसके अतिरिक्त, स्थानीय भूआकृति के अनुरूप, और कुछ मामलों में सामान्य अभिन्यासात्मक योजना को देखते हुए भी, सड़कों के जाल के अक्षों की दिशा और मुहल्लों के निर्माण का क्रम बदलता रहता था, किंतु मुख्य मार्ग फिर भी, सभी हालतों में, ऋजुरेखीय बने रहते थे। सड़कों के जाल द्वारा न्यूनाधिक समान आकार के अनेक खंडों में विभाजित हड़प्पाई नगरों का अभिन्यास विश्व नगर निर्माण कला के इतिहास में बस्ती की मात्रिक अभिन्यास संरचना की एक आद्यतम मिसाल है।

भारतीय नगरनिर्माता भारत के सारे इतिहास के दौरान बस्तियों की समकोणिक ग्रिडनुमा योजना से ही क्यों चिपके रहे? वृत्ताकार योजना की तुलना में वह किन बातों में श्रेष्ठ थी? प्राचीन भारतीय शिल्पग्रंथों में बस्तियों की काफ़ी बड़ी बहुसंख्या के लिए विविध प्रकार की समकोणिक ग्रिडनुमा अभिन्यास योजना ही सुझायी गयी है। श्रीरंगम और अन्य मध्यकालीन दक्षिण भारतीय मंदिर-नगरों का निर्माण 'मानसार' में उल्लिखित ऐसी ही एक योजना के अनुसार किया गया था। ग्रिडनुमा योजना का एक अन्य रूपांतर हमें अठारहवीं शती में निर्मित जयपुर नगर के अभिन्यास में और फिर जयपुर के ही अनुकरण पर आधुनिक चंडीगढ़ तथा अन्य नये नगरों के अभिन्यास में मिलता है।

नगर-मार्गों की समकोणिक प्रणाली विश्व के सभी भागों में और सभी कालों में पायी जाती है। समकोणिक ग्रिडनुमा अभिन्यास पूर्व के देशों में अत्यंत प्राचीन काल से ही अपनाया जाता रहा है। उसके आधार पर यूनानियों ने "हिप्पोडेमी प्रणाली" का विकास किया था, जो एक बहुत ही लचीली अभिन्यास योजना प्रणाली थी। इसमें नगर अभिन्यास के सभी तत्त्व आयतीय निर्देशांकों पर निर्भर होते थे और किसी भी अभिन्यास योजना में सहजतापूर्वक संयोजित और सम्मिलित किये जा सकते थे। दूसरी ओर, रोमन छावनी-नगरों, उनके आधार पर विकसित यूरोपीय नगरों और इसी प्रकार के मध्ययुगीन फ़्रांसीसी गढ़ों तथा उन्नीसवीं शती में तेज़ी से विकसित उत्तर अमरीकी नगरों का अभिन्यास ग्रिड अधिक रूढ़ और अनम्य था।

इन सभी मामलों में निर्माण के लिए समय, शक्ति और साधनों की अत्यधिक किफ़ायत करनी पड़ती थी। यही बात हमारे काल में ग्रिड सिद्धांत पर आधारित दिक्-विभाजन की मात्रिक प्रणाली पर भी लागू होती है। ग्रिडनुमा योजना पर आधारित बस्ती की संचार व्यवस्था उसे समान आकार और आकृतियों के मुहल्लों में विभक्त कर देती है। नगर में ऐसी स्वतंत्र, चारों ओर से सड़कों से घिरी समान क्षेत्रीय इकाइयों की काफ़ी बड़ी संख्या होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार मात्रिक प्रणाली दिक्स्थान का मानकीकरण करती है और यही वृत्ताकर, अरीय वृत्तीय अभिन्यास की तुलना में, जिसमें सड़कों का जाल नगर को असमान भागों में बांट देता है, समकोणिक ग्रिडनुमा अभिन्यास की एक महत्त्वपूर्ण खूबी है। इसके अतिरिक्त – और यह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है – अभिन्यास योजना की अपने में संवृत वृत्तीय प्रणाली के विपरीत आयतीय प्रणाली सभी दिशाओं में नगर के विकास तथा विस्तार के लिए अधिक गुंजायश पेश करती है और समान आकार की क्षेत्रीय इकाइयों से निर्मित उसकी आंतरिक संरचना को किसी भी प्रकार भंग नहीं होने देती। अपनी इन दो मुख्य खूबियों के कारण ही समकोणिक ग्रिडनुमा अभिन्यास इतना जीवनक्षम सिद्ध हो सका है।

नगर निर्माण के क्षेत्र में समकोणिक अभिन्यास योजना के मूल के संबंध में विभिन्न मत प्रचलित हैं, जिन्हें स्थूलत: दो वर्गों में बांटा जा सकता है। एक प्रत्ययवादी उपागम पर आधारित और दूसरा भौतिकवादी उपागम पर। प्रत्ययवादी उपागम के समर्थक वास्तुशिल्प और नगर निर्माण कला को लोगों की ब्रह्मांड विषयक धारणाओं और विश्वोत्पत्तिक विचारों से संबद्ध मानते हैं। पिछले वर्षों में प्रतीकार्थता की अधिकाधिक चर्चा होने लगी है और कहा जाता है कि वही बिंबात्मक चिंतन का मुख्य रूप है तथा परिवेशी दिक्स्थान के संघटन में बहुत बड़ी भूमिका निभाता है। संदर्भ मुख्यत: पूर्वी देशों का दिया जाता है, जहां के लोगों के जीवन में आज भी धर्म का बड़ा स्थान है और जिनकी कला तथा वास्तुशिल्प की रहस्यवाद तथा प्रतीकार्थता की दृष्टि से व्याख्या की जाती है। उदाहरणार्थ, कहा जाता है कि भारत, चीन, आदि पूर्वी देशों में बस्तियों और भवनों के लिए वर्गीय आकृति इसलिए चुनी जाती है कि यहां के वास्तुशिल्पी भूमंडल की एक वर्ग के रूप में कल्पना करते आये हैं।

किंतु प्रतीकार्थता अपने ही लिए विशिष्ट किन्हीं वास्तु-आकृतियों को स्वयं शायद ही जन्म दे सकती है। प्राचीन काल में प्रतीकार्थता पहले व्यवहार से उत्पन्न, तैयार आकृतियों पर आरोपित की जाती थी और इसके बाद ही धर्मपंडित अथवा शास्त्रकार उसे शास्त्रसम्मतता का रूप प्रदान करते थे।

हमारे मत में नगरनिर्माता आयताकार अभिन्यास को दूसरे ही कारणों से चुनते थे और ऐसा उन मामलों में तो और भी होता था, जब नगर किसी एकीभूत आयोजना के अनुसार तथा न्यूनतम अवधि में बनाये जाते थे और जब सर्वाधिक युक्तिसंगत, किफ़ायती एवं बुनियादी आवश्यकताओं के अनुरूप अभिन्यास योजना अपेक्षित होती थी।

समकोणिक मार्गोंवाले बस्ती अभिन्यास का जन्म संभवत: नील, सिंधु, याङ्त्सी, ह्वाङ्हो, दजला और फ़रात की उर्वर घाटियों, अर्थात मिस्र,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारत, चीन और मेसोपोटामिया में कृषि संस्कृति के उन आद्य केंद्रों में हुआ था, जहां कृषि के लिए सिंचाई कार्यों का संगठन आवश्यक था। हड़प्पा की उन्नत नगर सभ्यता से पहले कृषि से हस्तशिल्पों के अलग होने की प्रक्रिया में उसके परिपक्वन की दसियों शतियां गुज़री थीं।

ग्रामीण बस्तियों के आधार पर नगर प्रकट हुए। बस्तियां अधिकांशत: नदियों की घाटियों में होती थीं। नदियां सिंचाई का मुख्य स्रोत थीं। साथ ही वे बस्तियों को आपस में जोड़नेवाले मार्गों का काम भी करती थीं।

खेती पर आधारित प्राचीन सभ्यताओं में कृषि उत्पादन का क्षेत्र और बस्तियों का स्वरूप आपस में घनिष्ठत: संबद्ध थे। जहां खेती सिंचाई पर निर्भर थी, वहां काश्त की विधियों का विकास, मृदा का स्वरूप, धूप की मात्रा तथा दिशा और भू-आकृति, यानी कृषि के विकास में जो भी कारक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं, वे बस्तियों की अवस्थिति तथा वितरण को भी प्रभावित करते थे।

सिंचाई नहरों की समकोणिक प्रणाली अपने सरल अभिन्यास के कारण समतल स्थानों के लिए सबसे उपयुक्त और सुविधाजनक होती है। सिंचाई की कारगरता की दृष्टि से उसकी बराबरी और कोई प्रणाली नहीं कर सकती थी। ज्यों-ज्यों सिंचाई साधनों का विकास और परिष्कार होता गया, त्यों-त्यों नये इलाक़ों को काश्तयोग्य बनाया गया और इसके साथ ही नयी जगहों पर नयी बस्तियों की स्थापना की संभावनाएं बढ़ीं, जो अब नदियों से उतना नहीं, जितना कि सिंचाई प्रणाली से जुड़ी हुई थीं। सिंचाई नहरों, बांधों, तटबंधों, जलाशयों, आदि के नियमित जाल ने देहात का भूदृश्य आमूलत: बदल डाला और नियमित अभिन्यासवाली बस्तियों के आविर्भाव की पूर्वापेक्षाएं पैदा कीं। समाज की उत्पादक शक्तियों तथा माल विनिमय के विकास के साथ ये बस्तियां नगरों में बदलती गयीं।

प्राचीन नगरनिर्माताओं के लिए सिंचाई प्रणालियों के निर्माण का अनुभव निश्चय ही न केवल नगर की संरचना, अपितु उसकी जल आपूर्ति तथा निकास और अन्य म्यूनिसिपल सेवाओं एवं सुविधाओं के संगठन से संबंधित समस्याओं को हल करने में काम आया होगा। प्राचीन भारतीय वास्तुशिल्प के अनुभव के आधार पर मध्यकालीन कंबोडिया ने परिवेशी ग्राम प्रकृति के साथ एक अविभाज्य इकाई की रचना करनेवाले भव्य नगरों का निर्माण किया, जिन्हें अपने में नगर तथा ग्राम, दोनों के प्रकार्य का संयोजन करनेवाले आधुनिक नगरीय संकुलों (एग्लोमेरेशन) का पूर्वगामी कहा जा सकता है।

हर काल में नगर के कुछ प्रतिरक्षात्मक प्रकार्य रहे हैं और नगर अपने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काल के सैनिक तथा तकनीकी साधनों को देखते हुए इस प्रकार्य को अलग-अलग ढंग से पूरा करता आया है।

सारे विश्व में प्राचीन और मध्य काल में यदि नगरों के पहुंच-मार्गों में कोई प्राकृतिक अवरोध नहीं होते थे तो कृत्रिम अवरोध – दुर्ग प्राचीर – खड़े कर दिये जाते थे। जापान और यूनान उन इने-गिने देशों में से थे, जहां नगर चारों ओर से खुले होते थे और प्राचीरों से घिरे हुए नहीं थे। इस दृष्टि से भारत और चीन प्राचीरों से घिरे नगरों की ठेठ मिसाल पेश करते हैं।

हड़प्पा काल से ही प्राचीन भारतीय नगरों की संरचना में प्रतिरक्षात्मक निर्मितियों का बहुत बड़ा स्थान रहा। उन्हें संभवतः इतना जंगली जानवरों अथवा शत्रु कबीलों से रक्षा के लिए नहीं बनाया जाता था, जितना कि प्राकृतिक प्रकोपों, विशेषतः बाढ़ों से रक्षा के लिए, जो कभी-कभी अकल्पनीय रूप से विनाशकारी सिद्ध होती थीं। चौदहवीं शती में और १६२६ में भारत की नदियों, नील, दजला और फ़रात में एक साथ बाढ़ आने के फलस्वरूप जो भयंकर विनाश हुआ था, वह सर्वविदित है।

सिंधु सभ्यता के प्रसार क्षेत्र में मिली सभी ग्रामीण और नागर बस्तियां द्वारयुक्त प्राचीरों, मिट्टी के पुश्तों और खाइयों से घिरी हुई हैं। कभी-कभी बस्तियों के गिर्द परकोटों, पुश्तों और खाइयों के कई-कई घेरे पाये गये हैं। मिसाल के लिए, हड़प्पा के गिर्द बुनियाद पर १२ मीटर चौड़ी और १०.७ मीटर ऊंची दोहरी दुर्ग-भित्ति मिली है। उत्तरवर्ती प्राचीन-भारतीय शिल्पग्रंथों में भी इस प्रकार के प्रतिरक्षात्मक उपाय किये जाने का उल्लेख मिलता है। बाढ़ के प्रकोपों से रक्षा के लिए ही ज़मीन से काफ़ी ऊंचे उठे हुए कृत्रिम चबूतरे भी बनाये जाते थे, जो कुछ विशेष इमारतों के लिए और कभी-कभी तो पूरे के पूरे मुहल्ले अथवा दुर्ग के लिए भी बुनियाद का काम करते थे।

हड़प्पा सभ्यता के बड़े प्रशासनिक केंद्रों की नगरीय संरचना में दुर्ग का महत्त्वपूर्ण स्थान था, जिसके भीतर सभी प्रमुख प्रशासनिक तथा आर्थिक इमारतें, और संभवतः धार्मिक इमारतें भी, संकेंद्रित होती थीं।

यह ज्ञात नहीं है कि दुर्ग के भीतर सभी नागरिक रह सकते थे या केवल विशिष्ट लोग ही। इसी तरह दुर्गों के भीतर पायी गयी कुछ इमारतों और निर्मितियों का प्रयोजन भी स्पष्ट नहीं हो पाया है। ये क्या शासकों के निवास और नगर प्रशासन के कार्यालय थे अथवा मात्र धार्मिक महत्त्व की इमारतें थीं, यह प्रश्न अभी अनुत्तरित ही पड़ा है।

दुर्ग की शेष बस्ती से पृथकता और नगर में उसकी प्राधान्यपूर्ण स्थिति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसके प्रतिरक्षात्मक प्रकार्यों पर बल देती हैं। दुर्ग सामान्यतः नगर में सबसे ऊंचे स्थल पर बनाया जाता था। यदि स्थल पर्याप्त ऊंचा न होता था, तो कृत्रिम तरीक़े से उसकी ऊंचाई बढ़ा दी जाती थी। उदाहरण के लिए, हड़प्पा में दुर्ग जिस चबूतरे पर स्थित है, वह बाहर से पक्की ईंटों से ढंकी कच्ची ईंटों का बना हुआ है। धरातल से उसकी ऊंचाई ६ से १५ मीटर के बीच है और आकार में वह मानो दो समान वर्गों को मिलाकर बनाये गये आयत जैसा है (१९०×३८० मीटर)। उल्लेखनीय है कि उत्तरकालीन भारतीय अभिन्यास में भी ऐसा आकारीय अनुपात सर्वाधिक प्रचलित था।

हड़प्पा, मोहेंजोदड़ो और कालीबंगन में दुर्ग के मुख्य अक्ष और द्वार निरपवादतः चतुर्दिक्मुखी हैं। किंतु नगर की सड़कों के दिक्-विन्यास के मामले में इस नियम का इतनी ही कड़ाई से पालन नहीं किया गया है। दुर्ग के मुख्य द्वार, संभवतः धार्मिक मान्यताओं के अनुसार, पूर्व और पश्चिम की ओर खुलते हैं। बहुत संभव है कि दुर्ग स्वयं नगर के लिए ही नहीं, आसपास की सभी बस्तियों के लिए भी धार्मिक स्थल का काम करता होगा।

मंदिर से मिलती-जुलती निर्मितियों में से एक मोहेंजोदड़ो के दुर्ग में उस स्थल पर पायी गयी है, जहां बाद में एक बौद्ध स्तूप का निर्माण किया गया था। यह निर्मिति इस स्तूप की नींव के बहुत नीचे दबी हुई थी। भारत में और पूर्व के अन्य देशों में भी धार्मिक इमारतें पुरानी धार्मिक इमारतों के स्थल पर बनाने की परंपरा है। संभवतः इस मामले में भी ऐसा ही हुआ होगा।

दुर्ग के भीतर सार्वजनिक भवनों को यद्यपि यथेच्छ ढंग से समूहित किया गया है, फिर भी अपनी समग्रता में वे धार्मिक अनुष्ठानों और विशाल शोभा-यात्राओं के लिए सर्वथा उपयुक्त देशिक विन्यास का प्रभाव उत्पन्न करते हैं। मोहेंजोदड़ो और अन्य बड़े नगरों में अभी ऐसे चौक नहीं मिले हैं, जिन्हें कि नगर की संचार व्यवस्था और उसके समस्त क्रियाकलाप का मुख्य नाभिक माना जा सके।

हड़प्पाई नगरों का सामाजिक और सार्वजनिक केंद्र संभवतः दुर्ग था, जिसे प्रकार्यात्मक और दृश्यात्मक, दोनों ही प्रकार से नगर में प्रमुख स्थान प्राप्त था।

बड़े नगरों का और विशेषतः जो प्रशासनिक केंद्र का काम करते थे, उनका निर्माण दुर्ग से शुरू होता था, जिसकी अवस्थिति पहले ही तय कर ली जाती थी। मोहेंजोदड़ो इसकी पुष्टि करता प्रतीत होता है। दुर्ग के मुख्य द्वार से आरंभ होनेवाली मुख्य अक्षांशीय – पूर्व-पश्चिम – सड़क मोहेंजोदड़ो को उस महामार्ग से जोड़ती है, जो हड़प्पा जाता है और नगर के केंद्र से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यानी उस जगह से होते हुए गुज़रता है, जहां एक और मुख्य सड़क – नगर को आर-पार दो भागों में बांटनेवाली उत्तर-दक्षिण सड़क – उसे समकोण पर काटती है। दो परस्पर अभिलंब सड़कों से बने इस ताने-बाने के गिर्द ही फिर नगर के रिहायशी मुहल्ले बसे थे। दुर्ग के विशाल मुख्य द्वार से चौड़ी-चौड़ी सीढ़ियों के रूप में सड़क केंद्र की ओर बढ़ती है। सहज ही कल्पना की जा सकती है कि नगर के अत्यंत महत्त्वपूर्ण भागों को जोड़नेवाली यह परिवहन धमनी अपना सामान्य, शुद्ध उपयोगितामूलक कार्य निभाने के साथ-साथ वैचारिक महत्त्व के प्रकार्य भी पूरे करती होगी। मिसाल के लिए, वह वैसे जलूसों के मार्ग का काम करती होगी, जैसे सुमेर के नगरों में भी निकला करते थे। इस मार्ग से सैन्यदलों की शोभा-यात्राएं और धार्मिक उत्सवों के मौक़े पर हज़ारों लोगों के जलूस गुज़रा करते होंगे।

दुर्ग में जो चीज़ हमारा ध्यान सबसे अधिक आकृष्ट करती है, वह है सार्वजनिक स्नानागार। उसका विस्तार ११.९×७ मीटर और गहराई २.४३ मीटर है। इसका तल बिटूमन से निर्मित था और गंदे पानी के निकलने तथा समीप ही स्थित कुएं से स्वच्छ पानी के आने के लिए इसमें पूरी-पूरी व्यवस्था की हुई थी। वास्तव में यह कई इमारतों और निर्मितियों का समूह है, जिसके मध्य में एक सीढ़ीदार आयताकार कुंड है। इस कुंड के दक्षिण की ओर बाल्कनियों और खुले बरामदे से युक्त छोटे-छोटे कमरे बने हैं। उत्तरी भाग में स्तंभों तथा गलियारोंवाले बड़े-बड़े कक्ष स्थित हैं। पश्चिम में तीन बरामदोंवाला एक लंबा गलियारा है, जिसके दोनों कोनों पर एक जैसे कमरे बने हुए हैं। पूर्व की ओर से प्रवेश द्वार बना हुआ है। इस प्रकार यह बरामदों, गलियारों और कमरों से घिरा हुआ और मध्य में स्नानकुंड से युक्त एक विशाल बंद स्थान था। स्नानागार के उत्तर में बीचोंबीच गलियारे से दो भागों में विभक्त एक असामान्य भवन मिला है। गलियारे के बीच से पानी बहने के लिए नाली बनी है। भवन में दोनों ओर चार-चार कमरे हैं। सीढ़ियों के अवशेष भी पाये गये हैं, जिनसे दूसरी मंज़िल पर पहुंचा जाता था। तंग और टेढ़े दरवाज़ों के कारण बाहर से आदमी अंदर नहीं झांक सकता था। निजी स्नानगृह से युक्त इन कमरों का प्रयोग विशिष्ट लोग, संभवतः पुरोहितगण, ही कर सकते थे।

विशाल स्नानागार के दक्षिण-पश्चिम में उष्ण वायु द्वारा तापित हमाम स्थित है। ऐसा ही हमाम नगर के भीतर भी था।

हड़प्पाई सार्वजनिक स्नानागार दक्षिण भारत के मंदिरों में विद्यमान और आज भी बनाये जानेवाले स्नानागारों से बहुत ही मिलते-जुलते हैं। आज की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भांति हड़प्पा काल में भी ये कुंड स्नान तथा प्रक्षालन के अतिरिक्त अनावृष्टि के दिनों में जलागारों के तौर पर इस्तेमाल किये जाते रहे होंगे।

मोहेंजोदड़ो दुर्ग के भवन-समुच्चय में जो सबसे बड़ा भवन पाया गया है (१७०×२३० मीटर), वह राजप्रासाद जैसा प्रतीत होता है। हड़प्पा में दुर्ग के उत्तरी कोने में ईंटों के ६१ मीटर लंबे और ४६ मीटर चौड़े चबूतरे पर निर्मित अन्नागार है, जो भीतर से दीवारों द्वारा ६×१५ मीटर आकार के अनेक खंडों में विभाजित है। इसके समीप ही कई सौ लोगों, संभवतः अनाज की सफ़ाई, पिसाई, आदि करनेवाले लोगों के रहने के मकान हैं।

गलियों और सड़कों के बिना नगर की कल्पना नहीं की जा सकती। नगररूपी शरीर की ये संचार धमनियां तरह-तरह के कार्य करती हैं, जिनमें सबसे मुख्य है उनका परिवहन से संबंधित कार्य। सड़क नगर के विभिन्न भागों को आपस में और साथ ही बाह्य विश्व से भी जोड़ती है। वह लोगों – स्थानीय और आगंतुक लोगों – के मिलने की जगह का काम भी करती है। वह प्रायः अपने शुद्ध उपयोगितामूलक प्रयोजन तक सीमित रहती है, किंतु जब उसे प्रतिनिधान कार्यों के लिए प्रयोग किया जाता है, तो वह विशेष औपचारिक, सामारोहिक स्वरूप धारण कर लेती है।

हड़प्पाई नगरों की सड़कें जिस रूप में पुरातत्ववेत्ताओं को मिली हैं, उस रूप में बहुत ही उबाऊ और नीरस प्रतीत होती हैं। वे एक दूसरे के काफ़ी नज़दीक-नज़दीक बनायी गयी हैं और गलियारों जैसी लगती हैं, किंतु ऐसे गलियारे कि जो ऊपर को चौड़े होते जाते हैं। मज़बूती के लिए इमारतों की दीवारें सीधे खड़ी नहीं, अपितु कुछ ढलवां बनायी जाती थीं। ऐसी इमारतें हमें पहली शती ईसापूर्व के सांची के स्तूप १ के तोरण पर बने उद्भृत चित्रों में भी मिलती हैं।

प्राचीन मिस्री वास्तुशिल्पी भी संभवतः हड़प्पाई नगरनिर्माताओं जैसे ही कारणों से प्रायः बाढ़ग्रस्त होनेवाले इलाक़ों में दीवारें ढलवां बनाते थे।

उष्ण जलवायुवाले दूसरे देशों की भांति हड़प्पाई नगरों में भी तेज़ धूप से बचने के लिए सड़कें अधिकांशतः संकरी बनायी जाती थीं, ताकि समीपवर्ती मकान उनपर हमेशा छाया किये रहें। मकानों के बड़ी सड़क की ओर अभिमुख भाग लगभग पूर्णतः द्वाररहित होते थे और उनमें झरोखे भी कम से कम बनाये जाते थे।

सिंधु सभ्यता के बड़े व्यापारिक नगरों में मुख्य सड़कें आज के भारत जैसे ही बाज़ार की भूमिका भी निभाती थीं। इन सड़कों के किनारे-किनारे ग्राहकों तथा व्यापारियों को धूप और वर्षा से बचानेवाले बरामदे होते थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नगर की मुख्य सड़कें सीधी और इतनी चौड़ी (७ से १० मीटर तक) होती थीं कि उनपर एक साथ कई बैलगाड़ियां गुज़र सकती थीं। आम तौर पर वे नगर-द्वार पर जाकर ख़त्म होती हैं। शेष सड़कों की चौड़ाई लगभग ५.५ मीटर और सबसे तंग सहायक सड़कों की चौड़ाई ३.६ मीटर से २.७ मीटर तक है। गलियों और कूचों की चौड़ाई कम से कम १.२ मीटर पायी गयी है। बड़े नगरों में ८०० मीटर से भी ज़्यादा लंबी सड़कें होती थीं। चौराहों पर मकानों के कोनों को प्राय: गोल बनाया जाता था, ताकि लदी हुई बैलगाड़ियां बेरोकटोक गुज़र सकें। नगर प्रशासन संभवत: ध्यान रखता था। कि नगर के फैलने पर गलियां टेढ़ी-मेढ़ी न होती जायें और मकान निर्धारित सीमा के भीतर ही रहें। हड़प्पाई नगरों में सड़कों को पक्का बनाये जाने के अभी कोई निशान नहीं मिले हैं। वर्षाकाल में सड़कों पर आवागमन इतना कठिन होता था कि संभवत: उसे रोक दिया जाता था। यदि कुछ भागों में सड़कों को पक्का किया भी जाता था, तो इसके लिए ईंटों के टुकड़े और बरतनों के ठीकरे ही इस्तेमाल होते थे।

रिहायशी मकानों का निर्माण कतारों और ब्लॉकों में किया जाता था। आपस में जुड़े हुए मकानों के बीच साझी दीवारें होती थीं। बहुत कम मामलों में मकानों के बीच ३० सेंटीमीटर का अंतराल भी पाया गया है। ये अंतराल या तो हवा के संचार में सहायक का काम करते थे या फिर उनका उद्देश्य अग्निकांड की स्थिति में आग का फैलाव रोकना था। सघन ब्लॉकनुमा निर्माण उत्तर भारत के नगरों में बाद के कालों में भी प्रचलित रहा है और इसकी आवश्यकता बहुत करके हवाओं और अंधड़ों से बचाव के कारण पैदा हुई थी।

बड़े हड़प्पाई नगरों में मकान बहुमंज़िले – प्राय: तिमंज़िले और कभी-कभार दोमंज़िले – बनाये जाते थे और मंज़िलें भी अपेक्षया काफ़ी ऊंची होती थीं। पहली मंज़िल की ऊंचाई ५.५ से ७ मीटर के बीच होती थी।

मकानों की सघनता, उनके आकार और उनमें उपलब्ध सुविधाओं की मात्रा से अनुमान लगाया जा सकता है कि संपन्नता के स्तर और सामाजिक हैसियत की दृष्टि से सभी नगरवासी एक जैसे न थे। भारतीय विद्वान एस० के० दीक्षित के अनुसार हड़प्पाई समाज चार मुख्य समूहों में विभाजित था: व्यापारी, शिल्पी, सैनिक और बड़े गृहस्वामी।

नगर के केंद्र में इमारतें सामान्यत: अगर बिखरी-बिखरी थीं, तो उपांत तक पहुंचते-पहुंचते उनकी सघनता काफ़ी बढ़ जाती थी। बड़े भवन-समुच्च्यों में, जिनमें कई भीतरी अहाते और उनके इर्द-गिर्द अनगिनत कमरे हैं, स्पष्टत: संपन्न लोग रहते थे। ऐसे भवन नगर के मध्य भाग में और मुख्य सड़कों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के किनारे स्थित हैं। उपांतों में छोटे-छोटे और मामूली घर पाये जाते हैं, जो संभवतया मेहनतकशों के निवास थे। अन्नागारों के समीप मिली बैरकनुमा इमारतों में बहुत करके अनाज की सफ़ाई, पिसाई, आदि करनेवाले रहते थे, जिनकी हैसियत संभवतः दासों की थी। सबसे छोटे घर का आकार ८×९ मीटर था, जबकि मोहेंजोदड़ो में बड़े घरों का क्षेत्रफल इसका दोगुना है। इसके अलावा, कई विशाल घर, जिनमें शायद कई परिवार रहते थे, और अतिथिशाला जैसे घर भी पाये गये हैं।

प्रमुख व्यापारिक केंद्र का काम करनेवाली केंद्रीय सड़कों के दोनों ओर ज़्यादातर कारवां सरायें स्थित थीं। दूकानों और बरामदोंवाली शेष सड़कें आज के भारत के बाज़ारों की याद दिलाती हैं। सड़कों के किनारे भोजनालय और बड़ी-बडी रिहायशी इमारतें भी थीं।

आवासीय इमारतें चाहे छोटी हों या बड़ी, सबका नक़्शा एक जैसा है। घर में मध्य में एक आयताकार अथवा वर्गाकार अहाता होता था, जिसके इर्द-गिर्द, प्रायः तीन ओर, रहने के तथा दूसरे कमरे और एक ओर प्रवेश द्वार युक्त नंगी दीवार होती थी। अहाते का फ़र्श आम तौर पर ईंटों का बनाया जाता था और वह घर के एक तिहाई क्षेत्रफल जितना बड़ा होता था। मोहेंजो-दड़ो में एक घर (ब्लॉक डी के का मकान नं०८) के अहाते का आकार ९.६×९.६ मीटर है।

अहाता घर के निवासियों के जीवनीय क्रियाकलाप का मुख्य संगठनकारी नाभिक होता था। उसमें खाना तैयार किया जाता था, विभिन्न घरेलू काम किये जाते थे और प्रायः मवेशी भी रखे जाते थे। संपन्न नागरिकों के घरों में कई अहाते पाये गये हैं, जिनके विभिन्न प्रयोजन होते थे। आज के बहुत-से भारतीय घरों की तरह तब भी रसोई अहाते के एक कोने में छप्पर के नीचे होती थी। पहली मंज़िल पर संभवतः विभिन्न काम-धंधे से संबंधित कमरे और भंडार होते थे। कुछ घरों में वहां शिल्पशालाएं, दूकानें और नौकरों के रहने के कमरे भी पाये गये हैं। ऊपरी मंज़िलों पर रिहायशी कमरे होते थे, जिन्हें आपस में जोड़ने के लिए बरामदा बनाया जाता था। छत कैसी होती थी, इस बारे में कुछ बता पाना कठिन है।

औसत नागरिक का कई-कई अहातों से युक्त लंबा-चौड़ा घर पर्याप्त सुविधासंपन्न था। वायु-संचार के लिए लगभग सभी कमरों में झरोखे बने होते थे। एक-दो कमरे स्नानगृह के तौर पर इस्तेमाल होते थे। स्नान खड़े होकर किया जाता था। मोहेंजोदड़ो में एक घर की दूसरी मंज़िल के फ़र्श के नीचे गर्म हवा के संचार के लिए नालियों का लंबा-चौड़ा जाल मिला है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गर्माने की ऐसी व्यवस्था काफ़ी बाद के काल के भारतीय गर्म हमामों में ही मिलती है।

मकानों के सड़क की ओर अभिमुख भाग, कम से कम पहली मंज़िल (ऊपरी मंज़िलें अवशिष्ट नहीं रही हैं), पूरी तरह बंद, सपाट और खिड़की रहित होते थे। कमरों में हवा और उजाला भीतरी अहाते से पहुंचते थे। ऊपरी मंज़िलों की खिड़कियों पर छाया करने के लिए छाजन या ओलतियां बनी हो सकती थीं। यदि मध्यकालीन भारतीय घरों के सड़क की ओर अभिमुख भाग अपनी असामान्य साज-सज्जा के लिए प्रसिद्ध हैं, तो हड़प्पाई नगरों में घरों के इन भागों पर किसी भी प्रकार की सज्जा और अलंकरणों का पूर्ण अभाव आश्चर्य में डाल देता है।

"मोहेंजोदड़ो की सड़कों पर टहलते हुए," जॉन मार्शल लिखते हैं, "सहज ही लंकाशायर की याद आ जाती है। यहां भी वैसी ही नंगी, पूरी तरह से सजावट रहित ईंट की दीवारें हैं। बिल्कुल उपयोगितामूलक इमारतें। और तो और, यहां और इंगलैंड में निर्माण में प्रयुक्त ईंटों का आकार भी वही है। भारतीय वास्तुशिल्प के लिए, जो सज्जा-अलंकरणों के प्राचुर्य के लिए प्रसिद्ध है, सजावट का यह अभाव और भी आश्चर्यजनक है। हो सकता है कि मोहेंजोदड़ो में कोई सज्जा प्रयोग की जाती रही हो, लेकिन जिस सामग्री पर वह की गयी थी, उसकी अदीर्घजीविता के कारण वह लुप्त हो गयी है। यह क्या लकड़ी का काम था, चित्रकारी थी या कुछ और? लेकिन उसके अस्तित्व के कोई वास्तविक प्रमाण तो हैं नहीं।"*

हड़प्पाई नगरों के बहुत कम भवनों के पलस्तर पर ही चित्रकारी के अवशेष पाये गये हैं। उल्लेखनीय है कि अधिकांशतः सुरक्षित निचली मंज़िलें ही रही हैं, जिन्हें भंडारघर, शिल्पशाला, गोशाला, आदि के तौर पर प्रयोग किया जाता था, जबकि ऊपरी मंज़िलें अदीर्घजीवी सामग्री से निर्मित होने के कारण सुरक्षित नहीं रह सकी हैं और उनके आभ्यंतर भागों में ही भित्ति-लेपन, चित्रकारी, लकड़ी पर काम, आदि किये जा सकते थे।

हड़प्पाई नगरों की खोज ने यूरोप में प्रचलित इस मान्यता को बुरी तरह झकझोर डाला कि पश्चिम के लोग भारतीय वास्तुकला के अति संपन्न रूप-विधान में मूर्त प्रतीकों तथा रहस्यात्मकता को नहीं समझ सकते। हड़प्पाई लोगों के आत्मिक जगत और सौंदर्यबोध के बारे में कुछ बता पाना कठिन है। मिस्र, सुमेर और माइसीनी की तुलना में सिंधु सभ्यता की ललित और

* Marshall J., *op cit.*, vol I, p. 84.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अलंकरण कलाओं की बहुत कम वस्तुएं ही हम तक पहुंच पायी हैं। अत: कुछ कला-इतिहासज्ञों की यह धारणा बनी कि घोर, संकीर्ण व्यावहारिकता हड़प्पाइयों की चरित्रगत विशेषता थी। फ़िर भी हड़प्पाई मूर्तिकारों की यथार्थवादी कला अत्यंत प्रभावी है और इस प्रकार की धारणाओं को निराधार सिद्ध करती है। हड़प्पाई नृत्य मूर्तियों में हम जो गति-संप्रेषण पाते हैं, वह बहुत ही अभिव्यक्तिपूर्ण है। यह संयोग की बात नहीं है कि ऐसी गत्यात्मकता और जीव-जंतुओं के यथार्थपरक चित्रण में हासिल अनुपम कौशल, जिसकी हड़प्पाई मोहरों में अनगिनत मिसालें मिलती हैं, भारत के लगभग सारे ही इतिहास में उसके मूर्तिशिल्प की अंगभूत विशेषता रहे हैं।

सिंधु सभ्यता की सभी नगरीय बस्तियों में पीने के पानी के कूएं मिले हैं। वे बेलनाकार और ईंटों से निर्मित होते थे। निजी कूओं के अलावा, सार्वजनिक कूएं भी बनाये जाते थे। उनके निकट लोगों के बैठने अथवा बरतन रखने के लिए ईंट के चबूतरे बने होते थे। कूओं पर पानी पीने के लिए लोटे या मिट्टी के कसोरे भी रखे होते थे। जल की आपूर्ति और निकासी की व्यवस्था के लिए संभवत: नगर प्रशासन उत्तरदायी होता था। सार्वजनिक स्नान के लिए पक्के, इंटों से निर्मित कुंड सभी प्रकार की और प्रत्येक बस्ती में पाये गये हैं। बहुधा सार्वजनिक स्नानागार विभिन्न निर्मितियों – कुंड के गिर्द समूहित चबूतरों, दीर्घाओं और कमरों – का एक समुच्चयसा होता था।

हड़प्पाई नगरों की बड़ी नालियों, अवसादन द्रोणियों और वृष्टि जलनिकास नालियों से युक्त और नियमित रूप से साफ़ की जानेवाली म्यूनिसिपल मलजलवाह व्यवस्था न केवल उत्कृष्ट थी, अपितु प्राचीन पूर्व में बेमिसाल भी थी। जलनिकास की यह सारी प्रणाली २५ सेंटीमीटर चौड़ी नालियों के भूमिगत जाल के आधार पर काम करती थी। गंदा पानी और अन्य गंदगियां सीधे बड़ी नालियों में नहीं पहुंचती थीं, बल्कि अवसादन द्रोणियों अथवा मल गर्त्तों से होकर गुज़रती थीं, जो नालियों की सफ़ाई के समय आसानी से हटा लिये जानेवाले ईंट के चौड़े ढक्कनों से ढंके होते थे। घरों में गंदा पानी पहले घर के अंदर ही बने पक्की मिट्टी के पाइपों में, जिनके नीचे फ़र्श पर एक बड़ा मिट्टी का घड़ा रखा होता था, इकट्ठा किया जाता था। घड़ा भर जाने पर उसे सार्वजनिक नाली में खाली कर दिया जाता था।

छतों और ऊपरी मंज़िलों से बारिश का पानी पक्की मिट्टी के बने परनालों और जोड़दार पाइपों से होकर बहता था, जो बाहरी दीवार से टिके होते थे। पाइपों को जिस ढंग से जोड़ा और लगाया जाता था, उससे वे बाहरी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दीवारों की सपाट सतह के लिए एक तरह की सजावट का काम भी कर सकते थे। इन नालियों में पानी सीढ़ी-सीढ़ी करके गिरता था और हर सीढ़ी ऐसे कोण पर बनायी जाती थी कि राह गुज़रते लोगों पर बहते पानी के छींटे न पड़ें। ऐसी ही व्यवस्था सिंध के आधुनिक घरों में भी देखी जा सकती है। अल्पसंपन्न लोगों के मुहल्लों में संभवत: सभी नागरिक सुविधाएं और ऐसा आराम उपलब्ध न था।

बाढ़ें म्यूनिसिपल कार्यों, विशेषत: मलजलवाह व्यवस्था के सुधार में गंभीर बाधाएं पैदा करती थीं, क्योंकि समय के साथ सड़कों का स्तर बदलता जाता था। जर्जर अथवा बाढ़ से विनष्ट मकानों के स्थान पर नये मकान बनाये जाते थे, तो निचली मंज़िलों के फ़र्श का स्तर ऊंचा हो जाता था और स्वाभाविक तौर पर अहातों का स्तर भी ऊंचा कर देना पड़ता था। रास्ते उपमार्गों, गलियों और चौकों से जुड़े होते थे और उनका स्तर भी बदलता जाता था। सड़कों के स्तरों में अंतर अतिरिक्त कठिनाइयां पैदा करता था। नयी नालियां, परनाले, कूएं, आदि बनाने पर बहुत मेहनत लगंती थी। अगर कुछ अपरिवर्तित रहता था, तो यह सामान्यतया मुख्य सड़कों का स्तर ही होता था।

हड़प्पा सभ्यता के विनाश के कारण अभी पूरी तरह ज्ञात नहीं हैं। ह्रास और आंतरिक संकट नें सबसे पहले राजधानी-नगरों को प्रभावित किया और इसके बाद ही शेष नगरों को अपनी चपेट में लिया। मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा में अठारहवीं शती ईसापूर्व के अंत में ही सामान्य नगरीय जीवन-क्रम भंग होने के स्पष्ट लक्षण दिखायी दे जाते हैं। निर्माण अब निर्धारित सीमा के बाहर भी होने लगा, कुम्हारों के आंवे मुख्य सड़कों पर भी प्रकट हो गये और विनष्ट जलनिकास नालियों की मरम्मत करनेवाला कोई न रहा। बहुत से विशाल भवन या तो जर्जर हो गये अथवा अंदर से अनगिनत छोटे-छोटे कमरों में बंट गये। शिल्पोत्पादन बेहद घट गया और परिणामस्वरूप घरेलू और विदेश व्यापार में भी भारी कमी आ गयी। उपांतीय, काठियावाड़ के समुद्री तट पर स्थित नगर, जिनकी समृद्धि का आधार विदेश व्यापार था और जो केंद्र पर कम निर्भर थे, अभी बहुत समय तक, मोहेंजोदड़ो के अवसान के कोई एक हज़ार वर्ष बाद तक, अपना अस्तित्व बनाये रहे।

हड़प्पा संस्कृति के पतन में सामाजिक और आर्थिक कारणों के अलावा, जैसा कि अब सिद्ध हो चुका है, प्राकृतिक प्रकोपों का भी हाथ रहा था। विशाल पैमाने पर वनों की कटाई के कारण नदियों की धाराओं और मानसूनों की दिशाएं बदल गयी थीं; प्रायः सूखा पड़ने लगा था और मिट्टी खारी बनती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जा रही थी। अनवरत बाढ़ों से जूझना भी मुश्किल होता जा रहा था।

प्राकृतिक प्रकोपों से अभिभूत इस देश की हालत का यूनानी इतिहासकार स्ट्रैबो ने बहुत सटीक वर्णन किया है: "किसी काम से वहां जाने पर मैंने देखा कि एक हज़ार से भी अधिक नगरों और गांवोंवाले इस देश को उसके निवासियों ने त्याग दिया है, क्योंकि सिंधु नदी अपनी पहले की दिशा छोड़कर और बायीं ओर मुड़कर नये, अधिक गहरे तल में तीव्र गति से, प्रपात जैसे उछलते-उफनते हुए बहने लगी है।"

अमरीकी भूविज्ञानी आर० एल० राइक्स के अनुसार, एक अति भयंकर भूकंप भी आया था, जिसका अधिकेंद्र मोहेंजोदड़ो से १४० किलोमीटर दक्षिण में था। संभवतः अधिकेंद्र के सामीप्य ने मोहेंजोदड़ो और उसके साथ-साथ निकटवर्ती बस्तियों के पूर्ण विनाश में जो क़सर थी, उसे पूरा कर दिया होगा।

मोहेंजोदड़ो के खंडहर नगर में आयी गाद की बाद से उसके निवासियों के संघर्ष की नाटकीय कहानी कहते हैं। नगर बाढ़ की चपेट में पांच बार से ज़्यादा आया। फिर भी वह बार-बार पुनर्जीवित हुआ। नगरवासियों ने बांध, पुश्ते, आदि बनाकर नगर को बचाये रखने का प्रयत्न किया। मोहेंजोदड़ो में २० मीटर चौड़ा और १० मीटर से अधिक ऊंचा बांध पाया गया है। वैज्ञानिकों का मत है कि गाद के सागर का हर हमला १०० वर्ष से अधिक जारी रहा। सिंधु घाटी के दक्षिणी भाग में आयी प्राकृतिक महाविपदाओं का यह दीर्घ सिलसिला सारी ही हड़प्पा संस्कृति के लिए प्राणघातक सिद्ध हुआ। केंद्रीय सत्ता क्षीण होती गयी, मार्गों का निर्माण रुक गया, व्यापार संबंध टूट गये। एक ज़माने के खुशहाल, मगर अब संकटग्रस्त नगरों के निवासी भुखमरी, अकाल और महामारियों के कारण दक्षिण-पूर्व में, काठियावाड़ में जाकर बसने को विवश हो गये। प्राचीन विश्व की इस एक सबसे उन्नत सभ्यता पर अंतिम प्रहार शक्तिशाली खानाबदोश आये क़बीलों की घुसपैठों ने किया।

सिंधु घाटी में इतनी अनुपम मानव सभ्यता की जन्मस्थली का अस्तित्व इतिहास के लिए अपार महत्त्व रखनेवाला एक आश्चर्यजनक तथ्य है। किंतु वे जीवंत परंपराएं और वे सूत्र भी, जो आज के भारत को अतीत से जोड़ते हैं, कोई कम आश्चर्यजनक और इतिहास के लिए कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। हड़प्पा की महान, विलक्षण संस्कृति का प्रभाव भारत की जनता के जीवन के अनेकानेक पहलुओं पर, उसके रहन-सहन, धर्म, कलात्मक सृजन, वास्तुशिल्प और नगर निर्माण कला पर आज भी अनुभव किया जाता है। भारत की इस प्राचीनतम संस्कृति ने भारत ही नहीं, पूर्व के अनेक अन्य देशों की भी संस्कृति के समस्त उत्तरकालीन इतिहास और विकास पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूसरा अध्याय

गंगा घाटी और उत्तर-पश्चिम भारत के नगर

सिंधु सभ्यता के केंद्रों के पतन के बाद एक नहीं, कई शतियां बीत गयीं और तब जाकर ही उत्तर भारत के कुछ भागों में विकसित शिल्पों और व्यापार के आधार पर नगरनुमा बस्तियों का पुनः आविर्भाव हो सका। किंतु मोहेंजो-दड़ो और हड़प्पा सरीखे शक्तिशाली केंद्रों से युक्त बस्ती प्रणाली भारत में प्राचीन काल में ही नहीं, आधुनिक युग तक के उसके सारे इतिहास में भी फिर कभी प्रकट न हो पायी।

प्राचीन भारत का हड़प्पोत्तर इतिहास दो कालों में बांटा जाता है: वैदिक काल, जिसका अध्ययन मुख्यतः वैदिक साहित्य में उपलब्ध सामग्री के आधार पर किया गया है, और दासप्रथात्मक राज्यों का काल। इतिहासकार छठी शती ईसापूर्व को इन दो कालों के बीच की विभाजन-रेखा मानते हैं। इन दोनों कालों में, विशेषतः ईस्वी संवत की पहली शतियों तक उत्तर भारत ही सामाजिक घटनाओं का मुख्य स्थल रहा।

हड़प्पोत्तर काल में नयी नगर सभ्यता की बुनियाद बड़े पैमाने पर भारत में विदेशी आर्य क़बीलों के आगमन, स्थानीय क़बीलों के साथ उनके सम्मिश्रण और विभिन्न संस्कृतियों की अन्योन्यक्रिया की परिस्थितियों में पड़ी। भारत के समस्त इतिहास में उसकी बहुस्तरीय कला और निर्माणशिल्प में दो सर्वथा भिन्न प्रवृत्तियां स्पष्ट दिखायी देती हैं: तथाकथित "भारतीय-आर्य" और तथाकथित "द्रविड़"।

ये दो प्रबल धाराएं कभी भारतीय संस्कृति की एकीभूत धारा के रूप में परस्पर संलयित हो जाती हैं, तो कभी उसके इतिहास की परतों को भेदकर अपने मौलिक रूप में प्रकट होती रहती हैं। उदाहरण के लिए, मध्ययुगीन मंदिर-वास्तु में हमारा दो स्पष्टतः अभिव्यक्त "शैलियों" से साक्षात्कार होता है – दक्षिण भारत में द्रविड़ शैली और उत्तर भारत में भारतीय-आर्य शैली।

वैदिक काल में वृहद् स्तर पर गंगा घाटी में नये इलाक़ों को आबाद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किया गया, स्थायी जीवन पद्धति अपनायी गयी और कृषि तकनीकों का विकास हुआ। इस प्रक्रिया के साथ-साथ समाज में गोत्र-क़बीलाई संबंधों में विघटन आया और ग्रामनुमा बस्तियों से नगरीय बस्तियों में संक्रमण होने लगा।

वैदिक काल के बाद, जो कोई एक सहस्राब्दी तक जारी रहा, भारत के इतिहास में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण काल आया। यह बड़े-बड़े राज्यों के निर्माण और नगरों की तीव्र संवृद्धि का काल था। द्रुत आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगति के इस युग में वर्ण व्यवस्था और ग्राम समुदाय जैसी सामाजिक संस्थाएं विकसित हुईं, कि जो भारत में आज भी पायी जाती हैं और जिनका देश के ऐतिहासिक विकास-क्रम पर तथा उसके नगरों के विशिष्ट स्वरूप पर बड़ा प्रभाव पडा। जैन और बौद्ध धर्मों जैसे नये धर्म उत्पन्न हुए, जो शहरी तबक़ों के विश्व-दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करते थे। बौद्ध धर्म ने शीघ्र ही न केवल भारत में प्रमुख स्थान पा लिया, अपितु तेज़ी से अन्य देशों में भी फैलने लगा। नये प्रकार की धार्मिक निर्मितियों और एक नये प्रकार की बस्ती – विहार अथवा मठ – का भी आविर्भाव हुआ।

हड़प्पोत्तर प्राचीन भारत से संबंधित पुरातात्त्विक साक्ष्यों का नितांत अभाव है। किंतु भौतिक संस्कृति के अवशेषों की दुर्लभता के बावजूद इस युग की साहित्यिक रचनाओं का प्रबल प्राचुर्य पाया जाता है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी कि अंतर्वस्तु की समृद्धता, वैज्ञानिक चिंतन की गहनता, कलात्मक अभिव्यंजना और काव्यात्मक अभिप्रेरणा की दृष्टि से भारत की यह अक्षय साहित्यिक निधि सारे विश्व में अतुलनीय है। वह भारतीयों की बौद्धिक और कलात्मक संस्कृति के आश्चर्यजनक रूप से समृद्ध संसार को उद्घाटित करती है, और यह संस्कृति, हमारे मत में, लोकवार्ता के आधार पर नगरीय केंद्रों में ही संवर्धित हुई थी।

प्राचीन भारत की साहित्यिक कृतियां भारतीय समाज की संरचना, देश की शासन प्रणाली, धर्म, जीवन पद्धति और नागरिक रहन-सहन पर प्रकाश डालती हैं।

इस साहित्यिक निधि का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण संघटक अंग उसकी नगर निर्माण कला से संबंधित सैद्धांतिक रचनाएं हैं, जिनमें उपलब्ध सामग्री के आधार पर हड़प्पोत्तर युग के प्राचीन भारतीय नगर का निदर्श (मॉडल) रचा जा सकता है (इसका विस्तृत विवेचन अगले अध्याय में किया जायेगा)। बदली हुई परिस्थितियों में प्राचीन नगर निर्माण संबंधी सिद्धांतों तथा परंपराओं की अभिव्यक्ति के सबसे ज्वलंत उदाहरण दक्षिण भारत में तेरहवीं – चौदहवीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शतियों में निर्मित मंदिर-नगर श्रीरंगम और उत्तर भारत में अठारहवीं शती में एकीभूत योजना के अनुसार निर्मित जयपुर हैं। आज ये दोनों ही तेज़ी से बढ़ते हुए नगर हैं। स्थान और काल को देखते हुए उनमें प्राचीन भारतीय शिल्पग्रंथों के निर्देश अलग-अलग ढंग से रूपायित हुए हैं।

फिर भी, अपने सारे महत्त्व के बावजूद, प्राचीन भारतीय शिल्पग्रंथों में कुछ गंभीर दोष हैं। सामान्यतया स्मरणातीत काल से चली आ रही मौखिक परंपराओं पर आधारित इन ग्रंथों में समय के साथ बदलती परिस्थितियों के साथ संशोधन, परिवर्तन और परिवर्द्धन होते रहे हैं। फिर उनमें रचनाकाल और रचनास्थल का भी कोई उल्लेख नहीं मिलता। उनका तिथिनिर्धारण अप्रत्यक्ष तरीक़े से और प्रायः कई शतियों की गुंजायश रखते हुए ही किया जा सकता है और उनमें वर्णित घटनाओं, तथ्यों तथा तिथियों की सत्यता की जांच पुरातात्त्विक साक्ष्यों तथा साहित्यिक स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं की तुलना करके और पुरालेखों, सिक्कों तथा जिन लिखित स्रोतों का काल ज्ञात है, उनकी सहायता से ही हो पाती है।

विदेशी लेखकों के साक्ष्यों में भी प्राचीन भारत के नगरों और नगर संस्कृति के बारे में रोचक सामग्री मिलती है। इस प्रसंग में यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस (पांचवीं शती ईसापूर्व), स्ट्रैबो, प्लूटार्क (ईस्वी संवत की पहली शतियां), मेगस्थनीज़, जो चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में सेल्यूकिड शासकों का दूत था (चौथी शती ईसापूर्व), की रचनाएं और चीनी यात्री फ़ाहियान (चौथी – पांचवीं शती), ह्वेनत्सांग तथा इत्सिंग (सातवीं शती) के यात्रा-वृत्तांत उल्लेखनीय हैं।

भारतीय संस्कृति के अध्ययन के लिए आज भी विश्वकोश जैसा महत्त्व रखनेवाले अमर महाकाव्य महाभारत और रामायण (१०००–७०० ईसापूर्व) अपने काल के वस्तुतः विद्यमान नगरों के काव्यात्मक चित्र प्रस्तुत करते हैं। इन काव्यों में वर्णित सामग्री पुरातत्ववेत्ताओं के लिए मार्गदर्शक का काम करती है।

१९७५ में भारत के पुरातत्त्व विभाग ने उत्तरप्रदेश राज्य के क्षेत्र में प्राचीन बस्तियों के अनुसंधान का एक पंचवर्षीय कार्यक्रम बनाया था। दोनों महाकाव्यों में वर्णित घटनाओं का मुख्य स्थल यही प्रदेश है। अयोध्या में और श्रीनागवेरपुर में, जो रामायण के रचयिता वाल्मीकि की आवासस्थली बताया जाता है, खुदाइयां की गयी हैं। छठे और सातवें दशकों में हस्तिनापुर की संभावित स्थली पर किये गये पुरातात्त्विक उत्खनन महाभारत में वर्णित इस नगर के विनाश के कारणों की पुष्टि करते हैं। नगर का कच्चे घरोंवाला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आधा हिस्सा वस्तुतः ८०० ईसापूर्व में बाढ़ से भूमिसात् हो गया था। सुरक्षित केवल कुछ बड़े भवन ही रह सके, जो पक्की ईंटों के बने हुए थे।

महाभारत और रामायण में अनेक राज्यों की राजधानियों का उल्लेख मिलता है, जैसे काशी (अथवा वाराणसी), अयोध्या, श्रावस्ती, चंपा, वैशाली, उज्जयिनी (उज्जैन), इंद्रप्रस्थ (पांडवों की राजधानी और वर्तमान दिल्ली के निकट स्थित), इत्यादि। भारतीय ऐतिहासिक परंपरा के अनुसार गंगा की घाटी में नगरों का अस्तित्व तीसरी–चौथी सहस्राब्दी ईसापूर्व में भी था। किंतु पुरातत्ववेत्ताओं को इस क्षेत्र में अभी ऐसा एक भी बड़ा नगर नहीं मिला है, जिसे आठवीं शती ईसापूर्व से पहले का माना जा सके (यहां कौशांबी, राजगृह (वर्तमान राजगिर), पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना), अहिच्छत्रा, ताम्रलिप्ति (बंगाल की खाड़ी के तट पर स्थित बंदरगाह, वर्तमान तामलुक), आदि नगरों की खुदाई की गयी थी)।

रोपड़ (पंजाब में सतलुज के तट पर स्थित), आलमगीरपुर तथा कौशांबी (यमुना के तट पर स्थित) पर और मध्य तथा पश्चिम भारत में अनेक स्थायी क़बीलों की बस्तियों, उदाहरण के लिए नासिक और जोरवे में प्राप्त बस्तियों पर, जिनका काल १५००–१०० ईसापूर्व है, हड़प्पा सभ्यता की छाप पायी गयी है। रोपड़ और आलमगीरपुर तो भूतपूर्व हड़प्पाई बस्तियों के स्थल पर ही बसे हुए थे।

दक्षिण भारत की उपजाऊ घाटियों की आरंभिक बस्तियों के बारे में यहां पाये गये सिंचाई नहरों तथा कृत्रिम जलाशयों के अवशेषों, अनगिनत महापाषाण स्मारकों और पहाड़ों को काटकर बनायी गयी समाधियों से पता चलता है, जिनका काल ५०० ईसापूर्व से १०० ईस्वी के बीच आंका गया है।

वैदिक और वैदिकोत्तर काल में मुख्य निर्माण सामग्री हड़प्पाई नगरों की भांति पकी ईंटें नहीं, अपितु काष्ठ था, जो इतना दीर्घजीवी न था। काष्ठ-निर्मित होने के कारण इस काल के नगर अधिकांशतः अग्निकांडों में नष्ट हो जाते थे।

भारत के क्षेत्रफल का पांचवां भाग आज भी वनाच्छादित है। प्राचीन काल में तो वह लगभग सारा ही वनों से ढंका हुआ था। इनमें अनगिनत क़िस्मों का मूल्यवान और मज़बूत काष्ठ पाया जाता था, जिसे सामान्य इमारतों के अलावा नगर-प्राचीरों, दुर्गों, प्रासादों तथा मंदिरों के निर्माण में, पोत, रथ, बैलगाड़ियां, आदि बनाने में और अन्य बहुविध आर्थिक कार्यों में प्रयोग किया जाता था।

निर्माण में प्रयुक्त काष्ठ का विशेष संसाधन किया जाता था, जिसकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बदौलत वह दीर्घ काल तक सुरक्षित रह सकता था। पाटलिपुत्र की खुदाई के दौरान पुरातत्त्ववेत्ता डी० स्पूनर सम्राट अशोक (तीसरी शती ईसापूर्व) के दुर्ग-प्राचीर और प्रासाद के शहतीरों को आज, दो सहस्राब्दी से ज़्यादा समय बाद, भी वैसा ही चिकना और अक्षत पाकर दंग रह गये थे।*

नगरों की काष्ठनिर्मित इमारतें सुरक्षित नहीं रही हैं। उनकी कल्पना हम उत्तरकालीन शैल निर्मितियों से कर सकते हैं, जिनमें उनकी आकृतियां, ढांचे और यहां तक कि कीलों के सिरों जैसे सूक्ष्म विवरण भी दस्तावेज़ी सुतथ्यता के साथ अंकित हुए हैं।

पकी ईंटों से निर्मित नगरीय भवन भी सुरक्षित नहीं रह सके हैं, यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं कि देश के कुछ भागों में हड़प्पा काल से ही नगर निर्माण में पकी ईंटों का व्यापक प्रयोग होता रहा था। मथुरा, पाटलिपुत्र, राजगृह, सारनाथ और कई अन्य नगरों में दूसरी शती ईसापूर्व से ईस्वी संवत की आरंभिक शतियों तक के और अधिक बाद के काल के भी ईंटों से निर्मित भवनों के अवशेष मिले हैं। उल्लेखनीय है कि ईंटों का आकार हड़प्पाई ईंटों जैसा ही बना रहा (२८×१३.३ ५.७ सें० अथवा २६×१२×५.७ सें०)।

निर्माण में पत्थर तभी प्रयोग किया जाता था, जब काष्ठ तथा मृदा उपलब्ध नहीं होते थे। राजगृह में धातु की बडी-बडी (९० से १५० सें० तक लंबी) गुज्झियों से आपस में जुड़े विशाल अनतराशे प्रस्तरखंडों से निर्मित दीवार के अवशेष पाये गये हैं, जो प्राचीन भारतीय स्थापत्य में प्रस्तर-चिनाई की एक आद्यतम और अनुपम मिसाल पेश करते हैं।

भारत में प्रस्तर-वास्तु के युग का सूत्रपात तीसरी शती ईसापूर्व में पहाड़ी चट्टानों को भीतर से तराशकर निर्मित चैत्यों, मंदिरों और विहारों से होता है। निमार्ण में तराशे हुए पत्थरों का प्रयोग ईसा की पहली शतियों में होने लगा और इस प्रकार के निर्माणों के अवशेष विशेषत: उत्तर-पश्चिम भारत में पाये गये हैं। दक्षिण भारत में प्रस्तर-वास्तु का विकास सातवीं शती से आरंभ होता है।

आद्यतम वैदिककालीन बस्तियों का आविर्भाव सामूहिक प्रतिरक्षा की आवश्यकताओं को देखते हुए हुआ था, किंतु आगे चलकर उनके निर्माण और आयोजना में श्रम प्रक्रियाओं के संगठन से संबंधित आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा जाने लगा। अनवरत अंतर्क़बीलाई लड़ाइयां और वन्य पशुओं के हमलों का ख़तरा ग्रामवासियों को प्रतिरक्षात्मक अवरोध–बाड़ें,

* Spooner D., *Excavations at Pataliputra* Archaeological Survey of India, Delhi, 1912-1913, p. 33.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दीवारें, आदि – खड़े करने को विवश करते थे। वाड़ें मुख्यतया जंगलों को साफ़ करके नयी आबाद की हुई ज़मीनों के गिर्द खड़ी की जाती थीं। द्वारयुक्त परकोटे, मिट्टी के पुश्ते और पानी से भरी खाइयां (परिखाएं) बस्तियों के गिर्द ही नहीं, क़बीले के अधिकार में स्थित सारे क्षेत्र के गिर्द और कभी-कभी तो कई घेरों के रूप में बनाये जाते थे। अवरोध प्रतिरक्षा के प्रतीक होते थे। भारत में खेतों, ग्रामों, नगरों, धार्मिक स्थलों, मंदिरों, आदि के चारों ओर अवरोध स्थापित करने की परंपरा वैदिक काल से ही चली आ रही है। आगे चलकर अधिक सुदृढ़ प्रतिरक्षा के उद्देश्य से बस्ती के भीतर दुर्ग बनाया जाने लगा। विशेषतः गंभीर ख़तरे के दिनों में निवासी उसकी मज़बूत दीवारों के भीतर शरण ले सकते थे।

इसके अतिरिक्त, ग्राम से पृथक्, स्वतंत्र आरक्षित स्थलियों का निर्माण भी किया जाता था, जिनकी भित्तियों और परिखाओं के पीछे आबादी अपने सामान और मवेशियों के साथ ख़तरे के दिनों में छिप सकती थी। ये आरक्षित स्थलियां "पुर" कहलाती थीं और कालांतर में वे क़बीले के मुखिया (राजा) और अन्य अधिकारियों के स्थायी निवासस्थान ही नहीं, सारे क़बीले और क्षेत्र के प्रशासनिक केंद्र – नगर – भी बन गयीं।

पुर के गिर्द सामान्यजन बस जाते थे, जो उसे आवश्यक खाद्य सामग्रियां, आदि मुहैया करते थे। संरचना की दृष्टि से यह नगरनुमा बस्ती प्राचीरों के घेरों से घिरे और मध्य में दुर्ग से युक्त किसी बड़े ग्राम से अधिक भिन्न नहीं होती थी। भारत में आज भी बस्ती का मुख्य रूप ग्राम ही है। वैदिक ग्राम की सामाजिक संरचना और उसके स्थापत्य के स्वरूप ने भारतीय नगर और नगरीय संस्कृति के विकास पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है।

हड़प्पोत्तर भारत के ग्रामों और नगरों में भवन किस प्रकार के होते थे, इसका अनुमान हम भरहुत और सांची के स्तूपों की प्रस्तर उद्भृतियों (दूसरी शती ईसापूर्व – पहली शती ईस्वी) और अजंता के भित्तिचित्रों (पहली शती ईसापूर्व – सातवीं शती ईस्वी) में बनी भवनाकृतियों से लगा सकते हैं।

सांची के स्तूप १ के दक्षिणी द्वार की उद्भृतियों में कपिलवस्तु और कुशीनगर की नागर बस्तियां अंकित हैं। नगर सीढ़ीनुमा कंगूरों से युक्त ऊंचे प्राचीरों से घिरे हुए हैं, जिनके कोनों पर विशाल बुर्ज बने हुए हैं। प्राचीर-द्वारों के दोनों पार्श्वों में लगभग वर्गाकार कक्ष निर्मित हैं। प्राचीर के बाहर गहरी परिखाएं हैं, जो संभवतः जल से भरी होती थीं। मकानों की निचली मंज़िलों की दीवारें सपाट हैं, जबकि ऊपरी मंज़िलों पर छज्जे, बरामदे और दीर्घाएं बनी हुई हैं, जो कोनों पर स्थित अथवा द्वारों के ऊपर निर्मित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बुर्जियों को आपस में जोड़ती हैं।

स्तूपों के द्वारों पर और गुहा-मंदिरों तथा विहारों की दीवारों पर उद्भृत चित्रों में दो भवन-प्ररूप अनंत रूप से दोहराये गये हैं, जो संभवतः प्राचीन भारत के काफ़ी बड़े भाग के लिए लाक्षणिक थे। ये हैं "विहार" और "चैत्य"।

ये दो सर्वाधिक व्यापक और असाधारणतः दीर्घ काल तक अपरिवर्तित प्ररूप सामान्यतः बौद्ध संप्रदाय से संबद्ध माने जाते हैं। किंतु उनका आविर्भाव संभवतः बौद्ध धर्म से बहुत पहले ही हो गया था और ऐसे भवन विभिन्न कार्यों के लिए प्रयोग किये जाते थे। चैत्य प्ररूप बहुत करके हड़प्पा काल में विकसित हुआ था। मोहेंजोदड़ो से प्राप्त एक पक्वमृत्तिका वस्तु पर चैत्य के नमूने के भवन का दुर्लभ उद्भृत चित्र मिला है। इस भवन की छत डाटनुमा और सूचिका-शिखरयुक्त है और आगे से एक द्वारमंडप भी बना हुआ है। चैत्य की आकृति एक स्थायी, आवर्ती बिंब की भांति भारत के सारे ही प्राचीन और मध्ययुगीन वास्तुशिल्प में विद्यमान है और इस तरह मानो अपने आद्यप्ररूप – प्राचीनतम आवासभवन-प्ररूप – का स्मरण कराती रहती है, अथवा यदि अधिक सटीक ढंग से कहें, तो जीवन में गहरी जड़ें जमाये अपने अस्तित्व की निरंतर पुष्टि करती रहती है। चैत्याकृति भरहुत तथा सांची स्तूपों के तोरणों की उद्भृतियों में, अजंता के भित्तिचित्रों में और दूसरी शती ईसापूर्व – दसवीं शती ईस्वी की नानासंख्य प्रस्तर निर्मितियों में बारंबार दोहराती जाती है। चैत्य प्ररूप की मुख्य विशेषता है डाटनुमा छत, आयताकार भू-विन्यास, जिसमें पीछे का हिस्सा प्रायः गजपृष्ठाकार होता था, और अग्रभाग में नालाकार शीर्षयुक्त बहुत बड़ा द्वार।

विशाल मंडप की आकृतिवाले चैत्य, जिनमें खूब प्रकाश आ सकता था सभाओं और प्रार्थनाओं के लिए प्रयोग किये जाते थे। चैत्य के अंतर्भाग का अनुमान हम कार्ले के पहली शती ईसापूर्व में निर्मित बौद्ध गुहा-चैत्य से लगा सकते हैं। बाह्य रूप का आभास मांमल्लपुरम (महाबलीपुरम) का सातवीं शती में निर्मित एकाश्मीय भीम रथ देता है। तक्षक की छेनी ने विशाल शिलाखंड को एक ऐसे चैत्य-मंडप के रूप में तराशा है, जो सार्वजनिक सभागृह का काम दे सकता था।

विहार सामान्यतः एक वर्गाकार भू-विन्यास और चौरस छतवाली निर्मिति है। विहार बहुमंजिले और सीढ़ीदार पिरामिड जैसे भवन होते थे, जो संपन्न नागरिकों के निवास का काम करते थे। आगे चलकर उनके नमूने पर दक्षिण भारतीय मंदिरों का भी निर्माण किया जाने लगा।

हड़प्पा काल से ही बहुमंजिले भवन प्राचीन भारतीय नगरों के नाभिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहे हैं। सबसे ऊंचे भवन – राजप्रासाद – कभी-कभी सात-आठमंज़िले भी होते थे। 'रामायण' में श्वेत, उत्तुंग, गगनचुंबी सौधों का उल्लेख मिलता है। आद्य उद्भृतियों में तीन, चार और पांचमंज़िले भवनों के चित्र प्रायः मिलते हैं। ऊपरी मंज़िलों पर वास गृहपति का विशेषाधिकार होता था। निम्न जातियों के लोगों को मात्र एकमंज़िला घर बनाने और पहली मंज़िल पर ही रहने की अनुमति थी। लिखित प्रमाणों से पता चलता है कि मथुरा, नालंदा और अन्य नगरों के बड़े मठों में अनेक बहुमंज़िले भवन थे। ये भवन सीढ़ीदार पिरामिडों जैसे बनाये जाते थे। उनकी आकृति का अनुमान मामल्लपुरम के अर्जुन तथा धर्मराज रथों की बहुस्तरीय अधिरचना और नेपाल के ललितपुर मंदिर (तेरहवीं शती) के शिखर से लगाया जा सकता है।

प्राचीन भारत की एक सबसे विलक्षण वास्तु-रचना पहली शती में पुरुषपुर (आधुनिक पेशावर) के संघाराम में निर्मित एक पिरामिडी बहुतलीय भवन था। उसके बारे में हम केवल फ़ाहियान के यात्रा-वृत्तांतों से ही जानते हैं।* यदि चीनी यात्री के प्रमाण पर विश्वास किया जाये, तो इस निर्मिति की ऊंचाई १६१ मीटर थी। उसका सूचिका-शिखरयुक्त १२० मीटर ऊंचा काष्ठ-निर्मित ऊपरी भाग, जिसमें १३ तल थे, पत्थरों अथवा ईंटों से निर्मित ४५ मीटर ऊंचे पांचमंज़िले आधार पर टिका हुआ था। अपने काल में यह भवन निश्चय ही न केवल भारतीय वास्तुशिल्प का, अपितु विश्व वास्तुशिल्प का भी चमत्कार माना जाता रहा होगा।

प्राचीन विश्व के हर जन के जीवन में धर्म का बहुत बड़ा स्थान रहा है। सृष्टि विषयक मान्यताएं और धार्मिक अनुष्ठानों का स्वरूप किसी न किसी रूप में लोगों की दिक्-परिवेश की आयोजना को प्रभावित करते थे। मृतकोपासना ने प्राचीन मिस्र में पिरामिडों को जन्म दिया। वैदिक भारत में मृतकोपासना और समाधि निर्माण का प्रचलन न था। बहुत प्राचीन लोक विश्वासों के आधार पर वैदिक काल में ही विकसित "संसार" की धार्मिक संकल्पना में मृतकोपासना के लिए कोई स्थान नहीं है।

वैदिककालीन धार्मिक अनुष्ठानों में सबसे महत्त्वपूर्ण यज्ञ था। उसके लिए खुले में विशेष, अस्थायी, चारों ओर से आरक्षित वेदिकाएं बनायी जाती थीं। कालांतर में ये अनुष्ठान एक महंगी क्रिया बन गये और समाज को उनपर अपार भौतिक साधनों का अनुत्पादक व्यय करना पड़ता था। वेदिका – यज्ञवेदिका – ही वैदिक काल में मुख्य धार्मिक निर्माण थी। मंदिरों की तब संभवतः

* Fa-Hsien, *A Record of the Buddhist Countries*, Transl, from the Chinese by Li Iung-Hsi, Peking 1957.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कोई आवश्यकता नहीं थी।

यज्ञवेदिकाएं दक्षिण भारत के ग्रामों में आज भी बनायी जाती हैं। सामान्यतः उनका निर्माण ग्राम से दूर और जलाशय के निकट किया जाता है, ताकि यज्ञाग्नि से आग लगने का डर न रहे।

वैदिक काल के अंत तक न केवल विशाल भूभागों को कृषियोग्य बना लिया गया, अपितु आर्य लगभग सारे उत्तरी भारत में भी फैल गये।

देश के व्यापक भागों को आवाद किये जाने के साथ उसकी प्राकृतिक संपदा का दोहन किया जाने लगा, खेती के तरीक़ों में सुधार आया और व्यापारिक विनिमय का विकास हुआ। उस काल को देखते हुए नये, अधिक प्रगतिशील उत्पादन संबंध प्रकट हुए: दासों और दासस्वामियों के वर्गों का जन्म हुआ। अधिक परिष्कृत उत्पादन रीति, अधिक विकसित सामाजिक श्रम विभाजन और बहुविध सामाजिक परिवर्तनों के कारण वस्ती-संरूप में भी गुणात्मक परिवर्तन आये। नये प्रकार की बस्तियां पैदा हुईं, जो अपने प्रकार्यों और क्रियाकलाप के स्वरूप की दृष्टि से ग्राम से मूलतः भिन्न थीं। ये कृषि श्रम से असंपृक्त व्यापार, शिल्प, धर्म, विज्ञान और शिक्षा के केंद्र थे।

अपने प्रकार्य की दृष्टि से ग्राम से भिन्न एक विशेष प्रकार की वस्ती के रूप में नगर का आविर्भाव तब होता है, जब श्रम के सामाजिक विभाजन के आधार पर शिल्प अर्थव्यवस्था की एक स्वतंत्र शाखा बन जाता है, व्यापार-वाणिज्य का विकास होता है, निजी संपत्ति प्रकट होती है, समाज वर्गों में बंटने लगता है और मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण शुरू होता है। प्राचीन काल में नगरों की संवृद्धि सर्वत्र व्यापार-वाणिज्य और दासप्रथात्मक संबंधों के विकास की सहगामी रही है और भारत भी इस मामले में अपवाद न था।

वैदिकोत्तर भारत में ज्यों-ज्यों दासप्रथात्मक संबंध जड़ें जमाते गये, वर्गीय अंतर्विरोध भी बढ़ते गये। व्यापार और शिल्पों के विकास के साथ समाज में सर्वोच्च संस्तर – ब्राह्मण वर्ण – की प्रमुखता को प्रबल आघात पहुंचा। अब जिस नये संस्तर का वर्चस्व स्थापित हुआ, वह योद्धा वर्ग, यानी क्षत्रिय वर्ण था। व्यापारियों की स्थिति भी सुदृढ़ वनी। सामाजिक उथल-पुथलें अपनी पराकाष्ठा पर छठी शती ईसापूर्व में पहुंचीं। अब कई शतियों तक के लिए गंगा की घाटी ही भारत के आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन का केंद्र बन जाती है।

"गंगा का इतिहास, उद्‌गमस्थल से लेकर जहां वह सागर में गिरती है, वहां तक का और प्राचीन काल से लेकर आज तक का उसका सारा इतिहास भारत की सभ्यता और संस्कृति का, साम्राज्यों के उत्थान और पतन का,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बड़े-बड़े और गौरवशाली नगरों का, मनुष्य के कारनामों और बौद्धिक खोजों का इतिहास है," जवाहरलाल नेहरू ने अपनी 'हिंदुस्तान की कहानी' में लिखा है।

इस प्रदेश की प्रकृति बहुत समृद्ध थी: भूमि उर्वर थी, वन और खनिज संपदा की कोई कमी न थी और फिर जो सबसे मुख्य बात है, गंगा जैसी बहु-सलिला नदी भी विद्यमान थी, जो सीधे सागर में जाकर गिरती थी। यह आदर्श जलमार्ग न केवल उत्तर भारत के बहुसंख्य नगरों को आपस में जोड़ता था, अपितु उपमहाद्वीप के अन्य नगरों और बाहरी देशों के साथ भी संपर्क बनाये रखने में सहायक था। गंगा की उपत्यका आज भी भारत का मुख्य अन्नागार और उसका सर्वाधिक नगरीकृत तथा जनसंकुल प्रदेश है।

छठी शती ईसापूर्व तक गंगा घाटी में जो बहुत-से राज्य स्थापित हुए, उनमें प्रमुख और सबसे शक्तिशाली मगध था। यह पहला बड़ा दासप्रथात्मक राज्य था, जिसने हड़प्पाई केंद्रों के पतन के बाद, अर्थात एक हजार वर्ष से भी अधिक लंबे अंतराल के बाद बाह्य विश्व के साथ भारत के संपर्क पुनर्स्थापित किये। छठी शती ईसापूर्व में मगध ने दो शतियों से पारसीकों के अधिकार में स्थित उत्तर-पश्चिम भारत को मुक्त करवा लिया। चौथी शती ईसापूर्व में उसने इसी प्रदेश में घुस आयी सिकंदर की सेनाओं को पराजित किया। ईरान और अफ़गानिस्तान में जिन मार्गों से होते हुए यूनानी सेनाएं गुजरी थीं, उन मार्गों से भारत के माल भूमध्यसागरीय बंदरगाहों तक पहुंचने लगे और इस तरह भारतीय विदेश व्यापार और नगरों के विकास के लिए नयी संभावनाओं के द्वार खुले। मगध के शासकों ने इससे अपने राज्यकोष की वृद्धि और अपने प्रभुत्व के सुदृढ़ीकरण के लिए भी भरपूर लाभ उठाया। चौथी शती ईसापूर्व में मगध शक्तिशाली मौर्य साम्राज्य का अभेद्य नाभिक बना। तीसरी शती ईसापूर्व में अशोक के शासनकाल में मगध अपने चरमोत्कर्ष पर था और लगभग सारा ही उपमहाद्वीप उसके अधिकार में आ गया था। अशोक के काल में दक्षिण-पूर्व एशिया में भारत का जो शांतिपूर्ण आर्थिक और सांस्कृतिक विस्तार आरंभ हुआ, वह आगामी शतियों में भी जारी रहा।

छठी शती ईसापूर्व से ईस्वी संवत की आरंभिक शतियों तक का विश्व इतिहास आक्रामक युद्धों से भरा पड़ा है, जिनके फलस्वरूप पारसीक इखाम-निशीय साम्राज्य, सिकंदर का साम्राज्य, चीन के चिन और हान साम्राज्य, रोम का भूमध्यसागरीय साम्राज्य और भारत के मौर्य, कुषाण, आंध्र तथा गुप्त साम्राज्यों जैसे अनेकानेक विशाल दासप्रथात्मक राज्यों का उत्कर्ष और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पतन हुआ। इस ऐतिहासिक प्रक्रिया में पूर्व और पश्चिम के देशों की संस्कृतियों के विकास-मार्ग आपस में और भी घनिष्ठ रूप से गुंथते गये। ऐसी सांस्कृतिक अन्योन्यक्रिया की एक महत्त्वपूर्ण स्थली भारत था।

ईस्वी संवत की आरंभिक शतियों से दक्षिण भारत के राज्य भी वाह्य विश्व के साथ सक्रिय संबंधों के क्षेत्र में खिंच आये। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण तमिलनाडु था। वास्तव में तमिलों ने दूसरी – पहली शती ईसापूर्व में ही दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ और पश्चिम में मिस्र तथा रोम के साथ गहन संपर्क क़ायम कर लिये थे।

भारत का जो हिस्सा दक्खिन के नाम से ज्ञात है, उसमें मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद आंध्र-सातवाहन वंश ने अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया और दूसरी शती तक उसका प्रभुत्व अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक फैल चुका था। इस साम्राज्य का मुख्य नगर प्रतिष्ठान (वर्तमान पैठन) था।

स्थलमार्गों से मध्य एशिया और चीन के साथ व्यापार विकसित होने लगा, तो उत्तर-पश्चिम भारत देश का मुख्य आर्थिक और सांस्कृतिक नाभिक बन गया। यहां ईस्वी संवत की आरंभिक शतियों में कुषाणों ने, जिनका मूलस्थान मध्य एशिया था, एक विशाल और शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। अब से भारत का प्रभाव मध्य एशिया, चीन और जापान में भी फैलने लगा। कुषाणों ने रोम और इन प्रदेशों के बीच स्थलमार्गीय व्यापार को प्रोत्साहन दिया। इस काल में व्यापार और कला के सबसे बड़े केंद्र तक्षशिला, मथुरा, गांधार और पुरुषपुर थे।

रोम के अधःपतन के बाद चीन से उसका व्यापार ठप्प हो गया, तो कुषाण साम्राज्य भी अपना वैभव और प्रतिष्ठा खो बैठा। भारत में आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन का नाभिक अब फिर से गंगा घाटी में स्थानांतरित हो गया, जहां चौथी शती में उत्तर भारत के अंतिम शक्तिशाली दासप्रथात्मक राज्य – गुप्त साम्राज्य – का उदय हुआ। गुप्तकाल में वाह्य विश्व के साथ – पश्चिम में बैजंतिया और पूर्व में चीन तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ – भारत के संबंध फिर से सुदृढ़ बने।

इस काल में उत्तर भारत के नगरों में सर्वप्रमुख पाटलिपुत्र, जो गुप्त साम्राज्य की राजधानी और सबसे बड़ा नगर था, काशी, कौशांबी, चंपा, राजगृह और साकेत (अयोध्या) थे।

पश्चिम में अरब सागर के तट पर अनेक बंदरगाह नगर फिर से सक्रिय बन बैठे, जैसे सिंध के मुहाने में स्थित बरबरीकुम (जो कहा जाता है कि सिकंदर द्वारा स्थापित बंदरगाह की जगह पर बसा हुआ था), नर्मदा के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुहाने में स्थित भृगुकच्छ (यूनानी – बोरीगाज़ा, आधुनिक भड़ौच), मुहिरिपत्तनम (यूनानी – मुज़िरिस), कल्याणी (कोंकण) और शूर्पारक।

पूर्व में बंगाल की खाड़ी के तट पर ताम्रलिप्ति (कलकत्ता के निकट स्थित आधुनिक तामलुक) नामक बंदरगाह था। वह प्राचीन भारत के सबसे संपन्न और जनबहुल क्षेत्र को गंगा नदी के ज़रिये सागर में, बंगाल की खाड़ी में प्राकृतिक निकास उपलब्ध कराता था और श्रीलंका, मिस्र और बैजंतिया से जोड़ता था। ईस्वी संवत की पहली शतियों में जब दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय उपनिवेश बसने शुरू हुए, तो ताम्रलिप्ति का महत्त्व बहुत ही बढ़ गया।

मौर्यों और गुप्तों के काल में भारत में दो मुख्य महामार्ग थे: उत्तरापथ और दक्षिणापथ। अधिकांश महत्त्वपूर्ण नगर इन्हीं मार्गों पर स्थित थे। उत्तरापथ पाटलिपुत्र को तक्षशिला से जोड़ता था, जो उत्तर-पश्चिम भारत में पारवहन व्यापार का एक प्रमुख केंद्र था। इस मार्ग का निर्माण अशोक ने किया था और पहले की तरह आज भी इसे भारत के लिए "विश्व की खिड़की" (विशेषत: पश्चिम की) माना जाता है। कौशांबी, प्रयाग, आदि नगर इसी मार्ग पर स्थित थे।

दक्षिणापथ पाटलिपुत्र को गोदावरी के तट पर स्थित आंध्र साम्राज्य की राजधानी प्रतिष्ठान से जोड़ता था।

इन दो प्रमुख महामार्गों के अतिरिक्त एक अन्य महामार्ग भी था, जो पाटलिपुत्र से भृगुकच्छ और बरबरीकुम के बंदरगाहों तक जाता था। उज्जयिनी, सांची, भरहुत, उदयगिरि, देवगढ, आदि नगर, जो आज तक अवशिष्ट अपने प्राचीन वास्तु-स्मारकों के लिए प्रसिद्ध हैं, इसी मार्ग पर स्थित थे।

इन नगरों से कुछ हटकर, किंतु महामार्ग के निकट ही, पारवहन व्यापार की उन्नति के कारण कार्ले, विदिशा, बाघ और अजंता में बड़े-बड़े मठों की स्थापना हुई। बस्तियों से दूर एकांत, रमणीक स्थानों पर स्थित होने के कारण इन मठों ने ऐसे अनेकानेक चित्रकारों, मूर्तिशिल्पियों और विद्वानों को आकृष्ट किया, जिन्होंने अपने ज्ञान और सृजन कौशल से अपने देश और युग की महिमा-वृद्धि में असामान्य योगदान किया।

दक्षिण के साथ उत्तर के व्यापारिक संबंधों के विकास में घने और बीहड़ वनों से आच्छादित विंध्याचल पर्वत गंभीर बाधा थे। अत: देश के पूर्वी भागों को दक्षिणी राज्यों से जोड़नेवाले व्यापार-मार्ग बंगाल की खाड़ी के तट के साथ-साथ गुज़रते थे।

पश्चिम एशिया और सुदूर पूर्व के साथ अधिकांश व्यापार दक्षिण भारतीय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बंदरगाहों के ज़रिये होता था। दक्षिण का सबसे महत्त्वपूर्ण बंदरगाह कावेरी के मुहाने में स्थित कावेरीपत्तनम था, जो आज भी एक फूलता-फलता नगर है। दूसरा महत्त्वपूर्ण बंदरगाह कुदूरा (अथवा अरीकामेडू) था, जो गोदावरी के मुहाने में स्थित है। १९५० के वर्षों में अरीकामेडू में खुदाई के दौरान पुरातत्ववेत्ताओं को रोमनों द्वारा स्थापित एक व्यापारिक बस्ती के अवशेष मिले। धुर दक्षिण का प्रमुख बंदरगाह कोरकाई था।

बड़े दासप्रथात्मक राज्यों के काल में भारत विश्व का एक सबसे उन्नत देश था। उसकी समृद्धि, वैज्ञानिक उपलब्धियों, शिल्पों और कलाओं की ख्याति दिग्दिगंत में फैली हुई थी। कृषि के लिए सिंचाई का उत्तम प्रबंध था। धातुकर्म उद्योग बहुत उन्नत था और इसलिए तकनीकी प्रगति भी उच्च स्तर पर पहुंच चुकी थी। 'अर्थशास्त्र' बताता है कि भारत की धरती विपुल खनिजसंपन्ना थी, राज्य खनिजों का निष्कर्षण तथा संसाधन स्वयं करता था, खानें उसके नियंत्रण में थीं, क्योंकि खानें ही राजकोष का मुख्य अवलंब होती हैं।* लौह और अन्य धात्विक अयस्कों के मामले में मगध विशेषत: समृद्ध था और वह विराट मात्रा में उन्हें घरेलू और विदेशी मंडी में बेचता था। तांबा राजस्थान और दक्खिन में पाया जाता था। देश में अनेक शस्त्र-निर्माणशालाएं और टकसालें थीं। चांदी और तांबे के सिक्के छठी–पांचवीं शती ईसापूर्व से ही प्रचलन में आ गये थे। कुषाण काल से सोने के सिक्के भी ढाले जाने लगे। विदेशी बाज़ारों में भारत की फ़ौलादी तलवारों की बड़ी मांग थी। पांचवीं शती के आरंभ में निर्मित दिल्ली का ज़ंगरहित लौहस्तंभ, जिसका भार कोई ६.२५ टन और ऊंचाई ७ मीटर से अधिक है, आज भी विस्मय में डाल देता है। प्राचीन धातुशिल्पियों के उच्च कौशल का अनुमान सुल्तानगंज से प्राप्त २ मीटर ऊंची और २ टन से भी अधिक भारी बुद्ध की कांस्य-प्रतिमा से भी लगाया जा सकता है, जिसका निर्माणकाल पांचवीं शती आंका गया है। विदेशों में भारतीय सूती वस्त्रों की भी बेहद मांग थी। रोमन नारियां भारतीय मलमल के पीछे पागल थीं। उसे "हवा द्वारा बुना हुआ" कहा जाता था।

विदेश व्यापार के विकास के लिए पोतनिर्माण उद्योग का सुसंगठन आवश्यक था और इस काल में इस उद्योग के संगठन ही नहीं, तकनीक का भी स्तर बहुत ऊंचा था। विशाल राजकीय पोतनिर्माण गोदियों में कई-कई सौ यात्रियों को ढोने की क्षमता रखनेवाले नदी और सागर-पोत बनाये जाते थे। तरह-तरह

* *Kautilya's Arthasastra,* Transl. by Dr. R. Shamasastri, 5th. ed., Mysore, 1956.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के विलक्षण मालों से लदे पोत भारतीय बंदरगाहों से दुनिया के कोने-कोने के लिए रवाना होते थे। जातकों में ऐसे पोतों का उल्लेख मिलता है, जो पांच-पांच सौ यात्री और टनों माल ढो सकते थे। भारतीय ईस्वी संवत की आरंभिक शतियों में दक्षिण-पूर्व एशिया का सक्रिय उपनिवेशन अपने उत्कृष्ट और बृहद् बेड़ों की बदौलत ही कर सके थे। महासागरों की यात्रा कठिन और दीर्घकालिक होती थी।

पांचवीं शती में गुप्त सम्राटों के शासन के अंतर्गत प्राचीन भारत अपने विकास की पराकाष्ठा पर था। इस काल को प्राय: भारतीय विज्ञान, साहित्य और कला का स्वर्ण युग कहा जाता है। इस काल में भारतीय विद्वानों ने गणित, खगोलविज्ञान और आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में ऐसे-ऐसे आविष्कार किये, जिनका महत्त्व आज भी बना हुआ है। गुप्तकाल में संस्कृत साहित्य, चित्रकला और मूर्तिकला का अभूतपूर्व विकास हुआ। कालिदास की कालजयी रचनाएं और अजंता के चित्र विश्वविख्यात हैं। अशोक के काल से बौद्ध धर्म, जो नागरिक वातावरण में जन्मा और पनपा एक नया धार्मिक विश्व-दृष्टिकोण था, देश के केंद्रीकरण, उसकी उपनिवेशन नीति और आर्थिक तथा सांस्कृतिक विस्तार का सबसे प्रबल वैचारिक साधन बन गया था।

भारत की सबसे आरंभिक धार्मिक निर्मितियों (यज्ञवेदिकाओं को छोड़कर) का आविर्भाव बौद्ध धर्म से ही संबद्ध है। इन निर्मितियों की श्रेणी में मुख्यत: स्तूप (बुद्ध के अवशेषों पर निर्मित), चैत्यमंदिर और विहार (भिक्षु-भिक्षुणियों के निवास) आते हैं। बौद्ध धर्म ने एक नवीन सामाजिक इकाई – भिक्षु समाज (संघ) – और एक विशेष नागर ढंग की बस्ती – भिक्षु मठ (संघाराम) – को जन्म दिया। कृषि कार्यों से पूर्णत: असंपृक्त संघाराम अपने धार्मिक प्रकार्यों के निर्वहन के अलावा व्यापार, शिक्षा और संस्कृति के केंद्रों की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका भी निभाते थे।

बौद्ध और जैन भिक्षुओं का तपस्वी जीवन भारत के लिए नया न था, उसका प्रचलन वैदिक काल में भी था। किंतु समय के साथ भिक्षु समाज अपने आरंभिक जनवादी सिद्धांतों से विमुख हो गया और कठोर अनुशासन तथा सुनिश्चित पदानुक्रमवाले एक बड़े और प्रभावशाली सामाजिक संगठन में परिणत हो गया। भिक्षु अब, जैसा कि उनके लिए विधान था, गृहपतियों से मिली भिक्षा और सांयोगिक शरण अथवा आवास से ही संतुष्ट नहीं होते थे। वे अब सामाजिक जीवन में भी भाग लेने लगे और उसमें विशेषाधिकारपूर्ण स्थिति प्राप्त कर बैठे। उन्हें लोगों और शासकों से ही नहीं, विभिन्न संस्थाओं और संगठनों से भी पुष्कल दान मिलता था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भिक्षु समाज की स्थिति सुदृढ़ बनी, मठों का भी सुसंगठित ढंग से निर्माण किया जाने लगा। भिक्षुओं के लिए खाद्य, वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुएं समीपवर्ती ग्रामों के किसान मुहैया करते थे। इसलिए मठ स्वयं कृषिकर्म नहीं करते थे। इसी तरह उनके लिए पृथक् गोशालाओं तथा भंडारगृहों की भी आवश्यकता न थी। किंतु भिक्षुओं को व्यापारकर्म में प्रवृत्त होने से कुछ न रोकता था। आरंभ में मठ मात्र पारप्रेषण स्थल और तीर्थयात्रियों तथा व्यापारियों के लिए रैन-बसेरे का काम करते थे, किंतु बाद में वे स्वयं भी सक्रिय रूप से व्यापार करने और इस तरह अपरिमित संपत्ति जुटाने लगे।

इन सब बातों को देखते हुए यह आवश्यक बन गया कि मठ एकांत स्थल पर ही नहीं, व्यापार-मार्गों के निकट भी स्थित हों। ऐसी जनसंकुल, नगरों से दूर और सुरक्षित जगहें प्रायः पहाड़ों के बीच और स्वाभाविकतः, जलस्रोत – नदी अथवा झील – के समीप चुनी जाती थीं। विशाल बौद्ध विहारों-मठों का निर्माण अशोक के काल में शुरू हुआ और कुषाणों तथा सातवाहनों के काल में उसका पैमाना बहुत ही बढ़ गया।

व्यापार के जरिये और धनी व्यापारियों तथा अभिजातों से प्राप्त भिक्षा, दोनों के ज़रिये मालामाल हुए बौद्ध भिक्षु समाज चौथी शती ईसापूर्व में मौर्य राज्य की स्थापना तक देश की एक प्रभावशाली आर्थिक और वैचारिक शक्ति बन बैठे थे। उनके पास न केवल अपार भूसंपत्ति और अन्य संपदाएं होती थीं, अपितु प्रायः बड़ी तादाद में दास भी होते थे।

समय के साथ मठों की सामाजिक तथा आर्थिक भूमिका बढ़ती गयी। इसके साथ ही वे संस्कृति के महत्त्वपूर्ण केंद्र भी बनते गये। वे प्रायः शिक्षा, विज्ञान और कला के केंद्र होते थे और इस प्रकार की ब्राह्मणीय संस्थाओं के विपरीत समाज के सभी वर्णों और संस्तरों के लोगों के लिए अपने द्वार खुले रखते थे। भिक्षुओं में अनेक विख्यात विद्वान, कलाकार और वास्तुकार होते थे। मठों में विश्वविद्यालय खोले जाते थे, जो धर्मशास्त्र के साथ आयुर्विज्ञान, खगोलविज्ञान, साहित्य, भाषाओं और अन्य विषयों की शिक्षा भी देते थे। नालंदा मठ के विश्वविद्यालय में पांचवीं शती में कई हज़ार विद्यार्थी थे, जिन्हें भोजन तथा आवास भी प्रदान किया जाता था। उनमें चीन, जापान और अन्य पूर्वी देशों से आये हुए विद्यार्थियों की भी काफ़ी बड़ी तादाद थी। इस प्रकार मठ व्यापार के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा और कला का केंद्र, अर्थात् प्रायः कई हज़ार की आबादीवाले अच्छे-खासे नगर जैसा होता था। नालंदा, तक्षशिला, सारनाथ, कांचीपुरम, आदि के मठों की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुषाण काल में विभिन्न जातियों की संस्कृतियों और धार्मिक विश्वासों के सम्मिश्रण के फलस्वरूप बौद्ध धर्म में एक नया संप्रदाय – महायान संप्रदाय – पैदा हुआ, जो कुषाण शासकों के हितों और उनके राज्य के बहुजातिक स्वरूप के बिल्कुल अनुरूप था। बुद्ध की उपासना के फलस्वरूप मूर्ति-उपासना का विकास हुआ और मंदिरों में बुद्ध की मानवाकार मूर्तियां स्थापित की जाने लगीं। गांधार प्रदेश में तो शिल्प की एक नयी शाखा ही प्रकट हो गयी, जिसका काम बौद्ध कथानकों से संबंधित मृण्मूर्तियों का बृहद पैमाने पर उत्पादन करना था।

बौद्ध कर्मकांड और पूजा-उपासना जटिलतर होते गये और वे वैसे ही आडंबर और धूमधाम के साथ किये जाते थे, जैसे कि ब्राह्मण धर्म में। मंदिर समाज की भौतिक तथा आत्मिक संपदाओं के निक्षेपागार बन गये और मंदिर-मठों ने नगर तथा नगर-वास्तु में महत्त्वपूर्ण स्थान पा लिया।

मध्ययुग में जब वर्ण-व्यवस्था स्वीकार करनेवाले और अधिक जीवनक्षम सिद्ध हुए हिंदू धर्म ने बौद्ध धर्म की जगह ले ली, तो बौद्ध मठों का निर्माण बंद हो गया।

जैन धर्म, जो बौद्ध धर्म के साथ-साथ ही पैदा हुआ था, किसानों और भूस्वामियों को तो आकृष्ट न कर सका, किंतु समाज के व्यापारी तबकों के बीच, विशेषतः पश्चिमी तटवर्ती प्रदेशों और उन भागों में उसने व्यापक जड़ें अवश्य जमा लीं, जहां घरेलू और विदेशी व्यापार बहुत विकसित था। आज भी जैन धर्म के मुख्य गढ़ ये ही इलाके हैं।

ग्यारहवीं – पंद्रहवीं शतियों में गुजरात की गिरिनार और शत्रुंजय पहाड़ियों पर निर्मित जैन मंदिर (उनकी संख्या इतनी अधिक थी कि वे निवासियों से रहित एक पूरे के पूरे नगर जैसे लगते थे) कुसीद पूंजी की शक्ति के मूर्तिमान रूप थे। सज्जा और अलंकरणों के वैभव-सागर में निमग्न मंदिरों के इस मृत साम्राज्य में यहां तक कि जैन श्रमणों को भी बसने की अनुमति नहीं थी।

अपने विजय अभियानों की बदौलत मौर्य, कुषाण और गुप्त सम्राटों के हाथों में अपार वैभव संकेंद्रित हो गया था, जिसकी बदौलत उन्होंने नगरों में बृहद् पैमाने पर निर्माण किया और सार्थमार्गों तथा जलमार्गों पर नये दुर्ग बनाये।

स्वाभाविक है कि एक विशाल देश होने के कारण भारत के सभी भागों में नगरों की संवृद्धि समान रूप से नहीं हो सकती थी। प्राचीन काल में नगर वहीं पैदा हुए, जहां खनिजों के प्रचुर निक्षेप पाये जाते थे। ऐसा कभी-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कभी आज भी होता है। इस स्थिति में खनिज-स्रोतों के निकट स्थित और किसी उद्योग – कपड़ा उत्पादन, मृण्भांड उत्पादन, आदि – के लिए प्रसिद्ध प्राचीन बस्तियां नगर के जन्म का आधार बनती थीं।

धातुकर्मी लौहखनिज-बहुल इलाक़ों में जा बसते थे और कुम्हार उन जगहों पर, जहां मिट्टी के बरतन बनाने के लिए चिकनी मिट्टी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती थी। एक ही स्थान पर विशेषीकृत बस्तियों का संकेंद्रण माल के खरीदारों को खींचता था और इस तरह शिल्पोद्योग का केंद्र व्यापार-वाणिज्य का केंद्र भी बन जाता था। प्रशासनिक और धार्मिक केंद्र और आरक्षित स्थल (दुर्ग, आदि) भी, जिनके गिर्द आबादी की आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाले शिल्पियों और कारीगरों की बस्तियां होती थीं, बड़े नगरों में परिवर्तित हो जाते थे। नगर हमेशा ही अनगिनत ग्रामों से घिरा होता था।

ऐतिहासिक परिस्थितियों को देखते हुए कुछ पुराने नगर बड़े आर्थिक और सांस्कृतिक केंद्र बन जाते थे और कुछ जो मुख्य सामाजिक घटनाओं के प्रभाव की परिधि में नहीं आ सके थे, मरणोन्मुख हो जाते थे। जीवित अधिकांशतः वे ही नगर रह पाते थे, जो या तो महत्त्वपूर्ण व्यापार-मार्गों पर या फिर कच्चे माल के समृद्ध स्रोतों के निकट स्थित होते थे।

भारत के अनेक आदिकालीन व्यापारी नगर स्वशासी नगरीय विरचना थे। उनका सारा अस्तित्व व्यापार पर आधारित था। यूनानी नगरों की भांति उन्हें भी टीलों पर, ऊंचे स्थलों पर बसाया जाता था। प्लूटार्क के अनुसार, सिकंदर जब अपनी सेनाओं के साथ भारत में घुसा था, तो उसने एक स्थानीय राजा को पांच हज़ार स्वशासी नगरोंवाला प्रदेश भेंट किया था। भारत में इतने अधिक नगर हैं कि उनकी ठीक-ठीक संख्या नहीं बतायी जा सकती, एक अन्य यूनानी इतिहासकार ने लिखा था। संभवतः उसका आशय नगरों से ही नहीं, बड़े स्वशासी आरक्षित ग्रामों से भी था, जो देखने में और अपनी संरचना में नगरीय बस्तियों से अधिक भिन्न न थे।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार-मार्गों से दूर स्थित नगरों के विकास की गति धीमी थी। स्वतंत्र उत्पादन आधार से वंचित और समीपवर्ती गांवों पर ही निर्भर प्रशासनिक केंद्रों की नियति, यानी उनका उत्कर्ष और पतन मुख्यतया राजनीतिक परिस्थिति-चक्र पर अवलंबित होता था।

मौर्य और गुप्त साम्राज्यों के काल में उत्तरी भारत के अनेक राज्यों और गणतंत्रों की राजधानियां (जैसे हस्तिनापुर, इंद्रप्रस्थ, कपिलवस्तु, श्रावस्ती और कुशीनगर) पतनोन्मुख होकर प्रांतीय नगर बन गये। दूसरी ओर वे नगर तेज़ी से पनपे, जिनसे होते हुए गंगा से माल ताम्रलिप्ति पहुंचते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थे और वहां से विदेश निर्यात किये जाते थे। इस तरह वाराणसी का विकास हुआ, जो एक सबसे बड़ा व्यापारिक और धार्मिक केंद्र बन गया।

कहते हैं कि व्यापार नगर को जन्म देता है। विश्व में सर्वत्र सबसे पहले उन्हीं नगरों ने तरक़्क़ी की है, जो नदी अथवा सागर बंदरगाह थे।

भारत में आंतरिक व्यापार की संवृद्धि में देहात का आर्थिक अलग-थलगपन बाधक था। अन्न, लकड़ी, कुम्हारी के माल और कपड़ा जैसी व्यापक उपभोग की वस्तुओं का विरले ही क्रय-विक्रय होता था। आबादी धातु और नमक के अलावा बुनियादी आवश्यकता की अन्य सभी वस्तुओं के मामले में आत्मनिर्भर थी, क्योंकि उन्हें स्थानीयतः ही उत्पादित कर लिया जाता था। सुदूर स्थानों से आपवादिक मामलों में ही दुर्लभ वस्तुएं आयात की जाती थीं।

उदाहरण के लिए, तक्षशिला अपने अनुपम भवनों के लिए संगमरमर वाराणसी से और क़ीमती इमारती लकड़ी अन्य इलाक़ों से आयात करता था। इसलिए प्राचीन भारत में और मध्ययुगीन भारत में भी व्यापार मुख्यतया विलास-वस्तुओं तक सीमित था, और उनकी भी सर्वाधिक मांग स्थानीय मंडी नहीं, बल्कि बाहरी मंडियों में ही हो सकती थी।

व्यापारिक सार्थों के लिए सामान्यतः मुख्य महामार्ग और नदियों के साथ-साथ गुज़रनेवाले मार्ग इस्तेमाल किये जाते थे। व्यापक अंतर्प्रदेशीय व्यापार के विकास में स्थलमार्गों की कमी बाधक थी, जो कि आज भी अनुभव की जाती है। भारत में, विशेषतः दक्षिण में, नदियां जहाज़रानी योग्य नहीं हैं। ग्रीष्म में वे सूख जाती हैं और वर्षाकाल में उनमें आवागमन ख़तरे से ख़ाली नहीं होता। नदियों पर पुल विरले ही बनाये जाते थे। केवल सोलहवीं – सत्रहवीं शतियों में निर्मित कुछ पत्थर के पुल ही आज तक सुरक्षित रह सके हैं। भारत में पहले बड़े पुल उन्नीसवीं शती के अंत से ही बनाये जाने लगे। नदियां या तो छिछली जगहों पर पैदल पार की जाती थीं या फिर नौकाओं, बजरों से अथवा लकड़ी के तरापों से निर्मित अस्थायी तैरते पुलों से।

सुदूर यात्राओं में सहायक परिवहन और संचार साधन जितने ही परिष्कृत होंगे, नगर उतनी ही तीव्रता से विकास करेंगे। प्राचीन भारतीय शासक मार्गों की इस भूमिका से भली भांति परिचित थे।

चौथी शती ईसापूर्व का मौर्य शासक बिंबिसार मार्गों की हालत को अपने शासन की कारगरता का सर्वोत्तम सूचक मानता था। उसके मत में अच्छे मार्ग राज्य की प्रतिरक्षा-क्षमता और समृद्धि की गारंटी थे। चौथी शती ईसापूर्व से ईसा की पांचवीं शती तक भारत में सड़कों का निर्माण बृहद पैमाने पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुआ। यह वह काल था, जब विदेशों के साथ और स्वयं देश के भीतर संपर्कों का अत्यंत सक्रिय विकास हुआ था और नगर तेज़ी से पनपे थे। ८०० वर्ष से कुछ ज़्यादा अवधि में देश में पक्के मार्गों का घना जाल बिछ गया।

चंद्रगुप्त मौर्य (३२२–२९८ ईसापूर्व) ने तो एक विशेष संचार विभाग की स्थापना भी की थी। सड़कों के निर्माण के अलावा इस विभाग का काम यात्रियों तथा सार्थों को आवास, परिवहन साधन, आदि उपलब्ध कराना भी था।

जैसा कि स्ट्रैबो लिखता है, यूनानी राजदूत मेगस्थनीज़ दंग रह गया था कि उसे निर्धारित समय पर पाटलिपुत्र पहुंचने में मार्ग में किसी प्रकार की कोई दिक़्क़त नहीं हुई।

मुख्य मार्गों पर धर्मशालाओं, विश्रामगृहों, चिकित्सालयों, आदि की व्यवस्था थी। निश्चित अंतरालों पर मीलों के पत्थर जैसे दूरी बतानेवाले खंभे लगे हुए थे। सम्राट् अशोक अपने एक स्तंभलेख में बताता है, "मैंने मार्गों पर मनुष्यों तथा जीवों को छाया प्रदान करनेवाले बरगद के वृक्ष और आम्रकुंज लगवाये हैं, हर आधे कोस पर मैंने कूएं खोदने और विश्रामस्थल बनाने का आदेश दिया है और सर्वत्र लोगों तथा पशुओं के लिए जल की व्यवस्था की है। ऐसे कार्य सबके लिए हितकर हैं और पूर्ववर्ती शासकों द्वारा भी किये जाते थे।"

प्राचीन काल में निर्मित अनेक मार्ग आज भी उपयोग में आ रहे हैं। जॉन मार्शल के अनुसार, छठी शती ईसापूर्व में निर्मित राजगृह जानेवाला मार्ग आज भी एक सबसे सुविधाजनक पैदल मार्ग है।

सीधे, चौड़े और दोनों ओर घने, छायादार बरगद के वृक्षों की क़तारों-वाले बहुत-से प्राचीन महामार्ग आधुनिक मोटर परिवहन के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं।

प्राचीन काल में तीर्थस्थलों की यात्रा भी नगरों तथा व्यापार-वाणिज्य के तीव्र विकास में वहुत सहायक बनी।

अयोध्या, उज्जयिनी (उज्जैन), मथुरा, वाराणसी, द्वारिका और कांचीपुरम जैसे नगर प्रमुख तीर्थस्थल ही नहीं, व्यापार और शिल्पों के महत्त्वपूर्ण केंद्र भी थे। कृष्ण की जन्मस्थली मथुरा सूती वस्त्र उद्योग के लिए प्रसिद्ध था। वाराणसी आरंभ में मृण्भांड शिल्प के लिए और आगे चलकर रेशमी वस्त्रों के उत्पादन और ज़री के काम के लिए विख्यात हुआ। शैव संप्रदाय का एक प्रमुख गढ़ उज्जयिनी गंगा उपत्यका को सौराष्ट्र से जोड़नेवाले मार्ग पर स्थित होने के कारण पारवहन व्यापार का महत्त्वपूर्ण केंद्र बना। इसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अलावा ये तीनों नगर छोटे-मोटे राज्यों की राजधानियां भी थे। तीर्थयात्रियों के प्रवाह की बदौलत स्वयं तीर्थनगरियां ही नहीं, उनके मार्ग पर स्थित शेष नगर भी विकास कर सके। गंगा उपत्यका में वाराणसी के अतिरिक्त अन्य प्रमुख नगर थे कान्यकुब्ज (कन्नौज), अहिच्छत्रा, अयोध्या, वैशाली, कौशांबी और चंपा। उत्तर-पश्चिम में शाकल (वर्तमान स्यालकोट), काठियावाड़ में वल्लभी और मध्य भारत में दशपुर प्रमुख नगर थे।

ये सभी नगर और विशेषत: विभिन्न कालों में मगध साम्राज्य की राजधानी रह चुके गिरिव्रज, राजगृह और पाटलिपुत्र न केवल आकार, अपितु जनसंख्या की दृष्टि से भी काफ़ी बड़े नगर थे। कुछ नगरों की आवादी लाखों तक पहुंच चुकी थी। नगरीय आवादी की सघनता के बारे में कुछ कह पाना कठिन है। नगरों के आकार संभवत: उससे कहीं बड़े थे, जितने कि वे पुरातात्त्विक खुदाइयों में पाये गये हैं।

मगध राजाओं की प्रथम राजधानी गिरिव्रज का उससे संलग्न बस्तियों के सहित व्यास ५० किलोमीटर से कम न था। उसके नगर-प्राचीर में ६४ उपद्वार और ३२ मुख्य, आरक्षित द्वार थे।

हुएनत्सांग के अनुसार सातवीं शती में भारत में १० किलोमीटर से अधिक परिधिवाले अनेक नगर थे। पाटलिपुत्र और वैशाली जैसे बड़े नगरों की परिधि तो १८–१६ किलोमीटर तक थी। किंतु नगर-प्राचीरों के भीतर तक्षशिला और शिशुपालगढ़ जैसे सबसे बड़े नगरों का क्षेत्रफल भी केवल १–१.५ वर्ग किलोमीटर था। बहुत संभव है कि संलग्न बस्तियों के साथ ऐसे नगरों की जनसंख्या उनके उत्कर्षकाल में आठ–दस लाख तक अवश्य पहुंच गयी होगी। १६२० में पटना में की गयी खुदाइयों से पाटलिपुत्र के बारे में मेगस्थनीज़ के साक्ष्यों की पुष्टि हुई है।

गंगा से नगर का परिदृश्य देखा जा सकता था। भली भांति आरक्षित नगर नदी तट के साथ-साथ चार किलोमीटर तक फैला हुआ था (नगर-प्राचीरों के भीतर उसकी चौड़ाई १.५ किलोमीटर थी) और मिट्टी के पुश्तों, जलपूरित गंभीर परिखाओं और प्रवल प्राचीरों से घिरा हुआ था, जिनमें सैकड़ों प्रेक्षण-बुर्ज और उठवां पुलों से युक्त ६४ द्वार बने हुए थे। खुदाई में ३.५ मीटर से भी ज़्यादा मोटे प्राचीर के अवशेष मिले हैं। उसे भूमि में एक-एक मीटर की गहराई तक गाढ़े गये सागौन के शहतीरों को बाड़ की तरह खड़ा करके बनाया गया था। (उल्लेखनीय है कि अधिकांश शिल्पग्रंथों में भी दुर्गद्वारों की संख्या ६४ निर्धारित की गयी है और राजगृह के, जो पाटलिपुत्र से लगभग दोगुना छोटा था, नगर-प्राचीर में भी ६४ द्वार पाये हैं।)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाटलिपुत्र एक सुनियोजित नगर था। सीधे और चौड़े मुख्य मार्गों के दोनों ओर वणिकों तथा वारांगनाओं की बहुमंज़िली हवेलियां, धर्मशालाएं तथा अतिथिशालाएं, क्रीड़ागार तथा प्रेक्षागृह, हाटें तथा दूकानें थीं। भवन अधिकांशत: काष्ठनिर्मित थे और केवल कुछेक ही ईंटों से बने हुए थे। प्रस्तरनिर्मित भवन एक भी नहीं था। यहां तक कि नगर के मध्य भाग में उद्यानों तथा तड़ागों के बीच एक ऊंचे स्थल पर स्थित सम्राट् अशोक का प्रासाद भी काष्ठ का बना हुआ था और उसमें पत्थर का प्रयोग केवल सभागार के स्तंभों के निर्माण के लिए किया गया था।

प्राचीन भारत के राजप्रासादों में से केवल इस प्रासाद के ही अवशेष प्राप्त हो सके हैं। मेगस्थनीज़ लिखता है कि अपनी आंतरिक सज्जा और स्वर्ण, रजत तथा मणि-माणिक्यों के विपुल प्रयोग की दृष्टि से मौर्य सम्राटों के असंख्य स्तंभयुक्त तिमंज़िले प्रासाद के समक्ष सूसा में स्थित पारसीक सम्राटों के विश्वप्रसिद्ध प्रासाद निष्प्रभ लगते थे। फ़ाहियान ने अशोक के प्रासाद की प्रशंसा के जो पुल बांधे हैं, उनसे प्रतीत होता है कि सात सौ वर्ष बाद भी इस प्रासाद ने अपनी भव्यता नहीं खोयी थी। जैसा कि अजंता के भित्तिचित्रों से पता चलता है, प्राचीन भारतीय राजप्रासाद ऊंची-ऊंची दीवारों से घिरे बहुत बड़े क्षेत्र में स्थित और अनेकानेक भव्य बहुमंज़िले भवनों, स्तंभागारों, दीर्घाओं, मंडपों, आदि से युक्त होते थे।

फ़ाहियान लिखता है कि पाटलिपुत्र भारत का सबसे बड़ा नगर था और वहां धनाढ्य नागरिकों की कमी न थी। नगर में नि:शुल्क चिकित्सालय काम करते थे और विधवाओं, अनाथों तथा अपाहिजों के लिए अनेक शरणस्थल थे। पर्वों और उत्सवों के अवसर पर राजधानी की शोभा ने फ़ाहियान को चकित कर दिया था, जब नगर-मार्गों पर सारी-सारी रात दीपक तथा मशालें जलती रहती थीं और दिन में विशाल शोभायात्राएं निकलती थीं, जिनके साथ असंख्य गायक तथा वादक भी होते थे। शोभायात्रा में आगे-आगे विशाल चतुष्चक्र रथ चलते थे, जिनपर बांस से पांचमंज़िले मंदिर बने होते थे।

अपने काल की दृष्टि से आश्चर्यजनक सुनियोजन और सुव्यवस्था के लिए पाटलिपुत्र नगर-प्रशासन का ऋणी था, जो नगर की जल-आपूर्ति, मलवाह व्यवस्था और स्वच्छता का पूरा-पूरा ध्यान रखता था। व्यापार तथा वाणिज्य, शिल्प तथा उद्योग, जन्म-मृत्यु पंजीकरण, विदेशी नागरिकों की निगरानी (उनकी रिहायश के लिए नगर में पृथक् मुहल्ले थे), आदि के लिए नगर-प्रशासन के अंतर्गत विशेष विभाग थे। क़ानून तथा व्यवस्था और अग्निनिरोध नियमों के पालन पर नज़र रखना नगर महापौर का दायित्व था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राचीन भारत के सभी तीर्थनगरों में सबसे संपन्न तथा प्रसिद्ध वाराणसी अथवा काशी था।

वाराणसी एक प्रमुख नदी बंदरगाह था। वह वरणा और असी की बांकों के बीच स्थित था। दोनों नदियों के दहाने उत्तर और दक्षिण से घेरकर उसे छह किलोमीटर लंबी एक ऐसी चौड़ी कमान का रूप दे देते थे, जिसकी प्रत्यंचा का काम मानो पूर्व में गंगा का ऊंचा, खड़ा तट करता था। गंगा के तट पर पत्थर की सीढ़ियों और चबूतरों का अंतहीन सिलसिला था। ये वाराणसी के वे विश्वप्रसिद्ध घाट थे, जिनपर दिन-रात चिताएं जलती रहती थीं। इन्हीं घाटों से नीचे उतरकर लोग गंगास्नान का पुण्य अर्जित करते थे। ये ही घाट मछुआरों और व्यापारियों की नौकाओं के लिए, नदीगामी और सागरगामी पोतों के लिए लंगर-स्थल का काम भी करते थे। घाटों के किनारे-किनारे दूकानों और गोदामों की क़तारें बनी हुई थीं। कुल मिलाकर नगर का सारा सार्वजनिक जीवन इन घाटों के गिर्द संकेंद्रित था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तीसरा अध्याय

नगर का प्राचीन भारतीय निदर्श

पूर्ववर्ती अध्याय में हमने हड़प्पोत्तर भारत के नगरों और उनके उद्भव तथा विकास में सहायक सामाजिक एवं आर्थिक प्रक्रियाओं की चर्चा की। प्रस्तुत अध्याय में हम प्राचीन भारतीय नगर निर्माण कला विषयक जानकारी की लिखित स्रोत-सामग्रियों से उपलब्ध तथ्यों से अनुपूर्ति करेंगे और उनके आधार पर दिखाना चाहेंगे कि नगर का प्राचीन भारतीय निदर्श अथवा आदर्श रूप क्या था और देश के बस्ती संरूप में नगर क्या स्थान रखता था।

इस अल्पाधीत विषय के लिए विशेष शोघ अपेक्षित है और प्रस्तुत अध्याय ऐसे शोध का दावा नहीं करता। भारत की साहित्यिक रचनाओं में उसकी भौतिक तथा आत्मिक संस्कृति का जो जटिल और असामान्य रूप से समृद्ध जगत प्रतिबिंवित हुआ है, उसका पूरी तरह से अवगाहन कर पाना सहज नहीं है। भारत की साहित्यिक निधि का एक अभिन्न अंग उसका नगर निर्माण कला विषयक सैद्धांतिक चिंतन है, जिसका विकास समाज की जीवन सक्रियता की प्रक्रिया में और अपने युग के मत-मतांतरों के प्रत्यक्ष प्रभाव से हुआ था।

स्वयं ऋग्वेद में भी, जो कि मानवजाति की सबसे प्राचीन साहित्यिक कृति है, दार्शनिक ढंग से मनुष्य के परिवेशी जगत को दो कोटियों में विभाजित किया गया है – नैसर्गिक जगत और कृत्रिमतः सृजित जगत। उपनिषदों (८००-४०० ईसापूर्व) में, जो कि सारतः विषयनिष्ठ प्रत्ययवादी विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करती थीं, प्राचीन भारतीय चिंतन असामान्य ऊंचाइयों पर पहुंचा। उपनिषदों के ही समकालीन – और विश्व में अपने ढंग के संभवतः सबसे पहले – लोकायत और चारवाक के भौतिकवादी सिद्धांत थे। किंतु भारत की संस्कृति के उद्विकास में जो भूमिका उपनिषदों ने निभायी, वह संभवतः अन्य किसी विचारधारा, मत, सिद्धांत अथवा शिक्षा ने नहीं निभायी। और तो और, पूर्व के अन्य देशों की जनता के चिंतन पर भी उन्होंने गहरी छाप छोड़ी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(प्राचीन भारतीय दर्शन अपने चिंतन की क्रमबद्धता और दृष्टिकोण की व्यापकता से अभिभूत कर लेता है। प्राचीन भारतीय मनीषी विश्व की अनंतता, उसके विकास की प्रक्रिया के नैरंतर्य, जो मात्र एक संवृत चक्र द्वारा सीमित थी और ब्रह्मांडीय परिमाणों से लेकर अपरिमेय रूप से लघु अणु तक समस्त विश्व की संरचना के पैमाने की निस्सीमता जैसी संकल्पनाओं का स्वच्छंदतापूर्वक उपयोग करता था। सृष्टि के संरचनात्मक आधार की उसकी जो कल्पना थी, उसे हम कुछ हद तक मध्ययुगीन भारतीय वास्तु – मंदिरों की शिखराकार अधिरचना – में साकार बना हुआ पाते हैं।)

उपनिषदों में मानव नियति का निर्धारक देवताओं को नहीं, अपितु स्वयं मनुष्य को बताया गया है और निर्भीकतापूर्वक कहा गया है: विश्व संज्ञेय है और समस्त परिघटनाओं के सार को जान पाना सभी अणुओं में से केवल एक अणु, अर्थात मनुष्य के ही वश की बात है।

उपनिषदों में कतिपय द्वंद्वात्मक सिद्धांत अपने भ्रूणरूप में मिलते हैं। उनमें, उदाहरणार्थ, परिवेशी जगत के परिवर्तनों के सातत्य, परिघटनाओं की अन्योन्यसंबद्धता और अस्तित्व के सभी बहुविध रूपों की एकता का उल्लेख पाया जाता है।

चिंतन की ऐसी दृष्टि-व्यापकता प्राचीन भारतीय ग्रंथों में तब भी देखी जाती है, जब वे वास्तुशिल्प और नगर निर्माण कला विषयक प्रश्नों का विवेचन करते हैं। वे परिघटनाओं की अन्योन्यसंबद्धता के जिस विचार पर बल देते हैं, वह हमारे आधुनिक दृष्टिकोणों से पूरी तरह मेल खाता है। भारतीयों के अनुसार जो कुछ भी मनुष्य की जीवन सक्रियता के लिए आवश्यक होने के कारण भूमि पर निर्मित किया जाता है, वह सब वास्तुशिल्प का अंग है। प्राचीन भारतीय सिद्धांतकारों का मत था कि वास्तुशिल्प का संबंध समस्त वस्तु तथा दिक् परिवेश से है, जिसमें धार्मिक इमारतें और प्रासाद, दुर्ग और आवासगृह, मार्ग और पुल, उपवन और उद्यान, कूएं और जलाशय, तटबंध, स्तंभ और वेदिकाएं और यहां तक कि रथों जैसी चल वस्तुएं भी, सभी आ जाते हैं। मूर्तिशिल्प और अनुप्रयुक्त कला की वस्तुओं को वास्तुशिल्प का अभिन्न अंग समझा जाता था। वास्तुशिल्प का पराकाष्ठा-बिंदु नगर निर्माण कला को माना जाता था। जैसा कि मौर्य साम्राज्य के उत्कर्षकाल तीसरी शती ईसापूर्व में सृजित ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' से पता चलता है, प्राचीन भारत में नगर निर्माण संबंधी प्रश्नों को राजकीय मामलों जैसा महत्त्व दिया जाता था।

नगर निर्माण के प्रश्नों से संबंधित सभी स्रोत-ग्रंथों में एक तार्किक संगति पायी जाती है, जो सामान्य से, समष्टि से विशिष्ट की ओर, व्यष्टिक की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ओर ले जाती है। आरंभ में समस्त राज्य के पैमाने पर बस्ती-संरूप की प्रणाली पर विचार किया जाता है, इसके बाद अलग-अलग आबादी केंद्रों के अभिन्यास की चर्चा होती है और फिर अंत में उद्यानों अथवा जलाशयों और कूओं के निर्माण का सवाल उठाया जाता है।

भारतीय वास्तुशिल्प की माप प्रणाली के संदर्भ में यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्राचीन रूसी वास्तुशिल्प की भांति और "माडयूलर" (मात्रिक) पद्धति के नाम से ज्ञात आधुनिक ला कार्बूज़िये शैली की भांति वह भी मानव आयामों तथा मापों पर आधारित थी (उदाहरणार्थ, माप की "दंड" नामक इकाई मनुष्य के औसत क़द – १८० सें० मी०–के बराबर थी और "हस्त" नामक दूसरी इकाई – ४५ सें० मी० – कोहनी से नीचे हाथ की लंबाई के बराबर थी)। बस्तियों के बीच दूरियों को प्रायः उन्हें तय करने में लगनेवाले समय से मापा जाता था।

ऋग्वेद, ब्राह्मण ग्रंथों, पुराणों, रामायण, महाभारत, बौद्ध साहित्य और ललित साहित्य में वास्तुशिल्प तथा नगरों के बारे में काफ़ी सामग्री मिलती है, किंतु वह बिखरी हुई और परस्पर असंबद्ध है। वैज्ञानिक जानकारी सबसे क्रमबद्ध रूप से विभिन्न विज्ञानशाखाओं – निर्माण, कला, अर्थतंत्र, राजनीति, आदि – से संबंधित शास्त्रों में पायी जाती है।

वास्तुशिल्प, निर्माण और कलाओं से संबंधित प्राचीन ग्रंथ शिल्पशास्त्रों के नाम से ज्ञात हैं। जॉन मार्शल का कहना है कि शिल्पशास्त्रों की बुनियाद अत्यंत प्राचीन काल में जब हड़प्पा की नागर सभ्यता मुकुलित हो रही थी, तभी रख दी गयी थी। शास्त्रों के प्रत्यक्ष पूर्ववर्ती सूत्र ग्रंथ थे, जो स्मृति परंपरा से संबद्ध थे।

गायन, नृत्य, चित्रांकन और मूर्तिनिर्माण की कला के अर्थ में "शिल्प" का प्रथम उल्लेख ब्राह्मण ग्रंथों (आठवीं शती ईसापूर्व) में मिलता है। महाभारत में शिल्पशास्त्र का कला तथा वास्तु विषयक नियमों के संकलन के तौर पर कई बार उल्लेख हुआ है। शिल्पशास्त्रों को लिखित रूप प्रथम शती ईसापूर्व से दिया जाने लगा। पांचवीं-छठी शतियों तक कोई १८ विषयों से संबंधित शास्त्रों को लिखित रूप दे दिया गया था और इनमें 'वास्तुशास्त्र' (अथवा 'वास्तुविद्या') नामक ग्रंथ भी थे। शिल्पशास्त्रों के पाठों में निस्संदेह समय-समय पर परिवर्तन और परिवर्द्धन किये जाते रहे। स्वयं जीवन उनमें संशोधनों की आवश्यकता पैदा कर रहा था।

शतियों के नगर निर्माण विषयक अनुभव और सिद्धांतों का निचोड़ 'पुरनिवेश' नामक नियमों में पाया जाता है। इनके आधार पर ग्यारहवीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शती में उस परंपरा का जन्म हुआ, जिसका पालन भारतीय वास्तुशिल्पी आज तक करते आये हैं।

प्राचीन विश्व के अन्य देशों की भांति भारत में भी सभी प्रारंभिक नगर निर्माण संबंधी सिद्धांत मान्यता के लिए ज्योतिषशास्त्र धर्मशास्त्र और प्राचीन पौराणिक आख्यानों का आश्रय लेते थे। विश्व की सभी प्राचीन जातियों में व्यावहारिक कार्यकलाप का हर क्षेत्र, जिसमें निर्माण भी शामिल था, धर्म और धार्मिक अनुष्ठानों से जुड़ा होता था। नये नगर, नये मंदिर अथवा अन्य इमारत का शिलान्यास समाज के जीवन की एक सबसे महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती थी और उसके साथ कुछ निश्चित अनुष्ठानों का संपन्न किया जाना अनिवार्य था। भारत में शिलान्यास के अवसर पर किये जानेवाले अनुष्ठान एट्रूरियाई और रोमन अनुष्ठानों से काफ़ी मिलते-जुलते थे। रोमनों की भांति भारतीय भी अपने नगरों का संस्थापक पौराणिक वीरों अथवा देवताओं को बताते थे। उदाहरणार्थ, अयोध्या का संस्थापक आदि-विधिनिर्माता मनु को बताया गया है। भारत में प्राचीनतम काल से ही धार्मिक स्थलों को पवित्र मानने और उस स्थल पर स्थित मंदिर के ध्वस्त हो जाने पर नया मंदिर वहीं फिर से बनाने की प्रथा रही है। भारत, चीन, कंबोडिया, बर्मा, आदि कृषिप्रधान देशों में बस्तियों का और आवासीय निर्मितियों के मार्गों अथवा द्वारों का दिग्विन्यास ऊष्मा और प्रकाश के स्रोत सूर्य अथवा चंद्रमा की उपासना से संबद्ध था। नगर निर्माण के रूपों तथा व्यवहार पर ऐसे क्षेत्रों का भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ता था, जो उससे संबद्ध थे, जैसे नहर तथा मार्ग निर्माण, खगोलशास्त्र, सैन्यविज्ञान, आदि। समय के साथ ब्राह्मण तथा पुरोहित भूगणित, निर्माण और कृषि की दृष्टि से सुविधाजनक वर्ग, आयत, वृत्त और घन की ज्यामितीय आकृतियों को प्रतीकात्मक अर्थ प्रदान करते गये। धर्म इन आकृतियों को शास्त्रानुमोदित सिद्ध करने में सहायक बना। प्राचीन भारतीय ग्रंथों की रचना सामान्यतः ब्राह्मणों और बौद्ध भिक्षुओं द्वारा की गयी थी और इसलिए ये ग्रंथ स्वाभाविक ही तरह-तरह की प्रतीकात्मक और रहस्यात्मक व्याख्याओं से भरपूर हैं। भारत की नगर निर्माण कला और वास्तुशिल्प में प्रतीक-प्रयोग का महत्त्व एक अलग विषय है और हम उसे नहीं छुएंगे। यहां हमारा लक्ष्य भारत की सांस्कृतिक विरासत में जो कुछ युक्तिपरक, व्यावहारिक है और जिसने अपनी मूल्यवत्ता आज भी नहीं खोयी है, उस सब पर ही बल देना है।

प्राचीन भारत में वास्तुकार वही नगरनिर्माता भी होता था – प्रायः ब्राह्मण होता था और समाज में सम्मानित स्थान रखता था। वास्तुकारों को वास्तु-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शिल्प के अतिरिक्त अनेक अन्य कलाओं तथा शिल्पों में भी प्रवीण माना जाता था। पौराणिक स्थपति विश्वकर्मा को "सहस्रकलादक्ष" कहा गया है। वास्तुशिल्प के पेशे के लिए दीर्घकालिक और बहुमुखी प्रशिक्षण नृत्य, संगीत, मूर्तिरचना और विविध अनुप्रयुक्त कलाओं में उत्तरोत्तर नैपुण्य प्राप्त करते जाने से आरंभ होता था और फिर निर्माण कला के अध्ययन पर जाकर समाप्त होता था।

राजाओं के मंत्री तथा उच्च पदस्थ अधिकारी भी वास्तुशिल्प तथा नगर निर्माण संबंधी मामलों में, जिन्हें "वास्तुप्रकरण" कहा जाता था, पर्याप्त निपुण होते थे।

भारत की वास्तुशिल्प संबंधी सैद्धांतिक धरोहर की व्याख्या करने का प्रथम श्रेय भारतीय विद्वान राम राज को प्राप्त है। 'वास्तुविद्या' और 'शिल्पशास्त्र' के आधार पर लिखित और १८३४ में प्रकाशित उनकी रचना ने यूरोपीय विज्ञानजगत का भारतीय वास्तुशिल्प से पहला साक्षात्कार कराया था।* १९१४ में एक अन्य शिल्पग्रंथ – 'मानसार' – के बारे में कहीं अधिक गहन शोध प्रयास का परिचय देनेवाली रचना प्रकाशित हुई, जिसके लेखक पी० के० आचार्य थे।** पी० के० आचार्य के अनुसार तब तक ३०० से अधिक शिल्पग्रंथ प्रकाश में आ चुके थे, किंतु उनमें से केवल ३६ ही पढ़े जा सकते थे और वे भी पूर्णतः नहीं। उन्हें पढ़ने और समझने में संस्कृत के और स्वयं विषय के भी इने-गिने जानकार ही समर्थ थे। ये वे "स्थपति" – मौखिक वास्तु परंपरा के जीवंत वाहक – थे, जो आज शायद ही कहीं मिल पायें।

उपलब्ध प्राचीन भारतीय शिल्पग्रंथों में सबसे पूर्ण 'मानसार' को माना जाता है। आचार्य ने उसका रचनाकाल पांचवीं – सातवीं शती आंका है, जबकि एक अन्य भारतीय विद्वान टी० भट्टाचार्य उसके उपलब्ध पाठ को ग्यारहवीं शती का और दक्षिण भारत में रचित बताते हैं।

नगर के प्राचीन भारतीय निदर्श के अध्ययन के लिए हमारे वास्ते 'मानसार' और 'अर्थशास्त्र' विशेष महत्त्व रखते हैं। 'अर्थशास्त्र' में समाज के प्रशासनिक, राजनीतिक और आर्थिक गठन संबंधी सिफ़ारिशों के अलावा 'प्रदेश का उपनिवेशन तथा व्यवस्था' शीर्षक एक विशेष अध्याय और नगर निर्माण संबंधी कई टिप्पणियां भी पायी जाती हैं।

दोनों ग्रंथों में नगर निर्माण के क्षेत्र में जो व्यावहारिक सुझाव दिये गये हैं, वे निश्चय ही यथार्थ वास्तविकता पर और सामान्य, अधिक पुरानी

---

* Ram Raz, *Essay on the Architecture of the Hindus*, London, 1834.

** Acharya P. K., *Manasara*, vols. I—IV, London, 1914.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परंपराओं पर आधारित थे। दोनों ग्रंथों की अंतर्वस्तु की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि हमारे लिए सर्वथा स्पष्ट है। उनमें से प्रत्येक अपने युग को प्रतिबिंबित करता है। उदाहरण के लिए, 'अर्थशास्त्र' में वैसे नगरीय मंदिर-समुच्चयों के निर्माण का कोई उल्लेख नहीं किया जाता, जैसे कि मध्यकाल में दक्षिण भारत में बनाये जाते थे और जिनकी 'मानसार' में इतने विस्तार से चर्चा हुई है। इसी तरह 'मानसार' में बौद्ध स्तूपों तथा विहारों की कोई चर्चा नहीं मिलती, क्योंकि उसके रचनाकाल तक उनके निर्माण की आवश्यकता नहीं रह गयी थी।

जैसा कि इन ग्रंथों से निष्कर्ष निकाला जा सकता है, नगर निर्माण में राज्य की बहुत बड़ी भूमिका थी। वह नगरों के निर्माण का नियमन करता था और कुछ हद तक अपने क्षेत्र में स्थित बस्तियों की आयोजना से संबंधित अपेक्षया व्यापक कार्यों को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास भी करता था। नगर निर्माण के क्षेत्र में क़ानून किस ढंग से बनाये जाते थे, यह हमें ज्ञात नहीं हो सका है। संभवतया शासक इन मामलों में अपने मंत्रियों के परामर्शों पर भरोसा कर लेते थे। नगर निर्माण के क्षेत्र में कौटिल्य ने, जो चंद्रगुप्त मौर्य का मंत्री था और जिसे 'अर्थशास्त्र' का रचनाकार माना जाता है, विलक्षण योग्यता का परिचय दिया था।

'अर्थशास्त्र' के अनुसार मगध राज्य में उसकी स्थापना के काल से ही बस्ती-संरूप प्रशासन व्यवस्था से घनिष्टतः संबद्ध था। चाहे ग्राम हो या व्यापारिक बंदरगाह अथवा आरक्षित स्थल, सभी प्रकार की बस्तियां राजनीतिक दृष्टि से नगर की अधीनता में थीं, जो प्रशासनिक केंद्र होता था।

अनेक ग्रंथों में राज्य को कर देनेवाले जनपद–"राष्ट्र"–के पैमाने पर बस्तियों के प्रशासन-प्रबंध का उल्लेख आया है और राष्ट्रों को उनमें स्थित बस्तियों की संख्या के अनुसार वर्गीकृत किया गया है। सबसे बड़े राष्ट्र में ९१५०–१०००० ग्राम तथा ५०० नगर, मध्यम आकार के राष्ट्र में ५३८४–६००० ग्राम तथा ३०० तक नगर और छोटे राष्ट्र में १५४८–२००० ग्राम तथा ८६–१०० नगर होते थे। ८०० बस्तियों के लिए एक बड़े मंडलीय प्रशासनिक केंद्र की व्यवस्था थी। उससे छोटी प्रशासनिक इकाइयों में क्रमशः ४००,२०० और १० बस्तियां होनी चाहिए थीं। 'अर्थशास्त्र" में इन इकाइयों को क्रमशः "स्थानीय", "द्रोणमुख", "खर्वटिक" और "संग्रहण" की संज्ञा दी गयी है। विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों की सीमाएं पर्वत, नदी, वन, खाई, विशेषतः आरोपित वन, आदि प्राकृतिक भूचिह्नों के आधार पर निर्धारित की जाती थीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'अर्थशास्त्र' में भूमि को कृषियोग्य बनाने, निवासियों (विशेषत: किसानों) को बसाने और आबाद इलाक़ों के प्रशासन की व्यवस्था करने के संबंध में राजा अथवा सम्राट् के अधिकारों और दायित्वों की चर्चा की गयी है, ताकि देश की निरापदता तथा समृद्धि को सुनिश्चित किया जा सके : "राजा शत्रुसेनाओं अथवा वनवासियों के आक्रमणों से ध्वस्त, महामारियों तथा ग़रीबी से ग्रस्त प्रदेश को करमुक्त कर देता है और उसे अपव्ययकारी खेलों से छुटकारा दिलाता है...

"राजा अन्य देशों के निवासियों को आमंत्रित करके अथवा अपने देश के अत्यधिक आबादीवाले भागों से अतिरिक्त निवासियों को बेदखल करके कृष्ट अथवा अकृष्ट इलाक़ों को आबाद करता है।" 'अर्थशास्त्र' से हमें पता चलता है कि मगध राज्य ग़ैर-आबाद इलाक़ों को आबाद करने पर बहुत ध्यान देता था। अत्यधिक आबादीवाले इलाक़ों से निवासियों को, मुख्यतया निम्न जातियों के लोगों को, जिनकी स्थिति बहुत कुछ दासों जैसी थी, नये इलाक़ों में बसने को बाध्य किया जाता था। उदाहरणार्थ, कलिंग की विजय के बाद वहां से डेढ़ लाख लोगों को नये इलाक़ों में जंगल साफ़ करने और भूमि को कृषियोग्य बनाने के लिए भेजा गया था। नये निवासियों से हथियार छीन लिये जाते थे, खेती करने के लिए विवश किया जाता था और जो भी अतिरिक्त अनाज होता था, वह राज्य ले लेता था।

बस्तियों के भविष्य का, उनकी संवृद्धि तथा समृद्धि के लिए आवश्यक आधार तैयार करने का उत्तरदायित्व राज्य पर था, जो मुख्य रूप से व्यापार तथा शिल्पों का विकास सुनिश्चित करता था। इसके लिए कच्चे मालों और परिवहन की व्यवस्था करना आवश्यक था। कौटिल्य लिखता है कि राज्य को सिंचित कृषि के अतिरिक्त पशुपालन का विकास, विभिन्न उद्योग-धंधों के लिए आवश्यक खनिजों तथा अन्य कच्चे मालों के दोहन की व्यवस्था, जल तथा स्थल परिवहन का इंतज़ाम, नये व्यापारिक केंद्रों की स्थापना और व्यापार-वाणिज्य को प्रोत्साहित करना चाहिए। यदि नये आबाद इलाक़ों में "विलास-कुंज और मौज-मस्ती के अड्डे" नहीं होंगे, तो राज्य का कोष और भी भरेगा।

कृष्ट इलाक़ों की बस्तियों के निवासी मुख्यतया शूद्र वर्ग के कृषक होते थे और हर बस्ती में, जिसके क्षेत्रफल की सीमा एक अथवा दो क्रोश (क्रोश=३.५ किलोमीटर) थी, १०० से ५०० के बीच परिवार होते थे। बस्तियों की बाह्य आक्रमणों और हर तरह की विपत्तियों से रक्षा की व्यवस्था किया जाना ज़रूरी था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अकृष्ट भूमियों पर प्राकृतिक वनों से पृथक्कृत वनोद्यान अथवा आरक्षित वन लगाये जाते थे ('अर्थशास्त्र', २०.२), जिनसे क़ीमती इमारती लकड़ी और औषधियों, रंजकों, आदि के लिए कच्चा माल मिलता था। वन लगाये जाते थे ('अर्थशास्त्र', २००२), जिनसे क़ीमती इमारती माना जाता था। कुछ आरक्षित वन ऐसे थे, जो सम्राट् की मनोरंजनस्थली का काम करते थे। उनमें फलदार और सजावटी वृक्ष लगाये जाते थे, प्राकृतिक और कृत्रिम जलाशय, फ़ौवारे, विश्रामस्थल, आदि होते थे, पालतू हिरण, हाथी और अन्य जीव विचरते थे।

प्राचीन भारत में उद्यानों और उपवनों के निर्माण को विशेषत: प्रोत्साहित किया जाता था। 'बृहत्संहिता' में कहा गया है, "देवताओं को नयनाभिराम उद्यानों से युक्त नगर प्रिय हैं और जो बड़े-बड़े सरोवर, उद्यान तथा वाटिकाएं बनाता है, वह उससे अधिक सम्मान का भागी होता है, जो मंदिर बनाता है।" रामायण और महाभारत में प्रकृति उद्यानों के अतिरिक्त बाक़ायदा निर्मित बाग़-बग़ीचों का भी उल्लेख आया है।

नगर निर्माण के संबंध में 'मानसार' में दो विशेष प्रकरण हैं: पहला प्रकरण – 'ग्रामलक्षण' – ग्राम के लक्षणों तथा अभिन्यास के बारे में है और दूसरा प्रकरण, 'नगरविधान', जो कुछ छोटा है, नगरों की प्रायोजना से संबंध रखता है।

'मानसार' में ग्रामों और नगरों के लिए जो अभिन्यासात्मक योजनाएं सुझायी गयी हैं, उनमें विशेष अंतर नहीं है। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है। 'मानसार' वास्तविकता को प्रतिबिंबित करता था। ग्राम, जो नगर का मूल है, भारत में आज भी बस्ती का प्रमुख रूप है और आबादी की संख्या, शिल्पों के विकास, संस्कृति के स्तर, आदि कई प्रकटत: नगरीय लक्षणों के अनुसार कभी-कभी नगर की भी बराबरी करता है। प्राचीन भारत में नगर और ग्राम के बीच वह बराबरी प्रकट होती है, जिसकी ओर कार्ल मार्क्स ने ध्यान आकृष्ट किया था। नगर और ग्राम के बीच विभाजन रेखा खींच पाना प्राचीन काल में ही नहीं, आज भी काफ़ी कठिन है।

अनेक प्राचीन भारतीय ग्रंथों में "नगर" ("पुर") और "ग्राम" (अथवा "निगाम") के बीच भेद नहीं किया गया है। महान वैयाकरण पाणिनि यदि "नगर" और "ग्राम" शब्दों के बीच अंतर करते भी हैं, तो साथ ही इस बात पर बल देना नहीं भूलते कि ऐसा अंतर केवल पूर्व भारत में पाया जाता है, जहां नगर ग्राम से काफ़ी भिन्न है। उत्तर-पश्चिम भारत की सभी बस्तियों के लिए पाणिनि केवल "ग्राम" शब्द प्रयोग करते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सामाजिक श्रम विभाजन के अल्पविकास के कारण राजधानियां भी ग्रामों से ज़्यादा भिन्न नहीं लगती थीं। ग्राम प्रायः बढ़कर नगर बन जाता था और नगर प्रायः एक बड़े ग्राम जैसा दिखता था। ऐसी बात भारत में ही नहीं, अठारहवीं शती तक यूरोप के भी बहुत-से देशों में देखी जा सकती थी। नगरों के निवासी शिल्पकर्म के साथ-साथ कृषिकर्म भी करते थे। नगर के बाहर उनके खेत, फलों के बाग़, फूलों के बग़ीचे, आदि होते थे और १० परिवारों के लिए एक कूएं की व्यवस्था होती थी। प्राचीन ग्रंथों में ग्राम का आशय किसानों के घरों तथा बग़ीचों के अलावा उस सारे क्षेत्र से होता था, जो समुदाय के अधिकार में था और जिसमें चरागाह, खेत, वन, कूएं, मंदिर, श्मशान, आदि सब कुछ आ जाता था। निरीक्षण बुर्जों और मज़बूत फाटकोंवाले रक्षा प्राचीरों के कई घेरों से घिरा हुआ और भीतर प्रायः मुखिया के आरक्षित निवास से युक्त ग्राम नगर की भांति पुर कहलाता था।

नगर की तरह ग्राम में भी अलग-अलग जातियों और तबक़ों के लोगों के अलग-अलग मुहल्ले होते थे। 'मानसार' में ग्रामों में अंतर उनके अभिन्यास के अनुसार नहीं, अपितु निवासियों के मुख्य व्यवसाय के आधार पर किया गया है। सबसे अधिक संख्या उन ग्रामों की थी, जिनमें खेतिहर किसान रहते थे। कुछ ग्राम ऐसे थे, जिनमें किसी एक विशेष धंधे को करनेवाले ही रहते थे, जैसे लुहार, बढ़ई, कुम्हार, आदि, जो पड़ोसी गांवों की शिल्प-वस्तुओं की आवश्यकताएं पूरा करते थे। ब्राह्मणों के ग्रामों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विशेष ग्राम नियत होते थे।

नगर और ग्राम के बीच मुख्य भेद यह था कि नगर में दुर्ग और काफ़ी बड़ी आबादी होती थी। 'मानसार' प्रकार्यात्मक आधार पर बस्तियों को निम्न कोटियों में विभाजित करता है : १. राज्य की राजधानी ; २. प्रादेशिक अथवा प्रांतीय राजधानी ; ३. इलाक़ाई प्रशासनिक केंद्र ; ४. शिल्प-उद्योग के केंद्र ; ५. व्यापारिक केंद्र ; ६. नदी तथा सागर बंदरगाह ; ७. आरक्षित तथा पारगमन स्थल और दुर्ग ; ८. राजा के निवास से युक्त दुर्ग ; ९. सीमांत छावनियां ; १०. दुर्गयुक्त बड़े नगर, जो एक साथ कई प्रकार्य करते थे और जिनकी आबादी मिश्रित (कई जातियों और तबक़ों से बनी हुई) होती थी ; ११. उत्पादक श्रम न करनेवाले लोगों, जैसे वृद्ध ब्राह्मणों, की बस्तियां।

'मानसार' राजधानी-नगरों का उनके क्षेत्रफल और जनसंख्या के अनुसार वर्गीकरण करता है। इसके साथ ही राज्य के आकार, जिसकी कि वह नगर राजधानी है, उसके शासक के राजनीतिक स्तर, आदि को भी ध्यान में रखा जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर्णव्यवस्था पर आधारित भारत का सामाजिक ढांचा नगरों की एक खास प्रकार की संरचना और सारे देश के पैमाने पर एक खास तरह के बस्ती-संरूप को जन्म देता था। प्राचीन भारत में राजकीय भूमि का वितरण जाति अथवा वर्ण के आधार पर किया जाता था। सर्वोत्तम भूमि ब्राह्मणों की बस्तियों को दी जाती थी। दलदली इलाक़ों अथला कृषि और आवास के लिए अल्प उपयुक्त भूमियों पर छोटी जातियों के लोगों, शूद्रों, को बसाया जाता था। शूद्रों और उन कामगारों तथा नौकरों के लिए, जो किसी भी वर्ण के अंतर्गत नहीं आते थे, विशेष बस्तियां बनायी जाती थीं, जो "चतुर्मुख" अथवा "खेट" कहलाते थे। उच्च वर्णों के लोगों, यथा ब्राह्मणों, के लिए "दंडक" प्रकार की बस्तियों में रहने का विधान था। वैश्यवर्णीय वणिकों तथा महाजनों के लिए नियत बस्तियां "कार्मुक" कहलाती थीं।

व्यवसायों और वर्णों के अनुसार अलग-अलग मुहल्लों में विभाजित नगर की अभिन्यासात्मक संरचना नगर समाज में उसके आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक प्रकार्यों के वितरण की एक अत्यंत संगठित सोपानबद्ध प्रणाली की परिचायक है। नगर में निवासियों को उनके वर्ण और व्यवसाय के अनुसार पृथक्-पृथक् मुहल्लों में बसाया जाता था। बस्ती में हर जाति के हर समुदाय के निवास के लिए ऐसा स्थान निश्चित किया जाता था, जो सामाजिक, राजनीतिक और सांपत्तिक सोपानक्रम पर आधारित समाज के संचालन की दृष्टि से सर्वाधिक युक्तिसंगत पाया जाता था।

नगर क्षेत्र का नौवां भाग, जो कि निर्माण के लिए भी सर्वाधिक उपयुक्त होता था, राजप्रासाद के लिए नियत होता था। राजप्रासाद के उत्तर-पूर्व में पुरोहितों, मंत्रियों तथा अन्य विशिष्ट जनों के आवास होते थे। यहीं वारांगनाओं और उच्चवर्गीय लोगों की रखैलों की हवेलियां भी होती थीं। वास्तुशिल्पियों, चिकित्सकों, लेखकों और कवियों के लिए नगर के उत्तरी अथवा उत्तर-पश्चिमी भाग में स्थित एक सबसे बढ़िया इलाक़ा निर्धारित था। लुहार और स्वर्णकार भी, जो सम्मानित पेशों के लोग माने जाते थे, ब्राह्मणों की तरह बढ़िया मुहल्लों में रहते थे, जहां प्राय: नगर-देवताओं और शासकों की मूर्तियां भी स्थापित की जाती थीं। जिन व्यवसायों से नगर प्रदूषित हो सकता था, जैसे चर्मकारी, कपडा-रंगाई, आदि, उनमें लगे लोगों और मिश्रित विवाहों से उत्पन्न लोगों को केवल नगर-उपांत में रहने की अनुमति थी। अस्पृश्यों, श्मशानकर्मियों, चांडालों और अपधर्मियों की झोंपड़ियां नगर की सीमा से बाहर होती थीं।

वर्गों तथा वर्णों पर आधारित नियमों की छाप बस्ती-संरूप पर ही नहीं,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भवनों के स्वरूप पर भी देखी जा सकती थी। उदाहरण के लिए, शूद्रों और अन्य नीची जातियों के लोगों को एकमंज़िले से ज़्यादा बड़ा मकान बनाने की अनुमति न थी। इसी तरह वे अपने लिए पत्थर अथवा ईंट के घर भी नहीं बना सकते थे। उन्हें मिट्टी, सरकंडे और बांस से निर्मित झोंपड़ियों से ही संतोष कर लेना पड़ता था।

प्राचीन भारत में किसी भी तरह की बस्ती का निर्माण पवित्र कार्य माना जाता था, चाहे वह छोटी हो या बड़ी, राजधानी हो या नन्हा-सा गांव। सभी मामलों में उसकी अभिन्यासात्मक योजना में उसके प्रयोजन, स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों और निवासियों की आवश्यकताओं को और साथ ही भावी विस्तार की संभावनाओं को भी अवश्य ध्यान में रखा जाता था।

नगर के लिए स्थली वास्तु-विशेषज्ञों के परामर्श से चुनी जाती थी। मुख्य उद्देश्य बस्ती के लिए अनुकूलतम पारिवेशिक परिस्थितियां बनाना होता था। बस्ती की अवस्थिति के लिए नदियों का संगम, अथवा ख़ूब मछलियों-वाली गहरी, न सूखनेवाली झील का तट आदर्श स्थली माना जाता था। तट भी सबसे उत्कृष्ट वह था, जो उत्तर दिशा में होता था, जहां सूर्य का अधिकतम प्रकाश मिल सकता था, वायु का निर्बाध संचार होता था और प्रचुर नमी रहती थी। जहां झीलें और नदियां नहीं थीं, वहां नगरों में कृत्रिम जलाशय बनाये जाते थे।

'मानसार' में तीन प्रकार की भूमि का उल्लेख आता है: "जांगल", "अनूप" और "साधारण"। "जांगल" सबसे निकृष्ट कोटि की और बस्तियों के लिए अनुपयुक्त भूमि है। यह या तो रेगिस्तानी होती है, जिसके आसपास पानी का स्रोत नहीं होता, गरम हवाएं और धूल की आंधियां चलती रहती हैं, मिट्टी जलकर काली पड़ जाती है और वनस्पति के नाम पर कुछ झाड़-झंखाड़ ही होते हैं, अथवा वह हिंस्र जानवरों तथा पक्षियों से आक्रांत दुर्गम वनों और दलदलोंवाली भूमि होती है। "अनूप" वह भूमि है, जिसपर पर्याप्त वनस्पति-आच्छादन होता है और जो खेती के लिए उपयुक्त है। ऐसी भूमि नदी-घाटियों और पहाड़ी तलहटियों में पायी जाती है, जहां जलवायु नरम होती है और नदी-नालों में ख़ूब मछलियां होती हैं। ऐसी भूमि पर क़िस्म-क़िस्म के पेड़ उगते हैं, जैसे बरगद, नीम और चंपा। ब्राह्मणों की बस्तियों के लिए सबसे उपयुक्त भूमि नमीदार तटवर्ती इलाक़े हैं, जहां नारियल, कर्पूर, इलायची तथा दूसरे मूल्यवान वृक्ष प्रचुर मात्रा में उगते हैं और धान के खेत तथा फलों के बाग़ होते हैं। "साधारण" मिली-जुली क़िस्म की भूमि होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वास्तुकार बस्ती के दिग्विन्यास में भारत में अधिकतर चलनेवाली पश्चिमी हवाओं को हमेशा ध्यान में रखते थे और जल का स्रोत नगर के पश्चिम में रखने की सिफ़ारिश करते थे, ताकि वायु में शीतलता और आर्द्रता बनी रहे। हवाओं की दिशाओं को देखते हुए ही राजप्रासाद की निर्माणस्थली भी चुनी जाती थी।

उदयपुर, अहमदाबाद, पाटण, तक्षशिला और सिद्धपुर के निर्माताओं ने संभवत: इन्हीं सिफ़ारिशों पर अमल किया होगा। इन सब नगरों में जल का स्रोत पश्चिम में है। नगर के मुख्य द्वारों को, जिनपर मुख्य नगर-मार्ग प्राय: आकर ख़त्म होते हैं, पूर्व तथा पश्चिम में बनाने की प्रथा भारत में वैदिक काल से ही चली आ रही है और सूर्योपासना से संबंध रखती है।

नगर के प्रयोजन, पैमाने और सामान्य स्वरूप को देखते हुए अभिन्यास की समुचित ज्यामितीय आकृतियां चुनी जाती थीं और आंतरिक प्रकार्यात्मक क्षेत्र-विभाजन किया जाता था। भारतीय शिल्पग्रंथ अधिकांशत: समकोणिक अभिन्यास प्रस्तावित करते हैं—एक ही वर्ग की आकृतिवाला अथवा दो वर्गों से निर्मित आयत के आकार का। अरीय मार्गोंवाला वृत्ताकार अभिन्यास केवल 'बृहत्संहिता' में सुझाया गया है, किंतु उसपर अमल नहीं हुआ। धन्वाकार अभिन्यास अथवा पंखे के समान फैले मार्गोंवाला बहुभुजी अभिन्यास उन बस्तियों के लिए सुझाया गया है, जो नदियों के मोड़ पर अथवा किसी वक्र द्वारा परिसीमित स्थल पर बनायी जाती हैं। लगभग सभी शिल्पग्रंथ नगरों और सभी भवनों के अभिन्यास में सममिति का होना अनिवार्य बताते हैं। सर्वाधिक प्रचलित केंद्रमूलक बनावट थी, जिसके नाभिक में मुख्य मंदिर होता था।

राजधानी-नगरों के तीन मुख्य प्रकारों—"राजधानीय नगर," "नंदीवर्त" और "प्रस्तर"—के लिए आयताकार अथवा वर्गाकार आकृतियों का विधान था, जिनमें सभी मुख्य मार्ग केंद्र में आकर मिलते थे। "राजधानीय नगर" साम्राज्य अथवा विशाल राज्य की राजधानी को कहते हैं और उसकी अवस्थिति के लिए नदी अथवा सागर तट आदर्श माना गया है। "प्रस्तर" प्रकार का राजधानी-नगर मैदानी जगह पर बसाया जा सकता है। उसके लिए किले-बंदियां अनिवार्य नहीं हैं। अठारहवीं शती में जयपुर नगर का निर्माण "प्रस्तर" योजना के अनुसार ही किया गया था।

"नंदीवर्त" प्रकार की राजधानी के लिए ब्राह्मण निवासियों की एक निश्चित संख्या निर्धारित की गयी है (५० से ४ हज़ार तक), जबकि अन्य वर्णों के निवासियों की संख्या कितनी भी हो सकती है। नगर का सारा काम-काजी जीवन और घनी आबादीवाले व्यापारियों तथा शिल्पकर्मियों के मुहल्ले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छोरवर्ती इलाक़ों में संकेंद्रित होते हैं। मध्य भाग में, उद्यानों और उपवनों के निकट, जहां राजनिवास और संपन्न-संभ्रांत नागरिकों के सौध स्थित होते हैं, आबादी की सघनता कम हो जाती है। नगर केंद्र में, जहां सभी बड़े मार्ग मिलते हैं, प्रधान मंदिर बना होता है।

सुस्पष्ट केंद्रमूलक रचनावाली "सर्वतोभद्र" अभिन्यास योजना किसी भी बड़े नगर के लिए उपयुक्त समझी जाती थी। "सर्वतोभद्र" नगर समकोणिक, अधिकांशतः वर्गाकार, होते हैं और उनमें दो मुख्य मार्ग होते हैं, जो केंद्र में एक दूसरे को समकोण पर काटते हैं। उनके समानांतर दोनों ही दिशाओं में गौण सड़कें बनी होती हैं, जिनकी संख्या नगर के आकार पर निर्भर है। इसके अतिरिक्त नगर के भीतर परिधीय मार्ग भी होते हैं। नगर के केंद्र में मुख्य देवता का मंदिर होता है।

"सर्वतोभद्र", "स्वस्तिक," "प्रस्तर", "नंदीवर्त" और "चतुर्मुख" नमूनों के सभी नगरों में प्रासाद, मंदिर, अतिथिशालाएं, क्रीड़ागृह, गणिकागृह और दूसरे सार्वजनिक भवन नगर के मध्य भाग में उपवनों तथा उद्यानों के बीच संकेंद्रित होते हैं और सामान्य लोगों के मुहल्ले उपांतीय भागों में बनाये जाते हैं।

प्रो० विजित घोष तथा कतिपय अन्य विद्वानों का मत है कि दक्षिण भारत के मध्ययुगीन मंदिर-नगर श्रीरंगम का निर्माण "सर्वतोभद्र" योजना के अनुसार ही हुआ था।* यह नगर छठी शती में निर्मित एक मंदिर के गिर्द बसा हुआ है। मंदिर के चारों ओर प्राचीरों के कई घेरे बने हुए हैं, जिनका निर्माण तेरहवीं–सत्रहवीं शतियों में किया गया था।

"पुर" नामक अभिन्यास शैली उन व्यापारिक नगरों के लिए सुझायी गयी है, जिनमें विभिन्न व्यवसायों के लोग रहते हैं। इस प्रकार के नगरों में सभी सार्वजनिक भवन मुख्य मार्गों के दोनों ओर बनाये जाते हैं। हाटें नगर-द्वार के निकट लगती हैं। हर घर में अपना उपवन होता है और सारा नगर उद्यानों तथा फलों के बाग़ों से घिरा होता है।

"केवलनगर" की श्रेणी में वे सामान्य, जनबहुल नगर आते हैं, जिनमें बहुत सारे बाजार, हाटें, मंदिर और क्रीड़ागृह होते हैं, किंतु कोई सरकारी कार्यालय नहीं होते। यहां मुख्य मार्ग चतुर्दिक्‌मुखी होते हैं और मुख्य नगर-द्वारों पर जाकर खत्म होते हैं। नगर प्राचीर से घिरा होता है।

---

* Ghosh Bijit, Mago K. C., *Srirangam: Urban Form and Patterns of an Ancient Indian Town,* Urban and Rural Planning, New Delhi, 1971. vol. XIV, n2.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"पट्टन" प्राचीरों तथा खाइयों से भली भांति आरक्षित बड़ा नदी अथवा समुद्री बंदरगाह है। उसकी अभिन्यासात्मक रूपरेखा कैसी भी ही सकती है। उसमें बहुत बड़ा व्यापारिक तथा व्यावसायिक केंद्र, बंद हाटें और मालों के गोदाम होते हैं। सरायें, अतिथिशालाएं और अन्य सार्वजनिक भवन मुख्य मार्गों पर बनाये जाते हैं।

"द्रोणमुख" जैसी अभिन्यासात्मक योजना उन व्यापारिक नगरों के लिए है, जहां व्यापार-वाणिज्य के केंद्र के साथ राजनिवास भी होता है। आम तौर पर किसी नदी के मुहाने पर स्थित ऐसे नगर में तरह-तरह के व्यवसायों तथा वर्णों के लोग बसते हैं।

"कार्मुक" ऐसा बड़ा व्यापारिक नगर है, जो सामान्यतया किसी नदी मार्ग पर स्थित होता है और जिसका आकार जगह की धन्वाकृति को देखते हुए अर्धवृत्त जैसा हो सकता है। ऐसे में उसकी सड़कों का विन्यास अरीय होगा। समकोण पर एक दूसरे को काटनेवाले मुख्य मार्गों का दिग्विन्यास कैसा भी हो सकता है। गुजरात के अहमदाबाद और पाटण नगरों का निर्माण बहुत कुछ "कार्मुक" योजना के अनुसार ही हुआ था।

"पद्मक" प्रकार की बस्तियों की बहुभुजी आकृति होती है (४,८,१० अथवा १२ भुजाओं से युक्त)। इसमें सड़कें केंद्र से अरों की भांति विभिन्न दिशाओं में जाती हैं।

"दंडक" वृद्ध ब्राह्मणों की बस्ती था। उसमें घरों की संख्या १२, २४, ५०, १०८ या ३०० में से कितनी भी हो सकती है। १२ घरों की बस्ती, जो पहाड़ों में या वन में बनायी जाती है, "आश्रम" कहलाती है। २४ घरों की बस्ती नदी तट पर स्थित होती है। "दंडक" प्रकार की बस्तियां सामान्यतया आयताकार (भुजाओं का अनुपात १:२) होती हैं। पूर्व से पश्चिम की ओर जानेवाली सड़कों की संख्या १ से ५ के बीच हो सकती है, जबकि उन्हें समकोण पर काटनेवाली उत्तर-दक्षिण सड़कें केवल दो होती हैं। बस्ती के गिर्द छोटे-मोटे द्वारों के अलावा २ से ४ तक आरक्षित द्वार भी बनाये जाते हैं। जलाशय एक दक्षिण-पूर्व में होता है और दूसरा उत्तर-पूर्व में।

"खेट" कामगरों—सामान्यतया शूद्रों—की बस्तियों को कहते थे। इस अभिन्यास शैली के अनुसार इलाक़ाई प्रशासन केंद्र भी बनाया जा सकता था, जिसमें आसपास के ग्रामों से कर वसूल करनेवाले कारिंदे रहते थे। ऐसी बस्ती प्रायः किसी जल अथवा स्थल मार्ग पर और वन अथवा पर्वत के निकट बसायी जाती है।

"खर्वट" दुग्ध व्यवसाय और पशुचारण पर निर्भर इलाक़े का केंद्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होता था। "खेट" और "खर्वट" बस्तियों के बीच "कुब्जक" नमूने की बस्तियां बसायी जाती थीं, जिनके गिर्द सुरक्षा प्राचीर नहीं होते थे। "कार्मुक", "पद्मक", "खेट" और "खर्वट" प्रकार की बस्तियों के लिए सड़कों के अरीय विन्यास का विधान किया गया है।

भारत के अनेक नगरों के नामों और अभिन्यास में 'मानसार' में वर्णित नगर प्ररूपों की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। पाटण, प्रभासपाटण, कावेरीपट्टनम, वाशिवजपट्टम, जैसे बंदरगाह नगरों को "पट्टन" नमूने के नगर कहा जा सकता है। गुजरात का खेड़ा नगर, जिसका इतिहास छठी शती ईसापूर्व तक जाता है, "खेट" प्ररूप का नगर था। अनेक नगरों के नाम "पुर" अथवा "पुरम" के साथ ख़त्म होते हैं, जैसे कांचीपुरम, मामल्लपुरम, आदि। उत्तरी भारत में "नगर" अंत-पदवाली अनगिनत नगरीय बस्तियां हैं।

प्राचीन भारत की किसी भी अन्य बस्ती की भांति नगर की भी दुर्ग-प्राचीरों और अन्य प्रतिरक्षा व्यवस्थाओं के बिना कल्पना नहीं की जा सकती। प्रतिरक्षा किसी भी बस्ती का एक सर्वप्रमुख और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रकार्य था। प्राचीर के भीतर निवासी अपने को निरापद अनुभव करते थे। नगर प्राचीर वाह्य शत्रु तथा बर्बर क़बीलों के आक्रमणों, बाढ़ों, धूल की आंधियों, आदि से रक्षा करते थे और सामाजिक हलचलों के समय भी शरणस्थली का काम करते थे।

इन्हीं लक्ष्यों से नगर के भीतर राजप्रासाद के गिर्द और संभ्रांत मुहल्लों के गिर्द भी दीवारें खड़ी की जाती थीं।

नगर के कोनों और द्वारों पर बुर्ज बनाये जाते थे, जो आम तौर पर वर्गाकार होते थे और जिनमें प्रहरी (और युद्ध के समय सैनिक भी) तैनात किये जाते थे। इन बुर्जों के गगनचुंबी शिखर नगर को प्रभावशाली और आकर्षक छवि प्रदान कर देते थे। ऊंचे-ऊंचे प्राचीरों, मिट्टी के पुश्तों और जलपूरित परिखाओं से घिरा नगर किसी भी हमले का मुक़ाबला कर सकता था। 'अर्थशास्त्र' में किसी एक बस्ती के लिए ही नहीं, अपितु राज्य के समस्त क्षेत्र के लिए प्रतिरक्षात्मक निर्माणों की प्रणाली का विशद विवेचन किया गया है।

'अर्थशास्त्र' कहता है, "आवासित प्रदेश की सीमा पर, चारों ओर, स्वाभाविकतः किसी उपयुक्त स्थान पर सैनिक किलेबंदियां बनायी जायें।" "उपयुक्त स्थान" से आशय द्वीप, चट्टान, पहाड़ी, पर्वतों से घिरी अवनत भूमि अथवा गहन वन से था।

'मानसार' में भी सामरिक महत्त्व रखनेवाली किलेबंदियों और प्रति-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रक्षात्मक निर्माणों की एक सुसंहत प्रणाली का उल्लेख आता है, जिसे "स्थानीय" कहा गया है। इस प्रणाली की परिधि में सारा राज्य, सारा प्रदेश अथवा वह सारा इलाक़ा आता है, जहां शासक का स्थायी निवास है।

राजधानी के लिए प्रतिरक्षात्मक निर्माणों की प्रणाली का सबसे विस्तार से विवेचन किया गया है। राजधानी के गिर्द दुर्ग-प्राचीरों, मिट्टी के पुश्तों और खाइयों के तीन या चार घेरे बनाये जायें। खाइयां १०–१६ मीटर गहरी और कम से कम २० मीटर चौड़ी होनी चाहिए और उनमें मगरमच्छ छोड़े जायें। उनपर तुड़वां सेतु बने हों। खाई के तल और पार्श्वों पर प्रस्तरखंड अथवा ईंटें बिछायी जायें। खाई से ७ मीटर के अंतराल पर मिट्टी के पुश्ते बनाये जाने चाहिए, जिन्हें पक्का, ठोस बनाने के लिए उनपर हाथी और बैल दौड़ाये जायें। पुश्तों पर कंटीली और ज़हरीले फलोंवाली झाड़ियां रोपी जानी चाहिए और शीर्ष पर ईंटों की ३–६ मीटर मोटी और ६–१२ मीटर ऊंची दीवार खड़ी की जानी चाहिए। चारों दिशाओं में १२ बुर्जयुक्त आरक्षित द्वार हों। जिन रास्तों से रथ गुज़रते हैं, उनपर पत्थरों से जड़ी अवरोध-भित्तियां बनी होनी चाहिए। हर ५०–६० मीटर के अंतराल पर प्रहरी-कंगूरे हों, जो आपस में वीरंदाज़ों गलियारों से जुड़े होने चाहिए और जिनसे नीचे उतरने के लिए हटायी जा सकने योग्य सीढ़ियां हों। कंगूरों के बीच द्वारों के ऊपर दोमंज़िले बुर्ज हों, जिनमें गुप्त मार्ग भी बने हों। बुर्जों के द्वारों पर हाथियों की टक्कर भी सहनेवाले लोहे की मोटी-मोटी मेखें जड़े फाटक लगे हों। नगर से निकलने का गुप्त मार्ग और शरणस्थल शत्रु के लिए दुर्गम स्थल पर होने चाहिए। गुप्त भूमिगत मार्ग दुर्ग में भी हों। हथियारों और रसद के भंडार नगर की इमारतों से १८० मीटर की दूरी पर किसी भली भांति आरक्षित स्थल पर बनाये जाने चाहिए। भंडारों के समीप स्त्रियों और बच्चों के लिए शरणस्थल बने हों। मंदिर, जलाशय और कूएं नगर के उद्यानों और उपवनों के बीच स्थित हों।

दुर्गों का उनके प्रयोजन, मोर्चेबंदी की व्यवस्था और अवस्थिति के अनुसार वर्गीकरण किया जाता है। "शिविर" ऐसा सैनिक आरक्षित नगर (छावनी) है, जिसमें विभिन्न सैन्य कार्यों को करने के लिए लामबंद कम से कम १० हज़ार बलिष्ठ सैनिक रह सकते हैं। जटिल प्रतिरक्षा व्यवस्थाओं और राज-निवास से युक्त सीमांत नगर, जिसमें मिली-जुली आबादी रहती है, "सेनामुख" अथवा "वाहिनीमुख" कहलाता है। पर्वतशिखर पर, पर्वतमूल में अथवा पर्वतों से घिरे मैदान में स्थित दुर्ग "पर्वत-दुर्ग" माना जाता है। "जल-दुर्ग" किसी द्वीप पर स्थित होता है। जहां शत्रु न पहुंच सके, ऐसी किसी

6–219

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कृत्रिम गुफाओं से जुड़ी जगह पर बने दुर्ग को "भूमि-दुर्ग" कहते हैं। "वन-दुर्ग" वह है, जिसके द्वार ऊंची जगह पर बने हुए और भूमिगत पानी के रास्तों से जुड़े हुए हों। "आकाश-दुर्ग" से शत्रु पर विनाशकारी साधनों की वर्षा की जा सकती है। मिले-जुले प्रकार के "मिश्र दुर्ग" वनों, पर्वतों और नदी तटों पर बनाये जा सकते हैं। "चल दुर्ग" बस्तियों, वनों और नदियों से दूर स्थित होता है और उसमें बंदियों को रखा जाता है। सभी किले मिट्टी के पुश्तों, कम से कम ५ मीटर ऊंचे पत्थर अथवा ईंट के परकोटों और पानी से भरी गहरी खाइयों से घिरे होते हैं।

ज्ञात है कि मार्ग सभी कालों में सभी प्रकार की बस्तियों के बीच संचार और संपर्क का महत्त्वपूर्ण साधन रहे हैं। उनसे सेनाएं एक स्थान से दूसरे स्थान भेजी जाती थीं, तीर्थयात्री सुदूर तीर्थों की यात्राएं संपन्न करते थे और सरकारी कारिंदे कर, खिराज, वग़ैरह वसूल करने निकलते थे। घरेलू और वैदेशिक व्यापार का विकास होता था, तो देश के आर्थिक जीवन में मार्गों की भूमिका और भी बढ़ जाती थी। जैसा कि हम बता चुके हैं, भारत में अत्यंत प्राचीन काल से ही मार्गों के निर्माण को बहुत महत्त्व दिया जाता रहा है।

प्राचीन भारत में मार्गों के बीच भेद उनके प्रयोजन को देखते हुए किया जाता था और इसके अनुसार ही उनकी चौड़ाई निर्धारित की जाती थी। 'अर्थशास्त्र' में मार्गों को राष्ट्रीय महत्त्व के मार्गों ("महापथ"), प्रादेशिक महत्त्व के मार्गों और स्थानीय महत्त्व के मार्गों में विभाजित किया गया है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार के मार्गों के नाम भी मिलते हैं। "सीमामार्ग" सीमा चौकियों को आपस में जोड़ते थे, "ग्राममार्ग" ग्रामों के बीच के मार्गों को कहते थे, "देममार्ग" वे मार्ग थे, जो नगरों और खेतिहर बस्तियों के बीच बनाये जाते थे और "महारथीय" उन बड़े मार्गों को कहते थे, जिनपर कई-कई रथ एक साथ चल सकते थे। महारथीय मार्गों की चौड़ाई ५.४ मीटर से कम नहीं होनी चाहिए थी। सैनिक छावनियों, श्मशानस्थलों और क़ब्रिस्तानों को जानेवाले मार्गों के लिए ८ दंड (१४.४ मीटर) की चौड़ाई निर्धारित की गयी थी। हस्तिवनों को जानेवाले मार्ग २ दंड चौड़े हो सकते थे। बड़े मुख्य मार्गों पर पैदल चलनेवालों, ऊंटों, हाथियों और बैलगाड़ियों के लिए अलग-अलग पथ होते थे।

प्रयोजनानुसार वर्गीकरण विभिन्न बस्तियों को आपस में जोड़नेवाले मार्गों का ही नहीं, स्वयं बस्ती अथवा नगर के भीतरी मार्गों का भी किया गया है। राजधानी-नगरों में मुख्य मार्ग "राजपथ" कहलाता था। पूर्व से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पश्चिम की ओर जानेवाला यह मार्ग राजनिवास से शुरू होता था और नगर केंद्र से होते हुए, जहां मुख्य बाज़ार अथवा लोगों के एकत्र होने का मुख्य स्थल स्थित होता था, गुज़रता था। हर बस्ती में कम से कम एक परिधीय बड़े मार्ग का होना जरूरी था और उसकी चौड़ाई १० मीटर से अधिक होती थी। अपने प्रयोजन की दृष्टि से यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण सड़क थी, क्योंकि सभी शोभायात्राएं, जलूस उसी पर निकलते थे। नगर-प्रतिष्ठा का सामारोहिक अनुष्ठान उसी पर संपन्न किया जाता था। सामरिक ख़तरे के दिनों में उससे सैन्यवाहिनियां गुज़रती थीं। "यानमार्ग" तरह-तरह की गाड़ियों के चलने लायक़ मुख्य सड़कों को कहते थे। इस मार्ग के दोनों ओर पैदल चलनेवाले के लिए विशेष पगडंडियां होती थीं। बस्ती के भीतर रथों, गाड़ियों के लिए प्रयुक्त छोटी सड़क की चौड़ाई कम से कम १.८ मीटर होती थी। सड़क से घर तक जानेवाली सामान्य पगडंडी को "पदीय" कहा गया है। निर्माणाधीन बस्ती की अवस्थिति के निर्धारण में उन परिवहन मार्गों की दिशा को सदा ध्यान में रखा जाता था, जो पहले से मौजूद थे अथवा जिनके निर्माण की योजना बनायी जा चुकी थी, ताकि अन्य बस्तियों के साथ संपर्क बनाये रखने में कोई कठिनाई उत्पन्न न हो सके।

शिल्पग्रंथ किसी भी बस्ती का प्रयोजन और निर्माण सड़कों, मार्गों के निर्माण से आरंभ करने की सलाह देते हैं। नगर की आकृति और योजना मार्गों के विन्यास – "पदविन्यास" पर निर्भर होती थीं और मार्गों का निर्माण तभी आरंभ किया जाता था, जब कि भावी बस्ती की स्थली निर्धारित कर ली जाती थी और तत्संबंधी सभी धार्मिक अनुष्ठान संपन्न कर लिये जाते थे। 'मानसार' के अनुसार किसी भी बस्ती में पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण मार्गों की संख्या ६,१३,१७ अथवा ११,७,५,३ अथवा १२,१०,८, ६,५ होनी चाहिए।

मार्ग बस्ती के संरचनात्मक आधार का काम करते थे। मुख्य मार्ग ही आगे चलकर बस्तियों की मुख्य सड़कों में परिणत हो जाते थे। ये सड़कें नगर के क्षेत्र को विभिन्न मुहल्लों में विभाजित करती थीं। प्रायः एक ही जैसे आकार तथा आकृतिवाले मुहल्लों का समकोणिक ग्रिड अपरिवर्तित रहता था, किंतु उसके भीतर गलियों और कूचों का नक़्शा बदलता रह सकता था। गलियां और कूचे मुहल्ले को छोटे-छोटे खंडों – "पोल" – में विभाजित करते थे। परिवारों के बढ़ने से निवासियों की संख्या में वृद्धि होने के साथ "पोल" की सीमाओं और आकार में परिवर्तन आ सकता था।

हर मुहल्ले में खंडों की संख्या उसके निवासियों की जाति की संख्या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर निर्भर होती थी। सामान्यतया मुहल्ले ४,६,१६ अथवा ६४ खंडों में बांटे जाते थे। "पोल" अथवा "चौक" की पद्धति बाहर के जीवन से आवश्यक अलगाव, एकांतता सुनिश्चित करती थी, लेकिन इसके साथ ही वह आवश्यक सामाजिक संपर्क बनाये रखने का साधन भी होती थी।

लगभग सभी ग्रंथों में घरों का निर्माण एक दूसरे से सटाकर करने पर ज़ोर दिया गया है। वास्तव में भारत के अधिकांश नगरों में निर्माण मुख्य रूप से इसी पद्धति के अनुसार किया गया है। अलग-अलग खड़े मकानों के मुक़ाबले उसकी ख़ूबी यह है कि वह धूल की आंधियों और हवाओं से रक्षा करती है।

आवासीय कक्षों को सड़क से, यातायात से दूर रखने की बात भी कही गयी है। अन्यथा, जैसा कि 'अर्थशास्त्र' कहता है, यदि आवास-गृह भारी यातायातवाले मार्गों पर होते हैं, तो निवासियों की संपन्नता का ह्रास हो सकता है।

नगर के रूप में सुसामंजस्य और शैलीगत एकता बनाये रखने के लिए भवनों के सड़क की ओर अभिमुख भागों की वास्तुसज्जा पर कठोर नियंत्रण रखने पर ज़ोर दिया जाता था। भवनों की ऊंचाई, रंग और वातायनों की आकृति के बारे में सुस्पष्ट नियम बने हुए थे।

हर नगर में नगरपाल और मुहल्ला निरीक्षक होते थे। निवासियों की संख्या, आय-व्यय, व्यवसाय और जाति का पूरा लेखा रखा जाता था। नगर प्रशासन को सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए बड़े अधिकार मिले हुए थे। व्यवस्था भंग करनेवालों को कठोर दंड दिया जाता था। उदाहरणार्थ, अग्निकांड के दोषी को जीवित जला डालने का विधान था। सड़क पर गंदगी फैलाने, मलजल का प्रवाह रोकने, जल-स्रोत प्रदूषित करने और अविहित स्थान पर शव गाड़ने या जलाने के अपराधियों पर भारी जुर्माना किया जाता था। गश्ती दल उन लोगों पर नज़र रखते थे, जो नगर-द्वार बंद हो जाने के बाद सड़कों पर निकलते थे। अग्निशमन उपायों के तौर पर सड़कों व चौराहों पर और नगर द्वारों के निकट पानी से भरे घड़े रखे होते थे।

भारतीय नगर के जीवन में सड़क का बहुत ही बड़ा महत्त्व है। सड़कों की स्थिति, लंबाई और आसपास की इमारतों का वास्तु-स्वरूप काफ़ी हद तक उनके प्रयोजन पर निर्भर होते हैं।

सड़क का एक सबसे मुख्य प्रयोजन उसका परिवहन में सहायक होना है। किंतु भारत में सड़क मात्र परिवहन धमनी ही नहीं होती, वह समस्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नगररूपी अवयवी के बुनियादी सामाजिक प्रकार्यों का नाभिक भी होती है। भारत की गरम जलवायु में किसी भी वस्ती का अधिकांश जीवन खुले में ही गुज़रता है। सड़कें ही व्यापार-वाणिज्य और लोगों के मिलने-जुलने की जगहें बनती हैं।

प्राचीन भारत में नगर की जीवनसक्रियता में मुख्य चौराहे का भी बहुत बड़ा स्थान था। यहीं लोगों का आपस में सबसे ज़्यादा मिलना-जुलना होता था। स्वाभाविकत: यह जगहं व्यापारस्थली भी बन जाती थी। जहां सामाजिक प्रकार्यों में मंदिर की भूमिका प्रधान थी, वहां मंदिर मुख्य मार्गों की नगर-केंद्र में स्थित मिलनस्थली पर बनाये जाते थे (जैसा , उदाहरण के लिए, पाटण और कई दक्षिण भारतीय नगरों – मदुरा, आदि – में देखा जा सकता है)। जिन मंदिरों में पशुबलि दी जाती थी, उन्हें और श्मशान घाटों को लोगों के स्वास्थ्य तथा सफ़ाई को ध्यान में रखते हुए नगर के बाहर बनाया जाता था।

आज की भांति प्राचीन काल में भी लौकिक और धार्मिक पर्वों के अवसर पर नगरों की सड़कों पर जलूस और झांकियां निकलती थीं, जिनके साथ तमाशों, लोक नृत्यों और गीतों का आयोजन भी होता था। उत्सवों के मौक़ों पर जनता के सामने माने-जाने नाटककारों के नाटक भी प्रदर्शित किये जाते थे। कावेरीपट्टनम में सड़कों पर चलते बड़े-बड़े रथों पर खुले आकाश तले अश्वघोष (प्रथम शती ईस्वी) के नाटक दिखाये जाते थे।

चीनी बौद्ध यात्री फ़ाहियान पाटलिपुत्र में पर्वों के अवसर पर सड़कों पर आयोजित रथ-यात्राओं तथा झांकियों के सौंदर्य तथा भव्यता से मुग्ध हो गया था। लोगों द्वारा खींचे जानेवाले विशाल रथों पर देवमूर्तियां से युक्त और बांसों से निर्मित ऊंचे-ऊंचे मंदिरनुमा शिखर बने होते थे। जलूस के साथ हज़ारों नागरिक, वादक और नर्तक चल रहे होते थे। उत्सवों के मौक़ों पर सड़कों पर निकाले जानेवाले ऐसे जलूस और झांकियां या यायावर अभिनेता मंडलियों द्वारा पेश किये जानेवाले नाटक तथा तमाशे भारत की आम जनता के आज भी प्रमुख मनोरंजन साधन हैं।

भारतीयों की आदर्श नगर की धारणा वैदिक काल में ही बन गयी थी। यह पौराणिक मेरु पर्वत पर निर्मित सुदर्शन नामक नगर था, जिसमें देवता रहते थे। नगर बड़े-बडे प्राचीरों से घिरा था। उसमें ५०० सड़कें थीं, जो सब आरक्षित नगर द्वारों पर जाकर ख़त्म होती थीं। नगर के मध्य में, मुख्य मार्गों के मिलनस्थल पर दुर्ग स्थित था, जिसके भीतर देवराज इंद्र का निवास था। दुर्ग से चार दिशाओं में जानेवाले चार मार्गों के अंत में, नगर सीमा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के बाहर, उद्यान बने हुए थे। एक उद्यान में क्रीड़ा प्रतियोगिताएं होती थीं, दूसरे में रथ-दौड़ें आयोजित की जाती थीं, तीसरे में तरह-तरह के आमोद-प्रमोद गृह बने हुए थे और चौथा उद्यान, जो सबसे बड़ा था, नाना प्रकार के दुर्लभ जंतुओं तथा पक्षियों का अभयारण्य था। नगर के विभिन्न कोनों में शाकभाजियों, खाद्यवस्तुओं, वस्त्रों तथा परिधानों, फूलों, शिल्पवस्तुओं, इत्यादि की अलग-अलग हाटें बनी हुई थीं। एक हाट में चित्र और मूर्तिशिल्प ही बिकते थे।

चतुर्दिक्‌मुखी मुख्य मार्गों से युक्त केंद्रमूलक रचनावाले प्राचीन भारतीय नगर का आदर्श निदर्श कोशल राज्य की राजधानी अयोध्या में साकार बना। रामायण में अयोध्या नगरी का वर्णन मिलता है। किंवदंतियों के अनुसार यद्यपि इस नगर का संस्थापक मनु को माना जाता है, किंतु बौद्ध ग्रंथ 'धम्म-पद' के अनुसार उसका निर्माण वास्तुशिल्पी महागोविंद द्वारा पांचवीं शती ईसापूर्व में किया गया था। अठारहवीं शती में अयोध्या के नमूने पर राजपूताना में जयपुर नगर का निर्माण किया गया था। अयोध्या सरयू नदी के तट पर बनाया गया था, जो धनधान्य से परिपूर्ण और इसलिए विभिन्न देशों के व्यापारियों को आकृष्ट करनेवाले कोशल राज्य की विस्तृत, उर्वर धरती के बीच से होते हुए बहती थी।

यह फूलता-फलता, सुनिर्मित आयताकार नगर एक १४ किलोमीटर लंबी और ४ किलोमीटर चौड़ी समतल जगह पर बसा हुआ था। उसका संकरा पार्श्व पहाड़ियों से घिरा हुआ था। बाण जैसी सीधी पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण सड़कें आरक्षित नगर द्वारों पर जाकर खत्म होती थीं। सड़कों के दोनों ओर "पर्वत-सदृश" ऊंचे-ऊंचे बहुमंजिले भवन थे, जो एक दूसरे से यों सटाकर बनाये गये थे कि उनके बीच कोई खाली जगह नहीं थी। नगर के मध्य में "अपने सौंदर्य और वैभव से देदीप्यमान प्रासाद" खड़ा हुआ था।

अयोध्या अपने चित्रकारों, संगीतज्ञों, कवियों, अभिनेताओं और नर्तकियों के लिए विख्यात था। सर्वत्र वीणा, मजीरा और वंशी की मधुर स्वरलहरियां तिरती रहती थीं। यज्ञ और पूजापाठ नगरवासियों की प्रेतबाधाओं तथा विपत्तियों से रक्षा करते थे। अनगिनत प्रतिरक्षा निर्माणों, युद्ध सामग्रियों और तरह-तरह की मोर्चाबंदियों के कारण नगर किसी भी आक्रामक के लिए अभेद्य और अगम्य था। नगर में सुरभि बिखेरनेवाले वृक्षों से युक्त अनेकानेक प्रमोद, उद्यान, आम्रकुंज और पुष्पवाटिकाएं थीं।

अपनी अभिन्यासात्मक योजना और फूलों के रंगों के चयन की दृष्टि से अयोध्या के उद्यान शतरंज की बिसात की याद दिलाते थे। नगर की सारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिधि में वृक्षों की पंक्तियां लगी हुई थीं। कृत्रिम टीलों पर आरोपित विविध वृक्षों के बीच लताकुंज और आमोद मंडप बने हुए थे। खुले मैदानों, चौराहों और उपवनों में निर्मित फ़ौवारे नगर के विशेष दर्शनीय स्थल थे।

रामायण में अयोध्या के मंदिरों का उल्लेख नहीं आता। मुख्य सड़कों की शोभा बढ़ाने के लिए उन पर जगह-जगह पर तोरण और स्तंभ बने हुए थे। नगर की समस्त जीवनसक्रियता का नाभिक मुख्य सड़कें थीं, जिनके दोनों ओर दूकानों की क़तारें बनी हुई थीं। इन्हीं सड़कों पर पर्वों के अवसर पर जलूस और शोभायात्राएं भी निकलती थीं। नगर की सीमा के बाहर बाग़-बग़ीचे और अभयारण्य फैले हुए थे।

ईस्वी संवत की प्रारंभिक शतियों की एक उत्कृष्ट तामिल काव्य-आख्यानिका – 'शिलप्पडिगरम' – में कावेरीपट्टनम के नगर जीवन का बड़ा भव्य चित्र मिलता है। एक वणिक्पुत्र और गणिका की इस प्रेमकथा का रचयिता कावेरीपट्टनम का ही निवासी था। वह लिखता है, पुगार (वर्तमान कावेरी-पट्टनम) अत्यंत वैभवशाली नगर है। यहां नानासंख्य व्यापारी रहते हैं और उनके पास इतनी संपदा है कि यदि गरजते-उफनते सागरों से घिरी सारी धरती के लोग भी यहां आ जायें, तो इस संपदा में कोई कमी न आयेगी। नगरवासियों का जीवन वैसा ही आनंदमय है, जैसा कि उत्तर कुरु के निवासियों का, जिन्हें तपस्या के फलस्वरूप सभी आनंद-वरदान मिले हुए थे...

'शिलप्पडिगरम' के अनुसार कावेरीपट्टनम एक बहुत बड़ा नगर था। वह बंदरगाह था। उसमें तरह-तरह के कुशल शिल्पी और बड़ी संख्या में विदेशी ("यवन") रहते थे, जिनके अपने अलग मुहल्ले थे। नगर का बाज़ार दो महाशक्तिशाली राजाओं के शिविरों के बीच में स्थित युद्धप्रांगण जैसा लगता था और नगर को दो भागों में बांटता था। नगर के अगले भाग में सागर के फेनिल जल द्वारा प्रक्षालित तट के समीप विदेशियों की बस्ती थी, जो बड़े-बड़े पोतों पर माल लादकर यहां बेचने लाते थे, ताकि मालामाल हो सकें। यहां रंगों, सुगंधित चूर्णों, सुरभियुक्त चंदन, फूलों, अगरबत्तियों और ख़ुशबूदार बीजों के व्यापारियों की दूकानें स्थित थीं। यहीं रेशम, ऊन और सूत के सौदागरों की हाटें भी थीं। यहां की चौड़ी-चौड़ी सड़कों पर रेशम, प्रवाल, चंदन, मोती, माणिक्य और सुवर्ण के ढेर लगे रहते थे। यहां तरह-तरह के अनाजों से भूरी-पूरी दूकानें, भोजनगृह, मद्यशालाएं, मछली, नमक, सुपारी तथा मसालों की हाटें और मांस तथा तेल की दूकानें भी थीं। यहीं ठठेरों और औषधिविक्रेताओं, बढ़इयों और लुहारों, उद्भृतिशिल्पियों और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिट्टी की मूर्तियां बनानेवाले, स्वर्णकारों और मणि-माणिक्य तराशनेवालों, दर्ज़ियों और चर्मकारों की कर्मशालाएं स्थित थीं।

नगर के इसी भाग में अपनी कला के माहिर संगीतज्ञ भी रहते थे। जब उनकी वीणा, वंशी अथवा कंठ से अनुपम स्वर फूटते थे, तो सारी सड़क के निवासी उनके कौशल पर मुग्ध हो उठते थे।

नगर के दूसरे भाग में चौड़ा राजपथ था, जिसपर फूलों और मालाओं से सजे हुए रथ चलते थे। यहां भी एक बड़ा बाज़ार था। नगर के इस भाग में सुप्रतिष्ठित घरानों के व्यापारियों, ब्राह्मणों, "अपने व्यवसाय के प्रेमी" कृषिकर्मियों और वैद्यों तथा ज्योतिषियों के मुहल्ले थे। यहां एक ऐसी चौड़ी सड़क थी, जिसपर मोतियों के हार बनाने और तरह-तरह की सूक्तियां खुदे हुए कंगन गढ़नेवाले कुशल कारीगर रहते थे। दरबारी गायकों तथा चारणों के साथ-साथ यहां विविध भाव-भंगिमाओं तथा मुद्राओं के प्रदर्शन में प्रवीण नर्तक, कमनीय वारवनिताएं और नर्तकियां, नगरवधुएं और चेरियां, उद्घोषक और विदूषक, नट और बाज़ीगर, इत्यादि भी रहते थे। नगर के इसी भाग में, जिसकी भव्यता के बारे में असंख्य गीत रचे गये थे, महलों जैसी हवेलियों में संपन्न और गण्यमान्य लोग रहते थे। यहीं नसली घोड़ों को सधानेवालों, महावतों, बड़े-बड़े रथों के सारथियों और युद्धवीर सेनानियों के निवास भी थे।

नगर के चौक और मुख्य सड़कों पर अलंकृत बलि-वेदियां और विजय-तोरण बने हुए थे, पूजा, बलि और नृत्यों के साथ तरह-तरह के अनुष्ठान संपन्न किये जाते थे।

बाज़ार चौक में, जहां से सड़कें शुरू होती थीं, जिनके दोनों ओर अपार धनधान्य से परिपूर्ण सौधों की पंक्तियां खड़ी थीं, पुष्पों और रत्नों से मंडित दीप उठाये हुई, अपने आभूषणों के स्वर से सारे वातावरण को गुंजित करती हुई और फूल, दूर्वा तथा अक्षत बिखेरती हुई देवदासियों की यात्राएं निकलती थीं। यहीं चौक में चिताओं के लिए काष्ठ भी बिकता था।

विजय पर्व के अवसर पर नगर के मुख्य मार्ग पर भव्य राजप्रासाद के द्वार के सामने मणि-माणिक्यजटित स्वर्ण-वेदिका बनायी गयी थी। उसके साथ ही उत्सव तोरण भी खड़े किये गये थे, जिनके मकर-स्तंभों से मोतियों की लड़ियां लटकी हुई थीं। सर्वत्र मिट्टी से भरे हुए स्वर्णिम कलश रखे हुए थे, जिनपर आठ आशीर्वचन खुदे हुए थे। जहां-तहां दीप और पताकाएं उठाये हुई और स्वर्णाभूषणों से सज्जित देवमूर्तियां भी स्थापित की गयी थीं।

नगर में चहल-पहल सांझ ढल जाने के बाद भी बनी रहती थी। असंख्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दीपों के प्रकाश में रेत पर सरसों के बीजों को भी देखा जा सकता था। अनाज के व्यापारियों की दूकानें सीधे समुद्र तट पर ही थीं, जहां दूर देशों से अपरिमित संपदा लेकर आनेवाले पोतों का तांता लगा रहता था और जहां अपनी मातृभूमि छोड़कर आये हुए लोग रहते थे। यहां कुंकुम, चंदन, पुष्प, अगरु और विभिन्न मिष्टान्नों के व्यापारियों की दूकानें प्रकाश से जगमग रहती थीं। उनके आगे शिल्पियों की दूकानें और उनसे भी आगे खाने-पीने की चीज़ों की दूकानें, बिसाते की दूकानें थीं, जिन्हें औरतें चलाती थीं। मछलियों की दूकानें तो हर कहीं थीं। जिन घरों में बाहर से आये और अजनबी भाषाएं बोलनेवाले लोग ठहरते थे, उनमें दीये रात-रात भर जलते रहते थे। महंगे मालों के गोदामों के चौकीदारों के दीपक भी कभी नहीं बुझते थे।

कावेरीपट्टनम के बाहर समुद्रतट से ही लगा हुआ क्रीडा उद्यान था। यहां वृक्षों के कुंजों में, समुद्र तट पर, युवा राजपुत्र विश्राम करते थे, धनी वणिक्पुत्र अपनी प्रेमिकाओं के साथ क्रीड़ा-केलि में व्यस्त रहते थे। तंबूघरों में वारवनिताएं प्रेमीजनों को अपने नृत्यों और मधुर गीतों से सम्मोहित करती थीं। इस स्थली पर, जहां कावेरी सागर से मिलती है, चारों वर्णों के जो भी लोग आते थे, छककर मौज-मस्ती मनाते थे।

'शिलप्पडिगरम' में पांड्य राजाओं की राजधानी अनगिनत प्रासादों से सज्जित' मदुरा का भी काफ़ी विस्तृत वर्णन मिलता है।

इस प्रकार सदियों के नगर निर्माण संबंधी अनुभव के आधार पर निर्मित और सिद्धांतकारों के ग्रंथों में सुस्पष्टतः प्रतिपादित प्राचीन भारतीय नगर के निदर्श को हम अयोध्या, कावेरीपट्टनम और मदुरा जैसे वस्तुतः विद्यमान नगरों के उन कलात्मक बिंबों में साकार बना हुआ पाते हैं, जिनका अंकन रामायण और 'शिलप्पडिगरम' में हुआ है।

* * *

प्राचीन भारत के नगरों का इतिहास वास्तव में उन विविध जनों की सभ्यता का इतिहास है, जो प्राचीन काल में भारत में रहते थे और जिन्होंने ऐसे नगरों का निर्माण किया, जो सभ्यता के केंद्रबिंदु थे। प्राचीन भारत में एक नहीं, दो सभ्यताओं का अस्तित्व था — हड़प्पा सभ्यता और हड़प्पोत्तर सभ्यता। उनके मूल भिन्न-भिन्न हैं, लेकिन दोनों मिलकर एक बन गयीं और किसी न किसी मात्रा में भारतीय संस्कृति के वर्तमान विकास से जुड़ी हुई हैं। इसी में आज के युग के लिए उनका शाश्वत महत्त्व निहित है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हड़प्पा की अत्यंत विकसित नागर सभ्यता उस चटके हुए बहुमूल्य कलश जैसी है, जिसमें से उसका उतना ही बहुमूल्य जल हमेशा-हमेशा के लिए वाष्पित हो चुका है। वैदिककालीन भारत के नगरीय जीवन का अनुमान हम वैदिक साहित्य से ही लगा सकते हैं। उसके बाद मगध-मौर्य साम्राज्यों का जो काल आया, वह भारत में आज तक विद्यमान ग्राम-समुदाय और वर्ण-व्यवस्था जैसी सामाजिक संस्थाएं विरासत में छोड़ गया। उसी काल में बौद्ध धर्म का भी उदय हुआ, जो विश्व के चार प्रमुख धर्मों में से एक है और जिसका प्रभाव पूर्व में ही नहीं, पश्चिम में भी फैला। प्राचीन भारत की धरती ने बौद्ध धर्म के साथ-साथ विश्व में पहले अज्ञात मठ प्ररूप की बस्ती को भी जन्म दिया। नागर सभ्यता की इस देन ने आगे चलकर यूरोप और पूर्वी एशिया में भी जड़ें जमा लीं और आज तक आश्चर्यजनक रूप से जीवनक्षम सिद्ध हुई है।

मगध-मौर्य युग से ही हम तक उस सुदूर ज़माने में बहुप्रयुक्त वे बहुत-से मार्ग भी पहुंचे हैं, जो भारत के पुराने तथा नये नगरों और बस्तियों को बाहर के देशों से जोड़ते थे। नगर निर्माण, वास्तुशिल्प तथा अन्य कलाओं के क्षेत्र में प्राचीन भारत के सैद्धांतिक और दार्शनिक चिंतन ने भी आज तक अपना महत्त्व नहीं खोया है। प्राचीन भारत की निर्माण तथा कला संस्कृति की नानासंख्य कृतियां मानव संस्कृति की शाश्वत मूल्यवान थाती हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

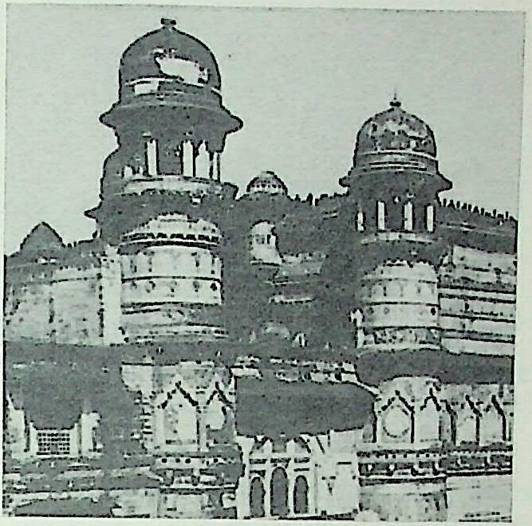

भाग 2

मध्ययुगीन नगर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहला अध्याय

दक्षिण भारत के मंदिर-नगर

मध्ययुग में भारत के उत्तरी और दक्षिणी भागों में नगर की नियति और नगर निर्माण कला का विकास भिन्न-भिन्न ढंग से हुआ। दीर्घकाल तक दक्षिण भारत बहुत-सी ऐतिहासिक घटनाओं से, जिनकी मुख्य स्थली सिंधु और गंगा की घाटियां थीं, असंपृक्त रहा।

छठी शती तक के दक्षिण भारतीय इतिहास का इतना कम अध्ययन हुआ है कि कुछ ही दशकों पहले तक विद्वान प्राचीन भारत के बारे में यों लिखते थे कि जैसे दक्षिण भारत का अस्तित्व ही न रहा हो। छठी शती तक के दक्षिण भारतीय इतिहास के अध्ययन का एक स्रोत तमिल संगम साहित्य है। इसके बाद चौदहवीं शती तक की सारी तैथिकी पुरालेखों से प्राप्त जानकारियों पर आधारित है। छठी शती के बाद के काल के बारे में जानने का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत वास्तुशिल्प के स्मारक भी हैं।

विंध्य पर्वतों और दुर्गम जंगलों द्वारा विभाजित होने से भारत के उत्तरी और दक्षिणी भागों का प्राचीन काल में एक दूसरे से लगभग स्वतंत्र रूप से विकास हुआ था। किंतु शनैः शनैः इस प्राकृतिक बाधा को लांघ लिया गया। आठवीं शती ईसापूर्व में आर्यों का उत्तर से दक्षिण में प्रवसन आरंभ हुआ, जो कई शतियों तक चलता रहा। अधिकांश आप्रवासी दक्खिन में बसे। जो लोग पूर्वी घाट से लगे इलाक़ों में बसे उन्हें पहले तेलुंगु अथवा तैलंग के नाम से पुकारा जाता था और आज तेलुगु कहा जाता है।

प्रायद्वीप के दक्षिणी भाग में मुख्यतया द्रविड़ जातियों के लोग जा बसे थे। यह उपनिवेशन ईसापूर्व दूसरी सहस्राब्दी के मध्य से शुरू हुआ था या पहली सहस्राब्दी ईसापूर्व से, यह अभी ज्ञात नहीं हो सका है। बारहवीं शती तक द्रविड़ चार मुख्य नृजातीय इलाक़ों में स्पष्टतः विभाजित हो गये : तमिलनाडु, केरल, कर्णाटक और आंध्र।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इनमें सबसे विशिष्ट और सबसे बडा इलाक़ा तमिलनाडु है। दक्षिण भारत में न केवल खेतिहर संस्कृति के केंद्र, अपितु सबसे बड़े केंद्रीकृत राज्य भी, जिनका प्रभाव आरंभिक मध्ययुग में सुदूर दक्षिण-पूर्व एशिया तक में अनुभव किया गया ; यहीं पैदा हुए थे। अपनी विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था और अर्थव्यवस्था के कारण तमिलनाडु ने ही मध्ययुग में ऐसे मंदिर-नगरों को जन्म दिया, जिनके समतुल्य विश्व में और कहीं नहीं पाये जाते। इन मंदिर-नगरों में भारत की वे प्राचीन नगर निर्माण परंपराएं प्रतिबिंबित हुईं, जिनका आदि-स्रोत उत्तर भारत में था। उत्तर और दक्षिण के बीच संपर्कों के अनेक साक्ष्य हैं। बौद्ध ग्रंथों में उन बहुप्रयुक्त सार्थमार्गों का उल्लेख मिलता है, जो पाटलिपुत्र तथा अन्य उत्तरी नगरों को दक्षिण के बंदरगाह-नगरों से जोड़ते थे। 'अर्थशास्त्र' उत्तर तथा दक्षिण के बीच सुविकसित व्यापारिक संपर्कों का उल्लेख करता है। अनगिनत पुरालेख और वास्तु-स्मारक दक्षिण में उत्तर भारतीय संस्कृति, लिपि तथा लेखनकला, ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन धर्मों के प्रवेश एवं प्रसार के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

दक्षिण भारत की प्रायद्वीपीय स्थिति ने उसके निवासियों के लिए सागर से मिलनेवाले खाद्यों तथा अन्य वस्तुओं पर और समुद्री व्यापार भी निर्भर रहना अनिवार्य बना दिया था। अधिकांश दक्षिणी नगर व्यापार से, विशेषतः समुद्री व्यापार से संबद्ध थे। इसलिए दक्षिण भारत की राजनीतिक बनावट, उसका आर्थिक विभव और उसका बस्ती-संरूप उत्तर जैसे नहीं हो सकते थे, जहां राज्य की शक्ति कृषि के विकास के लिए अनुकूल सिंधु तथा गंगा की उर्वर उपत्यकाओं में विशाल इलाक़ों के एकीकरण पर अवलंबित थी।

दक्षिण भारत के नगरों – मदुरा, कांची, उरय्यूर, कारुवुर, चुहर, आदि – के सबसे आरंभिक उल्लेख व्यापार से संबंध रखते हैं। मेगस्थनीज़ दक्षिण भारत के ३० आरक्षित नगरों का उल्लेख करता है। दक्षिण में पहली ज्ञात राजधानी प्रतिष्ठानपुरम (पैठन अथवा विजयनगरी) एक बंदरगाह-नगरी थी। अन्य सबसे पहले बंदरगाह-नगर थे : पश्चिमी तट पर तगर (अथवा तेर) और जुन्नार और पूर्वी तट पर धान्यकटकम। रोमन लेखक प्लिनी पांड्य वंश की एक महारानी द्वारा, जिसके पास डेढ़ लाख योद्धाओं और ५०० हाथियों की सेना थी, शासित ३०० नगरों का ज़िक्र करता है।

ईसा की आरंभिक शतियों तक दक्षिण सामाजिक विकास की दृष्टि से उत्तर की अपेक्षा पिछड़ा हुआ था। किंतु बाद में जब सामंतीकरण आरंभ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुआ, तो जैसा कि पहले से अधिक संख्या में मिलनेवाले पुरालेखीय तथा मौद्रिक साक्ष्यों और भारत की यात्रा कर चुके विदेशियों के कथनों से पता चलता है, दक्षिण उत्तर से आगे तक निकलने लग गया। पहली शती ईसापूर्व से ही दक्षिण भारत पूर्वी और पश्चिमी देशों के साथ व्यापार में शामिल हो गया था। इस दृष्टि से सबसे पहले और सबसे अधिक सक्रियता दिखानेवाला प्रदेश केरल था, जो मलाबार तट के साथ-साथ एक संकरी-सी पट्टी की तरह फैला हुआ। यह भारत का एक सबसे सघन बसा हुआ इलाक़ा है और हमेशा स्वतंत्र रूप से विकास करता रहा है। उसकी यह स्वतंत्रता विदेश व्यापार द्वारा समृद्ध बने हुए नगरों पर अवलंबित थी। उनमें से अधिकांश या तो बंदरगाह थे, या फिर समुद्रतालों को पार करने की जगह पर बसी हुई बस्तियां।

ईसा की पहली शतियों में भारत की सहभागिता से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार अभूतपूर्व पैमाने पर पहुंच गया। लगभग सारा ही सभ्य विश्व भारत के माल ख़रीदता था। भारत पूर्व में हिंदचीन प्रायद्वीप और मलय द्वीपसमूहों के ज़रिये चीन से और पश्चिम में पश्चिम एशिया व मिस्र के ज़रिये रोम से व्यापार करता था। साथ ही वह रोम तथा चीन के बीच व्यापार में बिचौलिये की भूमिका भी अदा करता था। रोमन साम्राज्य के पतन के बाद भारत का विदेश व्यापार घट गया, किंतु तीसरी और छठी शतियों के बीच जब दक्षिण भारत ने बैजांतिया के साथ घनिष्ठ व्यापारिक संपर्क क़ायम कर लिये, तो भारत ने पूर्व-पश्चिम व्यापार में पहले जैसा ही स्थान पा लिया।

दक्षिण भारत के इतिहास में छठी शती एक महत्त्वपूर्ण मील का पत्थर है। गुप्त साम्राज्य के पतन और उसके बाद उत्तरी भारत की अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति के ह्रास के साथ ही देश के आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन का केंद्र दक्षिण में स्थानांतरित हो गया। उत्तर की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर को और अधिक विकास करने के लिए दक्षिण में काफ़ी उर्वर और अनुकूल ज़मीन मिली।

छठी शती तक दक्षिण भारत में कई बड़े राज्य अस्तित्व में आ चुके थे, जो दक्षिण पर और विशेषतः गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी के नदी मार्गों पर, जो समुद्र में निकास प्रदान करके भारत को बाह्य विश्व से जोड़ते थे, आधिपत्य के लिए सदा आपस में लड़ते रहते थे। मुख्य प्रतिद्वंद्विता एक ओर से दक्खिन के इलाक़ों में शासन करनेवाले वंशों और दूसरी ओर से तमिल-नाडु के शासक वंशों के बीच थी। कृष्णा नदी उनके बीच सीमा का काम करती थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दक्खिन की धरती पठारी, पहाड़ी और खनिजबहुल थी। यहां नदियां भी बहुत थीं, लेकिन वे सिंचाई के काम न आ सकती थीं। यहां के राज्यों का उत्कर्ष मुख्यतया व्यापार और शिल्पों के सहारे ही हुआ। बड़ी नदियों के किनारे-किनारे स्थित सार्थ-मार्गों से दखिन पश्चिमी तट के और उत्तर भारत के नगरों से जुड़ा हुआ था। कारोमंडल तट को पश्चिमी तट से जोड़नेवाला मार्ग भी एक काफ़ी व्यस्त मार्ग था।

यह संयोग नहीं है कि इस काल में भारत के सबसे संपन्न और प्रभावशाली वणिक निगम अथवा श्रेणियां दक्खिन में स्थित थीं। आठवीं से सत्रहवीं शती तक 'अयवोल' (अथवा ऐहोल) श्रेणी देश का सबसे बड़ा वणिक संगठन मानी जाती थी। इसे यह नाम दक्खिन के इसी नाम के नगर से मिला था, जहां कि उसकी "५०० स्वामी" परिषद का मुख्यालय था। अयवोल श्रेणी के प्रतिनिधि कार्यालय दक्षिण भारत के नेल्लूर, बेलूर, धारवाड़, कोलार (स्वर्ण खानों के लिए प्रसिद्ध) और मदुरा जैसे अनेक नगरों में थे और सर्वत्र उन्हें "अयवोल के ५०० स्वामियों" का निकाय कहा जाता था। गांधारादित्यन नगर को एक शिलालेख में "दक्षिणी अयवोल" तक कहा गया है। अयवोल श्रेणी के सदस्य दक्षिण तथा उत्तरी भारत के अनेक राज्यों और नेपाल, फ़ारस, कंबोज, इत्यादि बाहरी देशों के साथ बड़े पैमाने पर व्यापार करते थे।

व्यापार-मार्गों पर कई नगर पैदा और विकसित हुए, जिनमें से कुछ ने राजधानियों तक का दर्जा हासिल कर लिया। युद्धों में राजधानियां ध्वस्त हो जाती थीं, लेकिन उनके कतिपय वास्तु-स्मारक फिर भी सुरक्षित रह जाते थे।

देश के उत्तरी तथा दक्षिणी भागों के बीच स्थित होने के कारण दक्खिन में छठी शती से द्रविड़ और उत्तर भारतीय मंदिर वास्तु शैलियों का बड़ी तेज़ी से विकास हुआ। अयवोल (ऐहोल), वातापी (बादामी) और वारंगल में पांचवीं-आठवीं शतियों के अनेक मंदिर काफ़ी सुरक्षित अवस्था में पाये गये हैं।

अतिसंपन्न वणिकों और निगमों के संरक्षण में दक्खिन में बौद्ध मठों का निर्माण दसवीं शती तक जारी रहा, जब कि देश के अन्य भागों में वह काफ़ी पहले ही रुक चुका था। बारहवीं-तेरहवीं शतियों में होयसलों की राजधानी द्वारसमुद्र (हेलेबीड) तथा बेलपूर (बेलूर) में और श्रवणबेलगोला में कई जैन मंदिरों का निर्माण हुआ।

विचाराधीन काल में दक्षिण के विभिन्न भागों में अनेक राजवंश सत्तारूढ़ और सत्ताच्युत हुए, किंतु इसका मंदिर-वास्तु पर प्रभाव न पड़ा। वे ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वास्तुशिल्पी और निर्माताओं के संगठन अथवा श्रेणियां आपस में संघर्षरत राज्यों के शासकों के आदेशों पर मंदिरों का शिल्पशास्त्रों के विधानों के अनुसार निर्माण करते रहे। ऐलोरा का कैलाश मंदिर अपनी वास्तु-संरचना में पल्लवों की राजधानी कांचीपुरम के इसी नाम के प्रस्तरनिर्मित मंदिर की पुनरावृत्ति करता है। आठवीं शती में पर्वतीय चट्टान को भीतर से तराशकर निर्मित ऐलोरा का यह मंदिर पल्लवों पर राष्ट्रकूटों की विजय का शाश्वत स्मारक तो है ही, लेकिन उससे भी ज़्यादा यह अपने युग के भारतीय शिल्पियों के अनुपम कौशल का चिर प्रतीक है। अनेक बहुस्तंभीय कक्षों, दीर्घाओं और मूर्तियों से युक्त यह मंदिरसमूह एक विराट मूर्तिशिल्प सरीखा प्रतीत होता है।

नागरिक वास्तुशिल्प और दुर्गनिर्माण के मध्ययुगीन स्मारकों के मामले में भारत का उत्तरी भाग अत्यंत संपन्न है। किंतु दक्षिण भारत में उनका अभाव आश्चर्य में डाल देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे दक्षिण में सोलहवीं शती तक मंदिरों के अतिरिक्त कुछ भी दीर्घस्थायी सामग्रियों से नहीं बनाया जाता था। दक्षिण में काष्ठ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने के कारण प्रासाद, नागरिक भवन, इत्यादि उससे ही बनाये जाते थे और इसलिए सुरक्षित नहीं रह सके हैं। नागरिक निर्माण में प्रस्तर का उपयोग बारहवीं शती में जाकर ही शुरू हो पाया।

सामंती युग की एक विशेषता है सामंती राज्यों, प्रांतों और बस्तियों की एक दूसरे से अपेक्षाकृत असंपृक्तता, जिसका परिणाम क्षेत्रीय अंतरों के उभार के रूप में सामने आता है। दक्षिण भारत में, जहां गोत्रीय तथा क़बीलाई संबंधों के अवशेष काफ़ी दीर्घजीवी सिद्ध हुए थे, और विशेषतः तमिलनाडु में, सामंती युग का यह विशिष्ट लक्षण सर्वाधिक स्पष्टता के साथ उभरा।

बड़े केंद्रीकृत राज्यों के वर्चस्वकाल में भी दक्षिण भारत सैकड़ों छोटे-बड़े, आपस में संघर्षरत रजवाड़ों का जमघट बना रहा।

सभी दक्षिण भारतीय राज्यों में सभी कालों में स्थानीय शासन के दो रूप साथ-साथ प्रचलित थे : एक ओर, स्वशासी समुदाय (पंचायत अथवा श्रेणी) – नगर में भी और ग्राम में भी – और, दूसरी ओर, सामंत अथवा जागीरदार, जिसे अपने अधिकार में स्थित प्रदेश में काफ़ी अधिक आंतरिक स्वायत्तता प्राप्त थी।

तमिलनाडु में राज्य के जिस आर्थिक आधार ने मंदिर-नगरों को जन्म दिया, वह अत्यंत विकसित सिंचित कृषि पर टिका हुआ था। इसी कारण केंद्रीकृत शासन की आवश्यकता दक्षिण के अन्य भागों की अपेक्षा तमिलनाडु में पहले अनुभव की गयी। राजा के हाथ में, जो कि सबसे बड़ा सामंत-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भूस्वामी था और पुरोहित वर्ग से पूर्ण समर्थन पाता था, अधिकांश संपदा और सत्ता संकेंद्रित थीं। राजराज प्रथम अपने को "चक्रवर्तीगलम" (चक्रवर्ती सम्राट) तक कहता था।

तमिलनाडु में बड़े-बड़े ब्राह्मण सामंत-भूस्वामी भी थे। उनकी शक्ति तथा प्रभाव की वृद्धि में ब्राह्मणों को और राजा के नज़दीकी लोगों को भूमि दान करने की बहुप्रचलित प्रथा बड़ी सहायक हुई। दान की गयी भूमि पर काश्त करनेवाले कृषक भूस्वामी के भूदास जैसे बन जाते थे। इस प्रकार ब्राह्मणों के बीच से बड़े-बड़े भूस्वामी पैदा हुए, जिन्हें राज्य की ओर से अपरिमित समर्थन प्राप्त था और जो बड़ा राजनीतिक प्रभाव रखते थे। चौदहवीं शती से भूसंपत्ति का पुनरावंटन प्रायः होने लगा और इस तरह छोटे ब्राह्मण सामंत-भूस्वामियों का वर्ग पैदा हुआ। कभी-कभी एक ही गांव पर सौ से अधिक स्वामी दावा कर बैठते थे, जो भूमि को स्वयं काश्त नहीं करते थे, लेकिन उसकी आय के भरोसे रहते थे। राज्य की अर्थव्यवस्था में सामंतों और ब्राह्मण पुरोहितों की भूमिका बढ़ने से समाज का संस्तरों तथा वर्णों में विभाजन और जटिल बना। सामाजिक सोपानक्रम और वर्णव्यवस्था जितने कड़े तमिलनाडु में हैं, उतने और कहीं नहीं पाये जाते। इसी तरह जीवन के सभी क्षेत्रों पर धर्म की जितनी प्रबल जकड़ तमिलनाडु में है, उतनी और कहीं नहीं है।

तमिलनाडु में सिंचित कृषि ने, जो कि वहां की अर्थव्यवस्था का आधार थी, समस्त प्रदेश के पैमाने पर एक सुनियंत्रित तथा केंद्रीकृत बस्ती-संरूप की आवश्यकता को जन्म दिया। इसमें मुख्य स्थान व्यापार तथा शिल्पों के केंद्र नगर का नहीं, अपितु ग्राम का था।

मिश्रित आबादीवाले और लगान सीधे राजकर्मचारियों को देनेवाले सामान्य ग्रामों के अलावा आठवीं शती में, पल्लव वंश के शासनकाल में, एक नये प्रकार के ग्राम प्रकट हुए। "ब्रह्मदेय" नामक इन ग्रामों में केवल ब्राह्मण रहते थे और उन्हें कोई कर नहीं देना होता था।

आम ग्रामों में उनके आकार के अनुसार घरों की संख्या ५ से २०० तक अथवा इससे भी अधिक हो सकती थी उन में उनकी संरचना के अनुसार – समूह में निर्मित घर अथवा अलग-अलग स्थित घर – अंतर किया जाता था। ग्राम सामान्यतया विभिन्न वर्णों और व्यवसायों के लोगों की अलग-अलग बस्तियों का समूह होता था। हर बस्ती का अपना सार्वजनिक केंद्र, मंदिर और श्मशानस्थल होता था। ब्राह्मण, समानाधिकारप्राप्त समुदाय-सदस्य, भूस्वामी, व्यापारी और संपन्न बुनकर "शुद्ध वर्णों" में गिने जाते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थे और उनके मुहल्ले अथवा बस्तियां ग्राम के मध्य में होती थीं। ग्राम का नाभिक विशेषाधिकारप्राप्त वर्णों के लोगों का मुहल्ला था, जो "नट्टम" कहलाता था। यहां एक-दो मंदिर, बाज़ार चौक और पंचायत का भवन भी स्थित होते थे।

नट्टम के गिर्द बुर्जियों से युक्त पक्की (प्रस्तरनिर्मित) या कच्ची सुरक्षा दीवार या कंटीली झाड़ियों की बाड़ खड़ी की जाती थी। रात्रि में पत्थर के दो खंभों पर अटकाये हुए नट्टम के कपाट बंद कर दिये जाते थे।

ग्राम के बाहरी छोरों पर ग्राम को विभिन्न सेवाएं प्रदान करनेवाले "अयगरों"* – बढ़ई, लुहार, चौकीदार, नाई, शराब बनानेवाला, कुम्हार, आदि – और पट्टेदार काश्तकारों के घर होते थे। अस्पृश्यों की बस्ती ग्राम के बाहर अलग स्थान पर होती थी। "चेरी" नामक इन अस्पृश्य बस्तियों और ग्राम के बीच सौ पग का अंतराल आवश्यक था। "चेरी" में आम तौर पर झोंपड़ियों की दो क़तारें होती थीं, जिनके बीच से सड़क गुज़रती थी, जो केंद्र की ओर, जहां मंदिर स्थित होता था, चौड़ी होती जाती थी।

विनिमयहीन अर्थव्यवस्था, कड़ी जातिप्रथा और सामुदायिक सेवक रखने की विश्व में बेमिसाल प्रणालीवाला तमिलनाडु का ग्राम नगरों की संवृद्धि में, शिल्पों तथा व्यापार के केंद्र के नाते उनकी स्वतंत्रता में और समाज पर उनके आर्थिक तथा राजनीतिक प्रभाव के विस्तार में बाधक बनता था। देश में आनेवाली कैसी भी राजनीतिक उथल-पुथलें अति प्राचीनकाल से चली आ रही ग्राम की इस आंतरिक व्यवस्था को, संरचना को बदल न सकीं।

मंदिर-नगरों का इतिहास कृष्णा नदी द्वारा दक्खिन से पृथक्कृत प्रायद्वीप के दक्षिणी भाग के शासक वंशों से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। इन राज्यों में तमिल प्रदेशों ने, जहां ब्राह्मण पुरोहित वर्ग एक प्रमुख आर्थिक शक्ति थे, बहुत बड़ी भूमिका अदा की।

इतिहासकार दक्षिण भारत में सामंतवाद के उदय को चौथी शती में आंध्र-इक्ष्वाकु साम्राज्य के खंडहरों पर अपने राज्य की स्थापना करनेवाले पल्लव वंश के उत्कर्ष के साथ जोड़ते हैं। पल्लव साम्राज्य अपनी पराकाष्ठा पर सातवीं शती के अंत में पहुंचा, जिसमें उसके वैदेशिक व्यापारिक संबंध काफ़ी हद तक सहायक सिद्ध हुए। इन संबंधों की बदौलत दक्षिण भारत में

---

* "अयगरों" को भृत्य रखने, त्यौहारों पर बाजे बजाने, आदि का अधिकार न था। उनपर तरह-तरह के सामाजिक प्रतिबंध लगे हुए थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नगरों, विशेषत: बंदरगाह-नगरों का बड़ा विकास हुआ। ७०० ईस्वी में एक नये बंदरगाह-नगर की नींव डाली गयी, जिसे उसके संस्थापक मामल्ल (संस्कृत-महामल्ल) के सम्मान में मामल्लपुरम नाम दिया गया।

सातवीं शती से तमिलनाडु भारतीय संस्कृति, परंपराओं और शास्त्रीय हिंदु धर्म का, जिसने सामंतवाद के आगमन के साथ भारतीय समाज के विश्व-दृष्टिकोण में प्रमुख स्थान पा लिया था, गढ़ बन जाता है। पल्लवों के शासनकाल में, जो कि नौवीं शती तक जारी रहा, दक्षिण भारत की सभी ज्ञात और आज तक विद्यमान राजनीतिक तथा सामाजिक संस्थाओं की नींव रखी गयी। पल्लवों के राज्यकाल में कांचीपुरम, मामल्लपुरम, तिरुचिरापल्ली और अन्य कारोमंडलतटीय नगरों में निर्मित मंदिरों ने दक्षिण भारत में मंदिर-वास्तु के क्षेत्र में एक नये अध्याय का सूत्रपात किया। अब से अठारहवीं शती तक पुलीकात झील और कुमारी अंतरीप के बीच के छोटे-से भूभाग में द्रविड़ शैली * के नाम से ज्ञात मंदिर-वास्तु के अविच्छिन्न उद्विकास का दुर्लभ दृश्य दिखायी देता है। इस विकास के आधार पर नगरों जैसे विशाल मंदिर भवन-समूहों का निर्माण किया गया।

पर्याप्त तथ्यों और सामग्री के अभाव में तेरहवीं-चौदहवीं शतियों तक की दक्षिण भारतीय नगर निर्माण कला और दक्षिणी नगरों के वास्तु-स्वरूप का पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर पाना बहुत कठिन है। इस संबंध में मामल्लपुरम नगर के अनुपम वास्तु-स्मारक ** दिलचस्प हैं। समुद्र के बिल्कुल किनारे पर, जहां चट्टानों और रेतीले टीलों के बीच पत्थर से तराशी हुई कुछ एकाकी निर्मितियां और ऊंचा तटमंदिर खड़ा है, आज के महाबलीपुरम गांव को देखकर लगता भी नहीं कि कभी वहां एक जनबहुल और फूलता-फलता बंदरगाह-नगर मामल्लपुरम रहा होगा और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का केंद्र होने के कारण उसकी सड़कों पर रात-दिन बेहद चहल-पहल रहती होगी। पल्लवों के काल में बंदरगाह काफ़ी सुविकसित थे, उनमें सुविधाजनक पोतघाट, लंबी-चौड़ी गोदियां, गोदाम, बाज़ार, चुंगीघर और सरायें होती थीं।

ये सब आज लुप्त हो चुके हैं। खड़े चट्टानी तट के शिखर पर बने दुर्ग के नाम पर केवल एक प्रस्तर-निर्मित सिंहासन (सिंह पल्लवों का राज्यचिह्न

* Longhurst A. H., *Pallava Architecture*, Memories of the Archaeological Survey of India, Calcutta, 1924, 1927, 1930, nos 17, 33, 40; Rea Alexander, *Pallava Architecture*, Archaeological Survey of India, Madras, 1909.

** Sivaramamurti C., *Mahabalipuram*, Department of Archaeology, Delhi, 1952.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था), कुछ घिसी हुई पत्थर की सीढ़ियां और राजप्रासाद की ईंटों तथा पत्थरों के ढेर बाक़ी रह गये हैं। १९०५ में मामल्लपुरम में की गयी खुदाइयों में सड़कों, मुहल्लों, सार्वजनिक व निजी भवनों के कोई अवशेष नहीं मिले हैं। चट्टानी तट के किनारे पर खड़े गोपुरम का जो अधूरा निर्मित विशाल तोरण है और अन्य जगहों पर जहां-तहां जो अधूरी इमारतें पायी गयी हैं, वे सब काफ़ी बाद में, विजयनगर साम्राज्य के काल (चौदहवीं-पंद्रहवीं शतियों) में बनायी गयी थीं।

पल्लव काल के जो थोड़े-बहुत वास्तु-स्मारक अवशिष्ट रहे हैं, उनसे निम्न चित्र की कल्पना की जा सकती है। नगर और उसके भवन-समूह दसियों नहरों और झीलोंवाली पथरीली जगह के असामान्य रूप से सुंदर भूदृश्य से पूरी तरह मेल खाते थे। नगर समुद्र के बिलकुल किनारे पर बसा हुआ था। एक विशाल खड़ी चट्टान नगर का मुख्य और सर्वोच्च भूचिह्न थी, जिसके शिखर पर सागर की ओर अभिमुख राजप्रासाद और दुर्ग बना हुआ था। राजप्रासाद की छतों से पूर्व में सागर का असीम विस्तार और उसे चीरते हुए बंदरगाह की ओर बढ़ते व्यापारी पोतों का विहंगम दृश्य दिखायी देता था। पल्लवों ने सुमात्रा और मलाया के राज्यों के साथ नियमित व्यापारिक संपर्क बनाये रखने के लिए एक विशाल जहाज़ी बेड़े का निर्माण किया था। ७३६ ईस्वी में उन्होंने सागर-मार्ग द्वारा एक राजनयिक दूतमंडल जापान भी भेजा था।

राजप्रासाद की ही छतों से पश्चिम में दूर क्षितिज तक फैली सिंचाई नहरों और चौड़े पक्के मार्गों के घने जाल से आच्छादित उर्वर घाटियां भी दिखायी देती थीं। पल्लव नरेश नहरों, बांधों और जलाशयों के निर्माण के लिए प्रसिद्ध थे। दुर्ग के उत्तर में एक विशाल झील और नहर स्थित थी, जो मामल्लपुरम और राजधानी कांचीपुरम के बीच जलमार्ग का काम करती थी। इस मार्ग द्वारा मालों से लदे विदेशी पोत सीधे कांचीपुरम तक पहुंच सकते थे। अन्य नहरों में मछुआरों की नावें और संपन्न नागरिकों की प्रमोद-नौकाएं चलती थीं। राजधानी साम्राज्य के अनेक नगरों से सड़कों और नहरों द्वारा जुड़ी हुई थी। पर्वों तथा उत्सवों के अवसर पर लोग बड़ी संख्या में नागार्जुनकोंडा की यात्रा पर निकलते थे, जो ईसा की आरंभिक सदियों में इक्ष्वाकु राजाओं की राजधानी था और जहां एक विशाल खुले प्रेक्षागार में, जिसमें कई हज़ार दर्शक बैठ सकते थे, क्रीड़ा प्रतियोगिताएं, नाट्य प्रदर्शन, तमाशे, इत्यादि का आयोजन किया जाता था।

दुर्ग की सीध में और तटरेखा से समकोण पर मामल्लपुरम के निर्माताओं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ने संभवतः संयोगवशात् नहीं, अपितु जानबूझकर नगर की सबसे महत्त्वपूर्ण वास्तुकृति – तट-मंदिर – का निर्माण किया था। सागर की ओर से यह मंदिर ही नगर चौक की सीमा था। आगे चलकर यहां दो मंदिर और बनाये गये। संपूर्ण रचना-विन्यास में उसी तट पर स्थित एक चट्टान को भी मूर्तिशिल्पी की छेनी द्वारा तराशकर सम्मिलित कर लिया गया था। तट-मंदिर का गगनचुंबी शिखर सागर यात्रियों के लिए दिग्दर्शक का काम करता था। बंगाल की खाड़ी की ऊंची-ऊंची लहरें आज इस मंदिर की दीवारों से यों टकराती हैं कि जैसे उसे निगल ही लेंगी। किंतु आठवीं शती में समुद्र मंदिर से संभवतः काफी दूर था। इसी तरह आज जो स्तंभ ("ध्वजस्तंभ") समुद्र के बीचोंबीच खड़े हैं, वे उन दिनों शायद मंदिर के प्रांगण में स्थापित किये गये थे। मंदिर के भवन-समूह का सागर के बिल्कुल किनारे पर निर्माण जितना असामान्य है, उतना ही असामान्य उसका दो प्रांगणोंवाला रचना-विन्यास भी है, जिनमें से एक सागर की दिशा में है और दूसरा नगर चौक की दिशा में, जो पश्चिम में दुर्ग के पादमूल का काम करनेवाली चट्टान से घिरा हुआ है।

शोभायात्राओं का मार्ग, जिसके किनारे पर विशाल स्नानकुंड भी बना हुआ था, नगर की दो मुख्य स्थलियों – दुर्ग और तट-मंदिर को जोड़ता था और संभवतः नगर की मुख्य संरचनात्मक धुरी था। दुर्ग के पादमूल में चट्टान पर तराशी हुई 'गंगावतरण' की विशाल उद्भृत रचना का केंद्र भी देखने में इसी धुरी पर टिका हुआ था।

मामल्लपुरम में अतीत के जो थोडे से, पहली दृष्टि में इने-गिने ही, स्मारक बचे हैं, उनके आधार पर कहा जा सकता है कि नगर के सार्वजनिक केंद्र का काफ़ी दिलचस्प और सुंदर रचना-विन्यास रहा होगा। ऐसा ही रचना-विन्यास तिरुचिरापल्ली में भी मिलता है, जहां पल्लव काल के अनेक वास्तु-स्मारक पाये गये हैं। चट्टान की चोटी पर राजप्रासाद और दुर्ग स्थित हैं और नीचे वह एकाश्मीय खंडों को तराशकर निर्मित और एक विलक्षण चित्र-वीथिका जैसे मंदिरों की शृंखला द्वारा घिरी हुई है। मद्रास से महाबलीपुरम जाते हुए रास्ते में इकमंज़िले घरों में जैसे छज्जे मिलते हैं, उनके आकार की देवलियों की भित्तियों पर पौराणिक चित्र उकेरे गये थे।

इस चित्र-वीथिका का पराकाष्ठा बिंदु मुक्त आकाश तले स्थित विशाल चित्रफलक जैसे, बृहदाकार शिलाखंडों पर उत्कीर्ण गंगावतरण की प्रसिद्ध शैल उद्भृति में दिखायी देता है। स्वर्ग से धरती पर अवतरित होती गंगा के गिर्द एक सम्मोहक सादगी, रचना-विन्यासात्मक उन्मुक्तता और गंभीर यथार्थपरकता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के साथ मनुष्यों और जीव-जंतुओं को चित्रित किया गया है। निर्माताओं ने अद्‌भुत कल्पनाशक्ति का परिचय देते हुए चट्टान की प्राकृतिक दरार में जल की सचमुच की धारा बहने का प्रबंध किया था। चट्टान के ऊपर विशेषत: निर्मित टंकी थी, जिससे पानी निकलकर दरार में से होता हुआ नीचे एक कुंड में गिरता था और चारों ओर ताज़गी तथा शीतलता बनाये रखता था। दक्षिण भारतीय मूर्तिकला की इस उत्कृष्ट कृति में उत्तर भारत में जन्मे मिथक और बिंब पुनरुज्जीवित हुए हैं, जो देश के दोनों भागों के बीच विद्यमान अदृश्य संबंध-सूत्रों की अटूटता को उजागर करता है।

मामल्लपुरम का स्मारक-समूह मूर्ति तथा नगर निर्माण कला के माध्यम से धार्मिक विचारों के प्रचार-प्रसार का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह कला अपने में हिंदुओं के धार्मिक तथा दार्शनिक विचारों से ओतप्रोत पुराण कथाओं के नये कलात्मक बिंब लिये हुई थी। सभी रचनाएं व्यापक जन को ध्यान में रखकर बनायी गयी थीं। गंगावतरण की शैल उद्‌भृति नगर चौक से, जो कि लोगों के एकत्र होने, आमोद-प्रमोद मनाने की जगह थी, बिल्कुल स्पष्ट दिखायी देती थी।

प्राचीन भारतीय साहित्य में नागर जीवन की सुरुचिपूर्णता के जो वर्णन मिलते हैं, उनके आधार पर हम कल्पना कर सकते हैं कि मामल्लपुरम में भी अनेकानेक नयनाभिराम उद्यान और उपवन रहे होंगे। इसी तरह यह अनुमान भी लगाया जा सकता है कि नगर में म्यूनिसिपल जलप्रदाय व्यवस्था रही होगी, जिसके लिए बंगाल की खाड़ी में गिरनेवाली पलार नदी से निकाली हुई नहर से पानी आता होगा। तट-मंदिर के प्रस्तर प्राचीर में कई छोटे हौज़ पाये गये हैं, जो स्नानकुंड की भांति पानी से भरे रहते थे। पानी के प्रवाह का नियंत्रण करने के लिए जगह-जगह पर जलद्वार बने हुए थे और अनावश्यक पानी नीचे समुद्र में छोड़ दिया जाता था। नहरों, नालियों, टंकियों, कुंडों और निस्सीम सागर की यह जल प्रणाली नगर का एक अभिन्न अंग थी।

नगर के मुख्य भूचिह्न – दुर्गमंडित खड़ी चट्टान – से एक मार्ग, जो कि मुख्य धुरी से समकोण पर स्थित था, विश्व नगर निर्माण कला की एक अन्य अनुपम कृति – एकाश्मीय निर्मितियों के समूह – की ओर ले जाता था। ये निर्मितियां वास्तव में तक्षक की छेनी द्वारा वास्तुशिल्प की रचनाओं में परिवर्तित विशाल शिलाखंड हैं। द्रौपदी रथ, अर्जुन रथ, धर्मराज रथ, भीम रथ और नकुल-सहदेव रथ के नाम से ज्ञात यह पंचमंदिर-समूह नगर केंद्र से केवल ७०० मीटर की दूरी पर स्थित है। उसके विपरीत दिशा में, लगभग उतनी ही दूरी पर वैसा ही एक और वास्तु-समूह बनाने की अभिकल्पना की गयी थी,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किंतु वह पूर्ण न हो पाया। अकेला गणेश रथ ही पूरा हो सका। सबसे बड़े भीम रथ के अतिरिक्त शेष सभी देवमंदिर का काम करते थे। चैत्याकार भीम रथ यात्रियों के निवासार्थ बनाया गया था। अपने आकार में मामल्लपुरम के सभी रथ उन दिनों ईंट अथवा काष्ठ से निर्मित उस प्रकार की निर्मितियों से किसी तरह छोटे न थे।

इस प्रकार की इमारतों की आकृतियां प्राचीन बौद्ध गुफा तथा भूमिस्थ निर्मितियों पर उकेरे हुए चित्रों में भी मिलती हैं। यहां हम पहली बार उन्हें वास्तविक रूप में पूर्ण गोलाई में पाते हैं। द्रौपदी रथ फूस की चतुपार्श्वीय छतवाले सामान्य किसान घर की नक़ल है। उसके समीप ही बहुतलीय शिखर से युक्त धर्मराज रथ खड़ा है। मेहराबी छत और ऊपरी गवाक्ष से युक्त चैत्याकार इमारत भीम रथ है। पत्थर को तराशकर निर्मित पांचों रथों का समुच्चय किसी परीकथाओं जैसे सूक्ष्माकार नगर की याद दिलाता है। उसमें इमारतों के बीच मानो पत्थरों से निर्मित पशु – मंथर गति से चलता हुआ हाथी, क्रोध के मारे खड़े अयालोंवाला सिंह – विचर रहे हैं और उनसे कुछ हटकर नंदी वृषभ शांत बैठा हुआ है। ये मूर्तियां बड़ी सजीव और स्वाभाविक प्रतीत होती हैं। पुराण कथाओं के अनुसार ये जीव देवताओं की सवारी हैं – दुर्गा सिंह पर बैठती है, शिव नंदी पर और गजानन गणेश नन्हे से चूहे की सवारी से ही काम चला लेते हैं। स्पष्टतः रथ की कल्पना देवालय के रूप में की गयी थी। इस प्रकार मामल्लपुरम में उपलब्ध हर शिला मूर्तिकार की छेनी द्वारा कला की अद्‌भुत कृति में परिवर्तित होकर नगर की सामान्य निर्माण अभिकल्पना का अंग बन गयी। राजप्रासाद, मंदिर, रथ और मंडप, ये सब वास्तु-रचनाएं नगर का मुख्य सामाजिक और धार्मिक नाभिक थीं। भारतीय वास्तुशिल्प के इतिहास में मामल्लपुरम के स्मारक प्राचीन और मध्य युगों के बीच, धार्मिक और लौकिक निर्मितियों के बीच एक महत्त्वपूर्ण संयोजनकारी कड़ी का काम करते हैं। एकाश्मीय रथ पहाड़ों को भीतर से कुरेद-तराशकर निर्मित भवनों से प्रस्तरखंड चिनकर बनाये गये भवनों की ओर संक्रमण की अवस्था के परिचायक हैं। रथों का महत्त्व इसी में नहीं है कि वे अदीर्घजीवी सामग्रियों से निर्मित और इस कारण सदा-सदा के लिए लुप्त नागरिक भवनों के रूपों और प्रकारों की प्रतिकृति हैं। "चैत्य" और "विहार" नामक आदिप्ररूपों पर आधारित रथ अपनी बारी में दक्षिण भारतीय अथवा द्रविड़ शैली के मंदिर तथा द्वार-शिखर (गोपुर) के दो मुख्य वास्तु-रूपों के आदिप्ररूप बने। "चैत्य" और "विहार" जैसी इन्हीं निर्मितियों के दो प्ररूपों के बहुत-से, बार-बार आवृत्तिशील लघु नमूनों से बने हुए पिरामिडनुमा बहुतलीय शिखरवाली धर्मराज रथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की आकृति कांचीपुरम और एलोरा के कैलाश मंदिरों में दोहरायी गयी है। इसी प्रकार की ६० मीटर ऊंची पिरामिडनुमा बहुतलीय अधिरचना तंजौर के बृहदीश्वर मंदिर (दसवीं-ग्यारहवीं शती) में भी पायी जाती है। गणेश रथ की, जो अपने भूविन्यास में आयताकार है, बहुतलीय शीर्ष और ओंधी नौका जैसी छतवाली आकृति सभी दक्षिण भारतीय मंदिर-समूहों के गोपुरों की आकृतियों में प्रतिबिंबित होती है।

मामल्लपुरम का तट-मंदिर दक्षिण भारत में तराशे हुए पत्थरों से निर्मित पहली इमारत था। उसके बाद वैसे असंख्य अन्य मंदिरों का निर्माण हुआ। पल्लवों की राजधानी कांचीपुरम के कैलाशनाथ मंदिर को द्रविड़ संस्कृति का आधारस्तंभ कहा जाता है। इस मंदिर-समूह की संरचना देवगृह की मध्ययुगीन धार्मिक संकल्पना के पूर्णत: अनुरूप थी और प्रचलित कर्मकांड की विशेषताओं को ध्यान में रखती थी। मंदिर के बंद प्रांगण के भीतर अनेक लघु मंदिर, उपासकों के विश्राम के लिए एक बहुस्तंभीय मंडप, वेदिकाएं और मूर्तियां थीं। मंदिर की मुख्य इमारत के ऊपर पिरामिडनुमा बहुतलीय शिखर बना हुआ था।

पल्लवों के काल में क्लासिकीय द्रविड़ शैली के जो अंकुर प्रस्फुटित हुए, उनका पूर्ण मुकुलन हम दसवीं-ग्यारहवीं शतियों के संधिकाल में महाशक्तिशाली चोल सम्राटों की तमिलनाडु के मध्य में स्थित राजधानियों – तंजौर और गंगैकोंडचोलपुरम – में निर्मित अति भव्य मंदिर-समूहों में पाते हैं (तंजौर का राजराजेश्वर मंदिर और गंगैकोंडचोलपुरम का बृहदीश्वर मंदिर)। दसवीं-बारहवीं शतियों में चोल दक्षिण की सबसे प्रबल सैनिक और समुद्री शक्ति थे और अपने विजय अभियानों के दौरान वे उत्तर में गंगा नदी तक और पूर्व में सागरपार सुमात्रा द्वीप तक पहुंच गये थे।

चोलों की उत्तर भारत विजय के संबंध में, जिसके उपलक्ष्य में नयी राजधानी गंगैकोंडचोलपुरम ("गंगाविजयी चोल का नगर") की स्थापना हुई थी, एक किंवदंती प्रचलित है। कहा जाता है कि राजेंद्र चोल ने सभी विजित राज्यों के शासकों को गंगा से एक-एक कलश जल स्वयं ढोते हुए लाकर नये नगर में निर्मित जलाशय में उंडेलने का आदेश दिया था। इस तरह जो जलधारा बनी, उसे "राजेंद्र का जलीय विजयस्तंभ" कहा गया।

चोल मंदिरों के रचना-विन्यास में वे प्रवृत्तियां प्रकट हुईं जो उस काल में प्रस्फुटित हो रही थीं और जिनका पराकाष्ठा-बिंदु विजयनगर साम्राज्य के काल (चौदहवीं-सोलहवीं शती) में निर्मित बहु-उद्देश्यीय मंदिर-नगरों में दिखायी देता है। राजराजेश्वर मंदिर-समूह का मुख्य अंग वर्गाकार मंदिर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था, जिसके ऊपर पिरामिडनुमा शिखर बना हुआ था। ६० मीटर ऊंचा यह मंदिर आज भी सारे नगर के ऊपर, जिससे उसे एक ऊंची दीवार अलग करती है, छाया हुआ प्रतीत होता है।

मंदिर भवन-समूह का इलाक़ा तीन भीतरी प्रांगणों में विभाजित है (कांची के कैलाशनाथ मंदिर में दो ही प्रांगण थे)। इन प्रांगणों में प्रवेश सीमित और केवल गोपुर के ज़रिये संभव है। निम्न वर्णों के लोग सबसे बाहर के प्रांगण तक ही पहुंच सकते हैं, जबकि अस्पृश्यों के लिए बाह्य दीवार के समीप भी आना वर्जित है। बाहरी प्रांगणों में खुले मंडप, पाठशालाएं, कर्मशालाएं, भंडारगृह, आदि बने हुए हैं।

केंद्रीय मंदिर के समीप विशिष्ट ब्राह्मण ही आ सकते हैं और उसमें स्थित देवप्रतिमा को स्पर्श करने का अधिकार केवल पुजारियों को है। शिव मंदिरों के गर्भगृह के द्वार पर विशेषत: निर्मित मंडप में नंदी की विशाल मूर्ति स्थापित होती है।

इन दक्षिण भारतीय मंदिरों का सारा रचना-विन्यास अनायास ही प्राचीन मिस्र की धार्मिक इमारतों की याद दिला देता है। हज़ारों वर्ष पहले के मिस्र की भांति यहां भी मनुष्य अपने लौकिक प्रभु – राजा – के नियंत्रण में रहता है; हज़ारों वर्ष पहले के मिस्र की भांति यहां भी – हिंदू पूजा-पद्धति की समस्त जटिलता तथा रहस्यात्मकता के बावजूद – प्रकृति उपासना का बोलबाला बना रहता है। सुप्रसिद्ध फ़्रांसीसी साहित्यकार विक्टर ह्यूगो को दक्षिण भारतीय मंदिरों और प्राचीन मिस्री मंदिरों के बीच इतना गहन साम्य दिखा था कि वह दोनों स्मारक-समूहों को – उनके बीच हज़ारों वर्षों के अंतराल के बावजूद – समकालीन तक मान बैठने को तैयार थे। दक्षिण भारत की मंदिर निर्माण कला के विकास का वास्तविक चित्र फ़्रांसीसी विद्वान जे० डूब्रियेल ने अपनी पुस्तक 'द्रविड़ वास्तुकला' में प्रस्तुत किया है, जो वर्तमान शती के आरंभ में पांडिचेरी (भूतपूर्व फ़्रांसीसी उपनिवेश) में प्रकाशित हुई थी।

ग्यारहवीं शती तक तमिलनाडु में ऐसा कोई नगर अथवा ग्राम न रहा, जिसमें मुख्य सार्वजनिक स्थल का प्रकार्य बस्ती के मुख्य मंदिर में संकेंद्रित न हो गया हो। उसके इलाक़े में व्यापारिक लेन-देन होते थे, नागरिकों की सभाएं की जाती थीं, गोदाम, कर्मशालाएं, दूकानें, आदि बनायी जाती थीं। सामरिक ख़तरे के दिनों में सारी आबादी यहां शरण पाती थी।

ज्यों-ज्यों मंदिर का प्रकार्य बढ़ता, जटिल बनता गया और नागरिकों के जीवन के सभी पहलुओं से संबद्ध होता गया, त्यों-त्यों भूमि, ग्राम, धन, बहुमूल्य वस्तुओं, आदि के रूप में मंदिर की संपदा भी बढ़ती गयी। मंदिरों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को पूरे के पूरे ग्राम दान किये जाते थे, जिनका काम उन्हें अन्न, घृत, पुष्प, इत्यादि की पूर्ति करना होता था। दान निजी व्यक्तियों और वणिक तथा शिल्पी निगमों से भी प्राप्त होते थे। सामंती शासक मंदिरों में उदारतापूर्वक चढ़ावे चढ़ाते थे। समय के साथ मंदिरों की भूसंपत्तियां सामंती जागीरों जैसी बनती गयीं और कुछ मंदिरों के पास तो इतनी अधिक भूमि हो गयी कि जितनी बड़े-बड़े सामंतों तक के पास न थी।

ब्राह्मण कर्मकांडियों की शक्ति भी बढ़ती गयी। पूजा, अनुष्ठानों, आदि के लिए बड़ी संख्या में पंडे-पुजारियों और पुरोहितों की आवश्यकता थी।

मंदिर का भृत्य दल बढ़कर एक बहुत बड़ा जटिल संगठन जैसा बन गया और उसमें बड़ी तादाद में तरह-तरह के कर्मचारी, कारीगर, सेवक और दास शामिल थे। तंजौर के राजराजेश्वर मंदिर में एक हज़ार से अधिक भृत्य थे। उनमें राज-मिस्तरियों, बढ़इयों, चिकित्सकों, कुम्हारों, दर्ज़ियों, धोबियों और नाइयों का उल्लेख भी मिलता है। मंदिर लिपिक, कोषाध्यक्ष तथा निरीक्षक भी रखते थे। इनके अलावा मंदिर के आडंबरपूर्ण कर्मकांडों में भाग लेने के लिए विशाल संख्या में वेदपाठी, गायक, वादक, नर्तकियां और अभिनेता भी होते थे।

मंदिर के अंतर्गत चलनेवाली पाठशालाओं में धर्मशिक्षा के साथ-साथ विविध ज्ञान-विज्ञानों की शिक्षा दी जाती थी। मंदिर विद्वानों, कवियों और चित्रकारों के वासस्थान थे।

मंदिर अपने में एक पूरे नगर जैसा बन चुका था। स्पष्टतः उसके लिए भी अब एक आधिकारिक प्रशासन तंत्र की आवश्यकता थी। मुख्य प्रबंधकर्ता निकाय पंडितों की परिषद थी, जिसके सदस्यों की संख्या कई सौ होती थी। उसके ऊपर पांच-आठ पंडितों की, जो "स्थानोत्तर" कहलाते थे, परिषद होती थी। सर्वोच्च प्रशासनिक सत्ता मुख्य पंडित – "स्थानाचार्य" – के हाथों में संकेंद्रित थी।

मंदिर अपनी भूमि की स्वयं काश्त नहीं करते थे, अपितु उसे बटाई पर दे देते थे। इसके अतिरिक्त वे दान में प्राप्त ग्रामों से कर भी वसूलते थे। लोगों की बुनियादी ज़रूरत की चीज़ों और पूजा-सामग्री के व्यापार से मंदिर को बहुत आमदनी होती थी। अत्यंत धनवान होने की वजह से मंदिरों में साहूकारी का लालच भी पैदा हुआ और किसानों को ऋण देकर वे उन्हें अपने शिकंजे में फांस लेते थे। छोटे मंदिर बड़े मंदिरों के मातहत होते थे और परवर्ती अपने ऊपर राजा की सत्ता को स्वीकार करते थे, जो उनकी लूटपाट और बाहरी आक्रमणों से रक्षा करता था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बस्ती की जीवन-सक्रियता के संगठनकर्ता केंद्र के रूप में मंदिर की भूमिका तेरहवीं शती के अंत से बहुत बढ़ जाती है। कारण यह था कि इस काल से दक्षिण भारतीय राज्यों पर उत्तर से मुस्लिम आक्रमणों का ख़तरा सदा बना रहने लगा था। प्रतिरक्षात्मक निर्माणों की भारी ज़रूरत महसूस की जाने लगी थी और इसका मुख्य असर मंदिरों पर पड़ा। तेरहवीं शती से दक्षिण भारत में नये मंदिरों का निर्माण बहुत कम हो गया। पुराने, देश में सबसे अधिक प्रतिष्ठित मंदिरों के विस्तार पर व्यय करना अधिक उचित समझा जाने लगा। ऐसे मंदिर सामान्यतया बड़े नगरों, शिल्प केंद्रों, तीर्थस्थलों अथवा महत्त्वपूर्ण राज्यों की राजधानियों में स्थित होते थे। इस प्रकार नगर निर्माण कला की दृष्टि से मंदिर की भूमिका बढ़ती गयी। उसके गिर्द अथवा समय के साथ बढ़ती उसकी सीमा के भीतर शिल्पी और व्यवसायी बस गये। निरंतर बदलता हुआ मंदिर भवन-समुच्चय किलेबंद बहु-उद्देश्यीय नगर का रूप ग्रहण करता गया।

नगर और मंदिर के इलाक़े में ऐसी और कोई इमारत नहीं बनायी जाती थी, जो कि मुख्य गोपुर से ऊंची हो। यात्रियों और उपासकों के लिए मंदिर-समूह के भीतर स्थित बहुस्तंभीय विश्रामालय – "मंडप" – अधिक से अधिक ८ मीटर ऊंचा और सपाट छतवाला होता था।

इस प्रकार मंदिर भवन-समूह विस्तार में बढ़ने के साथ-साथ अपने रचना-विन्यास में असामान्य रूप भी ग्रहण करता गया। केंद्रीय मंदिर की ओर बढ़ते हुए भवनों की ऊंचाई में अब वृद्धि नहीं होती जाती थी, जैसा कि पहले होता था, अपितु कमी ही होती जाती थी।

इस मामले में समस्त रचना-विन्यास सामान्य धरातल से एक ही दृष्टि में नहीं देखा जा सकता है। पहला गोपुर पार करते ही सामने दूसरा, यद्यपि ऊंचाई में छोटा, गोपुर आ जाता है, जो उसके भीतर की सभी इमारतों को दृष्टि से ओझल कर देता है। उसे पार करने के बाद तीसरा गोपुर भी अपनी, यद्यपि दूसरे गोपुर से कम, ऊंचाई से अभिभूत करता है किंतु वह भी दृष्टिपटल के सामने आड़े आ जाता है। यह क्रम बार-बार दोहराया जाता है। हर गोपुर ऊंचा इसलिए लगता है कि सभी को एक ही बार में देख पाना और निकट से उनकी एक दूसरे से तुलना कर पाना संभव नहीं होता है।

सदियों के दौरान इस बहुत ही फैल चुकी संकेंद्री प्रणाली में, जो विभिन्न समयों में और बहुत ही भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए निर्मित अनेकानेक भीतरी प्रांगणों ("प्रकरम") से बनी होती है, अगम्य, पुराना और सबसे अधिक पूजनीय, लेकिन आकार में सबसे छोटा मुख्य देवमंदिर कहीं केंद्र में खो जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारत में प्रवेशद्वार को सदा बड़ा महत्त्व दिया गया है। दक्षिण भारतीय मंदिर का प्रवेशद्वार गोपुर की शक्ल में बनाया जाता था। अपनी संरचना की दृष्टि से गोपुर प्राचीन ग्रंथों में वर्णित बहुमंज़िली प्रहरी बुर्ज "अट्टालक" की याद दिलाता है। गोपुर के दो हिस्से होते हैं: मध्य में द्वार से युक्त लगभग घनाकार अधोभाग और उसके ऊपर बहुतलीय पिरामिडनुमा शिखर, जिसके शीर्ष का आकार औंधी नौका जैसा होता है। सारा शिखरभाग देवी-देवताओं की मूर्तियों से आवृत्त होता है। अधोभाग सामान्यतया पत्थर से बनाया जाता था और शिखरभाग ईंट से, और मूर्तिसज्जा आरंभ में गच से की जाती थी, पर बाद में रंगी हुई पक्वमृदा अथवा रंगीन काचित सिरेमिक से की जाने लगी। ऐसी ५० मीटर या इससे भी ज़्यादा ऊंची भव्य निर्मिति अत्यंत प्रभावोत्पादक होती थी। दूर से दिखायी देनेवाला गोपुर न केवल नगर का, अपितु मैदानों और एक या दो मंज़िले देहाती घरों से बिल्कुल अलग दिखकर आसपास के सारे ही परिदृश्य का सबसे मुख्य भूचिह्न बन जाता था।

जब नये मंदिर नहीं बनाये जाने लगे, तो बनवानेवाले और वास्तुशिल्पी का सारा ध्यान गोपुर पर संकेंद्रित हो गया। हर हिंदू राजा गद्दी पर बैठने पर पहले अपने लिये महल अथवा समाधि नहीं बनवाता था, बल्कि सर्वाधिक पूज्य मंदिर के गिर्द गोपुरों से युक्त नये प्राचीर खड़े करवाता था और इस काम में अपने पूर्ववर्ती से आगे निकल जाना चाहता था।

इसलिए नवनिर्मित गोपुर आकार में और मूर्तिसज्जा में पहले के गोपुरों से कहीं आगे बढ़े होते थे। गोपुर की संरचना परंपरागत ही बनी रही और सत्रहवीं शती के अंत तक उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया।

मंदिर-प्राचीर के भीतर जो भी नये निर्माण किये जाते थे, उनमें मंदिर भवन-समूह की एक दूसरे को समकोण पर काटती पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण धुरियों को अवश्य ध्यान में रखा जाता था। इन्हीं धुरियों का अनुगमन मंदिर की ओर आनेवाले नगर के मुख्य मार्ग भी करते थे। मंदिर के मुख्य द्वार – गोपुर – भी पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं में बनाये जाते थे।

मंदिर के क्षेत्र में स्थित सभी भवन समस्त समूह को घेरनेवाले प्राचीरों के आयताकार अभिन्यास से पूर्ण मेल खाते थे। इस आयत के बाहर कई समानांतर सड़कें बनी होती थीं, जिनके दोनों ओर रिहायशी मुहल्ले और सार्वजनिक भवन स्थित होते थे। ये सड़कें धार्मिक जलूसों, पैदल चलनेवालों और वाहनों के गुज़रने के काम आती थीं।

प्राचीरों से घिरे मंदिर के प्रांगणों में नयी निर्मितियां खड़े किये जाने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का सिलसिला भी चलता रहा। मुख्यतया ये वेदिकाएं, स्तंभ, मंडप और कामकाजी इमारतें होती थीं।

दक्षिण भारत में सर्वाधिक प्रचलित भवन-प्रकार मंडप था, जो सपाट छतवाली, इकमंज़िली, चारों ओर से खुली दीर्घा अथवा बरामदे जैसा होता था। विभिन्न मंडपों में केवल स्तंभों की संख्या का ही भेद होता था। बड़े मंडपों में कभी-कभी १००० स्तंभ तक पाये जाते हैं और उन्हें "सहस्रस्तंभ" कहा जाता है। वे भक्तों और उपासकों के बैठने, विश्राम करने के लिए बनाये जाते थे। सुअलंकृत और छोटे "कल्याण मंडप" में देवता का विवाहोत्सव किया जाता था। सादे और मामूली मंडपों में मंदिर के हाथी बांधे जाते थे अथवा पर्वों पर देव-प्रतिमाएं ले जाने के लिए प्रयुक्त रथ रखे जाते थे।

प्राकृतिक अथवा कृत्रिम तालाब (स्नानकुंड) हर मंदिर का, चाहे वह नगर में हो अथवा ग्राम में, एक अनिवार्य अंग था। बड़े मंदिरों में वह आयताकार और चारों ओर से सीढ़ियों, दीर्घाओं और स्तंभ-पंक्तियों से घिरा होता था। उल्लेखनीय है कि स्नानकुंड के गिर्द ऐसी निर्मितियां हड़प्पाई नगरों में भी पायी गयी हैं।

(मध्ययुग में तमिलनाडु में मंदिर नगर को जन्म देनेवाला एक सबसे महत्त्वपूर्ण उपादान बना। दक्षिण भारतीय नगरों में मंदिर-नगर ने महत्त्वपूर्ण स्थान पा लिया।) आरंभ में जो नगर मंदिररूपी नाभिक के गिर्द पैदा हुए थे, सामंती युग की नयी परिस्थितियों में उनकी संरचना में प्राचीन काल से विरासत में प्राप्त नगर निर्माण कला की परंपराएं मानो पुनर्व्याख्यायित हुईं। सदियों के दौरान मंदिर-नगर यों संवर्धित होता रहा, जैसे कि वह किसी ऐसे अदृश्य वास्तुशिल्पी के हाथ का खिलौना हो, जिसने 'शिल्पशास्त्र', 'मानसार', आदि प्राचीन ग्रंथों के विधानों के अनुसार उसकी सममिति के मुख्य अक्ष और उसकी आयताकृति पहले से ही निर्धारित कर दी है।

मंदिर भवन-समूह वैदिक काल से चले आ रहे परंपरागत तरीक़ों से फैलते गये। मंदिरों को उसी प्रकार प्राचीरों के कई-कई घरों से घेर दिया जाता था, जिस प्रकार कि बस्तियों को। अधिकांशत: यह प्रतिरक्षा के प्रयोजन से किया जाता था। किंतु कभी-कभी प्राचीर भीतर की जगह को विभिन्न कार्यों के लिए प्रयुक्त खंडों में विभाजित करने के लिए भी खड़े किये जाते थे।

(घर, प्रासाद, मंदिर अथवा नगर के गिर्द अवरोधों अथवा प्राचीरों के कई-कई घेरे खड़े करने की प्रणाली दक्षिण भारतीय वास्तुशिल्प की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है।) केरल और आंध्र के गांवों में प्राचीन काल से ही आवासीय स्थान को उसके गिर्द घेरे बनाकर विभाजित करने की प्रथा चली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आ रही है। इस मामले में घर कई अहातों से बना होता है, जो मानो एक दूसरे में समाहित होते जाते हैं। रचना-विन्यास का यही सिद्धांत मंदिर भवन-समूहों में भी, जो सदियों के दौरान फैलते गये हैं, प्रयोग किया गया है।

मंदिर-नगरों के निर्माण में सर्वाधिक योगदान चौदहवीं-सोलहवीं शतियों में विजयनगर के शासकों ने किया और उसका समापन सत्रहवीं शती में नायक वंश के राजाओं द्वारा अपनी राजधानी मदुरा में दक्षिण भारत का सबसे विशाल और सबसे भव्य गोपुर बनाये जाने के साथ हुआ। नगरों जैसे बड़े ३० ज्ञात मंदिर-समूहों में सबसे विशाल चिदंबरम, श्रीरंगम, कुंबकोणम, तिरुवनमलै, तिन्नेवेल्ली, तिरुवरुर, श्रीवेल्लिपुतूर और वेल्लूर के मंदिर-समूह हैं। कांचीपुरम में नगर का अधिकांश भाग वहां के बहुत बड़े मंदिर भवन-समूह के अंतर्गत आता है।

तिन्नेवेल्ली में प्राचीन मंदिर के गिर्द तेरहवीं से सोलहवीं तक तीन शतियों के दौरान छह संकेंद्री प्राकार वलय खड़े किये गये और इस तरह वहां पांच प्रांगण ("पंचप्रकरम") अस्तित्व में आये। छठी शती से लेकर सत्रहवीं शती तक के दक्षिण भारतीय मंदिर-नगर के विकास का एक सबसे ठेठ नमूना श्रीरंगम है। यह भारत के उन गिने-चुने नगरों में से है, जिनके निर्माण में शास्त्रीय विधानों का कठोरतापूर्वक पालन किया गया था।*

श्रीरंगम के विकास में इस बात से बड़ी सहायता मिली कि जो भी वंश सत्तारूढ़ हुआ, यह नगर उसके राज्यक्षेत्र के सदा मध्य में रहा। पल्लवों और चोलों के काल में श्रीरंगम एक बहुत बड़े इलाक़े का सबसे बड़ा नगर था और सभी ओर से जल तथा स्थल मार्गों से जुड़ा हुआ था।

नगर का नाभिक विष्णु का मंदिर था, जिसका निर्माण छठी शती में पल्लवों ने किया था। नौवीं शती में और फिर चोलों के अंतर्गत दसवीं तथा ग्यारहवीं शतियों में यहां अतिरिक्त प्राचीरों और प्रांगणों का निर्माण हुआ। तेरहवीं शती के अंत तक, जब पांड्य राजा सत्तारूढ़ थे, श्रीरंगम का मंदिर भवन-समूह बाक़ायदा एक नगर जैसा बन गया और उसके गिर्द अनेक रिहायशी मुहल्ले भी बस गये। चौदहवीं-सत्रहवीं शतियों में विजयनगर के राजाओं के शासनकाल में श्रीरंगम का और विस्तार हुआ। इस तरह एक सहस्राब्दी से ज़्यादा तक यह नगर 'मानसार' के विधानों से विचलित हुए बिना विकास करता रहा। उसके निर्माताओं ने उसके लिए स्थान के चुनाव और उसके अभिन्यास में ही नहीं, उसके क्षेत्र में विभिन्न निर्मितियों को अवस्थित करने में भी 'मानसार' का कठोरतापूर्वक अनुगमन किया।

---

* Ghosh Bijit, *Srirangam, Town Planning*, New Delhi, 1965.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रीरंगम तमिलनाडु की उर्वर उपत्यका में कावेरी और उसकी उपनदी कलेरुन के संगम के समीप एक ऊंची जगह पर बसा हुआ है। पर्याप्त वृष्टि तथा जलसंसाधन और वनस्पतिसंपन्नता के कारण यह स्थान नगरीय बस्ती के लिए बहुत उपयुक्त है। नदियों की ओर ढलान जलनिकासी को आसान बना देता है। सपाट मैदानी धरातल मिट्टियों के रंग, भूमि के आकार और दृढ़ता से संबंधित 'मानसार' में वर्णित लगभग सभी अपेक्षाओं को पूरा करता है। भूमि के नीचे जल थोड़ी ही गहराई पर मिल जाता है।

यहां की जलवायु तमिलनाडु के अन्य भागों जितनी ऊष्म और नम नहीं है। मई-जून में अधिकतम तापमान केवल ४३° सें० तक पहुंचता है। इन महीनों में तेज़ हवाएं भी चलती हैं। शीतकाल (जनवरी-फ़रवरी) में औसत तापमान कोई १८° सें० होता है। नमी ग्रीष्मकाल में ६५% होती है, अक्तूबर-नवंबर में तेज़ समुद्री तूफ़ानों के समय ९०% तक पहुंच जाती है और फ़रवरी-मार्च में घटकर १५% के क़रीब रह जाती है।

प्रकार्यात्मक दृष्टि से नगर तीन भागों में बंटा हुआ है: १. मुख्य मंदिर, विभिन्न देवी-देवताओं के मंदिर, स्नानकुंड, विभिन्न मंडप, पाकशाला, गोदाम, इत्यादि; २. सार्वजनिक और व्यावसायिक भवन, जिनमें पाठशालाएं और कचहरी ("धर्मशाला") भी आती हैं; और ३. आवासीय इलाक़े।

अपनी अभिन्यासात्मक केंद्रीय-अक्षीय संरचना की दृष्टि से श्रीरंगम "सर्वतोभद्र" प्रकार की बस्ती से मिलता-जुलता है। नगर के आयताकार अभिन्यास का केंद्र श्रीरंग (विष्णु) का मंदिर है। नगर की सारी आयोजना उत्तर-दक्षिण धुरी पर स्थित कई संकेंद्री प्रांगणों की शृंखला और इन प्रांगणों के समानांतर पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण सड़कों के समकोणिक जाल पर आधारित है।

श्रीरंगम की संरचना जिस नगर निर्माण संबंधी अभिकल्पना पर टिकी हुई है, वह असाधारण है। वह उसके बिल्कुल विपरीत है, जिसे हम ऐसे नगर में देखने के आदी हैं, जहां केंद्र में स्थित निर्मितियां शेष सारे नगर पर हावी होती हैं। श्रीरंगम में सबसे महत्त्वपूर्ण वास्तु-रचनाएं गोपुर हैं। वे नगर के उपांत से केंद्र की ओर ऊंचाई और आकार में बढ़ते नहीं, अपितु घटते जाते हैं। केंद्र की ओर बढ़ने पर सड़कें और चौक भी संकीर्णतर होते जाते हैं। नगर कुल मिलाकर एक विशाल गहरे चषक जैसा दिखता है, जिसके तल अथवा केंद्र में, अनेकानेक प्राचीरों, भवनों और गोपुरों के पीछे मुख्य पूजास्थल स्वर्णशिखर-मंडित मंदिर कहीं खो गया सा लगता है।

प्रांगणों और सड़कों के बीच उनके प्रयोजन तथा आकार के अनुसार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भेद किया जाता है। पहले प्रांगण में, जो सबसे पुराना भी है, गर्भगृह, भोग-मंदिर तथा नाट्य-मंदिर से युक्त मुख्य मंदिर तथा कुछ गौण मंदिर स्थित हैं। दूसरे प्रांगण में १६ मंदिर और तीसरे प्रांगण में ३२ मंदिर बने हुए हैं। चौथे प्रांगण में मंदिर के पुरोहित तथा कर्मचारी रहते हैं और पांचवें प्रांगण में विभिन्न भंडारगृह, जलाशय, इत्यादि हैं।

नगर के भीतरी प्राचीरों से मकानों की एक ही क़तार सटी हुई है, जबकि बाहरी प्राचीरों के दोनों ओर आवासीय और अन्य इमारतें बनी हुई हैं।

श्रीरंगम में तीन प्रकार की सड़कें हैं। एक, मंदिर की ओर जानेवाली पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण सड़कें ("नाभि-वीथि"), जो सीधी और चौड़ी (१४.५ मीटर) हैं। दो, पर्वों के अवसर पर देवप्रतिमाओं की रथ-यात्राओं के लिए प्रयुक्त और नगर की परिधि के साथ-साथ जानेवाली पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण सड़कें ("परिरथीय" – चौड़ाई १८ मीटर)। तीन, मंदिर की परिक्रमा के लिए प्रयुक्त सड़कें ("प्रदक्षिणापथ") और अन्य सड़कें, जो पैदल चलने के लिए बनी हैं (चौड़ाई ७.२ मीटर)। दोनों ओर से दीवारों से घिरी सड़कें गलियारों जैसी लगती हैं।

श्रीरंगम में ऐसे नगर चौक नहीं हैं, जो सार्वजनिक केंद्रों की भूमिका अदा करते हों। चौक यदि किसी ऐसी जगह पर बना है, जहां सड़कें मिलती हैं या कोई एक सड़क चौड़ी होती है, या फिर अगर वह किसी महत्त्वपूर्ण इमारत के सामने स्थित है, तो वह मात्र पैदल चलनेवालों और वाहनों के आने-जाने में सुगमता पैदा करने का ही काम करता है।

श्रीरंगम में एकरूपता नहीं है, किंतु साथ ही वहां अत्यधिक देशिक बहुरूपता का भी अभाव है। दोनों ओर से दीवारों से घिरी उसकी सीधी सड़कें अविच्छिन्नता का प्रभाव उत्पन्न करती हैं। चाक्षुष अनुभव के स्तर पर वैविध्य और आकर्षण भवनों द्वारा पैदा किये जाते हैं, जो अपने प्रयोजन, वास्तु-रूप, सजावट और ऊंचाई की दृष्टि से एक दूसरे से काफ़ी भिन्न हैं। कहीं विलक्षण मूर्तिशिल्पों से अलंकृत असंख्य स्तंभों से युक्त, छाया और ठंडक प्रदान करनेवाले मंडप पाये जाते हैं, जिनमें तीर्थयात्री लोग कुछ घड़ी विश्राम कर सकते हैं, तो कहीं छोटे-छोटे बरामदे और पाठशालाओं के भवन मिलते हैं। कुछ भवन गहराई में बने हैं, तो कुछ आगे को निकले हुए हैं, जिससे सड़क कभी चौड़ी हो जाती है, तो कभी संकरी।

दर्शक को किसी भी प्रांगण से पूरा नगर नहीं दिखायी देता। सामान्यतया इसमें नगर की मुख्य धुरियों के बायीं ओर स्थित कोई न कोई इमारत अवरोध उत्पन्न कर देती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मंदिर-वास्तु का विकास बहुत धीरे-धीरे हुआ। नये तकनीकी परिवर्तन कोई नहीं आये। टेक-धरन पद्धति जारी रही। राज-मिस्तरियों और मूर्ति-शिल्पियों के काम करने का ढंग भी नहीं बदला। निर्माण प्रविधि में स्पष्टत: गतिरोध आ गया था। फिर भी निर्माताओं और मूर्तिशिल्पियों का कौशल और कल्पना-शक्ति चकित कर देते हैं। आकृति और विषय-वस्तु की दृष्टि से अनुपम मूर्तिशिल्पों से सज्जित नाना प्रकार के स्तंभोंवाले रचना-विन्यास मन मोह लेते हैं। वास्तुशिल्प में प्रयुक्त तक्षणकला की रचनाओं में यहां कभी गोथिक आकृतियों की याद दिलानेवाले छरहरे, नाज़ुक स्तंभों के पुंज मिलते हैं, तो कभी मिनियेचर मंदिर-आकृतियों की कई अनुलंब क़तारों से निर्मित स्तंभों के समूह। अधिकांशत: ऐसे स्तंभ मिलते हैं, जिनके शोभा कोष्ठक बहुत अधिक आगे को निकले हुए हैं और इन कोष्ठकों के किनारों से कमल की कलियां निकली हुई हैं। कभी-कभी कक्ष के मध्य में छतनार वृक्ष जैसे विकीर्ण शोभा कोष्ठकों से युक्त भारी-भरकम स्तंभ बनाया जाता था। साझी पीठिका पर खड़े और ऊपर शोभा कोष्ठकों से युक्त बहुत ही विविध प्रकार के शीर्षों से जुड़े हुए स्तंभों की यह जटिल शृंखला ऐसे वृक्षों जैसी लगती है, जिनके तने तो अलग-अलग हैं, लेकिन शिखर भाग एकाकार हो गया है। वास्तव में वैविध्यपूर्ण वनस्पति-जगत भारतीय मूर्तिशिल्पियों, वास्तुकारों और चित्रकारों के लिए प्रेरणा का अजस्र स्रोत था।

पंद्रहवीं – सत्रहवीं शतियों के मंदिरों में वास्तुकला पर भारी-भरकम जटिल और असामान्य रूप से विचित्र मूर्ति-रचनाएं हावी हो जाती हैं। अनगिनत स्तंभोंवाले कक्ष सभी ओर से पृष्ठपादों पर खड़े अश्वों, सिंहशीर्ष गृद्धों और अन्य अजीबोगरीब जीव-जंतुओं से आक्रांत हो जाते हैं। विभिन्न मुद्राओं में जड़ीभूत हुए वे सब मानो इस प्रतीक्षा में हैं कि कब जादूगर की छड़ी उन्हें पुनर्जीवित करे, वे नाच उठें और सदा के लिए निःस्पंद इस परीकथाओं के लोक को अपनी आवाज़ों से गुंजायमान कर दें। अलग-अलग उत्कृष्ट रचनाओं को निगल जानेवाली इस अनियंत्रित, उद्दाम सृजन आकांक्षा के पीछे कोई महती, एकीभूत योजना नहीं है। अथक कल्पना, रचना-विदग्धता और बिंबों तथा विचारों की असीम बौछार दर्शक को अभिभूत कर डालती है और वह समग्र को ग्रहण कर पाने में अपने को असहाय अनुभव करता है। यहां मूर्ति-शिल्पी का, जो साथ ही नृत्य, संगीत और चित्रकला का पारखी भी है, श्रम मूल्यहीन हो जाता है। उसके पेशे को, जो प्राचीनकाल में पवित्र पेशा माना जाता था, एक मामूली कारीगर के स्तर पर ले आया गया है। सोलहवीं–सत्रहवीं शतियों में मुस्लिम सामंतों द्वारा जीते गये इलाक़ों में कोई रोज़गार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न पाकर अत्यंत कुशल चित्रकारों, मूर्तिकारों और वास्तुशिल्पियों की विशाल फ़ौज धुर दक्षिण के इलाक़े में आ बसी थी, जहां मंदिरों का निर्माण अभी भी जारी था।

अलग-अलग वर्णों के लोगों के लिए अलग-अलग बने प्रांगणों, विराटाकार गोपुरों और भारी-भरकम तथा अजीबोग़रीब मूर्तिशिल्पोंवाले उत्तर-मध्ययुगीन मंदिरों में हम विक्टर ह्यूगो के साथ वस्तुतः 'जनता के नहीं, बल्कि मुख्य रूप से पुरोहितों के प्रभाव को, वर्णव्यवस्था के प्रभाव को" अनुभव करते हैं।

मंदिर-नगर सदियों की परतों पर परतें जमते जाने का परिणाम थे, उत्पादन की सामंती रीति के स्तर पर पहुंची भारतीय संस्कृति की शुद्ध उपज थे। उनके अस्तित्व का आधार सर्वशक्तिमान पुरोहित-सामंतों के अधिकार में स्थित भूसंपत्तियों से होनेवाली आय थी। दक्षिण भारतीय मंदिर-नगरों की जड़ें विश्व इतिहास में बेमिसाल वर्णव्यवस्था को जन्म देनेवाले अति पुरातन काल और हिंदु धर्म में हैं। दक्षिण भारतीय मंदिर-नगरों की संरचना समाज, उसके संबंधों और दृष्टिकोणों के उद्‌विकास की अविच्छिन्नता को जैसी स्पष्टता और सुसंगति के साथ प्रतिबिंबित करती है, वैसी विश्व के और किसी नगर की संरचना नहीं करती। इस संरचना में वास्तु तथा नगर निर्माण विषयक प्राचीन भारतीय ग्रंथों में विवेचित भारतीय नगर के सैद्धांतिक निदर्श के "शास्त्रीय" ढांचे की विशेषताएं अधिकतम साकार बनी हैं।

अधिसंख्य मंदिर भवन-समूह, जो बढ़कर नगरों जैसे बन बैठे, विजयनगर साम्राज्य के काल में बनाये गये थे। चौदहवीं—सोलहवीं शतियों में भारत का सारा ही प्रायद्वीपीय भाग (केरल को छोड़कर) इस साम्राज्य के अंतर्गत आ गया था। दो शतियों के दौरान विजयनगर के शासक उत्तर के युयुत्सु मुस्लिम सामंतों के अनवरत अग्रधर्षण का सफलतापूर्वक मुक़ाबला करते रहे। दक्षिण भारत के इतिहास में विजयनगर के शक्तिशाली साम्राज्य ने सबसे उज्ज्वल पृष्ठ जोड़े हैं। यह वह काल था, जब द्रविड़ जातियों की अर्थव्यवस्था और संस्कृति का असामान्य मुकुलन हुआ।

इस काल में नगर विशेष तेज़ी से बढ़े और फूले-फले। इसमें बड़े पैमाने पर चलनेवाला अंतर्राष्ट्रीय व्यापार काफ़ी हद तक सहायक हुआ। उससे शिल्पों और उद्योगों के विकास को भी बड़ा प्रोत्साहन मिला। प्राचीन बस्तियों के स्थान पर अनेक नये नगर पैदा हुए।

राज्यों, रजवाड़ों और प्रांतों की राजधानियां शिल्प और व्यापार के बड़े केंद्र बन गयीं। उनमें सबसे ऊपर साम्राज्य की राजधानी विजय-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नगर* का नाम आता है। उसकी स्थापना १३३६–१३४३ में हुई थी। पुर्तगाली इतिवृत्तकार दोमिंगो पायेश के अनुसार, जिसने १५०५–१५२६ में विजयनगर की यात्रा की थी, यह नगर रोम जैसा विशाल तथा अत्यंत सुंदर नगर था और इसके राजमहल का क्षेत्रफल लिस्बन के सभी किलों के कुल क्षेत्रफल से बड़ा था। सोलहवीं शती में रूसी यात्री अफ़ानासी निकीतिन भी यहां के महलों की भव्यता को देखकर दंग रह गया था। लेकिन वह साथ ही मेहनतकश लोगों के घरों की दुर्दशा का भी उल्लेख करता है।

राजधानी, उससे लगी बस्तियां तथा कृषि भूमि, जो प्राचीरों के सात संकेंद्री वलयों से घिरी हुई थीं, १६३.८ वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल में फैली हुई थीं। नगर से सबसे दूर स्थित तीन प्राचीर कृषि भूमि और उसपर स्थित ग्रामों तथा बागों की रक्षा करते थे। स्वयं नगर चार प्राचीरों से घिरा हुआ था। नगर में सबसे ऊंची जगह पर दुर्ग स्थित था। बेसाल्ट पत्थर के विशाल खंडों से निर्मित मोटी-मोटी दीवारें नगर के गिर्द बनी कृत्रिम और प्राकृतिक किलेबंदियों को आपस में जोड़ती थीं। दुर्ग और उसके प्राचीरों के भीतर उद्यानों और आनंद मंडपों के बीच शासक का बहुमंज़िला पिरामिडनुमा निवास बना हुआ था। मंदिर दुर्ग में भी थे और स्वयं नगर में भी। नगर में नियमित अभिन्यास-योजना के निशान नहीं पाये गये हैं।

अपने दरबारी जीवन की आडंबरपूर्णता और इमारतों की भव्यता के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध विजयनगर १५६५ में विनष्ट हो गया और तब से खंडहर बना पड़ा है। आज वह दक्षिण भारतीय वास्तुशिल्प के एक विशाल मुक्ताकाशी संग्रहालय की याद दिलाता है। १५६५ में कृष्णा के तट पर युद्ध में दक्खिन के सुल्तानों के हाथों पराजय ने विजयनगर राज्य का ही नहीं, सारे दक्षिण भारत का भाग्य तय कर दिया, जो अब अनेक छोटे-छोटे राज्यों और रजवाड़ों में बंट गया। दक्षिण के अंतिम बड़े शासक वंश – नायक वंश – को मुस्लिम सामंतों के निरंतर दबाव के कारण धुर दक्षिण में उस छोटे-से क्षेत्र से ही संतोष कर लेना पड़ा, जो पहले पांड्य राज्य के अंतर्गत आता था और जिसकी राजधानी मदुरा थी। मदुरा नगर के अधिकांश भाग में मंदिर-समूह स्थित है, जिसका निर्माण बारहवीं – सत्रहवीं शतियों में हुआ था। यह दक्षिण भारतीय मंदिर-नगर की अंतिम मिसाल थी।

शास्त्रीय विधानों के अनुसार निर्मित मंदिर-नगरों के साथ-साथ दक्षिण

* Sewell R., *A Forgotten Empire, Vijayanagar*, London, 1924.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारत में स्वतःस्फूर्त ढंग से भी अनेक नगर पैदा और विकसित हुए। ये व्यापार तथा शिल्प के केंद्र और मुख्यतया बंदरगाहें अथवा आंतरिक व्यापार मार्गों पर स्थित नगर थे।

पुर्तगाली यात्री मार्को पोलो मलाबार और कारोमंडल तट के कई नगरों को गिनाते हुए लिखता है कि "इन राज्यों के सभी नगरों के बारे में बताने में बहुत समय लग जायेगा"। विदेशियों के साक्ष्यों के अनुसार दक्षिण भारत के बंदरगाह विश्व के अनेक नगरों से कहीं अधिक भव्य थे। केरल का कालीकट बंदरगाह ग्यारहवीं – चौदहवीं शतियों में पश्चिम और पूर्व के बीच व्यापार का मुख्य केंद्र था। वह इस काल में भारत का सबसे बड़ा बंदरगाह था। अरब इतिहासकार इब्न बतूता के अनुसार अपने आकार में वह सिकंदरिया (मिस्र) जैसे विश्व के सबसे प्रसिद्ध नगरों की बराबरी करता था। तत्कालीन अन्य लेखकों ने कालीकट को उस ज़माने के भारत का सबसे मुख्य नगर बताया है। दो मिले हुए नगरों से निर्मित कोचीन पारवहन व्यापार का एक प्रमुख केंद्र था। अन्य बड़े बंदरगाहों में तेल्लिचेरी, क्विलोन, आदि का नाम गिनाया जा सकता है।

विद्वानों का मत है कि सोलहवीं शती में कन्नानूर से क्विलोन तक का इलाक़ा इतना घना वसा हुआ था कि उसे एक ही बस्ती भी कहा जा सकता था।

पंद्रहवीं शती में भारत के पश्चिमी तट पर पुर्तगालियों का बोलबाला क़ायम हो जाने से बहुत-से बंदरगाह-नगरों का अपकर्ष शुरू हो गया। उपनिवेशवादियों ने विजयनगर साम्राज्य को बड़ा आघात पहुंचाया और पश्चिम के साथ व्यापार का मुख्य केंद्र गोआ को बना दिया, जो पुर्तगाली उपनिवेशों की राजधानी था। गोआ की वास्तुकला, जिसपर विदेशी अतिक्रमणकारियों की वास्तुकला की ज़बर्दस्त छाप है, दर्शक को मानो बरोककालीन पुर्तगाल में पहुंचा देती है।

समुद्री व्यापार की सफलता में भारत के प्राचीन काल से ही उच्चविकसित बुनाई उद्योग और पोत-निर्माण उद्योग बहुत सहायक सिद्ध हुए थे। इन शतियों में तो वे भारत के प्रमुख उद्योग ही बन गये। चौदहवीं – सोलहवीं शतियों में भारत में बहुत ही महत्त्वपूर्ण सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन आये, जो नगरों की हैसियत, नगरीय संस्थाओं की स्थिति और नगर निर्माण के स्वरूप में भी प्रतिबिंबित हुए। पहली बुनकर कर्मशालाएं – मैन्यूफ़ैक्टरियां – पैदा हुईं। अयस्क उत्खनन उद्योग में उजरती श्रम का प्रयोग किया जाने लगा। इसके साथ ही माल-मुद्रा प्रणाली का विकास हुआ।

व्यापार-वाणिज्य में मंदिर-नगर भी सक्रिय भाग लेते थे। वे अपने आसपास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के सारे इलाक़े के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक केंद्र बन गये।

माल-विनिमय के विकास और कृषि से शिल्पों के पृथक्करण के फलस्वरूप अनेक नये नगरों का आविर्भाव हुआ। पहले की भांति इन मामलों में भी ग्राम ही बढ़कर नगरों में परिवर्तित हो जाते थे। अनेक पुरालेखों से पता चलता है कि कैसे चौदहवीं – सोलहवीं शतियों में बहुत-से ग्रामों ने नगरों का दर्जा पा लिया था। चिदंबरम के नटराज मंदिर से प्राप्त एक पुरालेख बताता है कि बुनकरों के घर बनाने के लिए विशेष रूप से दिये गये भूमिखंड पर तेरियावरा-न्निरापेरूमलपुरम नाम की बस्ती पैदा हो गयी थी। कभी-कभी कई ग्राम मिलकर नगर बन जाते थे। उदाहरणार्थ, कुलशेखरपुरम, आदि का जन्म यों ही हुआ था। ग्रामों की स्थली पर उत्पन्न नगरों की संरचना ग्राम जैसी ही रहती थी, जो तीन कारकों से पूर्वनिर्धारित होती थी : चतुर्दिक्‌मुखी विन्यास, जलाशय की आवश्यकता और वर्णों तथा पेशों के मुताबिक मुहल्लों का विभाजन।

बाहर से देखने में भी नगर ग्राम से ज़्यादा भिन्न न होता था। तेरहवीं शती का एक फ़्रांसिस्कन पादरी आइ० मोंतेकोर्वो लिखता है, "आबादी के लिए भूमि पर्याप्त है और उसमें बड़े नगर भी हैं, किंतु उनमें मकान बहुत ही घटिया क़िस्म के हैं और गेरुआ मिट्टी के बने हुए तथा आम तौर पर पत्तों से ढके हुए हैं।" मध्ययुग में नगर में सामान्यतया ग्रामों को भी शामिल किया जाता था, जो उन्हें रसद, कच्चे माल और श्रम-शक्ति मुहैया करते थे। विजयनगर, कांचीपुरम और चिदंबरम ऐसे ही नगर थे। ऐसे में प्राचीरों के घेरे में नगर और आसपास के ग्राम, सब आ जाते थे और सब एक ही संरचना के अंग होते थे।

कांचीपुरम में १० या १२ क़सबाई बस्तियां ("पडि" और "चेरी") और २ ग्राम शामिल थे। चिदंबरम में १४ बस्तियां शामिल थीं, जिनमें से ८ ग्राम ("ऊर" और "कुडि") और २ क़सबाई बस्तियां "चेरी" थीं। नगर के शेष भाग उसके मुख्य नाभिक का निर्माण करते थे।

इन नगरों को अर्ध-खेतिहर कहा जा सकता है। नगर की अर्थव्यवस्था में काश्तकारी और पशुपालन बड़ी भूमिका अदा करते थे। नगरवासी शिल्प-व्यवसाय के साथ-साथ कृषि भी करते थे। नगरीय बस्तियों के अंतर्गत खेतों और बाग़ों का सदा उल्लेख मिलता है। इसलिए नगर का क्षेत्रफल काफ़ी बड़ा होता था। तत्कालीन साक्ष्यों के अनुसार कृषि उत्पाद नगर की मुख्य संपदा थे। तेरिदल (तेर्दोल) अपने काल के एक ठेठ दक्षिण भारतीय नगर का इन शब्दों में वर्णन करता है : नगर "नयनाभिराम और सौंधी-सौंधी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महक बिखेरनेवाले धान के खेतों से सजा हुआ है, उसमें बहुत बाग़, झीलें और जलाशय हैं। उसमें टीलों, पहाड़ियों और मैदानों में बनी किलेबंदियां और मंदिरों के गिर्द बनी खाइयां हैं... उसमें बहुत-सी चौड़ी-चौड़ी सड़कें और बाज़ार हैं... नगर खेतों और लोगों की मेहनत की पैदावार, अनाज और दूध, नये-नये प्रकार के आभूषणों और तरह-तरह के वस्त्रों से परिपूर्ण है। उसमें सभी वर्णों के लोगों के हज़ारों सुंदर-सुंदर घर हैं। वहां सर्राफ़ बड़ी तादाद में रहते हैं, ताकि देश के विभिन्न भागों के लोगों के बीच व्यापारिक लेन-देन में सुविधा हो।"

माल-विनिमय के आधार पर बसे नये नगरों में आम तौर पर बड़े बंदरगाह-नगर में बदलने की प्रवृत्ति पायी जाती थी। उदाहरण के लिए, मसुलीपट्टम में जब बुनाई उद्योग का विकास हुआ, तो वह मामूली बंदरगाह से एक बड़े बंदरगाह-नगर में बदल गया, जो उसे माल की आपूर्ति करनेवाली कई छोटी-छोटी बस्तियों से जुड़ा हुआ था। मसुलीपट्टम से सबसे दूर स्थित बस्तियां उससे १५० किलोमीटर से भी ज़्यादा फ़ासले पर बसी हुई थीं।

चौदहवीं – सोलहवीं शतियां दक्षिण भारतीय मध्ययुगीन नगर का चरमोत्कर्ष काल थीं। इन शतियों में नगर सामंती शासक से सर्वाधिक स्वतंत्र था, यद्यपि वह पूरी तरह फिर भी एक नया प्रगतिशील सामाजिक-आर्थिक प्रवर्ग न बन सका और मध्ययुगीन समाज के विकास में यथेष्ट भूमिका न निभा सका।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूसरा अध्याय

उत्तर भारत के राजधानी नगर

उत्तर भारत में नगर और नगर-वास्तु का विकास दूसरे ही ढंग से हुआ। बारहवीं शती के अंत से पूरी छह शताब्दियों तक भारत के इस भाग में मुस्लिम सामंतों का वर्चस्व रहा, जो अपने मूल धर्म और सांस्कृतिक परंपराओं की दृष्टि से पश्चिम और मध्य एशिया के देशों से जुड़े हुए थे। इस काल में उत्तर भारत में क्रमशः दो बड़े केंद्रीकृत राज्य क़ायम हुए: दिल्ली सल्तनत (तेरहवीं – सोलहवीं शती) और मुग़ल साम्राज्य (सोलहवीं – अठारहवीं शती)। उपमहाद्वीप का अधिकांश भाग इसके अंतर्गत आ जाता था। दोनों ही राज्यों ने दिल्ली को, जिसे तब तक परिस्थितियों ने उत्तर भारत के केंद्रीय नगर की हैसियत प्रदान कर दी थी, अपनी राजधानी बनाया। आवश्यकता पड़ने पर रणनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थलों पर स्थित आगरा, लाहौर जैसे नगरों को भी राजधानी का दर्जा दे दिया जाता था। मुस्लिम शासकों की केंद्रीय सत्ता के अधीन अपार भौतिक साधनों और श्रमशक्ति के संकेंद्रण के फलस्वरूप इस काल में भारत में अभूतपूर्व पैमाने पर निर्माण कार्य और राजधानी केंद्रों में वास्तुशिल्प की अत्यंत उत्कृष्ट कृतियों का सृजन हो सका।

भारत ने अपने विजेताओं को, जिन्होंने उसकी धरती में गहरी जड़ें जमा ली थीं, नगरों और बृहदाकार इमारतों के निर्माण के लिए बहुत ही अनुकूल परिस्थितियां मुहैया कीं। भारत प्राचीन और महान सांस्कृतिक परंपराओं का देश था और उसमें ऐसे अतिनिपुण कारीगरों और शिल्पियों का अभाव न था, जो अपने पूर्ववर्तियों के समृद्ध अनुभव और अन्य देशों से आयातित अनुभव के आधार पर किसी भी तरह की निर्माण योजनाओं को यथार्थ में साकार कर सकते थे। काफ़ी हद तक इस युग की वास्तुरचनाओं की उत्कृष्टता तथा अनुपमता का कारण उनका भारत में प्रचुर मात्रा में पाये जानेवाले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजस्थानी बलुआ पत्थर जैसी क़ीमती और दीर्घस्थायी निर्माण-सामग्री से बना होना भी है।*

मुस्लिम वंशों के शासनकाल में भारत में इस्लाम का प्रसार हुआ, तो मक़बरों, मस्जिदों, मदरसों और मीनारों का निर्माण किया जाने लगा। ये भारत के लिए बिल्कुल नये धार्मिक वास्तु-प्ररूप थे और इनका विकास मध्य एशिया और ईरान में हुआ था। भारत और मध्य तथा पश्चिम एशिया की संस्कृतियों की सक्रिय और फलप्रद अन्योन्यक्रिया के फलस्वरूप नगर निर्माण तथा आयोजना की नयी युक्तियां विकसित हुईं, निर्माण के तरीक़ों में सुधार आया और नये वास्तु-रूपों तथा नये सौंदर्य-प्रतिमानों का आविर्भाव हुआ। निर्माण में मेहराबों, डाटों तथा गुंबदों का व्यापक प्रचलन होने से नयी देशिक व्यवस्थाएं जन्मीं। सत्रहवीं शती में निर्मित बीजापुर के गोल गुंबज नाम से प्रसिद्ध मक़बरे की संसार में दूसरी सबसे बड़ी गुबंद (व्यास ४१ मीटर) अपने युग की निर्माण अभियांत्रिकी की एक उत्कृष्ट रचना है।

भारत में मुस्लिम विजेताओं का निर्माण कार्यकलाप आरक्षित, रणनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ठिकानों के साथ आरंभ हुआ, जिनके मध्य में स्थानीय शासक का महल होता था। ऐसे ठिकानों के गिर्द व्यापारियों और कारीगरों की बस्तियां बस जाती थीं। फ़्रांसीसी यात्री फ़्रांसुआ बर्नियर के अनुसार ऐसे मुख्यालय-नगर बड़ी छावनियों जैसे अधिक लगते थे। उनमें सैनिक, घुड़सवार, प्रहरी, तरह-तरह के नौकर और विभिन्न पेशों के कारीगर – कुशल राज-मिस्तरी, बढ़ई, संगतराश, लकड़ी, धातु और हाथी दांत पर काम करनेवाले, सुनार, जौहरी, लुहार, चमार, माली, दर्ज़ी, आदि – बसते थे। शासक के जगह बदलते ही ये मुख्यालय-नगर, जो अपने उत्कर्षकाल में आबादी की बड़ी भारी संख्या से आश्चर्य में डाल देते थे, बड़ी जल्दी वीरान और उजाड़ हो जाते थे। मुस्लिम शासकों के विजय अभियानों के दौरान और उनके द्वारा लागू की गयी मौरूसियत के अधिकार से रहित विशेष भूस्वामित्व पद्धति की परिस्थितियों में पैदा होनेवाले ये मुख्यालय-नगर भारत के लिए एक बिल्कुल नयी चीज़ थे। इसी प्रकार नये शासकों के आगमन के साथ नये प्रकार की, पहले से अधिक परिष्कृत ढंग की युद्ध-प्रविधि का प्रचलन हुआ, तो प्रतिरक्षा प्रणाली में भी परिवर्तन आया। अब दुर्ग के लिए आदर्श स्थान सबसे ऊंची जगह न रहकर, जैसा कि पहले होता था, मैदान हो गया।

---

*पत्थर की अच्छी क़िस्मों के अभाव की वजह से मध्य एशिया और ईरान में इसी प्रकार की इमारतें कम टिकाऊ सामग्रियों – ईंट, गिट्टी अथवा मिट्टी – से बनायी जाती थीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विजित इलाक़ों की अर्थव्यवस्था और राजनीति में मुख्य स्थान अब पुजारियों-पुरोहितों के बजाय मुस्लिम सामंतों ने ले लिया, जो अपना दबदबा मुख्य तौर पर भाड़े की सेना की मदद से बनाये रखते थे। सारी संचित धन-संपदा उनके द्वारा अनुत्पादक कार्यों पर व्यय कर दी जाती थी। वास्तुशिल्प और कलाओं का स्वरूप अब अधिक लौकिक बन गया और इसके साथ ही उनकी किसी एक ख़ास वर्ग से संबद्धता भी अधिक स्पष्टता के साथ निर्धारित हो गयी।

अब से नगर में सबसे प्रभावी इमारत मंदिर नहीं, अपितु दुर्ग-प्रासाद समुच्चय – एकच्छत्र शासक सामंत का आरक्षित निवास – और मस्जिद बन जाते हैं, जो इस शासक के व्यक्तित्व को अमरता और महत्ता प्रदान करते हैं। ये निर्मितियां उनके इर्द-गिर्द के सामाजिक परिवेश से बिल्कुल अलग और उसके मुक़ाबले में खड़ी दिखायी देती थीं। इन अलग-थलग दुनियाओं के निवासियों के हित उनके परिवर्ती मेहनतकशों के हितों के पूर्णत: विरोध में थे : न धार्मिक विश्वास, न सांस्कृतिक परंपराएं और न रुचियां ही, कुछ भी उनके बीच साझा न था। ऐसी अवस्था में चूंकि ललित कलाओं की बृहदाकार कृतियों की रचना के लिए कोई गुंजायश न थी, अत: वेश्मीय, आलंकारिक तथा अनुप्रयुक्त कलाओं का ही अधिक विकास हुआ।

वास्तुशिल्प और कला में एक सर्वथा नवीन, इस्लाम के सिद्धांतों से संबद्ध सौंदर्यात्मक संकल्पना अधिकृत तौर पर प्रतिष्ठित हुई। बस्तियों के नियमित अभिन्यास तथा वास्तु-समुच्चयों के केंद्रिक रचना-विन्यास को और शुद्ध ज्यामितीय आकृतियों तथा रूपों एवं सुस्पष्ट परिरेखा से युक्त समतलीय परिप्रेक्ष्यहीन वास्तु को आदर्श माना जाने लगा। क़ुरान में मनुष्यों और अन्य जीवों के अंकन पर प्रतिबंध होने के कारण इमारतों की सज्जा में मूर्तिशिल्प और उद्‌भृतियों के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता था। उनकी जगह समतलीय पच्चीकारी ने ले ली। अलंकरण ज्यामितीय और वानस्पतिक डिज़ायनों तक सीमित रह गया, जिसमें कभी-कभी ख़ुशख़त में खुदे हुए लेख पिरो दिये जाते थे। भित्तिचित्रांकन का सहारा बिरले ही और वह भी महलों के भीतरी भागों की सज्जा में ही लिया जाता था। मुग़लों ने भारत में एक नये प्रकार की उद्यान कला का प्रवर्तन किया। राजमहलों और मक़बरो के अहातों में बाक़ायदा नियोजित बाग़ लगाये जाने लगे और ईरान की भांति भारत में भी उन्हें वास्तु-रचाओं की देशिक व्यवस्था का अभिन्न अंग मान लिया गया।

गुजरात, बंगाल, कश्मीर जैसे जिन प्रदेशों में अधिकांश निर्माण स्थानीय राजा करवाता था, जिसने धर्म तो नया अपना लिया था, लेकिन रुचियों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के मामले में अभी भी हिंदू ही था, और जहां निर्माण अपनी परंपराओं का पालन करनेवाले हिंदू कारीगरों द्वारा किया जाता था, वहां इस्लाम की आवश्यकताओं के अनुसार बनायी जानेवाली इमारतों (मस्जिदों और मक़बरों) का निर्माण स्थानीय वास्तु-शैलियों के अनुरूप ही किया गया।

उपमहाद्वीप के उत्तरी भाग का इतिहास अपने अधिकतम सांद्रित और सामान्यीकृत रूप में दिल्ली नगर के इतिहास में प्रतिबिंबित होता है। यह नगर ही नहीं, इसके आसपास का सारा इलाक़ा भी एक बहुत बड़े चौराहे जैसा था, जिसपर न जाने कितनी बार देश के भाग्य का फ़ैसला हुआ। दिल्ली, जो असंख्य सूत्रों से अतीत से जुड़ी हुई है और उपमहाद्वीप में इतनी अनुपम स्थिति रखती है, भारत के राजनीतिक जीवन का केंद्र-बिंदु बनी रही। वह बार-बार उजड़ी और बार-बार पुनरुज्जीवित हुई। दिल्ली की स्थली पर जो भी नगर बसा, वह फिर से शासन का मुख्य पीठ, अर्थात् राजधानी बन गया, जहां से राज्य के क्षेत्र में स्थित अन्य सभी नगरों और बस्तियों पर नियंत्रण रखा जाता था। जन्म के क्षण से ही दिल्ली के लिए निर्धारित यह भूमिका सांयोगिक नहीं हो सकती थी। रोम और इस्तांबूल के अलावा विश्व में शायद ही और कोई नगर हो, जो इतने लंबे समय तक देश के शेष सभी नगरों पर छाया रहा हो।*

दिल्ली की स्थितिपरक विशेषताएं अद्वितीय हैं। दो महान नदी प्रणालियों – गंगा और सिंध – के जलविभाजन पर और दो बड़ी प्राकृतिक बाधाओं – हिमालय और अरावली पर्वतशृंखलाओं – के मध्य में स्थित होने के कारण दिल्ली सदा विदेशी आक्रमणकारियों के लिए हिंदुस्तान पर आधिपत्य की कुंजी रही है। दिल्ली भारत का द्वार है, गंगा की उर्वर घाटी में स्थित उसकी मुख्य धन-संपदा और प्राकृतिक संसाधनों तक पहुंचने की राह है।

हिंदुस्तान उपमहाद्वीप के केंद्र में स्थित होने की वजह से दिल्ली से देश का शासन चलाना और उसकी सुरक्षा सुनिश्चित करना आसान था। दिल्ली सदा साम्राज्यवादी शक्ति का प्रतीक मानी जाती थी और आज वह भारत की एकता का प्रतीक बनी हुई है।

अपने सैनिक-रणनीतिक और प्रशासनिक प्रयोजन के अलावा दिल्ली हमेशा देश का एक सबसे बड़ा शिल्प, व्यापार-वाणिज्य तथा परिवहन केंद्र भी रही है। उत्तर को दक्षिण से और पूर्व को पश्चिम से जोड़नेवाले व्यापार-मार्ग दिल्ली से होकर ही गुज़रते थे। उत्तर-पश्चिमी स्थल मार्ग हिंदूकुश के दर्रों, सिंध के मुहाने और खंभात की खाड़ी तक पहुंचाते थे। दक्षिण में

* Hambley J., *Cities of Moghul India,* London, 1967.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्थलमार्गों से दक्खिन के पठार से होते हुए दक्षिण भारत और वहां से आगे समुद्र द्वारा श्रीलंका द्वीप तक पहुंचा जा सकता था। जब यमुना नदी नौकायन-योग्य थी (उन्नीसवीं शती तक), जलमार्ग के ज़रिये भी दिल्ली से बंगाल की खाड़ी तक पहुंचा जा सकता था। देश के मुख्य गेहूं-उत्पादक इलाक़े के मध्य में स्थित होने के कारण दिल्ली भारत का एक प्रमुख कृषि केंद्र भी थी।

दिल्ली सल्तनत के ज़माने से ही दिल्ली अपने शासकों के ऐश्वर्य तथा विलासितापूर्ण जीवन के लिए प्रसिद्ध थी। इस कारण वहां देश के कोने-कोने से और विदेशों से भी तरह-तरह के कुशल शिल्पियों का सदा तांता लगा रहता था। यहां उत्कृष्टतम क़िस्मों के वस्त्र, आभूषण और अन्य विलासिता की वस्तुएं बनायी जाती थीं। दूसरे धंधे भी सुविकसित थे। दिल्ली के कारीगर आज तक अपनी शिल्पकारिता के लिए विख्यात हैं।

दिल्ली अरावली पहाड़ियों की तलहटी में समुद्रतल से २१६ मीटर की ऊंचाई पर और यमुना के दायें तट पर बसी हुई है।

आज की दिल्ली के क्षेत्र में विभिन्न नामों के आठ ऐतिहासिक नगर स्थित हैं। उनमें सबसे पुराना, जो अनुमानतः १२०० ईसापूर्व में बसाया गया था, इंद्रप्रस्थ है। महाभारत में उसे पांडवों के पांच नगरों में से एक और उनकी राजधानी बताया गया है। पुरातात्त्विक खुदाइयों से इंद्रप्रस्थ के अस्तित्व की पुष्टि हुई है। मध्ययुगीन दिल्ली का इतिहास दो मुख्य कालों में बंटा है। पहला है दिल्ली सल्तनत का काल, जब नगर पैदा हुए, उजड़े, फिर से बसे और अंततः अपने पीछे केवल खंडहर ही छोड़ गये, जो आधुनिक दिल्ली के सारे इलाक़े में फैले पड़े हैं।

दिल्ली अपने चरमोत्कर्ष पर मुग़ल सम्राटों के काल में पहुंची, जिनका लगभग सारे भारत पर आधिपत्य था। उनके द्वारा सत्रहवीं शती में निर्मित शाहजहानाबाद और अत्यंत भव्य महलों से युक्त उसका किला (लाल क़िला) आज तक बढ़ती हुई पुरानी दिल्ली के नाभिक हैं।

दिल्ली का वर्तमान नाम प्राचीन इंद्रप्रस्थ के निकट ७३६ में बसाये गये नगर धिल्लीक के नाम से निकला है।

दिल्ली पहला नगर था, जहां भारत के मुस्लिम विजेताओं की निर्माणात्मक गतिविधियों का समारंभ हुआ। अपनी विजय की स्मृति को अनश्वर बनाने के लिए उन्होंने ११९३ में जीते हुए लाल कोट के खंडहरों पर १२३२ में विश्वप्रसिद्ध क़ुतुब मीनार का निर्माण करवाया। ७३ मीटर ऊंचे इस विजयस्तंभ की चौथी मंज़िल पर उत्कीर्ण एक लेख में कहा गया है: "... तुर्किस्तान, अरब, ईरान के अधिराट्, महा सुल्तान, अति महान इल्तुतमिश के शासनकाल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में निर्मित ..." विजेताओं ने नगर और उसके नाभिक — ग्यारहवीं शती में राजपूत राजाओं द्वारा एक पुराने दुर्ग की स्थली पर निर्मित क़िला राय पिथौरा — को आमूल नष्ट कर डाला था।

क़ुतुब मीनार अपने युग का एक महान वास्तु-स्मारक है। वह अपनी विराटाकृति के कारण इतना नहीं, जितना कि तकनीकी और कलात्मक निष्पादन की निर्दोषता के लिए — और इसका सारा श्रेय स्थानीय निर्माताओं को जाता है — विश्व की सभी ज्ञात मीनारों में सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। उसका निर्माण लाल बलुए पत्थर से हुआ है और अलंकरण के लिए बीच-बीच में भूरा स्फटिक तथा श्वेत संगमरमर भी इस्तेमाल किये गये हैं। हर मंज़िल पर छज्जों के नक़्क़ाशीदार घेरे बने हुए हैं। सजावट के लिए प्रयुक्त अलंकरण, जिनमें सुलेख भी गुंथे हुए हैं, बहुत ही सूक्ष्म और परिष्कृत नक़्क़ाशी का परिचय देते हैं।

क़ुतुब मीनार सामान्य मीनार नहीं, अपितु एक स्मारकीय वास्तु-रचना है। नगर में सर्वोच्च निर्मिति होने के कारण वह प्रेक्षण बुर्ज का भी काम करती थी। क़ुतुब मीनार एक भव्य वास्तु-समुच्चय का अंग थी, जिसमें से आज उसके अलावा सर्वाधिक सुरक्षित हालत में इल्तुतमिश का मक़बरा, जो भारत में निर्मित एक सबसे पहला मक़बरा था, और क़ुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद (११९३–१२००) ही बाक़ी बचे हैं। भारत में आगे चलकर क़ुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद के नमूने पर और भी बहुत मस्जिदें बनायी गयीं।

सल्तनत के सुदृढ़ीकरण के दौर में दिल्ली के क्षेत्र में चार नगर थे, जिनका निर्माण विभिन्न समयों पर हुआ: लाल कोट, सीरी, जहांपनाह और तुग़लक़ाबाद। अब से राजधानी कोई एक ही नगर न थी, अपितु उसमें अर्ध-खेतिहर बस्तियों से घिरे और एक साथ विद्यमान कई शाही निवासस्थलों को शामिल किया जाता था। अरब यात्री इब्न बतूता के अनुसार, जो क़ाहिरा से चीन जाते हुए सन् १३३३ से १३४२ तक भारत में ठहरा था, दिल्ली दुनिया का एक सबसे बड़ा और शानदार शहर था।

दिल्ली के विकास की सर्वांगीण, सुस्पष्ट तसवीर पेश कर पाना कठिन है। १३०३ में लाल कोट के समीप अलाउद्दीन खिलजी द्वारा निर्मित सीरी नगर की वास्तु-रचनाओं में से केवल हज़ार-सुतून (सहस्रस्तंभ) महल के खंडहर और ७० एकड़ क्षेत्रफल पर फैला एक विशाल हौज़ ही बाक़ी बचे हैं। यदि तत्कालीन इतिवृत्तों का विश्वास किया जाये, तो अलाउद्दीन खिलजी के हज़ार-सुतून महल की दीवारें सोने की ईंटों से मढ़ी हुई थीं। संभवतः उस काल में सुल्तानों की अहंमन्यता और ऐश्वर्य की कोई सीमा न थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जहांपनाह (१३२७–१३२९) अधूरा ही रह गया। एक १२ मीटर मोटा परकोटा उसे लाल कोट से जोड़ता था। इस नगर की कई अनुपम और अभियांत्रिकी कौशल की दृष्टि से आश्चर्यजनक वास्तु-निर्मितियां आज तक सुरक्षित हैं, जैसे पिरामिडनुमा बहुमंज़िला महल, साथ स्पैनोंवाला दोतला पुल, एक बड़ा जल बुर्ज, जो नगर की जल-आपूर्ति का नियमन करता था। नगर का जलस्रोत एक बहुत बड़ी कृत्रिम झील थी।

चारों नगरों में सबसे बड़ा ग़यासुद्दीन तुग़लक़ द्वारा १३२१–१३२३ में निर्मित तुग़लक़ाबाद था। उसकी मोटी और मज़बूत क़िले की दीवारें, जिनका घेरा ८ किलोमीटर से ज़्यादा था, उस काल में सबसे दुर्भेद्य मानी जाती थीं। पहली बार नगर और क़िला एक ही अविभाज्य प्रतिरक्षा प्रणाली में सम्मिलित किये गये और आगे चलकर लगभग सभी मुस्लिम शासकों ने नगर निर्माण में इस प्रणाली को अपनाया। तुग़लक़ाबाद पहाड़ी जगह पर बनाया गया था और पहाड़ी भूमि की परिरेखा का अनुगमन करते हुए नगर की भूयोजना एक अनियमित आयत जैसी रखी गयी थी, जिसकी हर भुजा दो किलोमीटर से ज़्यादा लंबी थी। क़िले की दीवारें दक्षिण की ओर से एक विशाल झील द्वारा और दूसरी ओर से, जिधर ज़मीन ढलवां थी और जिधर से बड़ी आसानी से हमला हो सकता था, पानी से भरी गहरी खाइयों द्वारा आरक्षित थीं। भारी-भरकम बुर्जों के बीच ५२ आरक्षित द्वार बने हुए थे। किंतु देखने में अत्यंत प्रभावोत्पादक होने के बावजूद क़िले की दीवारें (९-१५ मीटर मोटी और ३० मीटर तक ऊंची) पर्याप्त मज़बूत न थीं और पहले ही गंभीर हमले में ढह जातीं, क्योंकि उन्हें उस काल में बहुप्रचलित तराशे हुए पत्थरों (आकार ३०×७० सें०) को तीन तहों में तथा केवल भीतर तथा बाहर से चिनने और बीच की जगह रोड़ी से भरने की पद्धति से बनाया गया था। तुग़लक़ाबाद से ही लगा हुआ आदिलाबाद था, जहां सुल्तान के बेटे का आरक्षित महल स्थित था। तुग़लक़ाबाद की जल-आपूर्ति कूओं और चट्टान खोदकर बनाये गये हौज़ों से होती थी, जिनमें बारिश का पानी इकट्ठा कर लिया जाता था।

तुग़लक़ाबाद की रूखी, बृहदाकार वास्तु-रचनाएं समीप ही स्थित पूर्ववर्ती काल की लालित्यपूर्ण और सुअलंकृत इमारतों से बिल्कुल भिन्न दिखायी देती हैं। उनमें उस काल का वातावरण और अपना सारा जीवन सामरिक अभियानों में बिता देनेवाले कठोर शासक का चरित्र प्रतिबिंबित हुआ है।

मुख्यालय-नगरों के अनिश्चित भाग्य और नगरवासियों के लिए उसके जो दुखद परिणाम निकलते थे, उनकी सबसे ज्वलंत मिसाल ग़यासुद्दीन के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उत्तराधिकारी मुहम्मद तुग़लक़ का शासनकाल प्रस्तुत करता है। तुग़लक़ाबाद को बसे पांच वर्ष भी न हुए थे कि मुहम्मद तुग़लक़ ने अपने साम्राज्य की राजधानी भारत के मध्य में अंतरित करने का फ़ैसला किया, जहां से दक्षिणी सीमाओं पर अधिक आसानी से नियंत्रण रखा जा सकता था। १३२७ में वह राजधानी दिल्ली से देवगिरि ले गया, जिसे अब दौलताबाद कहा जाने लगा। तीन दिन तक तुग़लक़ाबाद और आसपास की बस्तियों के निवासियों को नयी राजधानी में जाकर बसने के लिए खदेड़ा जाता रहा। मुहम्मद तुग़लक़ के पीछे-पीछे उसके दरबारियों , राव-उमराओं, फ़ौजियों और नौकर-चाकरों का लशकर भी दौलताबाद के लिए रवाना हुआ। विशेषाधिकारप्राप्त लोगों को उनकी परित्यक्त जागीर-जायदाद के लिए शाही खज़ाने से मुआवज़ा दिया गया और इनामों तथा भत्तों की रक़में दोगुनी कर दी गयीं। दिल्ली और दौलताबाद के बीच ८०० किलोमीटर से ज़्यादा फ़ासला होने के बावजूद समुचित संचार व्यवस्था क़ायम की गयी। दिल्ली, जो बग़दाद और क़ाहिरा से टक्कर लेती थी, उस काल के एक प्रसिद्ध इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी के अनुसार, एकाएक इतना उजाड़ हो गयी कि शहर में और उसके आसपास की बस्तियों में कुत्ते और बिल्लियां भी नहीं रह गयीं।

अन्य स्रोतों के अनुसार दिल्ली फिर भी उत्तर भारत का एक मुख्य नगर बनी रही, हालांकि उसकी शान में काफ़ी कमी आ गयी थी। मुहम्मद तुग़लक़ की मृत्यु के बाद दौलताबाद भी उजड़कर खंडहरों में तबदील हो गया। परित्यक्त तुग़लक़ाबाद फिर न बस सका और हम तक वह बुरी तरह ध्वस्त अवस्था में ही पहुंचा है। अक्षत रूप में केवल ग़यासुद्दीन तुग़लक़ का मक़बरा ही बचा है। चारों ओर से खाई से घिरी यह इमारत एक लघु क़िले जैसी लगती है।

भारतीय मध्ययुगीन नगर निर्माण कला के इतिहास में फ़िरोज़ाबाद एक महत्त्वपूर्ण मंज़िल था, जिसका निर्माण १३५४ में फ़िरोज़शाह तुग़लक़ ने किया था। यह दिल्ली में निर्मित पांचवां नगर और एक ठेठ मुख्यालय-नगर था। उसका विकास लाल कोट की जगह पर बसे पुराने नगर के साथ-साथ हुआ। लाल कोट और उससे लगी बस्तियों और खेती की ज़मीन के साथ फ़िरोज़ाबाद २० किलोमीटर लंबे इलाक़े में फैला हुआ था। अठारहवीं शती के अंत तक दोनों नगरों के बीच प्रतियोगिता-सी चलती रही और ज्यों ही किसी एक की अवनति का दौर आता, वह दूसरे के लिए ईंटों और पत्थरों की खान बन जाता। मुग़लों से पहले दिल्ली में शासन करनेवाले अनेकानेक सुल्तानों और शाहों की इन राजधानियों की आवासीय इमारतों, सड़कों और चौकों का आज नामोनिशान भी नहीं बचा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फिर भी फ़िरोज़ाबाद के अभिन्यास के बारे में हम कुछ अनुमान लगा सकते थे। वह असाधारण था। नगर के नाभिक क़िले – कोटला – से सड़कें पंखे जैसे विभिन्न दिशाओं में जाती थीं। क़िले के मध्य में जामा मस्जिद स्थित थी, जिसके सहन में एक साथ १० हज़ार आदमी नमाज़ पढ़ सकते थे। फ़िरोज़ाबाद के क़िले में स्थित सुनियोजित भवन-समूह आगे चलकर भारत के बहुत-से नगरों में इस प्रकार के वास्तु-समुच्चयों के लिए निदर्श बने। उदाहरण के लिए, शाहजहानाबाद और आगरा में प्रासाद एवं दुर्ग समुच्चय का फिरोज़ाबाद जैसा ही सममित रचना-विन्यास है, जो आपस में जुड़े कई वर्गाकार और आयताकार भीतरी अहातों से बना है। अहातों के चारों ओर बाग़, हमाम, रिहायशी इमारतें और अन्य इमारतें स्थित होती हैं।

फ़ेरियाबाग़, डीग, उदयपुर, आदि स्थानीय शासकों की राजधानियों के अधिक उत्तरवर्ती भव्य वास्तु-समुच्चयों के लिए फ़िरोज़ाबाद के हौज़-ए-ख़ास का सुरम्य रचना-विन्यास आदर्श बना। वह भी क़िले के प्राचीरों के अंदर ही स्थित था और उसमें दरबारी शायर, साज़िंदे, गायक और नर्तकियां रहते थे। हौज़-ए-ख़ास फ़िरोज़ाबाद का मुख्य दर्शनीय स्थल है। एक अविभाज्य इकाई के रूप में संयोजित इमारतों, जलाशयों और बाग़ों के संश्लेषण का यह अनुपम नमूना स्थानीय और विदेशी शिल्पियों के संयुक्त सृजन का परिणाम था। कृत्रिम जलाशयों और सजावटी बाग़ों, जिनमें बीच-बीच में नहरें और फ़ौवारे बने हुए थे, के मध्य में तोरणमंडपों और गलियारों की जाली से सजे हुए महल स्थित थे। वास्तुकार कलात्मक प्रभाव पैदा करने में ही सफल नहीं हुए थे। उनके द्वारा निर्मित अर्ध-जलमग्न इमारतें पानी की सतह पर तैरती हुई सी प्रतीत होती थीं। पानी से शीतल हुई हवा विशेष मोरियों के ज़रिये निचली मंज़िलों से ऊपरी मंज़िलों में पहुंचती थी और इस तरह गर्म मौसम में भी वहां ठंडक बनी रहती थी। कमरों के दरवाज़े और छतों से उतरने की सीढ़ियां सीधे पानी के ऊपर बने चबूतरों पर पहुंचाते थे। खुले, आम तौर पर दोमंज़िले मंडपों, गलियारों और चबूतरों के पीछे भीतरी निजी कक्ष होते थे। ये कक्ष छोटे, सिर्फ़ एक ही दरवाज़ेवाले और अधिक से अधिक ३ मीटर ऊंचे हुआ करते थे।

हौज़-ए-ख़ास की इमारतों में सबसे ऊंचा फ़िरोज़शाह का पिरामिडनुमा पांचमंज़िला मक़बरा है। उसकी संरचना महाबलीपुरम के रथों या बौद्ध विहारों की याद दिलाती है। ऐसी संरचना बाद में फ़तेहपुर सीकरी और सिकंदरा की मुग़ल इमारतों में भी दोहरायी गयी। फ़िरोज़शाह के मक़बरे की ऊपरी छतों से सुव्यवस्थित ढंग से निर्मित नगरीय उद्यानों और उपवनों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(उनकी संख्या १०० से ऊपर थी) का विहंगम दृश्य दिखायी देता था, जिनके लिए फ़िरोज़ाबाद मशहूर था।

फ़िरोज़शाह तुग़लक़ ने सूबों में रणनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण जगहों पर तीन और आरक्षित नगरों का निर्माण भी किया। ये थे फ़तेहाबाद, हिसार और जौनपुर।

१३९८ में उत्तर भारत पर तैमूरलंग का महाविनाशकारी हमला हुआ। इतिहासकार बताते हैं कि जहां भी उसका क़दम पड़ा, सब कुछ उजाड़ हो गया और क़त्ल लोगों की खोपड़ियां ही खोपड़ियां नज़र आने लगीं। दिल्ली इतनी बुरी तरह लूटी और तबाह की गयी कि राजधानी आगरा ले जानी पड़ी। "तैमूर की विनाशलीला के बहुत साल बाद जाकर ही," जवाहरलाल नेहरू 'हिंदुस्तान की कहानी' में लिखते हैं, "दिल्ली मौत की नींद से जागी और जागते ही मुग़ल बादशाहों की राजधानी बन गयी।"

सोलहवीं शती के आरंभ में भारत मुग़लों के अधीन, जो अफ़गानिस्तान और मध्य एशिया से आये थे, फिर से एक बना। उस काल के मिनियेचर चित्र मुग़ल सभ्यता का विशद दृश्य उपस्थित करते हैं। विश्व इतिहास में अनगिनत शासकों ने नयी राजधानियों और शानदार भवनों का निर्माण करके अपनी विजयों का ढिंढोरा पीटने और दुनिया को प्रभावित करने के प्रयास किये हैं, लेकिन इस कार्य में मुग़लों जैसी सफलता बहुत कम को ही मिल पायी। मुग़ल बादशाह हुमायूं ने अपनी ताजपोशी को दिल्ली में एक नया नगर – दीनपनाह – बसाकर मनाया। नगर का शिलान्यास १५३३ में बादशाह, उसके दरबारियों, उलेमाओं, शेखों और विदेशी राजदूतों की उपस्थिति में किया गया। नगर का परकोटा, बुर्ज, दरवाज़े और महल सालभर में ही बनकर तैयार हो गये। उस ज़माने के एक इतिहासकार के अनुसार दीनपनाह का सात मंज़िला ऊंचा शाही महल देखने के लिए दुनिया के कोने-कोने से लोग आते थे। हुमायूं द्वारा आगरा और ग्वालियर में निर्मित महलों के बारे में एक इतिवृत्तकार लिखता है, "...शाही महलों की ऊपरी मंज़िलों पर बैठकर अपने को आसमान की बुलंदियों पर महसूस किया जा सकता था।"

दीनपनाह का निर्माण पूरा भी न हो पाया कि पूर्वी भारत में बसे पठानों के एक वंशज शेरशाह सूरी ने, जिसने अनेक लड़ाइयों में हुमायूं से सफलतापूर्वक लोहा लिया था, दिल्ली पर हमला करके नयी नगरी को जड़ से नष्ट कर डाला। शेरशाह ने दिल्ली में अपना क़िला, जो अब पुराना क़िला के नाम से जाना जाता है, फ़िरोज़ाबाद के खंडहरों पर बनाया (१५४०–१५४५) और पुरानी दिल्ली के इलाक़े में शाहपुर नाम से एक नया नगर बसाया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपनी केंद्रीकृत सत्ता के सुदृढ़ीकरण और देश में व्यापार के विस्तार के उद्देश्य से शेरशाह ने बड़े पैमाने पर सड़कें बनवायीं, जिनमें सबसे बड़ी और मुख्य सड़क आज भी हिंदुस्तान प्रायद्वीप का सबसे बड़ा पारदेशीय महामार्ग है। वह उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत को पूर्वी भारत से जोड़ती है और दिल्ली से गुज़रती है।

शेरशाह के बाद भारत की मध्ययुगीन नगर निर्माण, वास्तु तथा अन्य कलाएं अपने चरमोत्कर्ष के युग में प्रवेश करती हैं। इस युग का आरंभ अकबर (हुमायूं का पुत्र) के शासनकाल के साथ होता है और अंत उसके पोते शाहजहां के काल के साथ। वास्तुशिल्प की उन्नति और नगरों की संवृद्धि में पश्चिमी देशों के साथ व्यापार के विकास के कारण शिल्पोद्योगों के क्षेत्र में आया उत्थान सहायक हुआ। पश्चिम के साथ व्यापार अधिकांशतः पश्चिमी तट के गुजराती बंदरगाहों के ज़रिये होता था।

भूस्वामित्व संबंधी सुधारों और बुद्धिमत्तापूर्ण धार्मिक नीति की बदौलत अकबर विशाल बहुजातीय और बहुभाषी भारत को अपने मातहत बनाये रख सका। धार्मिक सहिष्णुता कलाओं और वास्तुशिल्प के उत्कर्ष में सहायक सिद्ध हुई। उस काल के सर्वश्रेष्ठ हिंदू वास्तुशिल्पी, चित्रकार, कवि और दार्शनिक अकबर के दरबार में काम करते थे और उन्होंने फ़ारसियों तथा मध्य एशियाइयों के साथ मिलकर ऐसी कृतियों का सृजन किया, जो अपने ऊपर भारत और पश्चिम तथा मध्य एशिया के लोगों की सदियों पुरानी परंपराओं के बहुत ही शानदार संश्लेषण की छाप लिये हुई हैं।

विशाल केंद्रीकृत साम्राज्य की सीमाओं की सुरक्षा के लिए एक ही प्रशासनिक केंद्र काफ़ी न था। वास्तव में सबसे पहले मुग़लों ने ही दिल्ली से २०० किलोमीटर दक्षिण में यमुना के तट पर स्थित दूसरे प्रशासनिक केंद्र के रूप में, जो ज़रूरत पड़ने पर राजधानी का काम भी कर सकता था, आगरा के बड़े रणनीतिक महत्त्व को समझा। आम तौर पर दिल्ली को मुग़लों की एकमात्र राजधानी माना जाता है, जबकि आगरा मुख्यतया विश्वप्रसिद्ध ताजमहल की स्थली के नाते जाना जाता है। किंतु मुग़ल साम्राज्य के अस्तित्व के २०० वर्षों में राजधानी कई बार दिल्ली से आगरा ले जायी गयी। अकबर और उसका बेटा जहांगीर आगरा को ज़्यादा पसंद करते थे, जबकि मुग़लों की राजधानी के रूप में दिल्ली को चिर-प्रतिष्ठा शाहजहां ने दिलवायी, जिसने वहां शाहजहानाबाद नाम से एक नया नगर बसाया।

भौगोलिक और राजनीतिक दृष्टि से आपस में गुंथे हुए आगरा-दिल्ली के इस राजधानी-युगल के निर्माण की आवश्यकता तब और स्पष्ट हो जाती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, जब हम उन नगरों ऐतिहासिकतः विकसित स्थितिपरक विशेषताओं पर दृष्टिपात करते हैं। सिंध और गंगा की उपजाऊं घाटियों और यहां के संपन्न तथा जनसंकुल नगरों पर अधिकार के लिए विदेशी शासक हमेशा ललचाते रहते थे। बाहर से आक्रमण के लिए भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा हमेशा खुली रहती थी। रास्ते की सभी बाधाओं को पार कर लेने के बाद आक्रामक अपने को सीधे इन दो महान नदियों की घाटियों में पाते थे, जो उत्तर में तो हिमालय पहाड़ों से घिरी हुई हैं, लेकिन दक्षिण में रेगिस्तान की ओर खुली हुई हैं।

यमुना और चंबल के संगम के निकट स्थित आगरा राजपूताना के मुख्य नगरों पर, राजपूत राजाओं के दुर्गों पर नज़र रखने के लिए आदर्श जगह थी। वहां से दक्षिण में मालवा पर हमले की इच्छुक शत्रु सेनाओं के आने-जाने पर भी सतत निगरानी रखी जा सकती थी। इस तरह उत्तर भारत के शासकों का यह राजधानी-युगल उन तीन मुख्य प्रदेशों पर पूर्ण नियंत्रण सुनिश्चित करता था, जहां देश की मुख्य संपदा और प्राकृतिक संसाधन संकेंद्रित थे। ये प्रदेश थे राजपूताना, मध्य भारत और गंगा की उपत्यका।

भारत के सारे इतिहास में ऐसे वृहद पैमाने पर नगरों, क़िलों, महलों और दूसरी बड़ी इमारतों का निर्माण और कभी नहीं हुआ, जैसे पैमाने पर कि सोलहवीं–सत्रहवीं शतियों में अकबर और शाहजहां के शासनकाल में हुआ था। अकबर को राज्य की सुरक्षा की ज़्यादा चिंता थी। उसके शासनकाल में रणनीतिक महत्त्व के पांच विशाल क़िलों का निर्माण हुआ: आगरा में (१५६४–१५७०), नवनिर्मित फ़तेहपुर सीकरी में (१५७०), अजमेर में (वह राजपूताना में मुग़ल साम्राज्य की अग्रिम चौकी था), इलाहाबाद में (१५८३) और लाहौर में (१५७५)। ये सभी किले बाह्य और भीतरी शत्रुओं से रक्षा के लिए बनाये गये थे और परंपरानुसार निर्धारित जगह–नगर से दूर नदी के खड़े तट–पर अवस्थित थे।

अपने युग की दुर्गनिर्माण कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण आगरा का लाल क़िला है, जो एक पुराने, ईंटों से निर्मित क़िले की जगह पर बनाया गया था। आगरा का लाल क़िला अच्छे से अच्छे हथियारों से लैस शत्रु के भी हमलों को झेल सकता था।* स्थानीय लाल बलुए पत्थर से निर्मित और भारी-भरकम बुर्जों तथा मोखों से युक्त प्रचंड प्राचीरों के दो अर्धचंद्राकार वलय यमुना के खड़े तट को घेरे हुए हैं। प्राचीरों की लंबाई २ किलोमीटर हैं। भीतरी और बाहरी प्राचीरों के बीच की ६ मीटर चौड़ी जगह में खाई

---

* Sidney Toy, *The Strongholds of India*, London, 1957.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खुदी हुई है, जो पानी से भरी रहती थी। खाई पर, हर फाटक के सामने, तुड़वां पुल बने हुए थे। दक्षिणी बुर्ज के समीप हरम की औरतों के लिए स्नानागार बना हुआ था, जहां से नीचे नदी तक सीढ़ियां जाती थीं।

आगरा के क़िले का निर्माण पूरा भी न हुआ था कि अकबर ने वहां से ४० किलोमीटर दक्षिण में सीकरी गांव के निकट एक नये नगर की बुनियाद डाली, जिसे अपनी गुजरात-विजय की स्मृति में उसने फ़तेहपुर सीकरी नाम दिया।* अपने निर्माण के ११ वर्षों (१५६९-१५८०) में यह साम्राज्य का एक सबसे बड़ा नगर और तरह-तरह के शिल्पों, खास तौर से ज़री, कालीन-बुनाई, धातु की वस्तुओं के उत्पादन, आदि का और एशिया यूरोप के अनेक देशों के साथ व्यापार का केंद्र बन गया। नगर का नाभिक बृहदाकार धार्मिक इमारतों और महलों से युक्त एक्रोपोलिस है। यह भारत में एकमात्र एक्रोपोलिस है, जो उसी रूप में सुरक्षित रहा है, जिस रूप में उसका अभिकल्पन और निर्माण किया गया था।

नगर तीन ओर से लाल बलुए पत्थर की दीवारों (मोटाई २.४ मीटर और ऊंचाई ९.६ मीटर) से घिरा हुआ है। चौथी ओर से एक विशाल कृत्रिम झील उसकी रक्षा-परिखा का काम करती है।

किंतु देखने में अत्यंत प्रभावोत्पादक होने के बावजूद सीकरी के अनेकानेक बुर्जों तथा द्वारों से युक्त नगर प्राचीर निवासियों को शत्रु आक्रमणों से नहीं बचा सकते थे। ज्यों ही कोई गंभीर खतरा पैदा होता था, असली बचावस्थल आगरा का क़िला ही बनता था। फ़तेहपुर सीकरी को आगरा से जोड़नेवाले चौड़े मार्ग के दोनों ओर अनगिनत सरायें, दूकानें और दूसरी इमारतें बनी हुई थीं। एक नगर दूसरे में यों जा मिलता था कि जैसे दोनों एक ही नगर-संकुल के हिस्से हों। "आगरा और फ़तेहपुर के बीच १२ कोस (२३ मील) का अंतर है। सारे रास्ते में खाने-पीने की और दूसरी दूकानें हैं, जो इतनी भरी-पूरी हैं कि जैसे मैं शहर से निकला ही न होऊं, और हर कहीं लोगों की इतनी भीड़ है कि जैसे कोई हाट लगी हो," १५८५ में भारत की यात्रा करनेवाले अंग्रेज़ राल्फ़ फ़िच ने लिखा था। फ़तेहतुर सीकरी पहुंचने का मुख्य रास्ता आगरा की ओर से था। यह सीधी, पक्की और दोनों ओर से छायादार पेड़ों से घिरी सड़क सीधे पहाड़ी के ऊपर स्थित एक्रोपोलिस में पहुंचाती थी, जहां दक्षिणी हिस्से में विभिन्न सरकारी और धार्मिक दफ़्तरों की इमारतें,

---

* Smith E. W. *The Moghul Architecture of Fatehpur-Sikri, Agra,* Archaeological Survey, North Western Provinces and Oudh, Allahabad, 1896, 1897, 1898, 1901, parts I-IV.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शाही दरबार और जामा मस्जिद स्थित थे और दूसरे हिस्से में बादशाह और उसके परिजनों के निजी आवास बने हुए थे।

एक्रोपोलिस के नीचे, सड़क के पास दफ़्तरी और कारोबारी इमारतें, सरकारी गोदाम, अस्तबल, हाथीखाना और हमाम स्थित थे। नगर विभिन्न पेशों और जातियों के लोगों के मुहल्लों में बंटा हुआ था। मुख्य सड़क की ओर से जो मुहल्ला एक्रोपोलिस से लगा हुआ था, उसमें बड़ी-बड़ी सरायें, हमाम और बनियों तथा सौदागरों के घर बने हुए थे। नगर के बाहरी छोरों पर, झील के निकट, चमारों, कसाइयों, आदि के मुहल्ले थे और केंद्र में सुनारों और जौहरियों के मुहल्ले।

एक्रोपोलिस के प्रवेश प्रांगण का द्वार – बुलंद दरवाज़ा – मस्जिद की ड्योढ़ी जैसी पारंपरिक शक्ल के एक विजय स्मारक के रूप में बनाया गया था। अपने ही ढंग से अभिकल्पित इस इमारत ने भारतीय शिल्पियों के हाथों ऐसी विशिष्ट महत्ता और लालित्य प्राप्त कर लिया कि जैसे वह कोई भव्य, विशाल मूर्तिशिल्प हो। वह एक ५८ मीटर ऊंचे प्राकृतिक शैल-मंच पर बना हुआ है, जिससे नीचे उतरने के लिए चौड़ी-चौड़ी तिहरी सीढ़ियां बनी हुई हैं। लाल पत्थर से निर्मित बुलंद दरवाज़े की दीवारों पर क़ुरान की आयतों के सुलेखमय डिज़ायन बने हुए हैं, जिन्हें काले और सफ़ेद संगमरमर से जड़ा हुआ है। उसमें गहरी देवलियां बनी हैं और भारतीय परंपरा के अनुसार शिखर भाग मानो हवा में विलयित होते सुंदर, संगमरमर-निर्मित, गुंबददार लघु मंडपों से सजाया गया है।

वास्तुशिल्पी मानो उन वैषम्यात्मक प्रभावों को संप्रेषित कर पाने में पूर्णतः सफल रहे हैं, जो संकरी, धूलभरी, कोलाहलपूर्ण सड़कों से, मस्जिद के बाहर छाये सांसारिकता के वातावरण से सहसा इसी सांसारिकता से निर्लिप्त दुनिया में संक्रमण मन पर छोड़ जाता है। तपती धूप में दसमंज़िले मकान जितनी ऊंची सीढ़ियां चढ़कर दर्शक जब बुलंद दरवाज़े के छायादार संकरे मुहारों से, ऊंची गुंबदों के नीचे से, गुज़रता है, तो एकाएक उसका ऐसे भवन-समूह के वस्तुतः दिव्य सौंदर्य से साक्षात्कार होता है, जो घोर नीरवता में डूबा हुआ है। यहां वह अपने को किसी चौक में नहीं, अपितु एक अत्यंत भव्य, आंखों को चकाचौंध करने की हद तक सफ़ेद प्रांगण में खड़ा पाता है, जिसके ऊपर केवल आकाश का नील वितान है और पार्श्वों में और नीचे केवल संगमरमर का राज्य है। प्रांगण के पश्चिम में अलंकरण-हीन और शानदार मस्जिद स्थित है, जिसके ऊपर तीन श्वेत गुंबद बने हैं।

मस्जिद और उसके बाजू में स्थित शेख़ सलीम चिश्ती की मज़ार के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बाद अकबर और उसके परिजनों के महलों की इमारतें आती हैं। आध्यात्मिकता और असांसारिकता से भरपूर वातावरण का स्थान फिर लौकिकता का वातावरण ले लेता है। इस परिवर्तन को वास्तुशिल्प और रचना-विन्यास की सभी युक्तियों द्वारा ज़ाहिर किया गया है। एक भवन-समूह से दूसरे में संक्रमण करते समय मानसिक छापों में सहसा परिवर्तन निर्माण-सामग्री की बनावट और रंग की मदद से भी पैदा किया जाता है। आवासीय इमारतों में न श्वेत संगमरमर प्रयोग किया गया है, न उनकी दीवारों को क़ीमती पत्थरों के जड़ाऊ काम से सजाया ही गया है। यहां सब कुछ लाल बलुए पत्थर से निर्मित है और भीतरी आंगनों में भी उसे ही बिछाया गया है। यहां दर्शक को अभिभूत सामग्री की बहुमूल्यता और सजावट की उत्कृष्टता नहीं करती, बल्कि निर्मिति व स्थानगत समाधानों की विपुलता तथा बहुविधता, वास्तुशिल्पात्मक तथा कलात्मक रूपों की सादगी तथा उपयोगिता करती है। आध्यात्मिक और लौकिक सत्ता के प्रतीक मस्जिद, बुलंद दरवाज़ा, आदि इमारतों में जो निश्चित व्यवस्था, विविक्तता तथा अविकल सममिति पायी जाती हैं, वैसी आवासीय समूह की इमारतों में नहीं पायी जातीं और उनके स्थिति-निर्धारण में तथा उनकी संरचना की देशिक व्यवस्था में पर्याप्त यादृच्छिकता और उन्मुक्तता बरती गयी हैं।

समस्त आवासीय भवन-समूह का रचना-विन्यास अपने परिदृश्य से एकाकार होकर ऐसा असामान्यतः अविभाज्य बिंब उत्पन्न करता है कि जिसे मानो एक ही शिल्पी ने रचा हो। बड़ी-बड़ी इमारतें, खुले गलियारे, मंडप, पक्के फ़र्शोंवाले आंगन, हौज़ और फ़ौवारे मिलकर एक ऐसी वास्तु-कृति का सृजन करते हैं, जो उजाले और हवा से ओत-प्रोत है। हर कहीं से—खुले आंगनों के बरामदों से, खुली चौरस छतों और मंडपों से, चौड़ी-चौड़ी खिड़कियों तथा झरोखों से सुदूर क्षितिज तक के विहंगम दृश्य दिखायी देते हैं। इन सादी वास्तु-रचनाओं में निहित सौंदर्य और कुछ नहीं, केवल आवश्यकता और व्यावहारिकता की उपज है। छज्जों और लटकती छतों को टेकें देने के लिए नक़्क़ाशी से ख़ूब ज़्यादा सजी हुई मोटी-मोटी दीवारगीरें बनी हुई हैं। आगे को काफ़ी अधिक निकली हुई छतें भरी दोपहरी में भी घनी छाया प्रदान करती हैं। गलियारों के ज़रिये एक इमारत से दूसरी इमारत में छाया ही छाया में पहुंचा जा सकता है। गरम और सूखे मौसम में फ़ौवारेयुक्त हौज़ हवा में ताज़गी और ठंडक फैलाते हैं।

फ़तेहपुर सीकरी की रिहायशी इमारतों की भीतरी बनावट काफ़ी हद तक उन वास्तु परंपराओं की उपज थी, जो भारत की जलवायु तथा रहन-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सहन की विशिष्ट परिस्थितियों में विकसित हुई थीं। हर भारतवासी का घर, चाहे वह किसी ग़रीब की झोंपड़ी हो या किसी धनाढ्य की हवेली अथवा किसी महाराजा का महल, तीन भागों में बंटा होता है: खुला भाग (आंगन अथवा चौक), अधखुला भाग (तिबारी) और उसके पीछे बंद भाग (कोठरी या कोठरियां)। ऐसी ही व्यवस्था फ़तेहपुर सीकरी की सभी रिहायशी इमारतों में भी पायी जाती है।

फ़तेहपुर सीकरी में घरों से संलग्न उद्यान न थे। उनके लिए अलग भूखंड होते थे। कुछ हद तक आंगन भी उद्यान का काम करता था। यहां सभी ओर से इमारतों की दीवारों से घिरे आंगन को भारतीय वास्तुशिल्पियों ने जान-बूझकर ही रिहायशी जगह अथवा घर का सिलसिला, अविभाज्य अंग बनाया है। वह एक बहुत बड़े मुक्ताकाशी कक्ष का आभास उत्पन्न करता है, जिसमें मूर्तिशिल्पों की तरह अलग-थलग खड़ी इमारतें (जैसे दीवाने-ख़ास), मंडप, फूल-पौधे उगाने के चबूतरे, आदि अवस्थित किये गये हैं।

फ़तेहपुर सीकरी के आवासीय भवन-समुच्चय में देशिक विन्यास की एकता का आभास आंगन की सतह पर नज़र डालने से और भी प्रबल हो जाता है, जो उसी पत्थर के फलकों से बना है, जिससे कि आसपास की सभी इमारतें। ऐसे में आंगन में जो कुछेक छतनार छायादार पेड़ हैं भी, वे भी मूर्तिशिल्पों जैसे प्रतीत होते हैं।

एकता का यह आभास आंगन में बने हुए वर्ग, आयत अथवा सलीब जैसे आकारों के हौज़ों से भी भंग नहीं होता है। फ़तेहपुर सीकरी में कोलाहलपूर्ण झरने या फ़ौवारे नहीं हैं। वहां केवल शांत बहती नालियां और हौज़ हैं और वे उसके निवासियों की संगीत गोष्ठियों के लिए आदर्श पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते थे।

जोधाबाई का महल अपने संतुलित अनुपातों और सुघटित रचना-विन्यास से चकित कर देता है। तीन महलों में सबसे दिलचस्प राजा बीरबल का महल है, जो १५७२ में बनाया गया था और जिसमें दो स्वतंत्र, लेकिन साथ ही आपस में जुड़े हुए दो खुली छतयुक्त कक्ष-समूह हैं। स्तंभों पर खड़ा अकबर का पांचमंज़िला ग्रीष्म महल – पंचमहल – आधुनिक इमारत-सा लगता है। उसकी खुली चौड़ी छतों से दूर-दूर तक का दृश्य दिखायी देता है। ये सभी छतें मिलकर एक सीढ़ीनुमा पिरामिड का निर्माण करती हैं। इमारत को सीढ़ीनुमा आकृति प्रदान करने के पीछे मंतव्य यह था कि हर मंज़िल पर ऊपर से खुली हुई सपाट चबूतरे जैसी छत हो।

दीवाने-ख़ास एक आश्चर्यजनक रूप से सादगीपूर्ण दोमंज़िली वर्गाकार इमारत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, जिसकी छत के चारों कोनों पर चार मंडप बने हुए हैं और जो सभी ओर से दिखायी देनेवाले मूर्तिशिल्प जैसा लगता है। उसका केंद्रिक रचना-विन्यास, जिसे केंद्रीकृत सत्ता के प्रतीक के रूप में अभिकल्पित किया गया है, आंतरिक भाग में भी वैसा ही है, जहां बिल्कुल मध्य में, दूसरी मंज़िल के स्तर पर अकबर के सिंहासन का गोल पीठ बना हुआ है। यह सिंहासन-पीठ पंखे जैसी फैली हुई दीवारगीरों से युक्त एक स्थूल स्तंभ पर टिका हुआ है।

आकाश की पृष्ठभूमि पर फ़तेहपुर सीकरी के महलों की परिरेखा में पारंपरिक छतरियां जाली के काम जैसा आभास देती हैं और आच्छादनों की काचित टाइलें धूप में जगमग चमकती हैं। फ़तेहपुर सीकरी का निर्माण बड़ी जल्दबाज़ी में हुआ था, इसलिए उसमें पूर्वनिर्मित ढांचों को जोड़कर निर्माण की विधियों का प्रयोग किया गया, जो भारतीय मंदिरों के निर्माण में भी प्रयुक्त होती थीं। पत्थर की खानों में पहले से तैयार कर लिये गये खंभों और धरनों के ब्लाकों को निर्माणस्थली पर जोड़ लिया जाता था और धातु और लकड़ी की गुज्झियों की मदद से पक्का बना दिया जाता था। बीरबल के महल की गुंबदनुमा छत दोहरी है, ताकि ऊपर के कमरे धूप में ज़्यादा तप न सकें। सरदियों में इमारतों को गरमाने की व्यवस्था की गयी थी। गरम हवा दीवारों के अंदर और फ़र्श के नीचे बिछी नालियों के ज़रिये प्रवाहित की जाती थी।

१५८६ में (कुछ स्रोतों के अनुसार १५८४ में) अकबर ने अपना दरबार फ़तेहपुर सीकरी से लाहौर स्थानांतरित कर लिया, जहां से वह साम्राज्य की अशांत उत्तर-पश्चिमी सीमा पर अधिक कड़ा नियंत्रण रख सकता था। अपने पूर्वी प्रदेशों की देखभाल के लिए वह इलाहाबाद में ठहरा करता था। एक निरंकुश शासक की इच्छा पर स्थापित काफ़ी बड़ी आबादीवाला फ़तेहपुर सीकरी एकाएक और हमेशा के लिए उजाड़ हो गया। बहुत-से निवासियों ने अपने शासक का अनुगमन किया। अकबर द्वारा निर्मित महलों में अब संयोग-वशात् आये हुए साम्राज्य के उच्च पदाधिकारी ही ठहरते थे। नगर में जो लोग रह गये, वे भी आजीविका के साधन खोकर शनैः शनैः आसपास के गांवों और नगरों में बसने को बाध्य हो गये। ऐसा फ़तेहपुर सीकरी के साथ ही नहीं, उन बहुत-से दूसरे नगरों के साथ भी हुआ, जो मुस्लिम शासकों या उनके बड़े सेनानायकों के निवासों के गिर्द बसे थे।

फ़तेहपुर सीकरी के आलीशान, लेकिन अकेले और परित्यक्त, महल और मस्जिदें आज भी आसपास के वीरान मैदान के ऊपर गर्व से सिर उठाये

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खड़े हैं। यह वह नगर था, जिसे पत्थर में ढली परीकथा कहा जाता था। उसके निर्माण के लिए देश-विदेश से सर्वोत्तम कारीगर बुलाये गये थे। सुघट्यता और संपूर्णता की दृष्टि से अनुपम इस नगर-रचना में तत्कालीन भारत के विभिन्न भागों – दक्षिण, गुजरात, बंगाल, सिंध और मुख्य रूप से राजस्थान – की वास्तु और कला शैलियां प्रतिबिंबित हुईं।

मुग़ल शासकों में से जिसने नगर निर्माण में सबसे बड़ा – और अंतिम भी – योगदान किया, वह अकबर का पोता शाहजहां था, जिसने दिल्ली और आगरा में बड़े पैमाने पर निर्माण करवाया। अकबरकालीन वास्तु-रचनाओं और शाहजहां के सृजनात्मक कार्यकलाप के बीच आधी शती से कुछ ही ज़्यादा का अंतराल है। किंतु इस अवधि में देश की कला और वास्तुशिल्प की मुख्य दिशा में काफ़ी परिवर्तन आ गया था।

अकबर का काल एक शक्ति अर्जित करते राज्यरूपी अवयवी का कैशोर्य-काल था। जैसा कि ज्ञात है, अकबर काफ़ी हद तक अपनी राजपूत बेगम के असर में आकर मुस्लिम और हिंदू संस्कृतियों का संश्लेषण हुआ देखना चाहता था, तर्कबुद्धिवाद की ओर झुकाव रखने लगा था और वैभव-विलास की तुलना में मात्र सुविधामय जीवन को प्राथमिकता देता था। सुप्रसिद्ध रूसी साहित्यकार इवान गोंचारोव लिखते हैं "सुविधामय जीवन और सभ्यता लगभग पर्याय हैं, अथवा अगर ठीक-ठीक कहा जाये, तो पहला दूसरे का अनिवार्य, तर्कसंगत परिणाम है।" स्थानीय भूआकृति से पूरी तरह मेल खाते फ़तेहपुर सीकरी की वास्तु-रचनाओं के उन्मुक्त, सुरम्य रचना-विन्यास के मूल में प्राचीन भारतीय सभ्यता के सिद्धांत निहित थे। भारत के लोग प्रकृति से तादात्म्य बनाकर रहते थे, उनकी वास्तु-रचनाएं प्राकृतिक परिदृश्य से जुड़ी हुई और उसका अनुषंग होती थीं, न कि उसे चुनौती-सी देते हुए खड़ी किसी अमूर्त ज्यामितीय रचना की तरह, जैसा कि हम मुस्लिम मतांधों के पदचिह्नों पर चलनेवाले वास्तुशिल्पियों की कृतियों में देखते हैं।

शाहजहां के काल में मुग़ल साम्राज्य अपनी पराकाष्ठा पर था। उसकी संवृद्धि रुक गयी थी और विस्तार की कोई आवश्यकता अनुभव नहीं की जा रही थी। राज्य की सारी शक्ति उसे परेशान करनेवाले असाध्य अंतर्विरोधों के समाधान पर खर्च होने लगी थी।

देश की अर्थव्यवस्था पूरी तरह सामंतों के निजी हितों की सिद्धि का साधन बन गयी थी और किसान तथा शहरी दस्तकार-कारीगर घोर कंगली में रहने को मजबूर हो गये थे।

मुग़लों के सुधारों ने देहाती जीवन की बुनियादों को नहीं छुआ था:

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसान पहले की तरह ही ग्राम-समुदायों में रह रहे थे, जो उन्हें ज़मीन से भूदास से भी ज़्यादा मज़बूती से बांध देता था। नगर और देहात में जाति-प्रथा का पहले जैसे ही बोलवाला था। शिल्पियों की हालत गुलामों से किसी भी तरह बेहतर न थी। उन्हें हाकिमों, सेनानायकों, टैक्स इकट्ठा करनेवालों और दूसरे बड़े अधिकारियों से मिलनेवाले कठिन काम और अमीर-उमराओं तथा उनके असंख्य नौकर-चाकरों तथा हरम (अकबर के हरम में १५०० से ज़्यादा औरतें थीं) की कभी ख़त्म न होनेवाली ज़रूरतें मुफ़्त या मामूली-सी रक़म के एवज़ में ही पूरी करनी पड़ती थीं। सर्वत्र सामंत की मनमानी चलती थी। उसकी मर्ज़ी मेहनतकश लोगों के लिए ही नहीं, व्यापारियों, सौदागरों और महाजनों के लिए भी क़ानून थी। वह उनका धन, उनकी जायदाद किसी भी समय छीन सकता था। देश में प्रायः किसानों की बग़ावतें होने लगीं। बहुत बार लालची सामंत भी विद्रोह का झंडा खड़ा कर देते थे, जिनकी साज़िशों और कुचालों का कोई अंत न था। भारत की अकूत संपदा की शोहरत यूरोपियों को भी खींच लायी थी और उन्होंने देश के पश्चिमी और पूर्वी तटों पर अपनी फ़ैक्टरियां क़ायम कर लीं। सामंतों की पृथकतावादी आकांक्षाओं पर लगाम लगाने के लिए अकबर ने जो नयी भूस्वामित्व नीति अपनायी थी, उसका उल्टा ही नतीजा निकलने लगा था। भूमि को देने-बांटने और उससे लगान वसूलने का अधिकार एकमात्र बादशाह को था। जागीरदार अपनी जागीरें विरासत में नहीं दे सकते थे। इसलिए उनकी न तो भूमि सुधारने में कोई दिलचस्पी थी, न उसकी पैदावार बढ़ाने में ही। उनकी एकमात्र रुचि ज़िंदा रहते उससे ज़्यादा से ज़्यादा आमदनी पाने में थी, ताकि ऐशो-आराम का जीवन व्यतीत कर सकें। मृत्यु के बाद उत्तराधिकार में छोड़ जाने की संभावना न मिलने के कारण जागीरदार अपनी सारी कमाई उड़ा डालते (उनकी मृत्यु के बाद उनकी सारी संपत्ति, यहां तक कि घरेलू चीज़ें और किताबें भी, सरकारी ख़ज़ाने में चली जाती थी।) मालिक की मृत्यु के बाद अथवा उसके बुरे दिन आते ही उसके द्वारा निर्मित पक्की से पक्की इमारतें भी खंडहरों में तब्दील हो जातीं।

वैभव, दिखावे और बड़प्पन की हवस बेइंतहा बढ़ गयी। सामंत अपने जीवनकाल में ही अपने लिए बेहद आलीशान मक़बरे बनवा डालते, जो आनेवाली पीढ़ियों के लिए मनोरंजन की जगह ही बनते। इसी तरह अपने और अपनी बेशुमार पत्नियों के लिए बड़े-बड़े महल भी बनवाये जाते। क़ीमती पत्थरों से कपड़ों, हथियारों और हाथियों तथा घोड़ों की साज़ों को ही नहीं, महलों और मक़बरों की दीवारों को भी सजाया जाता था। शाहजहां द्वारा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपनी बेगम मुमताज महल की याद में बर्फ़ जैसे सफ़ेद संगमरमर से निर्मित मक़बरा ताजमहल, जिसे बनने में १६३० से लेकर १६५२ तक पूरे २२ वर्ष लगे थे, मानो अक़ीक, मैलाकाइट, कहरुबा, पन्ना, मूंगा, आदि तरह-तरह के क़ीमती पत्थरों से सजी झीनी चादर से ढंका हुआ है। वैभव की इस पराकाष्ठा में इमारत के कलात्मक प्रभाव को अधिक सारगर्भित बनाने की आकांक्षा इतनी नहीं झलकती है, जितनी कि निर्माण करवानेवाले की आत्यंतिक उदारता और दंभ झलकते हैं। इस संदर्भ में इवान गोंचारोव के ही ये शब्द बड़े सटीक प्रतीत होते हैं: "वैभव के मुख्य लक्षण हैं दंभ और आनंदोपभोग में फूहड़ता की हद तक अतिरेक। इसी से वैभव अल्पजीवी होता है: वह उत्तेजनापूर्ण क्षणिक जीवन जीता है... उसके पास ही हमेशा उसका अदृश्य शत्रु दारिद्र्य छिपा होता है।"

शाहजहां की निर्माण गतिविधियों का आरंभ १६२७ में आगरा में और अपने युग की भावना से पूरी तरह मेल खाते हुए हुआ। अकबर द्वारा आगरा के क़िले में काष्ठ तथा लाल बलुए पत्थर से स्थानीय लोक-वास्तु की शैली में बनवाये गये भव्य महल (जहांगीरी महल और दूसरी इमारतें) नष्ट हो गये थे। उनकी जगह पर शाहजहां ने अपने लिए मकराना (राजस्थान) से आयातित श्वेत संगमरमर के प्रासाद खड़े करवाये। उनके बाह्य भागों पर अल्पमूल्य रत्नों की जड़ाई का काम किया गया, जो पहले केवल भीतरी भागों को सजाने में प्रयोग किया जाता था। महलों के निर्माण में संगमरमर का प्रयोग निर्माता की रुचि पर ही निर्भर नहीं था। संगमरमर झुलसानेवाली धूप की गरमी को जज़्ब कर लेता है और दूसरे पत्थरों की अपेक्षा उससे निर्मित इमारतों में भीतर अधिक शीतलता रहती है।

आगरा क़िले के महलों के झरोखों और खुली छतों से देखने पर ताजमहल यमुना के तट पर तैरता हुआ सा प्रतीत होता है।

ताजमहल को प्रायः भारत का मोती कहते हैं। लेकिन इस वास्तु-स्मारक को पूरे ही पूर्व का मोती कहना शायद अधिक युक्तिसंगत होगा। इस अनुपम वास्तु-कृति में भारत ही नहीं, मध्य एशिया, ईरान और बैजंतिया के भी वास्तुशिल्पियों की अनेकानेक पीढ़ियों का अनुभव अपने संघनित रूप में साकार बना है। ताजमहल का आद्य-प्ररूप दिल्ली में अकबर द्वारा १५६५ में निर्मित हुमायूं का मक़बरा था, जिसके साथ भारत में सजावटी उद्यान से युक्त ग्राम्य आवास के नमूने के मक़बरों का निर्माण आरंभ हुआ था। वास्तव में स्वयं ऐसे ग्राम्य आवास का रूप भी भारत के ही एक परंपरागत भवन-प्रकार – उद्यान के बीच स्थित बारादरी – पर आधारित था। शाहजहां ने अपने लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी यमुना के दूसरे तट पर वैसा ही लेकिन काले संगमरमर का मक़बरा बनवाने की सोची थी, लेकिन उसकी यह योजना साकार न बन सकी। १६५६ में बेटे औरंगज़ेब ने गद्दी पर क़ब्ज़ा करके उसे क़िले में क़ैद कर लिया, जहां १६६६ में उसकी मृत्यु हो गयी।

शाहजहांकालीन वास्तुशिल्प में देशिक योजना के विभिन्न रूपों के ज्यामितीय सामंजस्यीकरण के वे सिद्धांत अपने शुद्ध रूप में साकार बने हैं, जो कुछ सीमा तक आधुनिक, बीसवीं शती के आंरभ के वास्तुशिल्प के विचारों से काफ़ी मेल खाते हैं। वास्तुशिल्प में सर्वाधिक परिष्कृत रूप वे माने जाते थे, जो परिवेशी प्रकृति से अपाकर्षित किये गये थे, जैसे घन, समांतरषट्-फलक, अर्धवृत्त, बेलनाकृति, आदि। उनका उपयोग भार उठानेवालों अथवा स्वयं उठाये जानेवालों की तरह किया जाता था। वास्तुशिल्प में आंतरिक दिक् की व्यवस्था को बड़ा महत्त्व दिया जाता था। उदाहरण के लिए, बीजापुर में स्थित आदिलशाह का मक़बरा – गोल गुंबज – अर्धवृत्ताकार छत से युक्त एक घनाकृतीय रचना है।

ताजमहल का वास्तुशिल्प अभिव्यंजनापूर्ण मूर्ति-रचनाओं से युक्त भारतीय मंदिरों की भांति वाचाल नहीं है, अपितु संगीत की भांति अपने अमूर्त बिंबों से उद्वेलित करता है। उसमें पारंपरिक आकृतियों का ज्यामितीय सामंजस्यीकरण अपनी चरम परिणति पर पहुंचा है। एक ऊंचे चबूतरे पर स्थित इसकी मुख्य इमारत लगभग घनाकार है और हवा में तिरते हुए से गुंबद से आच्छादित है। वर्गाकार चबूतरे के चार कोनों पर मोमबत्तियों जैसी चार मीनारें बनी हुई हैं। इस काल में मूर्तिकला अवमानित थी और दरबारी मिनियेचर चित्रकला में आडंबरपूर्ण रैखिक शैली का बोलबाला था, जिसे यहां वास्तुशिल्प में भी आरोपित कर दिया गया। मक़बरे की सपाट देवलियों की किनारियां मात्र बालों जैसी सूक्ष्म काली रेखाओं से अलंकृत हैं।

आगरा और दिल्ली के प्रासाद भवन-समुच्चयों में वास्तुकारों ने अक्षीय सममिति के सिद्धांत का पालन किया। महल, उद्यान, अलग खड़े मंडप, खुली छतें और गलियारे, सभी एक ही ज्यामितीय अक्ष में पिरोये हुए हैं। इस प्रकार देखनेवाले के सामने इमारतों और निर्मितियों की एक आरपार संदर्श-वीथियुक्त अवलि उपस्थित होती है और दिग्विस्तार की अनंतता का आभास उत्पन्न होता है। मुग़ल वास्तु-स्मारकों में आंगनों के भीतरी दिक् का जैसा समायोजन किया गया है, उसे उनके पूर्वजों के ख़ानाबदोश जीवन तथा उसकी परंपराओं की प्रतिगूंज कहा जा सकता है। बड़े शाही भोजों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथवा नाटकों और तमाशों के वक़्त पर महल के भीतरी आंगन पर बहुत बड़ी छोलदारी जैसा शामियाना तान दिया जाता था।

खुली चौरस छतों के कोनों पर मेहराव और छतदार मंडप बने हुए हैं। बहुमंजिली इमारत कोई नहीं है। सारे समुच्चय में सब कुछ समग्रत: भी और अलग-अलग रूप से भी सुस्पष्ट तथा सुनियोजित योजना-विन्यास और सुरुचिपूर्णता का परिचय देता है।

शाहजहां के आगरा और दिल्ली में स्थित महल-समुच्चयों में ईरानी ढंग के सज्जा उद्यान बने हुए हैं। उनमें पानी सतत गतिमान रहता है। कहीं वह नहरों में बने फ़ौवारों से फूटता है, तो कहीं कोलाहलपूर्ण झरनों के रूप में बहता है और कहीं अपनी मधुर कलकल-ध्वनि से कानों को आनंदित करता है। मुग़लों को वह उनके पुरखों के देश की पहाड़ी नदियों और झरनों की याद दिलाता रहा होगा।

आगरा में ताजमहल का निर्माण पूरा भी न हुआ था कि शाहजहां ने दिल्ली में एक नये नगर – शाहजहानाबाद – का निर्माण शुरू कर दिया (१६३९–१६४८)। तुग़लक़ाबाद की स्थापना के समय से चली आ रही परंपरा के अनुसार प्रतिरक्षा प्रणाली में नगर और क़िला, दोनों को सम्मिलित किया गया। क़िले का निर्माण आगरा के लाल क़िले के नमूने पर हुआ। अकवर ने मुग़ल साम्राज्य की प्रतिरक्षा के लिए जिस दुर्ग प्रणाली की योजना वनायी थी, यह उसकी आखिरी कड़ी थी। यमुना के खड़े पूर्वी तट पर बने लाल क़िले के गिर्द वसाये गये शाहजहानाबाद को शाहजहां ने परकोटों के अर्धचंद्राकार घेरे मे आरक्षित किया।

दिल्ली के लाल क़िले के अंदर हरे-भरे मैदानों, फूलों की क्यारियों और फ़ौवारों तथा नहरों के वीच शाहजहां ने वैसी ही संगमरमर की इमारतों का निर्माण किया, जैसी पहले उसने आगरा के क़िले में बनायी थीं। उनमें से एक में वह मणि-माणिक्यों से जड़े सिंहासन – "तख़्ते-ताऊस" – पर बैठकर विदेशी राजदूतों को दर्शन देता था। सिंहासन के ऊपर यह उक्ति अंकित थी: "अगर फ़िरदौस बर-रुए ज़मीन अस्त, हमीन अस्तो, हमीन अस्तो, हमीन अस्त" ("यदि धरती पर कहीं स्वर्ग है, तो यहीं है, यहीं है, यहीं है")। वैभव-विलास आसन्न जीर्णता और विघटन का निश्चित पूर्वलक्षण होता है। मुग़ल का सूर्य अस्तांचलगामी हो गया था, किंतु शाहजहां पर तो निर्माण का भूत सवार था।

क़िले के साथ-साथ ही शाहजहानाबाद में बड़ी-बड़ी मस्जिदों तथा सड़कों का निर्माण किया गया, सुनियोजित बाग़ लगाये गये। उसके पांच में से चार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दरवाज़े (उत्तर-पश्चिम में स्थित क़ाबुल दरवाज़ा ढह गया है) और उनसे नगर के भीतर क़िले के फाटकों तक जानेवाली तथा नगर के बाहर राजधानी को देश के रणनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थलों से जोड़नेवाली सड़कें आज भी अवशिष्ट हैं। दरवाज़ों के नाम से मालूम किया जा सकता है कि वहां से सड़क कहा जाती थी।

नगर के मुख्य संरचनात्मक घटकों – क़िलों, मस्जिदों, जो नगर के परिदृश्य में सबसे ऊंची इमारतें थीं, बाज़ारों, जलाशय, महामार्गों और सड़कों के गिर्द पारंपरिक आवासीय निर्माण किया गया। दिल्ली दरवाज़े और क़िले के फाटक के बीच नगर का सबसे बड़ा बाज़ार – फ़ैज़ बाज़ार – विकसित हुआ। जहां चार सबसे महत्त्वपूर्ण बाज़ार आपस में मिलते थे, वहां मुख्य जलाशय – हौज़ काज़ी – स्थित था।

नगर की जल-आपूर्ति के लिए यमुना से नहरें निकाली गयीं। मुख्य नहर कई सड़कों की बग़ल से गुज़रती हुई राजमहलों, हमामों और बाग़ों को पानी मुहैया करती थी। बायें किनारे से निकाली गयी नहर के पानी से खेत सींचे जाते थे। चांदनी चौक से होकर गुजरनेवाली नहर आंशिकतः खुली हुई थी।

नगर की अभिन्यासात्मक संरचना का मुख्य आधार पूर्व से पश्चिम की ओर जानेवाला चांदनी चौक का चौड़ा मार्ग था। तीर जैसी सीधी यह १.३ किलोमीटर लंबी सड़क क़िले के मध्यवर्ती लाहौरी दरवाज़े को नगर के इसी नाम के दरवाज़े से जोड़ती थी, जिससे होकर लाहौर तक, जो उस समय मुग़लों की एक और राजधानी था, एक महामार्ग जाता था। चांदनी चौक शहरपनाह से घिरे नगर को दो असमान हिस्सों में बांटता है, जिनमें से छोटा उत्तर में है और बड़ा दक्षिण में।

उत्तरी इलाक़े में अठारहवीं शती के आरंभ तक ही बाग़ों और उपवनों के बीच बहुसंख्य आलीशान हवेलियों और कोठियों का निर्माण हो चुका था। यहां बड़े-बड़े व्यापारी और सौदागर रहते थे। दक्षिणी हिस्से में कारीगर, दस्तकार और छोटे व्यापारी रहते थे और यहां की आबादी भी बहुत घनी थी। अनगिनत पतली-पतली और टेढ़ी-मेढ़ी गलियोंवाले इस इलाक़े के पूर्व में दरियागंज की बस्ती थी, जहां यूरोपीय सौदागर और ईसाई मिशनरी रहते थे। शाहजहानाबाद का यह यूरोपीय मुहल्ला आम अंग्रेज़ मुफ़स्सिली क़सबों के नमूने पर बना था। यहां पेड़ों से घिरी आरामदेह दोमंज़िली काटेजों के बीच एक गिरजा भी स्थित था।

शाहजहानाबाद उत्तर और पश्चिम में नगर प्राचीर के बाहर भी फैला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था। पश्चिम की ओर से पहाड़ियों से घिरी पहाड़गंज और किशनगंज की वस्तियों में पहले से ही कुम्हार और चमार बसते आये थे। यमुना से निकाली गयी मुख्य नहर के किनारे-किनारे अनगिनत फलोद्यान, साग-सब्ज़ियों के खेत और दुग्ध तथा पशुपालन फ़ार्म स्थित थे, जो नगर को ताज़ी खाद्य-सामग्रियां मुहैया करते थे।

शाहजहनाबाद एक ठेठ क़िस्म का उत्तर भारतीय नगर था। उसकी संरचना उसकी जीवन-सक्रियता में सहायक और उसके अनुरूप थी।

गुमनाम वास्तुशिल्पियों द्वारा तरह-तरह की कोष्ठिकाकार इकाइयों से, जो वंद दीवारों के ज़रिये आपस में एक दूसरी से और सड़क से भी पृथक्कृत हैं, बुना गया शाहजहानाबाद का नगरीय ताना-बाना अपनी बनावट में जीवन-संचार के नियमों के वशीभूत जीव शरीर के अणुओं तथा परमाणुओं से निर्मित कोशिकीय ऊतक की याद दिलाता है। सारे भारत की तरह यहां भी गोत्र संबंधों के अवशेषों और जातिगत अंतरों का बोलबाला है। उनके अनुरूप बहुत पुराने ज़माने से ही भू-उपयोग का एक विशेष संविभाजन अस्तित्व में आ गया था, जो पुराने अहमदाबाद में, कलकत्ता के कुछ भागों और बड़े गांवों में भी पाया जाता है। इस संविभाजन के अनुसार लोग अलग-अलग इलाक़ों में अकेले-अकेले नहीं, बल्कि अपनी जाति (वर्ण), पेशे, धर्म, भाषा अथवा समान मूल के लोगों के समूहों के रूप में बसते हैं।

बस्ती-संरूप की इस प्रणाली के मुताविक़ नगर, जो आरक्षित द्वारों (शाहजहानावाद में ऐसे पांच द्वार हैं) से युक्त दीवार से घिरा हुआ है, अपने में एक संपूर्ण अवयवी होने के नाते भीतर से सड़कों और गलियों द्वारा सोपानिक क्रम में कई भागों में बंटा हुआ है। सबसे बड़ी इकाई प्रशासनिक इलाक़ा – थाना – है, जिसकी निश्चित सीमाएं होती हैं। थाने के अंतर्गत आनेवाला इलाक़ा अपने भीतर सड़कों द्वारा बहुत-सी आवासीय निर्मिति-समूहों में बंटा होता है, जिन्हें मुहल्ला कहते हैं।

मुहल्ला एक प्रकार से क़िले के अंदर क़िला है। वह भी चारों ओर से दीवार से घिरा होता है, जिसके दरवाज़े रात में वंद कर दिये जाते हैं। वाहरी लोग मुहल्ले में सहजता से प्रवेश नहीं पा सकते। मुहल्ला प्रशासनिक इकाई नहीं है, बल्कि अपनी ही व्यवस्थाओं और नियमोंवाली एक तरह की सामाजिक संस्था है। मुहल्ले में लोग एक ही जाति या वर्ण के होते हैं, एक ही भाषा बोलते हैं, एक ही धर्म को मानते हैं और सामान्यतया उनका भौगोलिक तथा नृजातीय मूल भी एक ही होता है। हर मुहल्ले की अपनी पंचायत होती है, जो निवासियों के सामाजिक और निजी आचार-व्यवहार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के नियम निर्धारित करती है और उनके पालन पर नज़र रखती है। अनाथों और अपाहिजों की देखभाल, भरण-पोषण भी उसी का काम है। गांव छोड़कर शहर आनेवाला हर आदमी अपनी ही जाति या पेशे के लोगों के मुहल्ले में जाकर बसता है, क्योंकि अन्यत्र उसके लिए कोई स्थान नहीं है।

हर मुहल्ले का अपने निवासियों की जाति अथवा पेशे के अनुसार, या मुखिया के नाम पर या जहां वह मुहल्ला स्थित है, वहां के किसी पहचान-चिह्न के मुताबिक़ नाम होता है। मुहल्ले का नाभिक तो अपरिवर्तित रहता है, लेकिन बाह्य सीमाएं बदलती रहती हैं। शाहजहानाबाद में बहुत-से मुहल्लों में प्रवेश का द्वार तो निचली मंज़िल पर है, लेकिन उससे पड़ोस के दूसरे मुहल्ले में केवल ऊपरी मंज़िल पर बने द्वार से ही पहुंचा जा सकता है। हर मुहल्ले में मंदिर अथवा मस्जिद और बाज़ार तथा प्रारंभिक स्कूल अवश्य होते हैं। सड़क की ओर से मुहल्ला केवल जालीदार खिड़कियोंवाली दीवारों से बंद होता है, जिसे देखकर राहगीर को लग सकता है कि वह मानो किसी निर्जन बस्ती में पहुंच गया है। लेकिन वास्तव में इन दीवारों के पीछे घरों, हरे-भरे अहातों और गलियों में जीवन खौलता-उफनता रहता है।

मुहल्ला अपनी सड़कों और गलियों के जाल द्वारा अधिक छोटी आवासीय इकाइयों में बंटा होता है, जो मुहल्लों जैसे ही आपस में द्वारयुक्त दीवारों के ज़रिये पृथक्कृत होती हैं। इन इकाइयों में एक अथवा कई परिवार और कभी-कभी तो पूरा का पूरा खानदान, जिसका एक ही मुखिया होता है, रहते हैं। आम तौर पर ऐसे एक आवास-समुच्चय में आपस में जुड़े हुए कई-कई अहाते और ग़ैर-रिहायशी इमारतें होती हैं। यहीं कर्मशालाएं भी होती हैं, जिनमें औरतें और बच्चे काम करते हैं।

दस्तकारी की जो चीज़ें तैयार की जाती हैं, वे वहीं मुहल्ले में अथवा पड़ोस के मुहल्ले में बेच दी जाती हैं। कभी-कभी माल को ठेलों या पीठों पर लादकर कहीं पिछवाड़े की गलियों में स्थित विशेष गोदामों में पहुंचाया जाता है, जहां उसकी छंटाई, वर्गीकरण, आदि किया जाता है और फिर दूकानों या बाज़ारों में बेचने के लिए भेज दिया जाता है। निश्चय ही इस तरह के धंधे और व्यापार में बिचौलिये बहुत होते हैं, जिसका नतीजा यह होता है कि न तो उत्पादक को अपनी मेहनत का समुचित प्रतिदान मिल पाता है, न ग्राहक को ही उचित मूल्य पर माल प्राप्त होता है, जबकि कुछ लोग-बिचौलिये – भरपूर मुनाफ़ा बटोरते हैं।

शाहजहानाबाद की सड़कें बहुउद्देश्यीय हैं। उनपर नगर का जीवन उफनता-छलकता हुआ प्रवाहित होता है, थोक और खुदरा व्यापार चलता है, अपने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फ़न के माहिर सुनार, दर्ज़ी, नाई, मोची और दूसरे मेहनतकश लोग काम करते हैं। दोनों ओर से सड़कें ऐसे लगती हैं कि जैसे वे एक दूसरे से सटी दूकानों, कर्मशालाओं, ढाबों, आदि का, जो बहुत बार तो फ़ुटपाथ तक को घेर लेते हैं, एक अंतहीन सिलसिला हों।

संकरी, तंग गलियों से गुज़रकर, जहां प्राय: मकानों की ऊपरी मंज़िलें सिर के ऊपर झूलती लगती हैं (१८६० में शाहजहानाबाद का पुनर्निर्माण किये जाते समय ऐसे मकानों के निर्माण पर पाबंदी लगा दी गयी थी, पर फिर भी वे आज भी मौजूद हैं), जब आप किसी बाज़ार की ओर मुड़ते हैं, तो सहसा अपने को एक खुली, उजली जगह पर पाते हैं। यह चौक है। यह आम तौर पर कोई चौराहा, चौराहे का कोना, किसी सड़क या गली का आगे से बंद छोर या वह जगह होती है, जहां सड़क चौड़ी हो जाती है। चौक भारतीय नगर की एक बहुत महत्त्वपूर्ण, अनुपम और सदियों से अपरिवर्तित विशेषता है।

मुहल्ले के विपरीत चौक की निश्चित सीमाएं होती हैं, जिनपर लोगों के किसी एक समूह अथवा पूरे समुदाय का दावा होता है। चौक में मुहल्ले का फाटक होता है, जिसके पास रात में पहरेदार तैनात रहता है। चौक एक तरह का सक्रिय सार्वजनिक केंद्र है। उसके आसपास की ज़मीन के उपयोग की अलग ही प्रणाली है। चौक में आम तौर पर चाय की दूकानें, पान की दूकानें, फूलों की दूकान और पंसारी तथा बिसाती की दूकानें स्थित होती हैं। वहां मेले और हाटें लगती हैं। इस स्थानीय सार्वजनिक केंद्र के काम की कोई निश्चित समय-सारिणी नहीं होती, लेकिन किसके बाद क्या होना है, ऐसी अघोषित व्यवस्था फिर भी काम करती है। सुबह चौक में कपड़े धोये-सुखाये जाते हैं, कूएं के पास औरतें पानी भरने के लिए इकट्ठा होती हैं। दिन में वह बच्चों के खेलने का मैदान बनता है और शामों को यहां महफ़िलें जमती हैं।

नगर के जीवन में चौक का कितना बड़ा महत्त्व है, इसका अनुमान इस तथ्य से भी लगाया जा सकता है कि नगर में अवैध रूप से बसे हुए बेघर लोग बसेरे की घोर ज़रूरत होने पर भी कभी सार्वजनिक इस्तेमाल की इस जगह के छोटे से छोटे हिस्से पर भी दखल नहीं करते।

चांदनी चौक – शाहजहानाबाद की मुख्य सड़क – मेले-त्यौहार मनाने और शाम के समय घूमने निकलने के लिए उसके निवासियों की प्रिय सड़क थी और है। उसके दोनों ओर बड़ी-बड़ी सार्वजनिक इमारतें, सरायें, धर्मशालाएं, धनी लोगों की हवेलियां और दूकानें बनी हुई हैं। ठंडक बनाये रखने के लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसके किनारे पेड़ों की क़तारें लगायी हुई थीं और नहरें खोदी गयी थीं, जिनमें यमुना का पानी बहता था।

जब शाहजहानाबाद बसाने की योजना बनी थी, तो शायद तभी तय कर लिया गया था कि सबसे बड़ी मस्जिदें कहां स्थित होंगी। इसलिए उनका निर्माण भी क़िले के साथ सत्रहवीं शती में ही पूरा हो गया था। मस्जिदें इबादत की जगह होने के अलावा सार्वजनिक केंद्र का काम भी करती थीं। उनके गिर्द हमेशा बाज़ार और दूकानें बनायी जाती थीं। इसके अलावा ऊंची मीनारों से युक्त मस्जिदें नगर की राह दिखानेवाले और बहुत बार निगरानी रखने के काम आनेवाले बुर्जों का काम करती थीं।

चांदनी चौक के दोनों छोरों पर दो मस्जिदें बनायी गयीं – क़िले के फाटक के पास सुनहरी मस्जिद और नगर के लाहौरी दरवाज़े के पास फ़तेहपुरी मस्जिद। लेकिन शाहजहानाबाद में सबसे ऊंची और दर्शनीय जामा मस्जिद (१६३६–१६४८) थी, जो सारे भारत की एक सबसे बड़ी मस्जिद है। उसके भीतरी अहाते में एक साथ १० हज़ार से ज़्यादा लोग नमाज़ पढ़ सकते हैं। दस मीटर ऊंचे आधार-पीठ पर खड़ी और तीन विशाल प्याजनुमा गुंबदीय शिखरों से अलंकृत यह सुघड़, लालित्यपूर्ण और भव्य इमारत आसपास के इलाक़े पर छायी हुई किसी बृहद मूर्तिशिल्पीय रचना जैसी प्रतीत होती है। मस्जिद के भीतरी अहाते की ऊंचाई से खिड़कियों की मेहराबों के पार यमुना और उसके तटों पर फैले खेतों का विहंगम दृश्य दिखायी देता था। जामा मस्जिद नगर के दक्षिणी भाग में बनायी गयी थी और उसका अग्रभाग क़िले के दिल्ली दरवाज़े की ओर रखा गया था। जुम्मा (शुक्र) के रोज़ बादशाह अपने परिचरगण के साथ इस दरवाज़े से निकलकर जामा मस्जिद में नमाज़ पढ़ने आता था।

फ्रांसीसी यात्रियों के अनुसार सत्रहवीं शती में दिल्ली किसी भी बात में पेरिस से पीछे न थी। दिल्ली शहर पूर्व का एक सबसे खूबसूरत शहर था। उसका महत्त्व इतना बड़ा था कि शाहजहानाबाद को एशिया का रोम कहा करते थे। दिल्ली के रूस समेत पूर्व और पश्चिम के बहुत-से देशों के साथ व्यापारिक संबंध थे। नगर में थोक व्यापार की ५२ मंडियां थीं। औरंगज़ेब के शासनकाल (१६५६–१७०७) में नगर की आबादी कोई २० लाख तक पहुंच गयी थी।

मुग़ल साम्राज्य का ह्रास आरंभ हो चुका था। मुग़लों के अंतहीन सैनिक अभियानों ने और सामंतों के लोमहर्षक अत्याचारों और उत्पीड़न के विरुद्ध जन-विद्रोहों ने देश को टुकड़े-टुकड़े कर डाला था। बाहर से आक्रमणों ने मुग़ल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साम्राज्य के ध्वंस की प्रक्रिया को पूरा कर दिया। सबसे अधिक दुर्दशा दिल्ली की हुई। ईरानियों (१७३७) तथा अफ़गानों (१७६१) के विनाशकारी आक्रमणों और दीर्घकालीन गृहयुद्धों के बाद १८०३ में दिल्ली की आबादी घटकर डेढ़ लाख ही रह गयी। १८०३ से दिल्ली पर ईस्ट इंडिया कंपनी के सौदागरों का कब्ज़ा हो गया और १८५८ में जब ईस्ट इंडिया कंपनी ख़त्म कर दी गयी, तो दिल्ली ब्रिटेन के बादशाह के नियंत्रण में आ गयी, जिसने कलकत्ता को भारत की राजधानी बनाया। १८५७ में जब भारत में पहला स्वाधीनता संग्राम छिड़ा, तो दिल्ली उसका केंद्र बनी।

वर्तमान शती के आरंभ में अंग्रेज़ सरकार राजधानी कलकत्ता से फिर दिल्ली ले आने के लिए मजबूर हुई। दिल्ली मानो पुनरुज्जीवित हो उठी। अंग्रेज़ों ने शाहजहानाबाद से लगे इलाक़े में नयी दिल्ली बसायी, जो पुरानी दिल्ली में मिले बिना अपना अलग जीवन जीने लगी। दिल्ली आज भी उत्तर भारत का प्रमुख व्यापारिक और औद्योगिक केंद्र बनी हुई है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तीसरा अध्याय

राजस्थान के नगर

पूर्ववर्ती दो अध्यायों में हमने मध्ययुगीन भारत की नगर निर्माण कला की उन शैलियों का विवेचन किया, जो देश के दक्षिणी और उत्तरी भागों के लिए सर्वाधिक लाक्षणिक थीं। परस्पर तुलना करने पर वे भारतीय नगर निर्माण कला के विकास के पथों का बहुत ही वैषम्यपूर्ण चित्र प्रस्तुत करती हैं।

उत्तर-पश्चिम भारत में स्थित राजस्थान के मध्ययुगीन नगर इन दो में से किसी भी शैली का प्रतिनिधित्व नहीं करते, यद्यपि उनकी स्थापना और विकास भी उसी सामंतवादी युग में हुआ था। राजस्थान के नगरों की अपनी ही नियति और जन्म, संरचना तथा निश्चय ही वास्तुशिल्प की भी अपनी विशिष्टता रही है। भारतीय नगर निर्माण का संक्षिप्त से संक्षिप्त इतिहास भी राजस्थानी नगरों के विवेचन के बिना अधूरा रहेगा। उनके जैसे नगर भारत में अन्यत्र कहीं नहीं मिलते। दूसरी ओर, भारत की प्राचीन नगर सभ्यता का पुनर्जागरण भी और कहीं से ज़्यादा हमें वहीं दिखायी देता है।

राजस्थान के नगर, जिनमें अधिकांशत: वैदेशिक व्यापार से मालामाल बने हुए व्यापारी और महाजन रहते थे, बहुत बातों में इटली के पुनर्जागरणकालीन नगरों की याद दिलाते हैं। जर्मन विद्वान रायटर ऑस्कर लिखते हैं कि भारत के और सभी नगरों की अपेक्षा संभवत: वे ही अपनी संरचना में और आवासीय भवनों की भव्यता में इतालवी नगरों से सबसे ज़्यादा साम्य रखते हैं।

राजस्थानी नगर मुख्यतया पारवहन व्यापार की वजह से फूले-फले थे। वे उन व्यापारिक सार्थ-मार्गों पर बसे हुए थे, जो उत्तर भारतीय नगरों को गुजरात के बंदरगाहों से और उनके ज़रिये पश्चिम और पूर्व एशिया की मंडियों से जोड़ते थे। ये नगर सबसे पहले व्यापार और शिल्प के केंद्र थे और इस कारण उनका स्वरूप मंदिर-नगरों और मुख्यालय-नगरों की तुलना में अधिक नागर तथा प्रगतिशील था। हम उत्तर भारतीय मुख्यालय-नगरों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के प्रासादों तथा दुर्गों के सौंदर्य पर मोहित हो सकते हैं और जिस अनुपम कौशल के साथ दक्षिण भारतीय वास्तुकारों तथा मूर्तिशिल्पियों ने चट्टान में जटिल मंदिर-रचनाओं का सृजन किया, उसे देखकर दांतों उंगली काट सकते हैं। लेकिन हम भली-भांति जानते हैं कि यह सब अप्रत्यावर्तित रूप से अतीत का अंग बन चुका है और हमारे लिए भारतीय वास्तुशिल्प के शानदार स्मारकों के रूप में ही शेष रह गया है, जबकि राजस्थान के नगर अपनी संरचना में कोई बुनियादी परिवर्तन अनुभव किये बिना आज भी विकास कर रहे हैं।

भारत का वर्तमान राजस्थान राज्य पहाड़ों, रेगिस्तानों और विरले नखलिस्तानों का इलाक़ा है और बीसवीं शती के मध्य तक राजपूताना कहलाता था, जो अनेकानेक राजपूत रियासतों में बंटा हुआ था।

आरंभिक मध्ययुग में, अर्थात् बारहवीं शती में भारत पर मुसलमानों के आक्रमण से पहले तक राजपूताना विभिन्न राजपूत वंशों के अधिकार में स्थित प्रदेशों की, जिनमें लगभग सारा उत्तर व मध्य भारत आ जाता था, परिधि पर स्थित इलाक़ा मात्र था। अंग्रेज़ इतिहासकार विंसेंट स्मिथ लिखते हैं, "उन्होंने (राजपूतों ने) इतनी महत्त्वपूर्ण स्थिति प्राप्त कर ली कि हर्ष की मृत्यु के बाद से भारत पर मुसलमानों की विजय तक के काल को, जो सातवीं शती के मध्य से बारहवीं शती तक जारी रहा, यदि राजपूत काल कहा जाये, तो ग़लत न होगा। लगभग सभी राज्यों में राजपूत कहलाये जानेवाले वंशों अथवा कुलों का ही शासन था।"

खेद की बात है कि सातवीं से बारहवीं शती तक के इस अत्यंत दिलचस्प काल की नगर निर्माण कला के ऐसे कोई स्मारक अवशिष्ट नहीं रहे हैं, अन्यथा राजस्थान की निर्माण तथा कला परंपराओं के स्रोतों से संबंधित बहुत-सी बातें स्पष्ट हो सकती थीं।

पुरातत्ववेत्ताओं ने पाया है कि राजस्थान के क्षेत्र पर तीन-चार सहस्राब्दी पहले अनेक हड़प्पाई नगरों और बस्तियों (उनमें सबसे बड़ा नगर कालीबंगन था, जिसका हम ऊपर उल्लेख कर आये हैं) का विकास हुआ था, किंतु शीघ्र ही रेगिस्तान ने उन्हें सदा-सदा के लिए निगल लिया।

मध्ययुगीन राजस्थानी नगरों और उनके इन अति पुरातन पूर्वगामियों के बीच कहीं कोई संबंध तो नहीं है? विशेष अनुसंधानों के बिना इस प्रश्न का अभी कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता। दूसरी ओर, राजस्थानी नगरों के संस्थापकों का इतिहास बताता है कि यहां की नगर निर्माण परंपराएं अधिक उत्तरकालीन स्रोतों से, अर्थात् उन नगरों से उद्भूत हुई थीं, जो उत्तर भारत में मुसलमानों के आगमन से पहले फूले-फले थे और बाह्य आक्र-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मणों तथा आंतरिक परस्पर सांघातिक युद्धों के दौरान ध्वस्त हो गये थे।

उत्तर-पूर्व में दिल्ली से लेकर दक्षिण-पश्चिम में खंभात की खाड़ी तक फैली अरावली पर्वतमालाएं राजस्थान को दो भागों में बांटती हैं। गुजरात की सीमा के पास माउंट आबू में, जहां श्वेत संगमरमर से ग्यारहवीं-चौदहवीं शतियों के विश्वप्रसिद्ध जैन मंदिर बने हुए हैं, इस पर्वतमाला का सर्वोच्च शिखर स्थित है (१०६९ मीटर)।

अरावली के एक ओर पश्चिम में थार का विशाल रेगिस्तान फैला पड़ा है, जिसने हड़प्पा सभ्यता के नगरों और उन्हें एक दूसरे से जोड़नेवाले मार्गों को निगल लिया था। इस मरुस्थल के नख़लिस्तानों में मध्ययुग में पारवहन व्यापार के आधार पर अनेक नगर बसे, जो आज भी ज्यों के त्यों खड़े हैं, जैसे जैसलमेर, बीकानेर, राजगढ़, आदि। राजपूताना में व्यापार का एक सबसे बड़ा केंद्र मारवाड़ का पाली नामक नगर था। यहां से गुज़रनेवाले कारवां-मार्गों पर ऐसे व्यापारिक नगर पैदा हुए, जैसे सांचोर, भीमल और जागौर। व्यापार का एक उत्कर्षमान केंद्र अजमेर था, जो मुग़लों के ज़माने में मुख्यालय-नगर भी रहा था। व्यापार और शिल्प के केंद्र बीकानेर, जोधपुर, मेवाड़, आदि कालांतर में इन्हीं नामों की अनगिनत रियासतों की राजधानियों में परिणत हो गये और आज राजस्थान राज्य के ज़िलों के मुख्यालय हैं। नगरों के इर्द-गिर्द की बस्तियों के निवासी मुख्यतया पशुचारण के धंधे में लगे होने की वजह से आज भी अर्ध-ख़ानाबदोश और बहुत ही कठिन जीवन बिताते हैं।

अरावली के पश्चिम में स्थित भाग की तुलना में पूर्व में स्थित भाग की भू-आकृति अधिक नरम ढलानोंवाली और पठारी है, जिसमें बीच-बीच में अनेक उर्वर घाटियां हैं। यहां कूओं और तालाबों के पानी से सिंचाई करके खेती की जा सकती है और प्राकृतिक परिवेश जीवन के लिए अधिक अनुकूल परिस्थितियां मुहैया करता है, यद्यपि अंधड़ों के समय थार का रेगिस्तान अपनी गरम रेतों से कभी-कभी यहां के खेतों, गांवों और नगरों को भी ढक देता है।

देश के उत्तर-पश्चिम में अवस्थिति ने राजस्थान को स्वाभाविकत: भारत तथा बाह्य विश्व के बीच सेतु बना दिया। प्राचीनतम काल से ही अनेक सार्थ-मार्ग राजस्थान से होकर गुज़रते थे। उन्हीं व्यापारिक मार्गों से विदेशी आक्रामक भारत के दक्षिणी और दक्षिण-पश्चिमी भागों में भी पहुंचते रहे। हिमालय की तलहटी के साथ गंगा की घाटी और पंचनद के बीच फैला उपजाऊ मैदान थार मरुस्थल द्वारा सिंधु उपत्यका से पृथक्कृत प्रायद्वीपीय भारत के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नैसर्गिक स्थलीय द्वार का काम करता है। इस द्वार से ही विदेशी आक्रमणकारियों के गिरोह घुसा करते थे। उनमें से कुछ शीघ्र ही अपने पीछे लूटपाट और विनाशलीला के बाद उजड़े हुए नगर और गांव छोड़कर वापस चले जाते थे और कुछ न्यूनाधिक लंबी अवधि के लिए ठहरकर विजेताओं के रूप में देश पर शासन करने लगते थे।

बारहवीं शती के अंत से मुस्लिम विजेताओं ने राजपूत राजाओं को उपजाऊ मैदानों से राजस्थान के सूखे, रेगिस्तानी इलाक़ों में खदेड़ना शुरू कर दिया। यहां उन्होंने अपने नये राज्य स्थापित किये और नयी राजधानियां बसायीं, जिनमें से अधिकांश आज भी राजस्थान के मुख्य नगर हैं। नये प्रदेश में राजपूत राजाओं को बारहवीं शती के अंत से लेकर चार सदियों तक उत्तर भारत के मुस्लिम शासकों से लगातार लोहा लेते रहकर अपनी स्वाधीनता की रक्षा करनी पड़ी। संघर्ष मुख्यतया दिल्ली से पश्चिमी तट के बंदरगाहों तक जानेवाले मार्गों पर स्थित रणनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण क़िलों पर अधिकार जमाने के लिए हुआ करता था। दिल्ली से अरावली पर्वतमाला के दक्षिण-पूर्व में तीन स्थलमार्ग जाते थे, जिनपर ग्वालियर, अजमेर और रणथंभौर के क़िलों से नियंत्रण रखा जाता था (आज दिल्ली से उन्हीं दिशाओं में तीन रेलमार्ग जाते हैं, जो उसे झांसी, अजमेर और रतलाम से जोड़ते हैं)।

राजपूतों को राजस्थान की प्राकृतिक सीमाओं के भीतर सीमित कर देने की प्रक्रिया बारहवीं शती के अंत से पंद्रहवीं शती के अंत तक जारी रही। सोलहवीं शती के आरंभ में राजपूत राजाओं की भूतपूर्व शक्ति कुछ समय के लिए फिर कौंधी और उनकी सीमाओं का विस्तार हुआ। इस काल में दुर्ग तथा प्रासाद निर्माण कला के ऐसे भव्य नमूनों का सृजन हुआ, जैसे ग्वालियर का क़िला, जो अकबर के आगरा के क़िले का आद्य-प्ररूप बना, और चित्तौडगढ़ का क़िला।

राजपूत शक्तिशाली मुग़लों के सामने न टिक सके। सोलहवीं शती के मध्य में उनकी रीढ़ मुग़लों के शस्त्रबल ने नहीं, अपितु सम्राट अकबर की दूरदर्शितापूर्ण नीति ने तोड़ी। अकबर की नीति राजपूताना के राज्यों को मुग़ल साम्राज्य में पूर्णतः विलयित करने के बजाय अपने सामंत राज्य बनाने और उनके सत्तारूढ़ वर्गों को अपना मित्र, संश्रयी बनाने की थी।

"मुग़लों और राजपूतों के सहयोग ने राज्य प्रणाली, प्रशासन और सेना पर ही नहीं, उत्तर भारत की कला, संस्कृति और समस्त जीवन-पद्धति पर भी असर डाला। मुग़ल अभिजात वर्ग का शनैः शनैः आत्मसात्करण होता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गया और राजपूतों तथा दूसरे भारतीयों ने फ़ारसी संस्कृति का प्रभाव महसूस किया," जवाहरलाल नेहरू 'हिंदुस्तान की कहानी' में लिखते हैं। लेकिन इस प्रभाव ने राजपूत समाज की बुनियादों को संभवतः नहीं छुआ। जातिव्यवस्था की जड़ें, भूस्वामित्व के रूप और धर्म ज्यों के त्यों बने रहे। नगर निर्माण कला और वास्तुशिल्प परंपरागत ढंग से विकसित होते रहे। प्रभाव केवल दरबारी कला – मिनियेचर और अलंकरण कला – पर ही पड़ा। यह संयोग की बात नहीं है कि राजस्थान के स्थान-नामों में फ़ारसी-अरबी मूल के शब्दों के बजाय संस्कृत मूल के शब्दों का ही बाहुल्य है, जैसे "गढ़", "पुर", इत्यादि।

मुस्लिम शासकों के मुख्यालय-नगरों के विपरीत, जो अपने संस्थापकों के साथ ही विनष्ट हो जाते थे, राजपूत नगरों का भाग्य उनके शासकों के भाग्य से प्रभावित नहीं होता था, इसलिए वे अधिक दीर्घस्थायी सिद्ध होते थे। दक्षिण भारत की तरह राजपूताना में भूमि पर दाय-अधिकार मान्य था। व्यापार और वाणिज्य ग़ैर-राजपूत जातियों के लोगों के हाथों में था। इस प्रकार राजपूत राजाओं की समृद्धि पूर्णतः भूमि से होनेवाली आमदनी पर निर्भर थी। अतः भूमि की वजह से उनके बीच लगातार लड़ाइयां और झगड़े होते रहते थे। सोवियत भारतविद अ० म० क्याजिन्स्काया लिखती हैं "राजपूत भूमि के लिए कोई भी अपराध कर सकता था। पिता पुत्र को मार डालता था और पुत्र पिता को। ऊंचे घरानों की महिलाएं अपने निष्ठावान सूरमाओं को विष दे देती थीं। राजा अपने वफ़ादार मंत्रियों को मरवा डालते थे।"*

राजपूताना में भौतिक संपदा का मुख्य उत्पादक किसान था। कुछ गांवों को मिलाकर बना ग्राम-समुदाय आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर था और खेती तथा शिल्पों की सभी वस्तुओं का उत्पादन स्वयं उसके ही सदस्यों द्वारा किये जाने के कारण व्यापार एवं विनिमय की कोई ज़रूरत महसूस नहीं करता था। ऐसी अर्थप्रणाली और अत्यधिक राजनीतिक विभाजन ने राजस्थान में सामंतवाद के विकास को धीमा कर दिया। राजपूताना का मध्ययुगीन समाज दो विरोधी वर्गों में बंटा हुआ था: सामंत और किसान। व्यापारिक और महाजन तबक़े सामंत वर्ग से घनिष्ठतः जुड़े हुए थे। सामंत वर्ग में सर्वोच्च स्थान राजाओं – राज्यों के शासकों – को प्राप्त था। प्रशासन प्रणाली का सोपान-क्रम कुलगत संबंधों पर आधारित था। राजा के दरबारियों में सेनापों-

---

*क्याजिन्स्काया अ० म०, 'राजस्थान', मास्को, १९६२, पृ० ११०। (रूसी में)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तियों और मंत्रियों के अलावा वास्तुकारों, चित्रकारों, चिकित्सकों और ज्योतिषियों को भी सम्मिलित किया जाता था।

राजस्थान में सामंती व्यवस्था का वास्तविक सुदृढ़ीकरण उत्तर-मध्ययुग में हुआ, जब परस्पर-सांघातिक युद्ध लगभग समाप्त होने को आ गये और मुद्रा तथा वित्त संबंध विकास करने लगे। अब कृषिप्रधान दक्षिण-पूर्व और पशुपालनप्रधान उत्तर-पश्चिम के बीच श्रम-विभाजन भी अधिक स्पष्टता के साथ निर्धारित हो गया। उनके बीच माल-विनिमय होने लगा।

राजस्थान की अर्थव्यवस्था में भारत के अन्य भागों और विदेशों के साथ व्यापारिक संपर्क बहुत महत्त्वपूर्ण बन बैठे। जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में "मुग़ल साम्राज्य राजपूतों को मध्य एशिया के बियाबान पहाड़ों से लेकर आसाम के दलदलों तक, काश्मीर की हिमाच्छादित चोटियों से लेकर महाराष्ट्र के पहाड़ी क़िलों तक फैली विशाल और बहुविध दुनिया के संपर्क में लाया।" राजस्थानी नगरों के बाज़ारों में अब एशिया, अफ़्रीका, यूरोप के बहुत-से देशों के और यहां तक कि अमरीका के भी माल देखे जा सकते थे। सागरपार से आयातित मालों से लदे कारवां गुजरात के बंदरगाहों से राजस्थान होते हुए मुग़ल साम्राज्य के नगरों में पहुंचते थे और वहां से उत्तर भारत, काश्मीर तथा चीन के मालों से लदे-फंदे वापस लौटते थे।

सत्रहवीं शती के पूर्वार्ध में भारतीय समुद्री व्यापार कुछ समय के लिए रुक जाने से कारवां व्यापार में विशेष तरक़्क़ी हुई। यह वह समय था, जब समुद्री मार्गों के नियंत्रण के लिए अंग्रेज़ों और पुर्तगालियों के बीच संघर्ष चल रहा था।

व्यापार का विकास हुआ, तो स्थानीय कच्चे माल के आधार पर शिल्पोत्पादन बढ़ा। विदेशी मंडियों में राजस्थानी कारीगरों द्वारा निर्मत तमंचों और तलवारों, गहनों और तांबे व चांदी की वस्तुओं की बड़ी क़द्र की जाती थी। अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण के साथ नगरों के राजनीतिक महत्त्व में वृद्धि हुई। पाली, भीलवाड़ा और जलालपाटन नगरों को राजाओं से सिक्के ढालने का अधिकार, नगर का शासन चलाने तथा व्यापारिक विवादों में मध्यस्थता करने के लिए पंचायत चुनने का अधिकार और दूसरे बहुत-से विशेषाधिकार मिले।

अठारहवीं शती तक व्यापारी और महाजनी पूंजी काफ़ी बढ़ गयी, लेकिन उसके आगे विकास में कुछ दुर्लंघ्य बाधाएं खड़ी थीं। ऐसी ही स्थिति एक वक़्त ज़ारशाही रूस में भी पैदा हुई थी और उसके बारे में फ़्रेडरिक एंगेल्स यह लिखते हैं: "पूर्वी शासन पूंजीवादी समाज के अनुकूल नहीं है। इसकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गारंटी नहीं कि हासिल किया हुआ बेशी मूल्य क्षत्रप और पाशा नहीं खसोट लेंगे। बुर्जुआ उद्यमशीलता की पहली बुनियादी शर्त – व्यापारी के जीवन और संपत्ति की निरापदता – भी मौजूद नहीं हैं।"

कारवां व्यापार और बाह्य आक्रमणों का निरंतर ख़तरा, ये दो महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कारक थे, जिन्होंने इस भौगोलिक प्रदेश की प्रकृति तथा जलवायु की विशिष्टताओं के साथ मिलकर यहां के नगरों के भाग्य तथा स्वरूप को निर्धारित किया।

इन परिस्थितियों में नगरों की संरचना कुछ ऐसी रखी गयी कि वे व्यापार-केंद्र और प्रतिरक्षा-दुर्ग की अपनी भूमिका सफलतापूर्वक निभा सकें। विभिन्न राजपूत रजवाड़ों के बीच अनवरत युद्धों और प्रदेश की कठोर जलवायु को देखते हुए नगर की प्रतिरक्षात्मक भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण बन जाती है। राजस्थानियों को नगर की दीवारें और क़िला बाह्य और आंतरिक शत्रुओं से ही नहीं, पहाड़ों और जंगलों में रहनेवाले हिंस्र जानवरों और प्राकृतिक प्रकोपों से भी रक्षा प्रदान कर सकते थे। ऐसी स्थिति में आवश्यक प्रतिरक्षा दीवारें स्थानीय भूरेखा का अनुगमन करती हुई न केवल नगर को, अपितु आसपास के गांवों और खेतों को भी अपने घेरे में ले लेती थीं। राजस्थान के नगरों के प्रतिरक्षामूलक स्वरूप के दृष्टिगत उन्हें दुर्ग-नगर की संज्ञा देना क़तई ग़लत न होगा।

राजपूताना का इतिहास अंतहीन प्रतिरक्षात्मक और परस्पर सांघातिक युद्धों का इतिहास है और इस कारण उसके सारे विशाल क्षेत्र पर क़िले, परकोटे, बुर्ज और आरक्षित नगर फैले पड़े हैं। गर्व से सिर उठाये खड़े राजस्थान के अभेद्य दुर्ग देखने में ऐसे लगते हैं कि मानो अपने परिवेश – रूखे पहाड़ी भूदृश्य – के सहज, अविभाज्य अंग हों। पत्थर और उत्कृष्ट कोटि के राजगीर सहजता से उपलब्ध होने की वजह से स्वाभाविक ही था कि यहां के नगरों के प्रस्तरनिर्मित भवन शिल्प की दृष्टि से उत्कृष्ट हों। यहां के निर्माता पत्थर के अतिरिक्त और कोई निर्माण-सामग्री जैसे जानते ही न थे। राजस्थान के नगरों में आज भी जो बात आकृष्ट करती है, वह है उनका निष्ठुर सौंदर्ययुक्त सुस्पष्ट नागर स्वरूप। एक-दो मंज़िले भवनोंवाले अधिसंख्य भारतीय नगरों के विपरीत, जो अपने परिवेश के अंगभूत उद्यानों और बाग़-बग़ीचों में खो जाते हैं, राजस्थान के नगरों की बहुत ही संहत संरचना है। यहां नगरवासियों को कृषिगत क्षेत्रों से पूर्णतः असंपृक्त रखा गया है। भवन अधिकांशतः बहुमंज़िले हैं और इस कारण आबादी की सघनता बहुत ज़्यादा है – कभी-कभी तो आधुनिक भारत के नये नगरों से भी दुगुने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से ज़्यादा। राजस्थान के नगरों का जन्म और विकास ज़्यादातर स्वतःस्फूर्त ढंग से हुआ। उनकी स्थापना अथवा निर्माण में उनके भावी विकास की संभावनाओं को ध्यान में नहीं रखा गया था।

निर्माण सामान्यतया क़िले के साथ शुरू होता था। उसके लिए सबसे ऊंची जगह चुनी जाती थी। फिर आबादी की जल-आपूर्ति के लिए कूएं और तालाब खोदे जाते थे। राजस्थान के सूखे अंचल में पानी कठिनाई से और ज़मीन में बहुत गहरे खुदाई करने पर ही उपलब्ध हो पाता था (उदाहरणार्थ, बीकानेर में कुछ कूएं १३० मीटर गहरे हैं)। तालाब सूखे के दिनों के लिए जलागार का काम करते थे और नगरवासी उनमें नहाते भी थे।

तालाब के समीप आम तौर पर बाज़ार चौक स्थित होता था। तालाब और बाज़ार चौक लोगों, स्थानीय और आगंतुक व्यापारियों, नगरवासियों और ग्रामवासियों के आपस में मिलने-जुलने की दो मुख्य जगहें थीं। धार्मिक त्यौहारों के दिनों में यहां आज भी मेले लगते हैं।

दक्षिण भारत में मुख्य आर्थिक शक्ति ब्राह्मण पुरोहित वर्ग था और सामाजिक जीवन में प्रमुख स्थान मंदिर को प्राप्त था। किंतु राजस्थान में सबसे प्रभावशाली और संपन्न लोग व्यापारी तथा महाजन थे, जिन्होंने जैन मंदिरों के निर्माण को प्रोत्साहित किया। मंदिरों के भीतर लौकिक जीवन की किसी अभिव्यक्ति के लिए कोई स्थान न था और नगर के जीवन में मंदिर कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाते थे। मंदिर प्रायः क़िले की पहाड़ी की जड़ में बाज़ार चौक के रास्ते में बनाया जाता था। आम नागरिकों, राजा, सामंतों और पुरोहितों के मिलने की एकमात्र जगह होने के कारण मंदिर कुछ हद तक समाज के विभिन्न तबक़ों के बीच संयोजन कड़ी का काम करता था। बीकानेर में मारवाड़ी व्यापारियों और बनियों ने अपना सबसे बड़ा मंदिर, जो उनकी संपदा के आगार का काम भी करता था, सुरक्षा के उद्देश्य से क़िले के भीतर बनाया था।

क़िला, तालाब और बाज़ार चौक, ये तीन जगहें राजस्थानी नगर के संरचनात्मक कीलक थे। उनकी अवस्थिति के अनुसार ही सड़कों का जाल विकसित होता था। हर सड़क सीढ़ियों जैसे ऊपर उठती हुई क़िले की ओर जाती थी। मुख्य सड़कों के चौराहे पर बाज़ार चौक और आम तौर पर उसके समीप ही तालाब स्थित होता था। नगर में इमारतों का निर्माण इन तीन संरचनात्मक घटकों को और साथ ही भू-आकृति को ध्यान में रखकर किया जाता था। पूर्वनिर्मित भवनों अथवा भवन-समूहों के बीच खाली छूटी जगहें शनैः शनैः बाद में नयी इमारतों द्वारा भरती जाती थीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजस्थानी नगर की सभी मुख्य सड़कें तालाब की ओर भी ले जाती हैं। वे आपस में गौण, ज़्यादा तंग तथा शांत सड़कों और गलियों से जुड़ी होती हैं, जिनसे चौक के ज़रिये रिहायशी मुहल्लों के भीतरी अहातों में पहुंचा जा सकता है। बाज़ार चौक से निकलनेवाली सड़कों पर बाज़ार चौक जैसी ही व्यापारिक सरगर्मी और उससे घनिष्ठतः संबद्ध शिल्पोत्पादन सक्रियता बनी रहती है। बहुधा कारीगर अपने उत्पाद स्वयं ही बेचते हैं। दूकानें और कर्मशालाएं निचली मंज़िलों पर होती हैं और ऊपरी मंज़िलें रिहायश के काम आती हैं।

अनगिनत उपनदियों और धाराओंवाली बहुसलिला नदियों जैसे भारतीय नगर की सड़कें नगरीय जीवन की सतत हलचल से सदा परिपूर्ण रहती हैं और इसमें व्यवधान केवल गहरी रात में और वह भी बहुत कम समय के लिए ही पड़ता है। राजपूताना के मध्ययुगीन नगर की सड़क आधुनिक नगर निर्माता के लिए भी अनुकरणीय हो सकती है। अपने स्वरूप तथा आकृति की दृष्टि से यह नगर के ताने-बाने का एक सर्वथा परिपूर्ण संरचनात्मक व देशिक घटक है। नगरीय जीवन का एक जीवंत और विकासमान अंग होने के नाते सड़कों का जाल उसके साथ ही बदलता और उसकी अपेक्षाओं के अनुरूप अपने को ढालता जाता है।

राजस्थानी नगरों में योजनाकार के संकल्प के अनुसार निर्मित तीर जैसी सीधी और अपनी लंबाई तथा एकरूपता से ऊबानेवाली सड़कें नहीं हैं। यहां सड़क एक के बाद एक करके जो अनगिनत छापें छोड़ती है, उनकी बहुविधता और इमारतों व रिक्त स्थानों के अप्रत्याशित समन्वयों से अभिभूत कर डालती है और वह भी ऐसी सहजता तथा सौंदर्य के साथ कि जैसा केवल प्रकृति में ही दिखायी देता है। कहीं कोई पगडंडी तालाब या बाज़ार का मार्ग प्रशस्त करते हुए शीघ्र सड़क में परिणत हो जाती है, तो कहीं कोई सड़क घटना-प्रवाह से किनारे पड़कर कुछ समय बाद मात्र पगडंडी बनकर रह जाती है। इलाक़े के जटिल भू-परिदृश्य में लोगों को सुविधाजनक मार्ग-सा दिखाती हुई सड़क इस परिदृश्य की रेखाओं का अनुगमन करती है। वह सीढ़ियों जैसे कभी नीचे जाती है, तो कभी ऊपर और अगर ज़रूरत हुई, तो एकाएक इधर या उधर मुड़ भी जाती है और हर बार अपने मोड़ों से नवागंतुक को चक्कर में डाल देती है। ये मोड़ या घुमाव सौंदर्यवादी नगर-योजनाकार की सनकें नहीं, बल्कि परिस्थितियों की, कठोर आवश्यकता की उपज हैं। सड़क को, जो सर्वाधिक आवागमन की जगहों पर सीधी और चौड़ी हो जाती है, आसानी और किफ़ायत मे आगे ऐसे ही बढ़ाया जा सकता है। जहां भी संभव होता है, सड़क राहगीर को तेज़ धूप से या अंधड़ों से बचाती है। घुटन के मौसम में वह गर्मी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से थके-हारे आदमी को हवा के हल्के आकस्मिक झोंके द्वारा राहत प्रदान करती है। सड़क की संकरे भाग में एक दूसरे से सटे मकानों की क़तार के बीच की खाली जगहें हवा का आर-पार संचार सुनिश्चित करती हैं। आर-पार हवा के झोंकों का स्रोत आसपास की इमारतों के भीतरी अहाते भी हो सकते हैं।

अतीत की रूमानियत से ओतप्रोत पुराने राजस्थानी नगरों की संकरी सुरम्य सड़कों में एक सम्मोहनकारी आकर्षण है। वे कलाकार की ही नहीं, अपितु घोर छिद्रान्वेषी अर्थशास्त्री की अपेक्षाओं की भी तुष्टि करती हैं। वे चौड़ी सड़क से अधिक किफ़ायती होती हैं। उनकी चौड़ाई आम तौर पर समीपवर्ती इमारतों की ऊंचाई से कम होती है। संकरी सड़कें आज के बड़े आधुनिक नगरों के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। ऐसी सड़कों के निर्माण पर कम सामग्री खर्च होती है और फिर वे ज़मीन भी कम घेरती हैं, जिसकी क़ीमत आज दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है। इसके अलावा, राजस्थान जैसी भौगोलिक परिस्थितियों में संकरी सड़क बहुत गर्म अथवा ठंडी हवाओं से और तेज़ धूप से बचाव करती है।

अप्रत्याशित ढंग से मुड़ जानेवाली सर्पिल सड़कें वास्तव में नगर-निर्माताओं की सनक नहीं, अपितु जिस भूखंड पर वे बनी हैं, प्रकृति द्वारा उसे प्रदत्त अनुपम विशेषताओं को सुरक्षित रखने की चिंता की अभिव्यक्ति हैं। सदियों से खड़ा कोई वृक्ष हो या कोई विचित्राकार चट्टान, इस सबको नगर के सौंदर्य, विलक्षणता और उपयोग के लिए बचाकर रखा जाना चाहिए। राजस्थानी नगर में सड़क के कुछ भागों में, जैसे मोड़ों अथवा कोनों पर , मंदिर और विशेष तरह की इमारतें ही बनायी जाती हैं।

नगर की सड़कों और चौकों की देशिक संरचना का गठन उसी सिद्धांत के अनुसार और उसी ढंग से किया जाता है, जिस ढंग से कि आंगनों से युक्त आवासीय इमारत के भीतर की जगह की व्यवस्था की जाती है, उसे खुले, बंद, अर्ध-बंद स्थानों में बांटा जाता है। सड़क को स्वतंत्र महत्त्व के अलग-अलग देशिक खंडों में बांटा जाता है और सड़करूपी साझे सूत्र में पिरोये हुए वे सब एक ही माला के विभिन्न मनकों जैसे प्रतीत होते हैं। इस देशिक विभाजन की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार है: सड़क कभी सहसा संकरी हो जाती है और लगता है कि इमारतें राहगीर पर गिर ही पड़ेंगी और कभी उतने ही अप्रत्याशित ढंग से इमारतें पीछे हटकर सड़क को सहसा चौड़ा बनाते हुए एक जटिल आकृति के खुले चौक का निर्माण कर देती हैं।

सड़क के किसी कोने में सारी जगह को घेरे हुए एक विशाल बरगद या पीपल खड़ा हो सकता है, जिसकी दूर-दूर तक फैली टहनियों और नये

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तनों की छांह में थके-हारे लोग और जानवर आराम करने बैठ सकते हैं। यह धूप और गरमी से बचने की जगह ही नहीं है। यह डिबियानुमा इमारतों और सड़कों के रचना-विन्यास में समाविष्ट एक सजीव प्रकृति-तत्त्व भी है, जो सबको आकृष्ट करनेवाला एक सहज सार्वजनिक केंद्र बन गया है। इसलिए यह सांयोगिक नहीं है कि भारत में सदियों से लोग अपने नगर या गांव के जीवन से संबंधित प्रश्नों पर आपसी सलाह-मशविरा करने के लिए किसी पेड़ के नीचे या खुले आसमान तले एकत्र होते आये हैं। चौक में कूएं या फ़ौवारे के रूप में पानी का कोई स्रोत भी हो सकता है, जिसके गिर्द आम तौर पर धूप में चमकते तांबे के घड़े उठाये और रंग-बिरंगी पोशाकें पहने औरतों की भीड़ लगी रहती है। चौक में इमारतों की छांह में पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़ों से चिना हुआ चबूतरा भी बना हो सकता है, जिसपर बैठकर सुस्ताया जा सकता है।

साधनों और स्थान की किफ़ायत की कोशिशों के कारण इमारतें एक दूसरे से सटाकर, बीच में खाली जगह छोड़े बिना बनायी जाती हैं। हर इमारत एक दूसरे से और सड़क तथा चौक से जुड़ी हुई होती और एक अविभाज्य समष्टि का अंग बनती है। आवासीय इमारतों में आंगन अथवा आंगनों की शृंखला भी महत्त्वपूर्ण संगठनात्मक भूमिका अदा करते हैं।

सभी ओर से चहारदीवारी से घिरे आंगन में एक खास तरह की जलवायु बनाये रखी जाती है, जो कि बाहर तापमान के भारी उतार-चढ़ाव को देखते हुए बहुत ज़रूरी है। राजस्थान में दिन और रात के तापमान में कभी-कभी १५-२०° सें० तक का फ़र्क़ हो जाता है। बंद आंगन की वजह से दिन की गरमी ठंडी रात के लिए और रात की शीतलता दिन के समय के लिए संचित रखी जा सकती है। धूप आंगन के कोने-कोने में पहुंचती है। चहारदीवारी द्वारा तेज़ हवाओं और रेत के अंधड़ों से बचे होने से आंगन में पेड़-पौधे भी लगाये जा सकते हैं। संपन्न नागरिक के घर में एक नहीं, अलग-अलग मात्रा में विविक्ति प्रदान करनेवाले कई-कई आंगन होते हैं। पक्के फ़र्शवाले ड्योढ़ी जैसे प्रवेश-आंगन के बाद — बाहरी लोग अधिक से अधिक यहीं तक आ सकते हैं — एक काफ़ी खुला, हरभरा आंगन आता है, जहां पेड़ों की छाया में घर के लोग अपना खाली समय बिताते हैं। इस आंगन में आम तौर पर कूआं या फ़ौवारा भी होता है। गोदाम, कर्मशाला, गोशाला, आदि के तौर पर इस्तेमाल होनेवाला आंगन घर के पीछे या बग़ल की गली की ओर बना होता है।

बहुत ही उलझी, तंग और केवल पैदल चलनेवालों के लिए बनी मुहल्ले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के अंदर की गलियों की भूलभुलैयां में अनजान आदमी आसानी से भटक सकता है। एक दूसरे के बहुत क़रीब-क़रीब बनी इमारतें, जिनकी पहली मंज़िल की दीवारों में कोई खिड़की तक नहीं होती, बीच में बस मुश्किल से एक-दो आदमियों के गुज़रने लायक़ जगह ही छोड़ती हैं। दूसरी और अधिक ऊपर की मंज़िलों पर दीवारें ज़्यादा हटकर होती हैं, जिससे टैरेसनुमा खुली छतें बन जाती हैं, जिनपर गर्मियों की रातों में सोया भी जा सकता है। ऊपर को चौड़ी होती जाती जगह घुटन को ख़त्म करने के साथ-साथ धूप और हवा के पहुंचने में सहायक होती है। दूसरी मंज़िलें आम तौर पर गली से चौड़ी, खुली सीढ़ियों से जुड़ी होती हैं। मकानों के अंदर की संकरी, खड़ी और ऊंची पैड़ियोंवाली सीढ़ियां आम तौर पर दीवार के भीतर बनी होती हैं।

इन आम विशेषताओं के साथ-साथ, जो राजस्थान के सभी दुर्ग-नगरों में पायी जाती हैं, इन नगरों में से हर एक की कुछ अपनी अनुपम विशेषताएं भी हैं। कुछ में उनका शुद्ध प्रतिरक्षात्मक स्वरूप साफ़-साफ़ झलकता है (जैसे, उदाहरण के लिए, जैसलमेर और जोधपुर में) और दूसरे अपने भव्य औत्सविक रूप के लिए प्रसिद्ध हैं (जैसे, उदाहरण के लिए, उदयपुर)। उनमें निर्माण में प्रयुक्त पत्थरों के रंग और बनावट की दृष्टि से भी अंतर पाया जाता है। क़िला, तालाब और बाज़ार-चौक सबमें हैं, किंतु उन्हें हर नगर में वहां की स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अवस्थित किया गया है।

अरावली पहाड़ों के पश्चिम में थार मरुस्थल के लगभग छोर पर जैसलमेर* का भव्य और दुर्गम नगर स्थित है। वह सारा सुनहरे बलुए पत्थर का बना हुआ है और ऐसी उत्कृष्ट कारीगरी का परिचय देता है कि जैसी सिर्फ़ स्थानीय शिल्पी ही प्रदर्शित कर सकते थे। घरों के छज्जों, बारजों और झरोखों पर इतनी अधिक और इतनी बढ़िया नक़्क़ाशी की हुई है कि जैसे सौंदर्य में वे एक दूसरे से टक्कर ले रहे हों। जैसलमेर को "रेगिस्तान का गुलाब" यों ही नहीं कहा जाता। इस नगर के वास्तुशिल्प में जो चीज़ सबसे ज़्यादा प्रभावित करती है, वह है प्रतिरक्षा प्राचीरों, बुर्जों और सबसे ऊंची जगह पर स्थित क़िले की अभिभूतकारी मज़बूती और विशालता।

जैसलमेर जैसी जगह स्थित है और वहां जो प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध हैं, उनके अनुसार ही स्थानीय आबादी ने अपने लिए व्यवसाय चुने हैं। नगर के आसपास कृषियोग्य भूमि लगभग नहीं है। इसी तरह जंगल भी क़तई नहीं हैं। सिंचाई केवल ५ प्रतिशत भूमि पर हो पाती है। इसलिए किसानों

---

* Ghosh Bijit, *Jaisalmer, Town Planning*, New Delhi, 1964.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का मुख्य धंधा पशुचारण है। किसी भी गांव की आबादी २०० से ज़्यादा नहीं होती। यहां ऊन तथा ऊनी वस्तुओं और कुम्हारी की वस्तुओं के उत्पादन ने काफ़ी विकास किया है। इलाक़े में सुरक्षा प्राचीरों से घिरे और बहुमंज़िले घरोंवाले कई क़सबे हैं। किंतु सबसे बड़ा प्रशासनिक और व्यापारिक केंद्र जैसलमेर ही है।

जैसलमेर बारहवीं शती में निर्मित एक क़िले के गिर्द बसा हुआ है। तेरहवीं शती में जब पारस्परिक लड़ाइयां शांत हो गयीं, तो क़िला राजाओं की अभेद्य प्रतिरक्षा चौकी से रजवाड़े की राजधानी बन गया, और व्यापारियों तथा शिल्पियों ने यहां अपनी बड़ी-बड़ी हवेलियों का निर्माण किया। नगर अपने उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर १६६१–१७०८ में पहुंचा, जब यह ४० हज़ार की आबादीवाला एक बहुत बड़ा व्यापारिक और वाणिज्यिक केंद्र था। उस समय दिल्ली, आमेर, जोधपुर, आदि से मुल्तान और कंदहार जानेवाले कारवां जैसलमेर में अवश्य रुका करते थे।

क़िले सहित सारा नगर चारों ओर से मज़बूत प्राचीरों से घिरा हुआ और देखने में बहुत ही प्रभावोत्पादक है। गोल गरगजों और कोनों पर वर्गाकार बुर्जों से युक्त नगर के भारी-भरकम प्राचीर (ऊंचाई ३–४.५ मीटर और मोटाई १.६–३ मीटर) किसी भी तरह के हमले को झेल सकते थे। १०० मीटर से भी ज़्यादा ऊंचे टीले पर वृहदाकार पत्थरों से निर्मित क़िला (दीवारों की ऊंचाई ७.५ मीटर) अपने स्वामी की शक्ति और महत्ता का परिचय देता हुआ आसपास के सारे इलाक़े पर छाया हुआ सा प्रतीत होता है।

नगर और क़िले तक पहुंच पाना अकल्पनीय रूप से कठिन था। उन तक बहुत ही टेढ़े-मेढ़े, चढ़ाईदार रास्तों की भूलभुलैयां और कई सारे आरक्षित फाटकों से होकर ही पहुंचा जा सकता था। नगर में घुसने की कोशिश करनेवाले शत्रु पर प्रहरी बुर्जों के झरोखों से पत्थर के गोलों की वर्षा की जाती थी। क़िले के अंदर राजमहल के गिर्द शासक के सलाहकार और सेवकों के निवास बने हुए थे। बाहर, क़िले की जड़ के पास, मंत्रियों और जाने-माने व्यापारियों की हवेलियां स्थित थीं। क़िले के अंदर, दीवार के साथ-साथ, सैनिकों की बैरकें बनी हुई थीं।

नगर उत्तर-दक्षिण दिशा में बसा हुआ है। सभी सड़कें नगर के बीच से गुज़रनेवाले मुख्य मार्ग के समानांतर हैं अथवा उसे समकोण पर काटती हैं। संकरा, टेढ़ा-मेढ़ा और पत्थरों से पाटा हुआ मुख्य मार्ग स्थानीय भू-आकृति के अनुसार कहीं चढ़ाईदार है, तो कहीं ढलानदार। सबसे ज़्यादा भीड़ की जगहों पर वह चौड़ा हो जाता है और इस तरह उसपर कई चौक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बने हुए हैं। इनमें सबसे बड़े जुनाली चौक और गोपा चौक हैं, जो नगर के मुख्य व्यापारिक केंद्र भी हैं। इनके समीप ही नगर का सबसे बड़ा तालाब और मुख्य जल-आपूर्ति स्रोत घड़सीसर स्थित है। नगर के गिर्द, उसकी सीमा के बाहर भी कई कृत्रिम सरोवर हैं। नगर केंद्र से एक खड़ी चढ़ाईवाला रास्ता क़िले तक जाता है, लेकिन राजमहल के सामनेवाले लंबे-चौड़े रमणीक चौक तक पहुंचने से पहले तीन आरक्षित द्वारों से गुज़रना पड़ता है।

अंग्रेज़ों के प्रभुत्व की स्थापना के बाद जैसलमेर ह्रासोन्मुख हो गया। उसकी आबादी घटकर केवल ८ हज़ार रह गयी। बाद में अरब सागर के तटवर्ती इलाक़े में रेलमार्ग बन जाने से जब कारवां व्यापार भी ठप्प हो गया, तो नगर अपना रहा-सहा महत्त्व भी खो बैठा। उसे पुनर्जन्म फिर स्वतंत्र भारत में जाकर ही मिल पाया, जब यहां खनिजों का उत्खनन किया जाने लगा।

जैसलमेर जैसा ही एक ठेठ मध्ययुगीन और वैसे ही उत्कृष्ट निर्माण-कौशल का परिचय देनेवाला नगर जोधपुर है, हालांकि उसका पुराना रूप उतना सुरक्षित नहीं रह सका है। इस नगर का जन्म भी अन्य राजस्थानी नगरों की भांति ही हुआ था। १२११ में कन्नौज के राजपूत शासक मुस्लिम आक्रमणकारियों के हाथों पराजित होकर थार के रेगिस्तान में स्थित मारवाड़ प्रदेश में शरण लेने को बाध्य हो गये थे। यहां वे मंडोर नाम के एक छोटे से क़सबे में बसे, जो जैसलमेर की भांति दिल्ली-मुल्तान कारवां मार्ग पर स्थित था।

१४५९ में, राठौरों के नाम से प्रसिद्ध इस राजपूत वंश के अल्पकालीन उत्कर्ष के दौर में राव जोधा ने मंडोर से ८ किलोमीटर उत्तर में नयी राजधानी बसायी, जिसका जोधपुर नाम पड़ा। राजा के महल नगर के बीच १२० मीटर ऊंची एक चट्टानी पहाड़ी पर निर्मित क़िले के भीतर स्थित थे, जिसके परकोटे की परिधि कोई १० किलोमीटर थी। परकोटों में जटिल पहुंच मार्गों-वाले ७ आरक्षित द्वार बने हुए थे। हर द्वार उस नगर के नाम से पुकारा जाता था, जहां के लिए उस द्वार से मार्ग शुरू होता था।

पहाड़ी की चट्टान सभी ओर से कटी हुई है। दक्षिण की ओर से जिस जगह पर राजमहल स्थित है, चट्टान नीचे के मैदान से, जिसपर कि स्वयं नगर बसा हुआ है, लगभग समकोण पर खड़ी हुई है। १५७३ तक नगर को भी प्रतिरक्षा प्राचीरों से घेर दिया गया था।

जोधपुर की एक विशेषता यहां की कृत्रिम झीलें और कूएं हैं, जिनके बिना इस इलाक़े की परिस्थितियों में नगर के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की जा सकती थी। क़िले का एक कूआं तो १३५ मीटर गहरा है। किंतु इस सारी व्यवस्था के बावजूद जल का अभाव सदा महसूस किया जाता रहा। औरतों को रोज़ाना ८ किलोमीटर का फ़ासला और पहाड़ी की १२० मीटर की चढ़ाई तय करके मंडोर से पानी लाना पड़ता था।

उदयपुर का जन्म जैसलमेर के ४०० वर्ष बाद और भिन्न परिस्थितियों में हुआ। उसकी स्थापना मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह ने १५६७ में अघटपुर नामक एक प्राचीन नगर से ३ किलोमीटर और चित्तौड़गढ़ के इतिहासप्रसिद्ध क़िले से १०० किलोमीटर की दूरी पर की थी। इससे पहले चित्तौड़गढ़ ही मेवाड़ की राजधानी था और आठवीं शती से लेकर १५६७ तक, जब अकबर ने उसपर हमला किया और कुछ महीने बाद (फ़रवरी, १५६८ में) उसपर अधिकार भी कर लिया, वह राजपूताना का एक सबसे दुर्भेद्य दुर्ग था। चित्तौड़ उत्तर भारत को गुजरात से जोड़नेवाले व्यापारिक मार्गों पर स्थित था।

मुग़लों द्वारा पूर्णतः भूमिसात् कर दिये गये व्यापार और शिल्प के एक प्रमुख केंद्र चित्तौड़ की भौतिक स्मृति के नाम पर आज १५० मीटर ऊंची पहाड़ी पर स्थित प्रचंड प्राचीरों तथा द्वारों से युक्त दुर्ग, जो कि इंजीनियरी और निर्माण कला का अप्रतिम नमूना है, और उसके भीतर स्थित दो बहुतलीय और पूर्णतः उत्कीर्ण मूर्तिशिल्प से सज्जित स्तंभ ही शेष रहे हैं। चित्तौड़ के स्तंभों में ऐतिहासिक घटनाओं की स्मृति को अमिट, अमर बनाने की प्राचीन परंपरा पुनरुज्जीवित हुई थी। उनमें से एक स्तंभ, जो कीर्तिस्तंभ कहलाता है, मुस्लिम आक्रमणकारियों पर विजय की स्मृति में तेरहवीं शती में बनाया गया था और दूसरा – जयस्तंभ – पंद्रहवीं शती में राणा कुंभा द्वारा मांडू पर विजय के उपलक्ष्य में खड़ा किया गया था।

चित्तौड़गढ़ के पतन के बाद मेवाड़ के राजा इस स्थिति में नहीं रह गये कि अपनी स्वाधीनता की आगे भी रक्षा करते रह सकें और शीघ्र ही उन्होंने मुग़लों की प्रभुता स्वीकार कर ली। इस नयी स्थिति ने ही नयी राजधानी उदयपुर के स्वरूप को निर्धारित किया, जो अनुपजाऊ तथा सूखे, लेकिन अरावली पहाड़ों द्वारा भली भांति आरक्षित इलाक़े में स्थित है।

उदयपुर की संरचना मध्ययुगीन राजपूत नगरों जैसी ही है। उसमें ऊंचे टीले पर स्थित क़िला, टीले की जड़ पर बना मंदिर, तालाब, बाज़ार चौक, टीलों के साथ-साथ जाती प्राचीर-पंक्ति, जो नगर, खेतों और जलाशयों की हिफ़ाज़त करती है, टेढ़ी-मेढ़ी मनोरम गलियां, आदि सब कुछ हैं। लेकिन कुल मिलाकर वह अधिकांश मध्ययुगीन नगरों जैसा अलग-थलग और अगम्य नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नगर का अस्तित्व और उसे खाद्य-सामग्री की आपूर्ति बनाये रखने के लिए इस अनुपजाऊ इलाक़े में सिंचाई नहरों और जलाशयों का निर्माण अत्यावश्यक था। पराधीन किसानों की मुफ़्त श्रम-शक्ति उपलब्ध होने से शासक यह सब काम आसानी से करवा सकते थे। फलस्वरूप उदयपुर एक ऐसे नख़लिस्तान में बसा है, जो कमरतोड़ बेगार श्रम का परिणाम है। उदयपुर से ५० किलोमीटर की दूरी पर स्थित जयसमंद नामक सबसे बड़ी झील (आकार ६×१५ किलोमीटर) आसपास की सभी बस्तियों के लिए जल-आपूर्ति का मुख्य स्रोत है। फ़तेहसागर, पिछोला (क्षेत्रफल १० वर्ग किलोमीटर) और दूसरी कृत्रिम झीलों को आपस में मिलाने के लिए नहरें बनायी गयी हैं।

पहाड़ियों और झीलों के रोमांटिक प्रतिवेश में उदयपुर के राजाओं ने टापुओं पर अपने आमोद-प्रमोद के लिए सत्रहवीं शती में जग निवास और जग मंदिर महल और दूसरे बहुत-से क्रीड़ा मंडप बनाये, जो झील के बीच से यों उठते लगते हैं कि जैसे फेन से निर्मित आकृतियां हों। उन तक चप्पूदार नौकाओं से ही पहुंचा जा सकता है। टापुओं से उदयपुर के महाराजा के सातमंज़िले प्रासाद का, जो सोपान-वेदिकाओं जैसे उतरता हुआ पिछोला के प्रस्तरनिर्मित तट को जा छूता है, अति भव्य दृश्य दिखायी देता है। इस प्रासाद के विभिन्न हिस्सों का विभिन्न कालों में निर्माण हुआ है। फिर भी यही उदयपुर की सबसे मुख्य इमारत है। यह राजस्थान का सबसे बड़ा प्रासाद भी है (भूतल प्लान में आकार ४५७×२४४ मीटर)। उदयपुर को उचित ही भारत का वेनिस कहते हैं। बलुए पत्थर और श्वेत मकराना संगमरमर से निर्मित अपने महलों के पैमाने, सौंदर्य और भव्यता की दृष्टि से यह नगर सारे भारत में कोई सानी नहीं रखता।

भूतपूर्व छोटे-मोटे रजवाड़ों की राजधानियों में अलवर का विशेष स्थान है, जिसका वास्तुशिल्प भी उदयपुर की उत्तरकालीन निर्मितियों जैसी ही आमोद-प्रमोद तथा विलासपरकता की भावना से ओतप्रोत है। अलवर दिल्ली और जयपुर के बीच स्थित है। उसकी कृत्रिम झीलें सीधी खड़ी चट्टानी पहाड़ियों से घिरी हुई हैं, जिनमें से एक पर क़िला बना हुआ है, जो अब अर्धध्वस्त अवस्था में है। क़िले के नीचे स्थानीय राजा ने १७७१ में अपना उपनगरीय निवास बनाया था, जिसमें अनेक प्रासाद-मंडप, और पत्थर की सीढ़ियों तथा गलियारों से घिरे जलकुंड हैं, जो आसपास के पर्वतीय परिदृश्य से एकाकार होकर एक अविभाज्य समष्टि की रचना करते हैं। उन्नीसवीं शती में अलवर को रेलमार्ग से जोड़ा गया और स्टेशन की जो इमारत बनायी गयी, वह उत्कृष्टतम स्थानीय वास्तु-शैलियों का प्रतिनिधित्व करती थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अठारहवीं शती के आरंभ में जयपुर की स्थापना राजस्थान की नगर निर्माण कला के इतिहास में एक नये अध्याय का सूत्रपात करती है।

जयपुर, जो पहले राजस्थान की एक सबसे बड़ी रियासत की राजधानी था और आज सारे राजस्थान राज्य का मुख्य प्रशासनिक केंद्र है, भारत की नगर निर्माण कला के इतिहास में एक विशेष स्थान रखता है।*

१७२८ में स्थापित और नगर-प्राचीर के भीतर एक सुनिश्चित योजना के अनुसार निर्मित यह अद्वितीय नगर अपने मौलिक रूप में आज भी लगभग ज्यों का त्यों सुरक्षित है।

एक पूरे के पूरे नगर की प्रायोजना और निर्माण किसी भी राज्य के लिए असाधारण कार्य होता है और उसका बीड़ा वह तभी उठा सकता है, जब वह स्वतंत्र हो और उसमें नूतन शक्तियों का उन्मेष हो रहा हो। जयपुर जैसे कि भारत की प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता के पुनर्जागरण का अग्रदूत था। उसके निर्माताओं ने जानबूझकर अपनी सांस्कृतिक विरासत का अवलंब लिया और अपनी कृति में भारत की चिरकालीन परंपराओं को पुनरुज्जीवित किया। नगर की अभिन्यासात्मक योजना के लिए उन्होंने बस्ती निर्माण का "प्रस्तर" नामक प्राचीन निदर्श चुना, जिसका हम पहले उल्लेख कर चुके हैं और जिसकी 'मानसार' में अभिशंसा की गयी है। यदि परंपराओं का विश्वास किया जाये, तो पांचवीं शती ईसापूर्व में अयोध्या नगरी का निर्माण इसी योजना के अनुसार किया गया था। स्वाभाविकतः उस काल की ऐतिहासिक परिस्थितियां जयपुर की स्थापना के काल से काफ़ी भिन्न रही होंगी, इसलिए यह विचित्र-सा लगता है कि नये युग में प्राचीन काल के आदर्शों की ओर लौटा जाये। स्पष्ट है कि वास्तुशिल्पियों को इसके लिए प्रेरित सामंत की सनक ने ही नहीं किया होगा।

भारत प्राचीन काल में एक ऐसे दौर से गुज़रा था, जब नगरीय तबक़े समाज की प्रेरक शक्ति बने थे और ब्राह्मणवाद से संघर्ष में मानवतावादी, भौतिकवादी तथा निरीश्वरवादी विचारधाराएं जन्मी थीं, जो बौद्ध और जैन धर्मों में प्रतिबिंबित हुईं। अब नया युगबोध – बौद्ध धर्म से बहुत मिलते-जुलते देशव्यापी भक्ति आंदोलन में प्रतिबिंबित सामाजिक परिवर्तनों के आधार पर राष्ट्रीय चेतना का जागरण – नये काल को प्राचीन काल के निकट लाने लगा। जीवन अभी भी पुराने ढर्रे पर चल रहा था, लेकिन उसमें नयी प्रवृत्तियां उभरने लगीं, जो समाज के आर्थिक और सामाजिक आधार को प्रभावित करनेवाले परिवर्तनों को प्रतिबिंबित करती थीं।

* Ghosh Bijit, *Jaipur, Town Planning*, New Delhi, 1964.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तेज़ी से बढ़ता व्यापार कृषि से शिल्प के पृथक्करण को प्रोत्साहित कर रहा था और उजरती श्रम के उपयोग पर आधारित हस्त-विनिर्माण (मैन्यूफ़ैक्टरी) अपने आदिम रूप में अस्तित्व में आने लगा था। घरेलू और विदेशी मंडियों में भारतीय कपड़ों की बड़ी मांग थी और इसलिए सबसे पहले बुनाई और उससे संबद्ध शिल्प ही स्वतंत्र उद्योग बने। बुनकरों की अलग बस्तियां बसने लगीं। उत्पादन चूंकि अधिकांशतः बिखरा हुआ था, इसलिए शिल्प उत्पादों का विक्रय आढ़तियों के ज़रिये होता था और समय के साथ उनकी भूमिका बढ़ती ही जा रही थी। धनाढ्य भारतीय व्यापारी राजपूताना समेत देश के विभिन्न भागों में स्थित अपने एजेंटों की मदद से घरेलू मंडी में इजारेदार बनते जा रहे थे। दस्तकारों पर उनका शिकंजा इतना मज़बूत था कि वे उन्हें अपनी मरज़ी से अन्यत्र बसने को मजबूर कर सकते या उनके लिए विशेष बस्तियां बनवा सकते थे।

व्यापार ओर पैसों के लेन-देन से सामंत भी नहीं कतराते थे। उल्टे, वे उनमें सक्रिय भाग ही लेने लगे थे। उनके अपने कारवां और अपनी दूकानें होती थीं। दूसरी ओर, व्यापारी लोग सामंत बनते जा रहे थे। कुल मिलाकर भारत में व्यापारी वर्ग के सर्वोच्च तबक़े और सत्तारूढ़ सामंत वर्ग के परस्पर-गुंथन की प्रक्रिया चल रही थी। अठारहवीं शती के आरंभ तक देश में स्थानीय व्यापारी और कुसीद पूंजी की भूमिका और शक्ति बेहद बढ़ गयी। विदेश व्यापार में आयात के बजाय निर्यात की अधिकता देश में सोने और चांदी के भंडारों की वृद्धि में सहायक हो रही थी। किंतु ये साधन पूंजीवादी संबंधों के विकास के लिए आवश्यक आरंभिक संचय के स्रोत नहीं बने। वे मुख्यतया सामंतों अथवा व्यापारियों के हाथों में संकेंद्रित थे, जो उन्हें उद्योग और उत्पादन की अपेक्षा कृषि में निवेश करना बेहतर समझते थे। यूरोपीय देशों की तुलना में, जिनके इतिहास का क्रम अधिक प्रगतिमुखी था, भारत के ऐतिहासिक विकास के पथों की सीमितता उसकी मध्ययुगीन कला तथा नगर निर्माण संस्कृति के विकास की संभावनाओं को संकुचित कर देती थी। फलस्वरूप भारत यूरोप जैसे पुनर्जागरण काल के स्तर नहीं उठ पाया। किंतु इससे उस दौर में सृजित भारतीय वास्तु तथा कला की कतिपय कृतियों का मूल्य घट नहीं जाता है।

सामाजिक और आर्थिक प्रक्रियाओं के साथ-साथ देश अनेक महत्त्वपूर्ण सामाजिक घटनाओं का साक्षी भी बन रहा था। सारे देश में मुस्लिम सामंतों के असह्य उत्पीडन, शोषण और लूटपरक अभियानों के विरुद्ध जन आंदोलन चल रहे थे। सत्रहवीं शती के उत्तरार्ध से महाराष्ट्र में मुग़लों के विरुद्ध संघर्ष

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की जो लहर उठी थी, वह शीघ्र ही भारत के उत्तरी भागों में छिड़े सामंत विरोधी संघर्षों के साथ एकाकार हो गयी थी। यूरोपीय उपनिवेशवादी, जिन्होंने सत्रहवीं शती के अंत में भारत के पश्चिमी तट पर पैर जमा लिये थे, अभी देश के उत्तर-पश्चिमी भागों तक नहीं पहुंच पाये थे।

अठारहवीं शती में युद्धों और विद्रोहों से क्षत-विक्षत भारत में निर्माण क्रियाकलाप और सांस्कृतिक जीवन लगभग ठप्प हो गये। थोड़ी-बहुत सक्रियता केवल राजस्थान, पंजाब, सिंध और अवध के रजवाड़ों में ही देखी जा सकती थी। यहां अभी भी बड़े-बड़े भवन-समुच्चय और मंदिर बनाये जा रहे थे और चित्रकला की नयी शैलियां पैदा हो रही थीं। कला और वास्तुशिल्प के क्षेत्र में इस काल में जो कलात्मक प्रवृत्तियां पैदा हुईं, वे यहां उन्नीसवीं सदी तक पनपती रहीं। इन प्रदेशों में मुख्य राजस्थान था। मुग़ल साम्राज्य के कमज़ोर होने से लाभ उठाकर उसके शासकों ने अपने को सामंती अधीनता से मुक्त कर लिया था।

राजपूत मिनियेचर चित्रकला की विश्वप्रसिद्ध कृतियां इसी काल में रची गयीं। निष्कर्मण्यता और वैभव-विलास के वातावरण में बीते पिछले ज़माने की सामंती रुमानियत की भावना से ओत-प्रोत राजपूत मिनियेचर चित्र हमारा एक ऐसी दुनिया से साक्षात्कार करवाते हैं, जो इन चित्रों को बनवानेवाले अभिजात अथवा सामंत के आत्मपरक प्रत्यक्षबोध के दायरों तक ही सीमित है। किंतु यह नये युग का अभिजात है। उसपर अब न युद्धों का बोझ है और न उसे शत्रु के डर से किसी दुर्गम क़िले में ही जा छिपने की ज़रूरत है। वह अपना सारा समय आमोद-प्रमोद में, कृत्रिम झीलों से घिरे श्वेत संगमरमर के महलों में बिताता है।

इन नयी परिस्थितियों में वास्तुशिल्प के क्षेत्र में नयी प्रवृत्तियां पैदा हुईं। आपसी लड़ाइयों के ख़ात्मे और नगरों में उद्यमशीलता की वृद्धि के साथ नये आवास-प्ररूप प्रकट हुए। ये व्यापारी अथवा सामंत की नगर के बाहर स्थित कोठी और स्वयं नगर में किराये पर उठाने के लिए निर्मित मकान थे। धनी व्यापारी, जागीरदार और दरबारी नगर में स्थित महलों के अलावा नगर के बाहर कोठियां भी बनाने लगे, जहां प्रकृति की गोद में, नगर की भीड़भाड़ से दूर, शिकार और दूसरे आमोद-प्रमोदों में समय बिताया जा सकता था। नगर में किराये पर उठाये जानेवाले मकानों के निर्माण की आवश्यकता समाज के व्यावसायिक तथा व्यापारिक जीवन में उद्यमशीलता की वृद्धि के कारण पैदा हुई (इन मकानों में बिचले और निचले तबक़ों के लोग रहते थे)। उत्पादन कार्यकलाप अधिकाधिक नगर में संकेंद्रित होता गया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और समय के साथ नगर और-और ज़्यादा आधुनिक व्यावसायिक रूप ग्रहण करता गया।

ये सब प्रवृत्तियां उस समय सक्रिय थीं, जब सामंती अलगाव से मुक्त जयपुर की नींव रखी जा रही थी। जयपुर से पहले राजधानी आमेर था, जो एक क़िलायुक्त बंद नगर था। नगर के जीवन की बढ़ी हुई सक्रियता के लिए आमेर तंग पड़ने लगा था। उसका और विस्तार तो संभव न था, इसलिए उपाय यही रहा कि उसे त्यागकर नया नगर बसाया जाये, जो व्यापारिक पूंजी के प्रभुत्व को जन्म देनेवाले नये युग की नगरीकरण की संकल्पना को साकार बना सके। जयपुर, जो व्यापार और शिल्प का एक बहुत बड़ा केंद्र है, नये प्रभुत्वसंपन्न तवक़े – व्यवसायियों, व्यापारियों और महाजनों – के हितों को ध्यान में रखकर अभिकल्पित और निर्मित किया गया। उनके हितों और मुनाफ़ों में महाराजा की भी साझीदारी थी, जो व्यापार-वाणिज्य में सक्रिय भाग लेता था।

नयी राजधानी का नाम जयपुर उसके संस्थापक महाराजा सवाई जयसिंह के सम्मान में रखा गया था। सवाई जयसिंह बहुत ही शिक्षित, वैज्ञानिक मेधा तथा कला-रुचि से संपन्न और वास्तुविद्या का गहन जानकार था। नयी राजधानी के निर्माण का कार्य सौंपने से पहले उसने अपने वास्तुकारों को यूरोप भेजा, ताकि वे वहां की नगर निर्माण कला से अवगत हो सकें।

इस काल में यूरोपीय नगर उत्तर मध्ययुग और आसन्न पूंजीवादी युग के बीच के दौर से गुज़र रहे थे। उनके वैषम्य-विरोधाभास चकित कर देते थे। छोरों पर टेढ़ी-मेढ़ी, तंग गलियों और गंदी, अंधेरी झोंपड़ियोंवाले मुहल्ले होते थे, जिनमें ग़रीब लोग रहते थे। केंद्र में गोथिक शैली के भव्य गिरजे बने होते थे। पेरिस अपने केंद्र में स्थित आलीशान प्रासाद-समुच्चयों, बड़े-बड़े स्क्वायरों और पार्कों तथा उद्यानों के लिए और सम्राट के निरंकुशतंत्र की महिमा गानेवाले असंख्य स्मारकों के लिए प्रसिद्ध था। नगर के संभ्रांत इलाक़े का परिदृश्य किसी मनोहारी रंगसज्जा जैसा आभास उत्पन्न करता था, जिसकी पृष्ठभूमि पर तरह-तरह की दरबारी रस्में पूरी तड़क-भड़क और शान-शौकत के साथ अदा की जाती थीं। विदेशों में भारतीय वास्तुशिल्पियों ने जो कुछ देखा, वह सब उनके लिए विजातीय और कम ही ज्ञानवर्द्धक था। उन्होंने अपने देश के अनुभव का ही सहारा लिया।

राजधानी के लिए कोई ऊंची जगह नहीं चुनी गयी, जैसा कि मध्ययुग में होता था, बल्कि अमनीश और ढोंढ नदियों के बीच भी मैदानी जगह को उपयुक्त समझा गया, जो आमेर से ११ किलोमीटर दूर थी और पहाड़ों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वारा उत्तरी हवाओं से भली भांति सुरक्षित थी। जयपुर के निर्माण का संचालन-दायित्व विद्याधर नामक एक बंगाली वास्तुकार को सौंपा गया। उसने नगर के अभिन्यास के लिए 'मानसार' में उल्लिखित "प्रस्तर" प्रकार की समचतुरस्र बस्ती-योजना चुनी। स्थानीय भूआकृति और हवाओं के रुख के कारण मुख्य सड़कें ठीक-ठीक पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण अभिमुखी नहीं रखी जा सकी हैं और इसमें थोड़ा-सा विचलन पाया जाता है।

केंद्रीय मुख्य सड़क, जो ३.६ किलोमीटर लंबी है, पूर्व में स्थित सूरजपोल नामक द्वार को पश्चिमी द्वार चंडीपोल से जोड़ती है। इस सड़क को दो-दो किलोमीटर लंबी कुछ बड़ी सड़कें समकोण पर काटती हैं, जिससे नगर नौ आयताकार मुहल्लों में बंट गया है। हर मुहल्ला अंदर से गौण सड़कों द्वारा और भी छोटे-छोटे खंडों में विभाजित है। उनकी संख्या उसके निवासियों की सामाजिक स्थिति और वर्ण के अनुसार चार, नौ, सोलह अथवा चौबीस तक होती थी। सबसे बड़े खंडों में सर्वोच्च वर्णों के लोग – ब्राह्मण तथा क्षत्रिय – रहते थे और छोटे खंडों में, जिनकी न स्थिति अच्छी थी और जिनमें न कोई विशेष नगरीय सुविधाएं ही थीं, निम्न वर्णों के लोग रहते थे। व्यापारियों और दस्तकारों के मुहल्लों में, जिनमें दूकानें भी होती थीं, उनके आकार के हिसाब से भी और सुविधाओं के लिहाज़ से भी अंतर था। ज्यादा छोटे-छोटे खंडों में बंटे मुहल्ले, जिनमें छोटी जातों के लोग रहते थे, नगर के दक्षिणी छोर पर स्थित थे। अस्पृश्यों की और जो लोग किसी भी वर्ण में नहीं आते थे, उनकी बस्तियां नगर के बाहर रखी गयी थीं। विदेशियों को भी नगर की सीमा के भीतर रहने की इजाज़त नहीं थी।

नगर के क्षेत्रफल के सातवें हिस्से पर राजमहल, जलाशय, बाक़ायदा लगाये गये उद्यान और वेधशाला स्थित थे। उनसे लगे मुहल्लों में दरबारियों और सामंतों की हवेलियां बनी हुई थीं और इसके बाद फिर पुजारियों-पुरोहितों, न्यायाधीशों, आदि के मुहल्ले आते थे। राज-प्रासाद से ही लगे एक विशेष मुहल्ले में रक़्क़ासाएं, रखैलें और साज़िंदे रहते थे।

इस प्रकार बुनियादी अभिन्यासात्मक सिद्धांत और प्राचीन काल से चला आ रहा पेशों तथा वर्णों के अनुसार मुहल्लों का विभाजन ज्यों के त्यों बने रहे। जैसा कि पुराने ज़माने से होता आया था, हर बड़े मुहल्ले में मकानों की पहली मंज़िलों पर उत्पादन कर्मशालाएं, गोदाम, दूकानें, आदि भी होते थे।

मध्ययुगीन नगर के मुख्य अंग और नगर पर शासक की दमनकारी सत्ता के प्रतीक दुर्ग की अब आवश्यकता नहीं रह गयी। जयपुर में नगर पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न मंदिर छाया हुआ है, न दुर्ग और न शासक का प्रासाद ही। यहां सारा नगर जैसे एक अविभाज्य इकाई है। उसमें शासन, आवास और उत्पादन के प्रकार्यों को कोई विशेष प्रमुखता प्राप्त नहीं है। बंदूकों, तोपों और अन्य नये सामरिक अस्त्रों का प्रचलन हो जाने के कारण पुराने प्रतिरक्षा साधन अपना महत्त्व खो बैठे। बेशक परंपरा के अनुसार जयपुर के गिर्द भी दीवार खड़ी की गयी (६.३ मीटर ऊंची और २.७ मीटर मोटी), जिसमें ८ दरवाज़े थे। किंतु उसमें फीलपाये और मोखे न थे और वह गंभीर आरक्षण अवरोध का काम नहीं कर सकती थी। वह सिर्फ़ नगर की सीमा की द्योतक थी और बंजारों तथा अवांछित लोगों को नगर में घुसने से ही रोकती थी।

जयपुर के निर्माताओं के सामने मुख्य लक्ष्य नगर की मुख्यतया व्यापार से संबद्ध जीवन-सक्रियता के सतत प्रवाह को सुनिश्चित करना था। वास्तुकारों ने नगर की संरचना को स्वतंत्र, बिखरे हिस्सों में विभाजित करने अथवा सामाजिक प्रयोजन की आत्मसीमित, बंद जगहें बनाने की कोशिशों के लिए कोई गुंजायश नहीं रहने दी। नगर का दृढ़ संरचनात्मक ढांचा मानव कार्य-कलाप के सभी क्षेत्रों को एक सूत्र में पिरोता है। व्यापारिक संस्थाएं मुख्य सड़कों और चौराहों पर संकेंद्रित हैं।

सड़कें, चौक, इमारतें, भीतरी आंगन, फ़ौवारे, कूएं, आदि नगर के सभी घटक एक सुगठित प्रणाली के अंग बनाये गये हैं। योजनाकारों ने मुहल्लों, सड़कों, चौकों और इमारतों के लिए माप का एक ही पैमाना इस्तेमाल किया, जो "दंड" (१.८ मीटर) और "हस्त" (४५ सेंटीमीटर), इन दो इकाइयोंवाली मात्रक पद्धति पर आधारित था। मुख्य सड़कों की चौड़ाई ७४ हस्त, गौण सड़कों की चौड़ाई ३६ हस्त और भीतर की सड़कों की चौड़ाई १८ हस्त है। सड़कों की चौड़ाई उनकी दिशा के मुताबिक़ भी रखी गयी थी। उत्तर-दक्षिण सड़कें पूर्व-पश्चिम सड़कों की तुलना में कम चौड़ी हैं, ताकि उनपर धूप कम से कम समय तक रहे। यदि आसपास की इमारतें सड़क की चौड़ाई के अनुपात में पर्याप्त ऊंची हैं, तो मध्याह्न को छोड़कर शेष सारे समय ये सड़कें और घर छाया में रहते हैं।

सड़कों के चौराहों पर बने चौक आम तौर पर आयताकार अथवा वर्गाकार हैं। जयपुर में छह बड़े चौक हैं: जलेबी चौक, दीवाने आम, दीवाने खास, मुबारक महल, आतिश और त्रिपोलिया। उनमें से केवल त्रिपोलिया चौक को ही म्यूनिसिपल चौक कहा जा सकता है। शेष महाराजा के महल के इलाक़े में हैं और आम लोगों के लिए हमेशा खुले न होने के कारण बंद प्रांगण जैसे लगते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारत के अन्य नगरों की भांति जयपुर में भी मुख्य सड़कें सार्वजनिक संपर्क साधन की भूमिका निभाती हैं। वे व्यापार के केंद्र, सभास्थल, जलूस मार्ग, आदि का काम करती हैं। ऐसी सड़कों को चौड़ा होना चाहिए, ताकि उनमें बड़ी संख्या में लोग समा सकें। जयपुर की चौड़ी और सीधी सड़कें आधुनिक परिवहन की अपेक्षाओं के भी पूर्णत: अनुरूप हैं।

जब हम जयपुर की सड़कों और लंबे-चौड़े चौकों से गुज़रते हैं, बाहर की सीढ़ियों के ज़रिये घरों की चौरस, खुली छतों से उतरते हैं और अलंकृत ड्योढ़ियों से भीतरी अहातों में झांकते हैं तो दिग्-विस्तार की अविच्छिन्नता का एक असामान्य-सा आभास होता है।

किसी ऊंची जगह से देखने पर नगर रिक्त जगहों और दरारों से युक्त एक विशाल अखंड मूर्तिशिल्प-सा लगता है। उसकी आंगिकत: एक अविभाज्य समष्टि के रूप में समामेलित आकृतीय तथा स्थानिक संरचना की सुघड़ता मोहित कर देती है। यदि इस शानदार नगर का ध्यान से अवलोकन किया जाये, तो वह परस्पर संबद्ध दिग्-विस्तारों और आकृतियों (भवनों) के एक अविच्छिन्न, सुनियोजित सिलसिले जैसा प्रतीत होगा।

खुले बरामदे, आरपार खुले गलियारे तथा झरोखे, छतों के गिर्द जालीदार दीवारें (अथवा परदे), दूसरी मंज़िलों की खुली छतों को सड़क से जोड़नेवाली पत्थर की बनी बाहरी सीढ़ियां... ऊपर की मंज़िलों की छतों की लेस जैसी सिलखड़ी की जालियों से खुद दिखायी दिये बिना सड़क पर जो कुछ घट रहा है; वह सब देखा जा सकता है। मकानों के बीच खड़े होकर भीतरी अहातों या गलियों की गहराई में देखते हुए दिग्-विस्तार के निर्झरवत् प्रवाह और अनंतता का आभास उत्पन्न हो जाता है।

समग्र रूप से भी और अलग-अलग भागों में भी नगर के रचना-विन्यास की भव्यता और सामंजस्यपूर्णता आश्चर्यचकित कर देती हैं। भवनों के बीच सर्वत्र विन्यासात्मक संबंध बनाये रखा गया है। लयात्मकता कहीं भी भंग नहीं होती। बरामदों की स्तंभ-पंक्तियों और अन्य वास्तु-रचनाओं तथा अंगों की एकरूपता सड़क को व्यवस्थित शक्ल प्रदान कर देती है। आवृत्तिशीलता से अविच्छिन्नता का आभास पैदा हो जाता है। उन्हीं मानक प्ररूपों और एकरूप अंगों को जिन विभिन्न प्रकारों से संजोया गया है, वह जयपुर के निर्माताओं की अक्षय कल्पना तथा कला-कौशल की शानदार मिसाल है। "छतरी" (गुंबदयुक्त मंडप), और "बंगलादर" (नुकीले किनारोंवाली ढलवां छत के आकार का सजावटी शिखर, जिसका अनुकरण बंगाली लोक वास्तुशिल्प से किया गया था) विभिन्न संयुजों में हर कहीं दोहराये गये

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। उनका लयात्मक विन्यास सड़क की आकाशरेखा को अत्यंत नयनाभिराम बना देता है।

जयपुर की सीधी और लंबी सड़क अपनी एकरूपता से ऊबाती नहीं। उल्टे, उसकी इमारतों और खाली जगहों के विन्यास का लचीलापन और वैविध्य बहुत ही तरह-तरह की छापें छोड़ते हैं। हर सड़क की अपनी विषय-वस्तु और अपना लयात्मक गठन है। शांत गलियों और कूचों की भी अपनी ही छटा है। उनमें ध्यान भीतरी आंगनों की प्रणाली, सड़कों और चौकों से उनके परस्पर संबंधों पर जाकर अटक जाता है।

नगर का हर भाग, जो किसी निश्चित प्रकार के कार्यकलाप के लिए नियत है, उसके प्रयोग के स्वरूप और आवागमन की सघनता को देखते हुए विकास करता है। यदि कोई इमारत चौक के मध्य में स्थित है, तो ज़रूरी है कि लोगों और परिवहन साधनों का आना-जाना उसका चक्कर लगाते हुए हो। ऐसी स्थिति में इमारत का आत्मकेंद्रित स्वरूप, उसका आकार, उसकी अधिकांशत: इने-गिने दरवाज़ों तथा खिड़कियोंवाली दीवारें और उसका ऊर्ध्व रूप उद्व्यक्ति पा जाते हैं।

सड़क को जो चीज़ एक समष्टि का रूप देती है, वह है उसके किनारे स्थित इमारतों की गैलरीनुमा समतल छतों का बहुत ही उद्व्यक्त क्षैतिज रूप। क्षैतिजता पर ऐसा ही बल इमारतों के अग्रभागों की सतहों के विभाजनों में भी पाया जाता है।

जयपुर की अधिकांश इमारतें जिस गुलाबी बलुए पत्थर से बनी हैं, उसकी रंगछटा भी जयपुर को एक समष्टि-रूप नगर बना देती है। पत्थरों की खूब टिकाऊ गारे के साथ अच्छी चिनाई की हुई होने की वजह से बाहर पलस्तर की ज़रूरत नहीं रही है। बाद में जो इमारतें ईंटों से बनायी गयीं, उनके पलस्तर पर भी गुलाबी रंग का ही लेप है। मकानों की ड्योढ़ियों पर इतनी उत्कृष्ट कोटि का पलस्तर किया गया है कि उनपर निर्मित भित्तिचित्र सहजता से खराब नहीं होते। सफ़ेद रंग से बड़ी सूक्ष्मता के साथ चित्रित वास्तु-अंग इमारत के अच्छे रचना-विन्यास पर ही ज़ोर देते हैं।

राजस्थान के अन्य नगरों की भांति जयपुर में भवनों के सड़क की ओर अभिमुख भाग अपने कलात्मक अलंकरणों की विपुलता से चकित कर देते हैं। यूरोपीय दर्शकों को आम तौर पर मकानों की अपेक्षया सादी भीतरी सज्जा भी हैरानी में डाल देती है। राजस्थान में भित्तिचित्रण की प्राचीन परंपरा हाल तक बरक़रार रही है। जयपुर, जोधपुर और उदयपुर में वास्तु-शिल्प और भित्तिचित्रण कला के संश्लेषण के उत्कृष्ट उदाहरण पाये जाते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजस्थान के शुष्क और गर्म जलवायु में भित्तिचित्रण की कला न केवल घरों के भीतरी भागों, अपितु अग्रभागों की सज्जा में भी प्रयुक्त होती थी। घर के द्वार की पार्श्व-भित्तियों पर अश्वारोहियों अथवा हाथियों पर सवार लोगों की आकृतियां चित्रित की जाती थीं। इमारतों की दीवारों पर कभी-कभी युद्धों के दृश्य अथवा रंग-बिरंगी पोशाकें पहनी हुई पनिहारिनों के चित्र भी बनाये जाते थे। रचना-विन्यास और आकृतियों में सर्वत्र उन्मुक्तता तथा गतिमयता दिखायी देती हैं और सारी चित्रांकन शैली सहजता से भरपूर है।

वास्तु-कृतियों और प्राकृतिक सौंदर्य की इस चित्ताकर्षक धारा में महल, मंदिर और मीनारें प्रमुख स्थान रखते हैं। आकाश की पृष्ठभूमि पर उनकी परिरेखाएं स्थायी दिक्-सूचकों का काम करती हैं। पैदल चलनेवालों के लिए आने-जाने की दिशाएं दूकानों की क़तारें, जिनके बीच नियमित अंतरालों पर स्तंभावलियां बनी हैं, और आगे को उभरे शीर्षभागोंवाले दरवाज़े निर्धारित करते हैं, जिनसे रिहायशी मकानों के भीतरी आंगनों अथवा किसी भीतरी गली में पहुंचा जा सकता है। जयपुर में सड़क आखिर में जाकर किसी महल अथवा बड़ी इमारत से अवरुद्ध नहीं हो जाती है, जैसा कि यूरोपीय नगरों में आम तौर पर पाया जाता है। यहां बुर्जनुमा दरवाजे द्योतित करते हैं कि भीतर कोई महत्त्वपूर्ण इमारत है।

भारतीय वास्तुशिल्पी की दृष्टि में किसी भी सुनियोजित स्थान में प्रवेश, जैसे सड़क से इमारत अथवा बंद अहाते में अथवा मुख्य मार्ग से गली में, एक स्थानिक परिवेश से दूसरे स्थानिक परिवेश में संक्रमण है। संक्रमण के स्थल को सामान्यतया किसी स्वतंत्र महत्त्ववाली वास्तु-रचना द्वारा उद्व्यक्त किया जाता है। यह सिंह-द्वार, विजय-तोरण अथवा चित्रों एवं मूर्तिशिल्पों से अलंकृत भवन की दीवार में बना मामूली दरवाज़ा, कुछ भी हो सकता है। बौद्ध स्तूपों में यह तोरण-द्वार था और दक्षिण भारतीय मंदिरों में गोपुर था। सड़कों, चौकों और खुली जगहों पर तोरण बनाने की प्रथा भारत में प्राचीन काल से चली आ रही है।

जयपुर में प्रवेश-द्वार के प्रति परंपरागत रवैया अपने चरम रूप में सामने आता है। प्रक्षेपों तथा देवलियों से युक्त शानदार नगर-द्वार महीन नक्काशियों, मूर्ति-अलंकरणों तथा चित्रकारी से सजे हुए हैं। द्वार के मध्य भाग में ऊपर दंतीली, नोकदार अथवा अन्य किसी आकृति की मेहराब और शिखर पर गुंबदाकार "छतरी" बनी होती है, जो उसकी परिरेखा को बहुत ही अभिव्यक्तिपूर्ण बना देती है।

जयपुर में छह नगर-द्वार हैं और हर द्वार आकृति और सज्जा में दूसरे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वारों से भिन्न है। यहां कोई भी प्रवेश-द्वार अलक्षित नहीं रहता, चाहे उससे किसी इमारत में प्रविष्ट हुआ जाता हो अथवा किसी गली में। गली, मुहल्ला, इमारत, भीतरी अहाता, सबके प्रवेश-स्थल पर सुअलंकृत सिंह-द्वार बने हुए हैं। और वे सारी सड़क की शोभा में चार चांद लगा देते हैं। सिंह-द्वार एक चौखटे जैसा है, जिसमें दूर जाकर अदृश्य होती सड़क का दृश्य जड़ा है। सिंह-द्वार से भीतरी आंगनों की गहराइयों, फ़ौवारों की जगमगाती जलधाराओं, शांत तालाबों और छितराये शिखरोंवाले वृक्षों की झलकियां मिलती हैं।

हर मंज़िल के साथ इमारतों की ऊर्ध्वरेखा का पीछे को हटते जाना सड़क के चाक्षुष प्रभाव को बहुत बढ़ा देता है। सड़क या तो ऊपर को चौड़ी होती जाती है या फिर, उल्टे, छाया करनेवाले छज्जों, बाल्कनियों तथा बरोठेदार खिड़कियों के कारण आकाश का दृश्य संकीर्णतर हो जाता है। दत्त प्रसंग में यह वास्तुशिल्पियों की कोई अप्रत्याशित प्रभाव पैदा करने की इच्छा का परिणाम नहीं, बल्कि एक परंपरागत प्रथा के अनुगमन का परिणाम है। भवनों का सोपानिक ढांचा ऊपर की मंज़िलों पर खुले टैरेस बनाने की संभावना देता है, जिनपर गरमियों की उमसभरी रातों में मुक्त आकाश तले सोया भी जा सकता है। मकानों के सड़क की ओर अभिमुख भागों पर बरोठेदार खिड़कियां (सूरज), बाल्कनियां (झरोखे) और कांच के बजाय पत्थर की जालियों से ढकी बड़ी-बड़ी खिड़कियां बनी होती हैं। जालीदार खिड़कियां हवा को आने देकर और चिलचिलाती धूप को रोककर घर के भीतर शीतलता और ताज़ी हवा का संचार बनाये रखती हैं। छतों पर बने सूई जैसी नोकों और गुंबदोंवाले छोटे-छोटे नाज़ुक मंडप आकाश की पृष्ठभूमि पर जालीदार छायाकृति जैसे दिखते हैं।

नगर की मुख्य सड़क पर बड़े अधिकारियों अथवा धनाढ्य व्यापारियों के मकान स्थित हैं। उनमें से एक तो पूरे के पूरे मुहल्ले जैसा लगता है। इस पांचमंज़िली हवेली का अलंकृत अग्रभाग और प्रमुख द्वार मुख्य सड़क की ओर है। पिछवाड़े की सड़क से उसकी इकमंज़िली कारोबारी इमारत ही लगी हुई है और यहां के दरवाज़े से उस भीतरी अहाते में पहुंचा जाता है, जिसमें घोड़े और मवेशी बांधे जाते हैं। मुख्य द्वार से, जो बड़ा सुंदर है, परिकोष्ठ जैसे छोटे से, बंद और पक्के आंगन में पहुंचा जाता है, जहां हवेली का मुनीम चिट्ठी-पत्री लानेवालों, व्यापारियों, गुमाश्तों, आदि से मुलाक़ात करता था। इस आंगन के पीछे एक बड़ा प्रांगण-उद्यान है। यहां पेड़-पौधों, तालाब और फ़ौवारों के बीच सदा ताज़गी और शीतलता बनी रहती है। छायादार पेड़ों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के बीच मोज़ाइक की पगडंडियां बनी हुई हैं। इस प्रांगण-उद्यान के तीन ओर खंभों की कई पंक्तियोंवाला बरामदा बना हुआ है, जिसे तिबारी कहते हैं। बरामदे की दीवारों पर नर्तकियों, साज़िंदों, आदि के चित्र बने हुए हैं।

मुख्य आवास खंड की निचली मंज़िलों के कमरों को, जहां भूतपूर्व मालिक, जो एक उच्च सरकारी अधिकारी था, मुलाक़ातियों से मिलता था, नये मालिक ने, जो व्यापारी है, गोदाम बना डाला है। दीवार में बने तंग और खड़े ज़ीने ऊपर की मंज़िलों पर पहुंचाते हैं। दूसरी मंज़िल के सामने की खुली छत से सीधे बाहर सड़क पर अथवा आंगन में उतरने के लिए खुली सीढ़ियां बनी हुई हैं। लगभग सारी दूसरी मंज़िल पर एक बहुस्तंभी हॉल बना हुआ है (१६×१२ मीटर), जिससे कुछ छोटे-छोटे कमरे लगे हुए हैं। तीसरी मंज़िल सारी की सारी औरतों के लिए है और उसपर खुली छतों और मंडपों के गिर्द छोटे-छोटे कमरे बने हुए हैं। संगमरमर के फ़र्शों पर फ़ौवारे और फूलों के गमले भी बनाये गये हैं। चौथी मंज़िल पर मालिक स्वयं रहता है और वहां भी कई मंडप, खंभोंवाले खुले हॉल और खुली छतें हैं, जिन्हें जालियों के द्वारा बाहर की दुनिया से अलग रखा गया है। पांचवीं मंज़िल मेहमानों और नौकरों के रहने के लिए है।

मध्यम हैसियत के नागरिकों के मकान हवेलियों के नमूने की इमारतों से दोगुना या उससे भी ज़्यादा छोटे हैं। जयपुर के आम घरों में आगे का अहाता नहीं होता और केवल दो आंगन होते हैं – एक परिकोष्ठ के आकार का और दूसरा परिस्तंभीय प्रांगण-उद्यान। कमरों की ऊंचाई ज़्यादा से ज़्यादा ३.२ मीटर और आम तौर पर तो केवल २.५-३ मीटर ही होती है। पतले-पतले खंभोंवाले मेहराबदार बरामदे और जंगले इमारतों की ऊंचाई को देखने में घटा देते हैं।

मुख्य मार्ग के किनारे पर ही १२० एकड़ के क्षेत्रफल में महाराजा का प्रासाद भी स्थित है। उसका निर्माण नगर की स्थापना से पहले, १६९९ में, आरंभ हुआ था और १७४८ में समाप्त हुआ। प्रासाद और उससे संबद्ध सभी निर्मितियों को नगर से अलग-थलग रखा गया है और यों बनाया गया है कि वह महाराजा तथा उसके कर्मचारीगण की रहन-सहन तथा निरापदता संबंधी सभी आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके।

किसी भी निर्मिति के प्रयोजन को देखते हुए उसके लिए प्रासाद के परिसर में एक निश्चित अंश निर्धारित किया गया है: एक तिहाई से ज़्यादा भाग पर महाराजा का निवास, अंतःपुर, स्नानागार, उद्यान तथा अन्य निजी उपयोग में आनेवाली इमारतें स्थित हैं; दसवें भाग पर पाकशाला, गोदाम,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फ़ीलख़ाना तथा दूसरी कारोबारी इमारतें बनी हैं; इतनी ही जगह विभिन्न कार्यालयों तथा विभागों के लिए रखी गयी है और १/२५ भाग पर वेधशाला निर्मित है।

समूचे प्रासाद-समुच्चय का भी और उसकी अलग-अलग इमारतों का भी अभिन्यास एक ही सिद्धांत पर आधारित है। आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए खुले, बंद तथा अर्धबंद स्थान एक निश्चित सोपानिक क्रम में आते हैं। बाल्कनियां, चौरस खुली छतें और उनसे लगे अंदरूनी बंद कमरे भीतरी अहाते की ओर खुलते हैं। बंद अहातों के दरवाज़े सड़कों की ओर भी हो सकते हैं।

प्रासाद परिसर का मुख्य द्वार अथवा मुख्य पहुंच-मार्ग पूर्वाभिमुखी है और बाज़ार चौक की ओर से आता है। इस भव्य द्वार से पहले अहाते में पहुंचा जाता है, जिसके एक ओर हाथियों के हौदों, आदि के गोदाम हैं और दूसरी ओर, फ़ीलख़ाने तथा अस्तबल। आगे दूसरा द्वार आता है, जिससे प्रासाद के मुख्य प्रांगण—जलेबी चौक—में पहुंचा जाता है। यह जयपुर का सबसे बड़ा और सबसे महत्त्वपूर्ण चौक है (१८८×१८८ मीटर)। वह सभी ओर से इमारतों से घिरा हुआ है और उसके दो प्रकार्य थे। यहां सरकारी कर और ख़िराज की वसूली होती थी। किंतु जलेबी चौक का मुख्य प्रयोजन यह न था। वह जयपुर के शासक की शान और ताक़त के प्रदर्शन का स्थल था। विशेष दिनों पर महाराजा की सवारी निकलती थी, सैनिक परेडें होती थीं और तमाशे, नाटक, आदि आयोजित किये जाते थे। जब महाराजा की सवारी निकलती थी, चौक में औत्सविक संगीत गूंजता था।

चौक के चारों ओर मेहराबदार बरामदों से घिरी नीची इमारतें बनी हुई हैं, जिससे वह और भी विस्तृत लगता है। जलेबी चौक से प्रासाद की मुख्य इमारतों तक चार दरवाज़े हैं, जिनके सामने संतरी खड़े रहते हैं। एक मुख्य इमारत दीवाने आम है, जो चारों ओर से खुले बहुस्तंभी मंडप जैसा है। उसके मध्य में स्थित सिंहासन पर बैठकर महाराजा जनता को दर्शन देता था। सिंहासन का मुंह भारी-भरकम दीवारों से घिरे एक प्रांगण की ओर है, जहां के किसी भी कोने से महारजा को देखा और उसके भाषण तथा आदेश सुने जा सकते थे। निजी मुलाक़ातों और मंत्रणाओं के लिए एक दूसरा कक्ष था, जो दीवाने ख़ास कहलाता है।

राजप्रासाद का वास्तु-स्वरूप और अभिन्यास स्वाभाविकतः उसके निर्माता की रुचियों और रुझानों को प्रतिबिंबित करते हैं।

उल्लेखनीय है कि प्रासाद-समुच्चय की मूल योजना में किसी शासक ने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कोई भी परिवर्तन नहीं किये। बेशक बाद में आनेवाले शासकों ने उसमें अपनी रुचियों और आवश्यकताओं के मुताबिक़ कई और इमारतें जोड़ी हैं, जैसे ईश्वरी डाट, जो महाराजा के मंत्रियों का सदन था, इकमंज़िले अस्तबल और रथशालाएं, महाराजा के अतिथियों के लिए निर्मित आवास हवा महल तथा मुबारक महल, त्रिपोलिया दरवाज़े से लगे मंदिर, आदि। इन उत्तरकालीन इमारतों का निर्माण विभिन्न समयों में और बिना किसी निश्चित योजना के अनुसार हुआ। उनके निर्माताओं की रुचियों पर उत्तरोत्तर यूरोपीय प्रभाव भी देखा जा सकता है। मिसाल के लिए, ईश्वरी डाट और नगर की कुछ दूकानों की इमारतों के अग्रभागों पर यूरोपीय क्लासिसिज़्म की शैली की छाप है। जयपुर में इमारतों की ऊंचाई, रंग, अग्रभाग के आम स्वरूप और सड़क से दूरी, आदि के बारे में सारे नगर में एक जैसे नियमों का पालन किया गया है।

जयपुर की एक सबसे मुख्य इमारत हवा महल है। इसे यह नाम इसलिए मिला कि वास्तुकार ने इसके भीतरी कक्षों में भी हवा के प्राकृतिक संचार का प्रभाव उत्पन्न किया है। इसके लिए उसने इमारत में एक ही जैसे अवयवों की बारंबार पुनरावृत्ति की ठेठ भारतीय युक्ति प्रयोग की है। ऐसे अवयव के तौर पर उसने बरोठेदार खिड़की – झरोखा – को चुना, जिसपर कांच के बजाय नक़्क़ाशीदार जालियां लगी हैं। अधिकतम वायुसंचार सुनिश्चित करने के लिए राजस्थान के आवासीय भवन वास्तु में यह युक्ति बहुत ज़्यादा प्रयोग हुई है। सातमंज़िले हवा महल का सारा अग्रभाग ऊपर से नीचे तक झरोखे के अनुकल्पों से आवृत्त, बहुत ही मौलिक तथा सुघड़ है और सामान्य समस्वरता को भंग किये बग़ैर सड़क की शोभा उल्टे और बढ़ा ही देता है।

राजप्रासाद के परिसर में काफ़ी भीतर चलकर उद्यान के पीछे महाराजा का सातमंज़िला निवास चंद्र महल स्थित है। उसमें कई प्रांगण और इमारतें शामिल हैं, जो इस क्रम में बनी हुई हैं: प्रीतम निवास, सुख निवास, राम मंदिर, शोभा निवास, छवि निवास और श्री निवास। सुख निवास में मेहराबदार बरामदों से घिरे छोटे-छोटे आंगनों और कमरों की दस भागों में बंटी हुई जो एकांतरी शृंखला पायी जाती है, वह राजपूत महलों के लिए लाक्षणिक है। आंगन के संगमरमरी फ़र्श पर पानी की नालियां और फ़ौवारे भी बने हुए हैं।

सुख निवास के कमरों की दीवारें और छतें दर्पण और रंगीन कांच के टुकड़ों से निर्मित तथा ट्यूलिप, गुलाब और दूसरे फूलों तथा पौधों के डिज़ाइनोंवाली मोज़ाइक से सजी हुई हैं। खिड़कियों की जालियों से इन अनगि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नत कांच के टुकड़ों पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं, तो चारों ओर इंद्रधनुष के रंगों की छटा विखर जाती है। नगर और प्रकृति के दृश्योंवाले भित्तिचित्र भी बड़े चित्ताकर्षक हैं और अतीत का सजीव छवि उपस्थित कर देते हैं।

जयपुर की वेधशाला (जंतर मंतर) को नगर की सर्वप्रथम निर्मितियों में गिना जाता है। यह "खगोलीय" वास्तुशिल्प का विश्व में ज्ञात एक सबसे पहला नमूना है। इसमें अपने युग के खगोलविज्ञान की उपलब्धियां साकार बनी हैं। यहां जो उपकरण स्थापित हैं, उनकी सहायता से बड़ी यथातथ्यता के साथ नगरों के अक्षांशों तथा देशांतरों का परिकलन, पंचांग की रचना, ग्रहण के समय का निर्धारण और ऐसी बहुत-सी दूसरी चीज़ें की जाती थीं, जो समाज की व्यावहारिक ज़रूरतों को पूरा करती थीं।

ऐसी वेधशालाएं साथ ही दिल्ली, वाराणसी, मथुरा और उज्जैन में भी वनायी गयीं, ताकि विभिन्न खगोलविज्ञानियों द्वारा प्रदत्त सूचनाओं की परस्पर तुलना और जांच की जा सके। पंचांग रचना धार्मिक महत्त्व रखने के साथ-साथ राज्य की स्वतंत्रता और शक्ति का एक प्रमुख अभिलक्षण भी था। जयपुर वेधशाला विशाल राज-प्रासाद परिसर में कई वर्ग किलोमीटर के इलाके में फैली इमारतों का एक भव्य समुच्चय है। विशिष्ट सौंदर्य और आकर्षण-शक्ति से युक्त इन असामान्य ज्यामितीय वास्तु-रचनाओं के बीच स्थान का विभाजन बहुत ही संतुलित और सामंजस्यपूर्ण ढंग से किया गया है। पत्थर में साकार बने खगोलवैज्ञानिक उपकरण आज के युग के विराट नाभिकीय त्वरकों अथवा बृहदाकार रेडियो टेलीस्कोपों जैसे हैं और अपनी विचित्र आकृतियों से अमूर्त मूर्तिशिल्पों की याद दिलाते हैं।

आकाश छूने को आतुर-सी एक ३० मीटर ऊंची पत्थर की तंग सीढ़ी सम्राट् यंत्र (सौर घड़ी) के सर्वोच्च बिंदु पर पहुंचाती है। वेधशाला की अन्य सभी निर्मितियों पर अभिभावी यह "सभी खगोलवैज्ञानिक यंत्रों का सम्राट्" दक्षिण से उत्तर की ओर, ध्रुव नक्षत्र की दिशा में अभिमुख है। सीढ़ी के दायीं ओर उतनी ही भव्य आकृति की एक और रचना है – ग्रहों-नक्षत्रों का अवलोकन करने की लाठ। उससे आगे षष्ठक की अर्ध-भूमिगत वेलनाकार रचना का ऊपरी भाग खड़ा है। इसके भीतर कई कक्ष हैं। छाया और प्रकाश के प्रभाव से यह वास्तु-रचना घूमते हुए चक्रदोला का आभास पैदा करती है।

कलकत्ता के विक्टोरिया मेमोरियल में रूसी चित्रकार वेरेश्चागिन की एक प्रसिद्ध कृति टंगी है। इस विशाल चित्र में प्रिंस ऑफ़ वेल्स के साथ जयपुर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के महाराजा की शाही सवारी का दृश्य प्राकृत आकार में अंकित है। वेरेश्चागिन ने अपनी लाक्षणिक दस्तावेज़ी यथातथ्यता के साथ लोगों को, उनके रंग-बिरंगे, आकर्षक वस्त्रों को और नगर की इसारतों को चित्रित किया है। चित्रकार दर्शक को सामंती भारत की दुनिया में, अनतिदूर अतीत की दुनिया में ले जाता है।

ऐसे दृश्य जयपुर में अब नहीं दिखायी देते। महाराजा के महल अब सूने हो गये हैं और संग्रहालयों में परिणत कर दिये गये हैं। आधुनिक जयपुर, जो भारत के एक सबसे बड़े राज्य राजस्थान की राजधानी है, बहुत फैल गया है। उसमें नये-नये इलाक़े बस रहे हैं, कल-कारख़ाने और वैज्ञानिक संस्थान क़ायम हो रहे हैं। अपना पुराना रूप नगर-प्राचीर से घिरे मध्य भाग ने ही सुरक्षित रखा है। यहां इमारतें वैसी ही सुंदर और शानदार हैं और सड़कें भी आधुनिक जीवन की ज़रूरतों के दबाव को झेलती हुई वैसी ही खुली-खुली और चौड़ी लगती हैं।

जवाहरलाल नेहरू ने जयपुर को ऐसा सुनियोजित और सुअभिन्यस्त नगर कहा था कि जो नगर-आयोजना का प्रतिमान बन सकता है। ज्ञात है कि सुप्रसिद्ध फ़्रांसीसी वास्तु-विशेषज्ञ ला कार्बूज़िये ने भी, जिन्होंने पंजाब की राजधानी चंडीगढ़ की योजना बनायी थी (१९५२–१९५५), जयपुर से प्रेरणा ग्रहण की थी। जयपुर की भांति चंडीगढ़ भी समचतुरस्र खंडों (सेक्टरों) में विभाजित है। बीसवीं शती की नगर निर्माण कला की इस रचना से दो शती से भी ज़्यादा पुराना होने के बावजूद जयपुर बहुत सी बातों में उससे न केवल घटकर नहीं है, बल्कि बढ़कर ही है।

भारतीय नगर निर्माण कला के इतिहास में जयपुर पुरातन तथा नूतन को जोड़नेवाली महत्त्वपूर्ण कड़ी है। उसकी संरचना में मुख्य स्थान न मंदिर को प्राप्त है, न सामंत के आरक्षित निवास को, जैसा कि ठेठ सामंती नगरों में पाया जाता है। उसके नगर-प्राचीर सुरक्षा के लिए नहीं बनाये गये हैं। इसके साथ ही उसका ढांचा हड़प्पा काल से चली आ रही पारंपरिक ग्रिडनुमा योजना पर आधारित है, जिसमें मुख्य सड़कें, व्यापार केंद्र का भी काम करनेवाली सड़कें विशेष स्थान रखती हैं। आगे चलकर अपने ऐसे अभिन्यास की बदौलत ही जयपुर बिना किसी बाधा के एक बहुत बड़े व्यापारिक, औद्योगिक और प्रशासनिक केंद्र में विकसित हो सका। जयपुर का बहुत ही स्पष्ट नागर रूप जायमान नयी सामाजिक व्यवस्था—पूंजीवाद—के अंतर्गत भारत की नगर निर्माण कला के विकास का पूर्वाभास देता था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

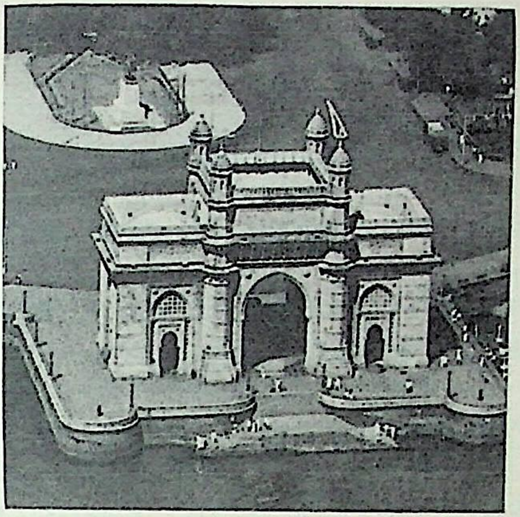

भाग ३

अर्वाचीन नगर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहला अध्याय।

औपनिवेशिक भारत में पूंजीवादी नगर का अभ्युदय

उन्नीसवीं शती के मध्य तक सारे भारत पर ब्रिटेन का औपनिवेशिक आधिपत्य पूरी तरह क़ायम हो गया और इसके साथ ही भारत की नगर निर्माण कला के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। पुराना सामंती नगर अतीत में खोने लगा और नये पूंजीवादी-उत्पादन संबंधों की ज़मीन पर आधुनिक नगर की बुनियादें पड़ीं।

भारत के उपनिवेशीकरण की नींव यूरोपीय सौदागरों के साथ भारतीय व्यवसायियों के व्यापार ने डाली थी। व्यापार में खुद भारत की बहुत दिलचस्पी थी लेकिन तब शायद ही किसी ने सोचा होगा कि सोलहवीं – सत्रहवीं शतियों में यूरोपीय सौदागरों की घुसपैठ एक दिन सैनिक घुसपैठ में बदल जायेगी, जो न केवल देश के सबसे बड़े केंद्रीकृत राज्यों – दक्षिण में विजयनगर राज्य और उत्तर में मुग़ल साम्राज्य – के लिए, अपितु सारे ही उपमहाद्वीप की नियति के लिए सांघातिक सिद्ध होगी। अठारहवीं शती के अंत तक भारत का काफ़ी बड़ा भाग औपनिवेशिक दासता की ज़ंजीरों में जकड़ा जा चुका था।

उपनिवेशवादियों ने भारत में अपना विस्तार समुद्र तट पर महत्त्वपूर्ण स्थलों पर स्थापित अपनी फ़ैक्टरियों से शुरू किया, जो शीघ्र ही सैनिक अड्डे और भारत को मेट्रोपोलिस तथा बाह्य विश्व से जोड़नेवाले बंदरगाह बन गयीं। ये फ़ैक्टरियां भारत के औद्योगीकरण की अग्रिम चौकियां भी बनीं।

यूरोपीयों के लिए भारत की राह वास्को दि गामा ने खोली थी, जो १४९८ में अपने जहाज़ों के साथ कालीकट पहुंचा था। कालीकट उस काल में मलाबार तट का सबसे बड़ा बंदरगाह था। १५१० में पुर्तगालियों ने पश्चिमी घाट के गोआ बंदरगाह पर अधिकार जमाकर उसे पूर्व में अपने विस्तारवाद का मुख्य गढ़ बना लिया। अंग्रेज़ों और डचों ने सत्रहवीं शती के चौथे – छठे दशकों में पुलीकट, मसुलीपट्टम, नेगपट्टम और पोलिकोल्लू में अपने व्यापारिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपनिवेश क़ायम किये। इसके साथ ही दोनों ने गुजरात में भी घुसपैठ की, वहां सूरत में पैर जमा लिये, फिर पूर्व में बिहार और बंगाल की ओर निगाहें मोड़ीं और पटना में फ़ैक्टरियां स्थापित कीं। सत्रहवीं शती के अंत से भारत में फ़ांसीसी भी सक्रिय बन बैठे और उन्होंने दक्षिण में मसुलीपट्टम, पांडीचेरी, तिरुचिरापल्ली और तंजौर में अपनी फ़ैक्टरियां बनायीं।

तटवर्ती क्षेत्रों में तेज़ी से बढ़ते समुद्री व्यापार ने बुनाई उद्योग को बढ़ावा दिया। यूरोपियनों की फ़ैक्टरियों के गिर्द बुनकरों की बस्तियां पैदा हो गयीं। बाद में उन्हीं के आधार पर बड़े नगर बसे। मिसाल के लिए, मद्रासपट्टनम नामक बस्ती की जगह पर मद्रास नगर पैदा हुआ, जो भारत में ब्रिटिश अधिकार में आये इलाक़ों का पहला प्रशासनिक केंद्र बना। अंग्रेज़ उपनिवेशवादियों द्वारा बसाया गया दूसरा नगर बंबई था। आरंभ में अंग्रेज़ सूरत में बसे थे, जो एक बंदरगाह और कपड़ा उद्योग का बहुत बड़ा केंद्र था। १६७९ में अंग्रेज़ों ने बंबई को, जो ब्रिटेन के राजा को पुर्तगाली राजकुमारी से विवाह में दहेज में मिला था, अपना मुख्य व्यापारिक केंद्र बना लिया। पश्चिमी तट पर अंग्रेज़ों ने उन्नीसवीं शती में एक और बड़े बंदरगाह की स्थापना की। यह कराची का बंदरगाह था।

भारत, श्रीलंका, बर्मा और अन्य दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों पर ब्रिटिश आधिपत्य की स्थापना का मार्ग सन् १६०० में स्थापित ईस्ट इंडिया कंपनी के सौदागरों ने प्रशस्त किया था। अंग्रेज़ जिस एक और मुख्य द्वार से भारत में भीतर तक घुसे और उसे जीत सके, वह कलकत्ता था। यह आज पूर्व का एक सबसे बड़ा नगर और भारत के पश्चिम बंगाल राज्य की राजधानी है। कलकत्ता जिस जगह पर बसा, वहां पहले तीन गांव थे—सूतानटी, गोविंदपुर और कालीकाता, जिन्हें ईस्ट इंडिया कंपनी के धूर्त एजेंट ने मात्र १३०० रुपये में ख़रीद लिया था। शीघ्र ही वह भारत में इंगलैंड का तीसरा सबसे मुख्य गढ़ और पूर्व में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विस्तार की सुदृढ़ आधार चौकी बन गया। १७५७ में कलकत्ता के समीप पलासी में हुई लड़ाई में अंग्रेज़ उपनिवेशवादियों की विजय हुई, जिसने आनेवाले २०० वर्षों के लिए भारत के पैरों में विदेशी दासता की बेड़ियां डाल दीं।

भारतीयों की पराजय का कारण शत्रु का अधिक ताक़तवर होना तो था ही, लेकिन इससे भी बड़ा कारण था मुग़लों के सामंतवादी राज्य का पूर्ण अधःपतन। अब से भारत का मुख्य उत्पीड़क और शोषक इंगलैंड बन गया। अंग्रेज़ इतिहासकार एच० टी० मैक्ले लिखते हैं, "अंग्रेज़ों का शासन ... नृशंसतम तानाशाही से भी अधिक भयावह था और वह अपनी तकनीकी श्रेष्ठता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की बदौलत ही शक्तिशाली था। वह हाड़-मांस के लोगों के बजाय पिशाचों के शासन जैसा था।"

ईस्ट इंडिया कंपनी की सहायता से इंगलैंड ने भारत की अकूत संपदा को लूटा और सामंतों तथा साहूकारों जैसे उसका क्रूरतम शोषण किया। भारत के लिए अठारहवीं शती आर्थिक और सांस्कृतिक गतिरोध की शती थी। उसकी उत्पादक शक्तियां तबाह हो गयीं, उसके समाज की नींवें चरमरा उठीं और भौतिक तथा बौद्धिक संस्कृति विनाश के कगार पर आ खड़ी हुई। वनों की अंधाधुंध कटाई से भू-क्षरण बढ़ा और प्रायः बाढ़ें आने लगीं। इससे किसानों की, जिनपर अंग्रेज़ों ने परपोषक बहुस्तरीय लगान पद्धति थोप दी थी, पहले से जर्जर स्थिति और भी जर्जर बन गयी और भारत के गांव अधोगति के चरम गर्त में जा गिरे, यद्यपि पहले उनमें से अधिकांश का सांस्कृतिक स्तर यूरोपीय देहात से कहीं ऊंचा था और बहुत मामलों में तो वे नगरों से भी टक्कर लेते थे।

जी-भर लूट लेने के बाद देश को बलात् उपनिवेशस्वामी राष्ट्र के लिए कृषिजन्य तथा अन्य कच्चे मालों का संभरणकर्त्ता तथा तैयार मालों की खपत मंडी बनाये जाने की प्रक्रिया शुरू हुई। मार्क्स लिखते हैं, "इंगलैंड ने पहले यूरोपीय मंडियों से भारतीय सूती मालों को बेदखल किया, फिर बटे हुए सूत का भारत में आयात करने लगा और आखिरकार नौबत यह पैदा कर दी कि सूती मालों की जन्मभूमि को अपने सूती मालों से पाट दिया। इंगलैंड के भाप और इंगलैंड के विज्ञान ने सारे हिंदुस्तान में कृषि और शिल्प उत्पादन के रिश्ते को हमेशा के लिए खत्म कर डाला है।"*

भारतीय नगर की आर्थिक बुनियाद – कुटीर उद्योग-धंधे – ढहती जा रही थी। बड़ी संख्या में लोग नगर छोड़ने को मजबूर हुए। जिस दिल्ली की आबादी औरंगज़ेब के ज़माने में २० लाख तक थी, वहां उन्नीसवीं शती के आरंभ में केवल डेढ़ लाख लोग रह गये। भारतीय बुनाई उद्योग के सबसे बड़े केंद्र ढाका में उन्नीसवीं शती के तीसरे दशक में आबादी डेढ़ लाख से घटकर सिर्फ़ २० हज़ार रह गयी। मसुलीपट्टम, मुर्शिदाबाद, भड़ोच जैसे दूसरे कपड़ा उत्पादन के विश्वविख्यात केंद्रों में भी वीरानगी छा गयी। मंदिरों और महलों का निर्माण बहुत अधिक घट गया। जात-पांत के क़ानून चूंकि पेशा बदलने की इजाज़त न देते थे, इसलिए अनगिनत माहिर संगतराश और

---

*कार्ल मार्क्स तथा फ़्रे० एंगेल्स, संकलित रचनाएं, खंड १, मास्को, १९५५, पृ० ३०६-३०७। (रूसी में)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चित्रकार आजीविका का कोई साधन न रह जाने के कारण अकाल काल-कवलित हो गये।

पुराने नगर के ह्रास के साथ नगर तथा देहात के बीच और इसी तरह देश के विभिन्न भागों के बीच भी सदियों से इस्तेमाल में चले आ रहे संचार-मार्ग अपनी उपयोगिता खो बैठे। उनकी जगह पर नये संचार-मार्ग अस्तित्व में आये, जो मुख्यतया बंदरगाहों से और उनके ज़रिये उपनिवेशस्वामी देश से जुड़े हुए थे। इन मार्गों पर नये नगर पैदा हुए।

इस तरह ब्रिटिश उपनिवेशीकरण ने आरंभ से ही दोहरी भूमिका अदा की। उपनिवेशवादियों के न चाहने पर भी और ऐसा उनका कोई लक्ष्य न होने पर भी वे सामंतवाद, जातपांत और ग्राम समुदाय पर आधारित देश के सदियों से चले आ रहे आर्थिक ढांचे को नष्ट करते हुए इतिहास की वस्तुपरक प्रगतिशील धारा में खिंच आये।

इंगलैंड ने इस तरह भारत में पूंजीवाद की नयी सामाजिक व्यवस्था के विकास का मार्ग प्रशस्त किया और पश्चिम के साथ भारत के रिश्ते बनाये।

भारत में औद्योगिक आधार पर पूंजीवादी नगर के जन्म का काल उन्नीसवीं शती का मध्य माना जा सकता है, जो अन्यथा भी भारत के इतिहास का एक बहुत महत्त्वपूर्ण दौर है। नये सामाजिक तथा आर्थिक उत्तोलकों और घटनाओं के प्रभाव से इस काल में वे सभी प्रक्रियाएं अभूतपूर्व तेज़ी से बढ़ने लगीं, जो भारतीय संस्कृति को नयी दिशा में ले जा रही थीं। उन्नीसवीं शती के मध्य तक अंग्रेज़ों ने अन्य सभी उपनिवेशवादियों को बाहर धकेलकर लगभग सारे उपमहाद्वीप पर अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर लिया। उनके नियंत्रण में भारत अपने इतिहास में पहली बार प्रशासनिक दृष्टि से एक बना और पहली बार देश का शासन बाहर से चलाया जाने लगा। भारत में जड़ें जमाकर अंग्रेज़ों ने उन्नीसवीं शती के अंत में उसे एशिया और अफ़्रीका के दूसरे देशों पर कब्ज़ा करने के लिए आधार-चौकी के तौर पर इस्तेमाल करना शुरू कर दिया।

जब सारा ब्रिटिश साम्राज्य एक केंद्रीकृत शासन के अंतर्गत आ गया, और आधिपत्यकारी युद्ध ख़त्म हो गये, अंग्रेज़, जो अब भारत के एकच्छत्र स्वामी थे, अपने ही हाथों नष्ट की हुई अर्थव्यवस्था की बहाली करने लगे। भारत के कच्चे मालों का घोर शोषण शुरू हुआ और औपनिवेशिक उत्पीड़न बढ़ा। देश की अर्थव्यवस्था, सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था, शिक्षा, संस्कृति, सब कुछ उपनिवेशवादियों की हितपूर्ति का साधन बना दिया गया। प्राचीन रोमनों की तरह शासन में अंग्रेज़ों ने "फूट डालो और राज करो" की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नीति अपनायी। उन्होंने अनगिनत छोटे-छोटे रजवाड़ों में देश के बिखराव को बनाये रखा, विभिन्न धर्मों, जातियों और वर्णों के बीच वैमनस्य के बीज बोये। देश की अर्थव्यवस्था एकांगी और असंतुलित ढंग से बढ़ने लगी। इंगलैंड भारत में पूंजी लगाने लगा, क्योंकि इसमें अधिक मुनाफ़ा था। उपनिवेशवादियों ने हल्के उद्योगों को ही बढ़ावा दिया, जबकि भारी उद्योग और ऊर्जा आधार के विकास में हर तरह से रोड़े अटकाये।

उन्नीसवीं शती के मध्य से सिंचाई व्यवस्था के निर्माण पर पुनः ध्यान दिया जाने लगा। बेशक इसके पीछे भी औपनिवेशिक शासन का लक्ष्य मुख्य रूप से प्लांटेशनों का विकास करना था। अनाज की फ़सलों की उपेक्षा करके और निर्यात के लिए कपास, जूट, रबड़, चाय, कॉफ़ी, आदि तकनीकी फ़सलों के उत्पादन को बढ़ावा देकर अंग्रेज़ों ने कभी एशिया के एक सबसे बड़े अन्नागार माने जानेवाले इस देश को ऐसी स्थिति में पहुंचा दिया कि उसकी दो तिहाई आबादी लगातार भुखमरी का शिकार बनने लगी। किसान नगरों की ओर भागने को मजबूर हुए और वहां इस काल में क़ायम हो रहे औद्योगिक कल-कारख़ानों के लिए सस्ती श्रम-शक्ति का स्रोत बने।

उन्नीसवीं शती के छठे दशक में अंग्रेज़ों ने कच्चे मालों के संसाधन के लिए देश में पहली फ़ैक्टरियां तथा मिलें स्थापित कीं – कलकत्ता में जूट फ़ैक्टरियां और बंबई में कपड़ा मिलें। इन उद्यमों ने औपनिवेशिक भारत के दो एकमात्र बड़े कारख़ाना-उद्योगों और उनके केंद्रों की नींव रखी। जहां कच्चा माल पाया और निकाला जाता था, वहां पहली मजदूर बस्तियां पैदा हुईं। इस प्रकार औपनिवेशिक शासन की परिस्थितियों में देश ने औद्योगीकरण की दिशा में डग भरने शुरू किये और नगरीकरण बढ़ा।

आर्थिक परिवर्तनों की वजह से समाज के ढांचे में भी बुनियादी परिवर्तन आये। नये विरोधी वर्ग – पूंजीपति और सर्वहारा – प्रकट हुए। किसानों के दरिद्रीकरण के कारण सर्वहारा की क़तारें बढ़ती गयीं। समाज में प्रमुख स्थिति उन्होंने पा ली, जो उत्पादन साधनों के स्वामी थे और मेहनतकशों की क़ीमत पर अपनी पूंजी बढ़ाते जा रहे थे। हस्त उत्पादन से मशीनी उत्पादन में, जो सामान्य उपभोक्ता के लिए बड़े पैमाने पर माल उपलब्ध करवाता है, संक्रमण के फलस्वरुप भारत में एक अब तक अज्ञात प्रकार की इमारतें – औद्योगिक इमारतें – बनने लगीं। कल-कारख़ानों के गिर्द उन लोगों की बस्तियां पैदा हुईं, जो उनमें काम करते थे। ये या तो पुराने नगर में नये इलाक़े होते थे अथवा बिल्कुल नये नगर।

इस प्रकार नगर निर्माण का एक नया, शक्तिशाली आधार प्रकट हुआ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और विकास करने लगा। बेशक मंदिर और महल यदा-कदा अब भी बनाये जाते थे, लेकिन पहले की तरह नगर अब उनके गिर्द नहीं बस सकता था। नगरों की संवृद्धि के साथ-साथ नये, अधिक परिष्कृत परिवहन तथा संचार साधनों का विकास हुआ और उनके साथ ही नये भवन-प्ररूप प्रकट हुए, जैसे रेलवे स्टेशन, डाकखाना व तारघर की इमारतें, आदि।

पूंजी का संकेंद्रण होने से नगरों में बैंकों, बंदरगाहों, व्यावसायिक कार्यालयों, आदि की इमारतों की आवश्यकता पैदा हुई। वास्तु-निर्मितियों के नये प्ररूप उत्पन्न तथा विकसित हुए और नये प्रकार की सामग्रियां, ढांचे तथा निर्माण-प्रविधियां प्रयोग में आने लगीं। नये प्रकार के नगरों और वास्तु-निर्मितियों ने दिखाया कि भारत ने अपने विकास के एक नये दौर – नगरों तथा नगरीकरण की संवृद्धि के लिए अभूतपूर्व अवसर प्रदान करनेवाले औद्योगिक उत्पादन तथा पूंजीवादी संबंधों के दौर – में प्रवेश कर लिया है।

उन्नीसवीं शती के मध्य तक ब्रिटिश पूंजी ने भारत को विश्व पूंजीवादी अर्थप्रणाली में और अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक संपर्कों के दायरे में खींच लिया। वैदेशिक संबंधों के विकास के साथ अंग्रेज़ों के सामने परिवहन मार्गों तथा दूसरे संचार साधनों का विकास करने और आधुनिक बंदरगाह बनाने की गंभीर आवश्यकता पैदा हुई। समुद्री बंदरगाहों की संवृद्धि व्यापार तथा उत्पादन के अंतर्देशीय केन्द्रों के बीच संचार-संपर्क की समुचित व्यवस्था किये बिना संभव न थी।

अंतर्देशीय संचार की समुचित व्यवस्था करने के लिए मार्गों का निर्माण आरंभ किया गया। उन्नीसवीं शती के छठे दशक में भारत में पहली कुछ सौ किलोमीटर लंबी रेललाइनों का उद्घाटन हुआ। देश के उत्तर तथा दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम के बीच नये सड़क-मार्ग बनाये गये, जो बंदरगाहों को आपस में और देश के अन्य महत्त्वपूर्ण केंद्रों से जोड़ते थे। इनमें बंबई-कलकत्ता, कलकत्ता-पेशावर, बंबई-आगरा और मद्रास-बंगलौर महामार्ग मुख्य थे। १८६७ में रेलमार्ग ने भी कलकत्ता को दिल्ली से जोड़ा और इसके कुछ समय बाद एक और लाइन बनकर तैयार हुई, जो दिल्ली को बंबई से जोड़ती थी। मुख्य तने और बहुत सारी शाखाओंवाले वृक्ष जैसा रेलमार्गों का यह जाल भारत पर ब्रिटिश औपनिवेशिक आधिपत्य की संरचना का ही प्रतिबिंब था।

रेल परिवहन के विकास ने नये नगरों की संवृद्धि के लिए व्यापक संभावनाएं प्रस्तुत कीं। इसमें नये खनिज क्षेत्रों की खोजें भी सहायक हुईं। परिवहन-मार्गों की नयी प्रणाली में अब नगर की स्थिति उसकी भूमिका और स्वरूप को निर्धारित करती थी। बहुत-से पुराने नगर, जो नये मार्गों से दूर स्थित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थे, अब उत्पादन और व्यापार-वाणिज्य की दृष्टि से पहले जितने महत्त्वपूर्ण व सक्रिय न रह गये।

भारत को इंगलैंड तथा दूसरे देशों से जोड़नेवाले बंदरगाहों तक निर्मित नये मार्गों पर नये नगर बसे। कलकत्ता, मद्रास, बंबई, जहां अंग्रेज़ों ने सत्रहवीं–अठारहवीं शती में ही अपने क़िले, पहले जहाज़-घाट और गिरजे बना लिये थे, और कराची बड़ी तेज़ी से फैले और बढ़े।

किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि विकास का ऐसा क्रम सारे ही देश में रहा। कुल मिलाकर भारत पिछड़ा हुआ खेतिहर देश बना रहा। उत्पादक शक्तियों के असमान वितरण की समस्या बहुत ही उग्र हो गयी। देश के बहुत भीतर के इलाके औद्योगीकरण से अछूते ही रहे। एक सबसे पिछड़ा हुआ इलाक़ा मध्य भारत था। औद्योगीकरण और यूरोपीय प्रभाव ने सैकड़ों रजवाड़ों में बंटे हुए राजपूताना को भी नहीं छुआ। विकास मुख्यतया सागरतट के समीपवर्ती प्रदेशों में ही हुआ, जो समुद्रमार्गों से इंगलैंड तथा विदेशी मंडियों से जुड़े हुए थे।

औपनिवेशिक शासन की नीति देश की उत्पादक शक्तियों के विकास को सीमित करने की थी। इसका परिणाम यह हुआ कि नगरों की औद्योगिक आधार पर संवृद्धि पर्याप्त तेज़ी से न हो पायी। विकासमान मशीनी उद्योग कुटीर और हस्त उद्योगों को वैसे पूरी तरह बेदख़ल न कर सका, जैसे कि उसने औद्योगिक दृष्टि से विकसित यूरोपीय देशों में किया था। भारत में उसके साथ-साथ मैन्यूफ़ैक्टरी तथा हस्त-शिल्पों का अस्तित्व बना रहा, जिनका असंख्य छोटे-छोटे प्रांतीय नगरों में प्राधान्य था। ये नगर ग्रामों से कोई ज़्यादा भिन्न न थे। उनके सामान्य जीवन, वास्तुशिल्प और नगर निर्माण में सदियों से चली आ रही परंपराओं की असाधारण जीवनक्षमता बराबर प्रकट होती रही।

व्यापार और छोटे पैमाने के उत्पादन के विकास से संबद्ध नगरीकरण पहले जैसे ही बढ़ता गया। किंतु ग्रामीण आबादी बहुत बड़ी होने के कारण नगरीकरण का सामान्य स्तर नीचा ही बना रहा। इस काल में गांवों से नगरों में, विशेषत: बड़े नगरों में आव्रजन अभूतपूर्व पैमाने पर पहुंच गया था।

बड़े नगरों की वृद्धि के साथ उपनिवेशवादियों द्वारा संवर्धित नगर की देहात के प्रति शोषणकारी भूमिका और-और खुलकर सामने आती गयी। नगर और देहात के बीच विरोध बढ़े। खुशहाल बड़े नगर और कंगाल होते जा रहे देहात के बीच बहुत बड़ी खाई पैदा हो गयी। यह संयोग की बात नहीं है कि स्वाधीनता संग्राम के उभार के दौर में जब स्वदेशी आंदोलन का, यानी विदेशी मालों तथा विदेशी संस्कृति के बहिष्कार का व्यापक प्रसार हुआ,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो चरखा ही विदेशी शासन के खिलाफ़ संघर्ष का प्रतीक बना और ग्रामीण जीवन तथा हस्त शिल्पों की ओर लौटने का महात्मा गांधी का नारा बहुत ही लोकप्रिय बना।

भारत में अंग्रेज़ों से पहले जितने भी विजेता आये थे, वे इस देश में आकर इसी देश के बन गये थे और फिर इसी को अपनी मातृभूमि समझने लगे थे। किंतु अंग्रेज भारत में विदेशी ही बने रहे। अपने को मालिक समझते हुए उन्होंने कभी स्थानीय आबादी और उसकी संस्कृति के साथ घुलने-मिलने की कोशिश नहीं की। वे मानो एक ऐसे नये उच्च वर्ण के लोग थे, जो स्थानीय संस्कृति के मुक़ाबले में अपनी संस्कृति को श्रेष्ठ समझते थे और इसलिए उसपर अपनी भाषा, अपना धर्म, अपनी शिक्षा-पद्धति और कलात्मक रुचियां थोपने का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देते थे। पश्चिम के और भारत की धरती का शासन बाहर से किये जाने की पद्धति के प्रबल प्रभाव से भारत में वे तैयार वास्तु-प्ररूप, भवन आकृतियां और नगर निर्माण की विधियां यांत्रिकतः आरोपित की गयीं, जिनका उपनिवेशस्वामी देश में जन्म और विकास हुआ था। इस काल में विकसित तथा निर्मित भारतीय नगरों की दोहरी संरचना थी। वे एक दूसरे के मुक़ाबले में खड़े दो भागों में बंटे होते थे: एक भाग शासक उपनिवेशवादियों के विशिष्ट वर्ग के लिए और दूसरा भाग स्थानीय निवासियों के लिए।

रणनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बहुत-से पुराने नगरों में यूरोपीयों ने स्थानीय आबादी से अलग-थलग अपनी छावनीनुमा बस्तियां (केंटोनमंट) बनायीं। वे सर्वत्र एकरूप होती थीं – शेष दुनिया से कटे हुए अपने गिरजे, स्कूल, अस्पताल तथा क्लब से युक्त बाक़ायदा सुनियोजित मुहल्ले जैसी। उनमें अंग्रेज़ सैनिक तथा प्रशासनिक अधिकारी और अन्य कर्मचारी अपने परिवारों के साथ रहते थे।

केंटोनमेंट नमूने की बस्ती की एक ठेठ मिसाल उत्तर-पश्चिमी भारत के चौदहवीं शती में निर्मित अंबाला नगर में अंग्रेज़ों द्वारा १८४३ में बसाया गया सदर बाज़ार नाम का इलाक़ा है।* अंबाला की आबादी उस समय कुल मिलाकर काफ़ी खुशहाल थी और उसका मुख्य धंधा व्यापार था। आधे से अधिक निवासी अवध से वहां आकर बसे हुए थे। १८८४ में बाढ़ के बाद नगर का पुनर्निर्माण और काफ़ी अधिक विस्तार किया गया। उसपर अंग्रेज़ वास्तुशिल्प का प्रभाव स्पष्टतया दिखायी देता है, यद्यपि उसके निर्माण में

* Temple R. R., *A Study of Modern Indian Architecture, as Displayed by British Cantonment at Ambala,* The Journal of Indian Art, London, 1886, vol. I, no. 6, pp. 32—47.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्थानीय राजमिस्त्तरी, बढ़ई और लोहार ही इस्तेमाल किये गये थे। सदर बाज़ार भू-विन्यास में लगभग वर्गाकार है और सड़कों का समकोणिक ग्रिड उसे १३२ हिस्सों में बांटता है। इमारतों का वास्तु-रूप काफ़ी विविधतापूर्ण है, किंतु अन्य स्थानीय बस्तियों की भांति यहां भी उन्हें दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है – ग़रीब लोगों के कच्चे घर और अमीर लोगों के पक्के घर। छतें चौरस हैं, किंतु बरामदों की छतें ढलवां और खपरैलों से ढकी हुई हैं।

आगे चलकर केंटोनमेंटों के गिर्द, जो सामान्यतया पुराने नगर से पांच – दस किलोमीटर की दूरी पर होती थीं, शानदार कोठियों, पार्कों, मैदानों, दूकानों, आदि से युक्त नये यूरोपीय मुहल्ले बस गये। नगर के भीतर यूरोपीयों की ऐसी बस्तियां भारत के बहुत-से नगरों में थीं, जैसे बनारस, इलाहाबाद (१८३४), आगरा (१८३५), अलीगढ़, लखनऊ, हैदराबाद, पेशावर (१८४६), लाहौर (१८४६), मुल्तान (१८८८), कलकत्ता, आदि।

अंग्रेज़ों द्वारा नवनिर्मित नगर भी दो अलग-अलग भागों में बंटे होते थे: एक यूरोपीयों के लिए और दूसरा भारतीयों के लिए। आम तौर पर कोई हरित पट्टी, नदी या खाली मैदान सर्वसुविधासंपन्न यूरोपीय भाग को भारतीय भाग से, जो औद्योगिक उद्यमों के गिर्द बसा होता था और जिसमें अधिकांशतः मज़दूर झोंपड़ियां तथा दूकानें, आदि ही होती थीं, अलग करता था।

अंग्रेज़ों ने अठारहवीं शती से उन्नीसवीं शती के मध्य तक भारत में जिन नगरों तथा भवनों का निर्माण किया, वे उस काल के यूरोपीय नगरों और भवनों से अधिक भिन्न न थे। गिरजे हर कहीं बनाये जाते थे। बीसवीं शती के आरंभ में भारत के लगभग हर नगर में एक न एक गिरजा अवश्य था। बड़े नगरों में तो उनकी संख्या दर्जनों तक पहुंच गयी थी।

अंग्रेज़ बहुत समय तक अपने को भारतीयों से अलग नहीं रख सके। दो विपरीत ध्रुवों – ब्रिटिश उपनिवेशवादियों और शोषित भारतीयों – के बीच शीघ्र ही संपत्तिधर वर्गों के लोगों का एक तबक़ा पैदा हो गया। ये राजा-महाराजा, नवाब, ज़मींदार, ख़ानदानी व्यापारी, आदि थे, जो अर्थव्यवस्था, व्यापार और अन्य आर्थिक व सांस्कृतिक क्षेत्रों में अंग्रेज़ों से सहयोग करते थे। लार्ड कर्ज़न ने उन्हें भारत के ब्रिटिश शासकों का साथी और सहभागी कहा था।

एक ज़माने में परंपरागत वास्तुशिल्प और कलाओं के मुख्य प्रश्रयदाता समझे जानेवाले इस तबक़े के लोगों ने ही अपने मालिकों को खुश करने के लिए यूरोपीय तौर-तरीक़े सबसे पहले अपनाये। उन्होंने अपनी रुचियां बदल लीं और हर चीज़ में अंग्रेज़ों का अनुकरण करने लगे। उन्होंने उनकी जीवन-पद्धति, भाषा और आचार-व्यवहार सहर्ष अंगीकार कर लिया। अपनी नयी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रुचियां उन्होंने अपने मातहत कारीगरों, वास्तुकारों, कलाकारों पर थोपीं और वे उनकी अपेक्षाएं पूरी करने और विभिन्न तरीक़ों से भारत में लाये गये यूरोपीय कला के नमूनों की नकल करने को बाध्य हुए। व्यापारियों तथा व्यवसायियों और विभिन्न सैनिक तथा प्रशासनिक पदों पर काम करनेवाले अधिकारियों के अलावा बहुत-से अंग्रेज़ इंजीनियर, चित्रकार, वास्तुशिल्पी, कवि और विद्वान भी भारत आते थे और यहां बस जाते थे। अमीर भारत-वासी यूरोप जाते थे और वहां यूरोपीय संस्कृति के संपर्क में आते थे।

अंधानुकरण में कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ावाली बात का आना लगभग स्वाभाविक ही है। परिणाम यह हुआ कि निर्माता को ख़ुश करने के लिए बिना सोचे-समझे विभिन्न युगों और विभिन्न देशों की शैलियों और रूपों का घालमेल कर लिया जाता था। इस काल में दक्षिण भारत (मैसूर, हैदराबाद, आदि) और उत्तर भारत (ग्वालियर, बंगाल, आदि) में निर्मित महल और कोठियां अपने अग्रभाग की आकृति में और भीतरी सज्जा में यूरोपीय शैलियों तथा रूपों के सर्वसंग्रहवादी अनुकरण से चकित कर देते हैं। अठारहवीं शती के अंत तथा उन्नीसवीं शती के भारत के वास्तुशिल्प और कला के लिए सर्वसंग्रहवादी प्रवृत्ति अपरिहार्य-सी थी। उन्नीसवीं शती में उपनिवेशवादियों ने जिस बड़े पैमाने पर निर्माण कार्य किया, उसका परिणम बड़े बंदरगाह-नगरों के वास्तुशिल्प के पूर्ण व्यक्तित्वलोप में दिखायी दिया।

जब सारा ही देश जीत लिया गया और अर्थव्यवस्था में भी अंग्रेज़ों ने सभी बुनियादी जगहों पर अधिकार कर लिया, तो स्थानीय संस्कृति को दबाने और यूरोपीय सभ्यता को बलात् थोपने की नीति और भी ज़ोर-शोर से और बहुत बड़े पैमाने पर चलायी जाने लगी।

उपनिवेशवाद के एक विचार-पोषक चार्ल्स ट्रैवेलिन के शब्दों में, भारत में क्रांति को रोकने का एकमात्र ज़रिया भारतीयों का यूरोपीकरण करना था। देश में अपनी स्थिति और सुदृढ़ करने के लिए अंग्रेज़ों को काफ़ी बड़ी संख्या में स्थानीय प्रशासनिक और अन्य (जैसे व्यापारिक फ़र्मों के लिए) कर्मचारियों की ज़रूरत पड़ी, जो उनके और स्थानीय आबादी के बीच बिचौलिए का काम करते। इसी उद्देश्य से उन्होंने स्कूल और कालेज खोलने शुरू किये, जिनमें शिक्षा अंग्रेज़ी में दी जाती थी। १८५० के दशक में ब्रिटिश सरकार ने भारत में पहली बार बंबई, कलकत्ता और मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना की। उसी समय देश में पहले कला विद्यालय भी खोले गये। वे यूरोपीय संस्कृति और शिक्षा के मुख्य प्रसार-केंद्र बने। उनमें अध्यापक यूरोपीय थे और उनका पाठ्यक्रम भी ब्रिटिश नमूने पर तैयार किया गया था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वे सरकार द्वारा किये जानेवाले निर्माण कार्यों के लिए और अंग्रेज़ों द्वारा संचालित उद्योगों के लिए वास्तुकार, चित्रकार और शिल्पी प्रशिक्षित करते थे।

ये विद्यालय एक प्रकार से भारत के लिए विजातीय विक्टोरियाकालीन इंगलैंड की अकादमीय कला की नर्सरियां थीं। यह कला न केवल भारतीयों के लिए परायी और अनवगम्य थी, अपितु स्वयं इंगलैंड में भी प्रतिगामी मानी जाती थी। फिर भी वह नये कला-संरक्षकों – औपनिवेशिक शासन और उससे संबद्ध भारतीय विशिष्टवर्गीय लोगों – की रुचियों से मेल खाती थी।

अंग्रेज़ों द्वारा स्थापित कला विद्यालयों ने अपने स्पष्ट दोषों के बावजूद भारत में पश्चिम की उपलब्धियों पर आधारित वास्तुशिल्प तथा कला की नयी व्यावसायिक धारा को आगे बढ़ाने में काफ़ी बड़ा योग दिया। वास्तुकार तथा चित्रकार की शिक्षा में परिप्रेक्ष्य, शरीररचना, प्रकाश तथा छाया के नियमों के ज्ञान, मॉडल को देखकर अथवा खुली जगह पर चित्रांकन तथा रेखांकन के अभ्यास को स्थान दिया गया। ईज़ल चित्रकारी का आविर्भाव हुआ। किंतु दूसरी ओर, भारतीय कला परंपराओं की पूर्णतः अवहेलना की गयी।

१८५४ में सार्वजनिक निर्माण विभाग की स्थापना हुई। वह सड़कों, बंदरगाहों तथा सिंचाई नहरों का ही निर्माण नहीं करता था, उसका कार्य सार्वजनिक व सरकारी इमारतों और व्यावसायिक उद्यमों के नक़्शे बनाना तथा निर्माण करना भी था। यह काम किसी अंग्रेज़ फ़ौजी इंजीनियर अथवा वास्तुकार की देखरेख में किया जाता था। भारतीय वास्तुकार सरकार द्वारा किये जा रहे निर्माण कार्यों में हिस्सा नहीं ले सकते थे और अगर उन्हें ऐसा करने भी दिया जाता था, तो केवल मामूली कर्मचारियों के तौर पर।

भारत में काम करनेवाले यूरोपीयों में गिल्बर्ट स्कॉट, बी० सुलीवैन, जे० पी० किप्लिंग, ई० लूटियेन्स और जी० बेकर जैसे माने-जाने वास्तुशिल्पी भी थे। फिर भी प्रायोजना निर्माण का कार्य अधिकांशतः सैनिक इंजीनियरों को ही सौंपा जाता था, जो स्थानीय परिस्थितियों तथा परंपराओं के प्रति उदासीन थे और यूरोपीय प्रतिमानों की नक़ल करके ही अपना काम चला लेते थे। आदेशदाता को क्लासिसिज़्म, गोथिक अथवा रोमैनेस्क, जो भी शैली पसंद होती, वे उसी रूप की इमारत बना देते। मिसाल के लिए, कर्नल, जी० कॉपर ने बंबई के टाउनहॉल को वैंजतियाई शैली और मेजर जे० हॉकिन्स ने वहीं की टकसाल के भवन को गोथिक शैली में डिज़ायन किया। भारतीय कारीगर अपने असामान्य तकनीकी कौशल का परिचय देते हुए केवल नक़्शों को देखकर ही कैसी-कैसी अजानी वास्तु-आकृतियां और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गचकारी की रचनाएं बना लेते थे। कलकत्ता के सैन्य सचिवालय की इमारत कोरिंथी स्तंभों और वीनस और की मार्स मुखाकृतियों से सजी हुई थी।

प्रशासनिक इमारतें और अंग्रेज़ व्यवसायियों की कोठियां आम तौर पर क्लासिसिज़्म की शैली में बनायी जाती थीं। बंबई, इलाहाबाद, लखनऊ, पूना, लश्कर, बंगलौर, कानपुर, आदि बहुत-से नगरों की म्यूनिसिपैलिटियों की इमारतें इसी प्रकार की थीं। न्यायालयों की इमारतों के लिए गोथिक शैली चुनी जाती थी। रीतियित क्लासिसिज़्म और गोथिक की शैली में निर्मित इमारतों के अलावा बहुत बार ऐसी इमारतें भी मिल जाती हैं, जिनका वास्तु विभिन्न आकृतियों और विभिन्न युगों की शैलियों का घालमेल है। इसकी एक ठेठ – और सबसे भौंडी भी – मिसाल १८६५ में निर्मित बंबई का विक्टोरिया टर्मिनस रेलवे स्टेशन है।

अंग्रेज़ों की नगर निर्माण सक्रियता का विकास उनके आधिपत्य-क्षेत्र के विस्तार के समानांतर हुआ और इस तरह अंततः देश के चार कोनों में चार महानगर, देश के चार सबसे बड़े आर्थिक तथा सांस्कृतिक केंद्र पैदा हुए: मद्रास, बंबई, कलकत्ता और दिल्ली। वे न केवल देश के सभी भागों को आपस में जोड़ते थे, अपितु सारे देश को बाह्य विश्व से जोड़नेवाली कड़ियां भी थे। शनैः शनैः देश की अधिकांश औद्योगिक तथा वाणिज्यिक पूंजी और श्रम-शक्ति भी उन्हीं में संकेंद्रित होती गयी। अपने विकास में वे भारत के अन्य नगरों से बहुत आगे निकल गये। यहां उनके इतिहास की विस्तार से चर्चा अपेक्षित है।

भारत में अंग्रेज़ों का पहला गढ़ मद्रास था, जो आज के तामिलनाडु राज्य की राजधानी है और कुवम नदी के मुहाने में मामल्लपुरम के प्राचीन बंदरगाह से ७० किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहां १६३९ में अंग्रेज़ों ने फ़ोर्ट जार्ज की नींव रखी। मद्रास का तटवर्ती समुद्र काफ़ी छिछला है, अतः सत्रहवीं – अठारहवीं शतियों में यहां आनेवाले जहाज़ अपना माल खुले समुद्र में ही उतारते थे और वहां से उसे छोटे देसी जहाज़ों द्वारा तट पर लाया जाता था। आज भी बंदरगाह के लिए आवश्यक जहाज़घाटों तथा अन्य आधुनिक साधनों से लैस होने के बावजूद मद्रास का कलकत्ता और बंबई के बंदरगाहों से और मसुलीपट्टम तथा विशाखापत्तनम जैसे उत्तम लंगरगाहोंवाले पुराने दक्षिण भारतीय बंदरगाहों से मुक़ाबला नहीं किया जा सकता है।

अठारहवीं शती के अंत में जब अंग्रेज़ों ने अपने मुख्य प्रतिद्वंद्वी फ़्रांसीसियों को हरा दिया, तो उसके बाद से आधार-चौकी और व्यापारिक केंद्र के रूप में मद्रास का महत्त्व कम घटने लग गया। भारतीय कपड़ों का निर्यात यहां

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के वजाय अब कलकत्ता और बंबई के बंदरगाहों के ज़रिये किया जाने लगा। देश के व्यावसायिक जीवन की मुख्य धारा से कट जाने के बाद मद्रास न केवल बंबई के स्तर तक नहीं पहुंच सका, बल्कि बड़ी विदेशी और स्थानीय इजारेदारियों का गढ़ भी न बन सका। देखने में भी मद्रास किसी विशाल नगरीकृत बस्ती का प्रभाव नहीं पैदा करता – वह सारा ही ताड़ के पेड़ों की हरियाली में खोया हुआ और छोटे-छोटे मकानों के जमघट जैसा लगता है।

मद्रास की नगरीय संरचना किसी सुनिश्चित योजना पर आधारित नहीं है। उसका विकास अधिकांशत: स्वत:स्फूर्त ढंग से और समुद्रतट की सीधी रेखा के समानांतर हुआ। किंतु उसकी स्थापना के समय से ही उसका दो भागों में विभाजन स्पष्टत: उभर आया: यूरोपीय भाग और भारतीय भाग। यूरोपीय भाग में निर्माण मुख्यत: दो धुरियों पर हुआ – एक, समुद्रतट के साथ-साथ, जो फ़ोर्ट और बंदरगाह से शुरू होता था, और दूसरे, इसके समकोण पर, जहां की मुख्य सड़क मद्रास को दूसरे नगरों से जोड़ती थी। समुद्र तटाग्र नगर का मुख्य भाग और सार्वजनिक स्थली था। वह विश्व का एक सबसे सुंदर तटीय नगरभाग भी है। उसका लंबा-चौड़ा, सुनहरी रेतवाला समुद्रतट, हरियाली में डूबी सागरतट वीथिका और दोनों ओर से वृक्षों से सजी, तीर जैसी सीधी, चौड़ी सड़क मुग्ध कर लेते हैं। किंतु अठारहवीं – उन्नीसवीं शतियों में निर्मित इमारतों का तरह-तरह की शैलियों की खिचड़ी जैसा वास्तुशिल्प इस शोभा को विगाड़ देता है। ब्रिटिश क्लासिसिज़्य की शैली में निर्मित पहले की कोठियों की बग़ल में ही बाद में सेनेट, सचिवालय, उच्च न्यायालय तथा विश्वविद्यालय के भवनों का निर्माण किया गया, जो अपने लाल बलुए पत्थर से भी और आकृति से भी उत्तर भारत की मुग़ल इमारतों की याद दिलाते हैं और कट्टर हिंदू धर्म के गढ़ दक्षिण भारत में विल्कुल बेमेल लगते हैं। नगर का कारोबारी जीवन माउंट रोड पर संकेंद्रित था, जहां की असंख्य वाणिज्यिक इमारतें, दूकानें, आदि अपने वास्तु-स्वरूप की दृष्टि से बहुत ही मामूली हैं। पिछवाड़े की गलियों और सड़कों में छोटे-मोटे औद्योगिक और व्यापारिक उद्यम स्थित थे।

मद्रास के भारतीय भाग के उत्तर-पूर्वी इलाक़ों में भारत के पहले चमड़ा कारख़ाने और दूसरे औद्योगिक उद्यम क़ायम हुए। उनके गिर्द मज़दूर बस्तियां पैदा हुईं, जो फैलते-फैलते आसपास के गांवों से जा मिलीं।

नगर के दक्षिणी हिस्से में हरियाली में डूबे हुए त्रिप्लिकेन (तिरुवल्लिकेनि) और मयलापुर के मुहल्ले थे, जिनमें अधिकांशत: संपन्न नागरिकों के बाग़-बगीचों से घिरे दो-तीन मंज़िले बंगले बने हुए थे। त्रिप्लिकेन में नगर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की सबसे बड़ी मस्जिद और परंपरागत शैली में निर्मित कपालेश्वर मंदिर भी स्थित हैं। मंदिर के गोपुरों की ऊंचाई ६० मीटर है और समीप ही एक विशाल स्नानकुंड भी बना हुआ है। कपालेश्वर मंदिर के बाद दक्षिण भारत में ऐसे भव्य मंदिर भवन-समुच्चयों का निर्माण और न हुआ।

मद्रास के बाद अंग्रेज़ों ने जिस दूसरे बंदरगाह-नगर की स्थापना की, वह बंबई था। उसे भारत का पश्चिमी द्वार भी कहा जाता है। बंबई के विकास तथा विस्तार में उसकी भौगोलिक स्थिति बड़ी सहायक सिद्ध हुई। वह यूरोप और एशिया के बीच के सागरमार्गों पर स्थित था। १८६९ में स्वेज़ नहर के निर्माण के बाद से तो यूरोपीय बंदरगाहों और हिंद तथा प्रशांत महासागर थाले के देशों के बंदरगाहों के बीच की दूरी और भी कम हो गयी और बंबई का महत्त्व और भी बढ़ गया। अपनी उत्कृष्ट लंगरगाह की बदौलत बंबई, जो अठारहवीं शती तक एक दूर-दराज़ की मछुआरा बस्ती ही था, शीघ्र ही ब्रिटिश साम्राज्य का मुख्य समुद्री अड्डा बन गया।

१६७९ में अंग्रेज़ों ने सूरत के कुछ बुनकरों को बंबई में लाकर बसाया था। तब यह एक छोटा-सा द्वीप ही था। किंतु उन्नीसवीं शती के अंत तक बंबई भारत में कपड़ा उद्योग का सबसे बड़ा केंद्र बन गया। उसका विस्तार आसपास के देहातों की क़ीमत पर हुआ। बंबई की वजह से भड़ौच, खंभात, सूरत और बड़ौदा जैसे अनेक फूलते-फलते पुराने शिल्प केंद्र और बंदरगाह पृष्ठभूमि में पड़ गये। बीसवीं शती के आरंभ तक बंबई के गिर्द कच्चे माल और औद्योगिक उत्पादन के विशेषीकरण की दृष्टि से अविभाज्य एक सार्वदेशिक महत्त्व का आर्थिक क्षेत्र – पश्चिमी आर्थिक क्षेत्र – विकसित हो गया। ६५ प्रतिशत सूती वस्त्रों की खपत मंडी वहीं थी। बंबई अंग्रेज़ों द्वारा उन्नीसवीं शती के अन्त में स्थापित देश के सबसे बड़े बैंकों का मुख्यालय भी बना। बंबई से देश के सभी भागों और रणनीतिक महत्त्व के सभी स्थानों को रेल और सड़क मार्ग जाते थे।

बंबई का नगर-क्षेत्र सात द्वीपों पर फैला हुआ है, जो मुख्यभूमि और बांधों द्वारा आपस में जुड़े हुए हैं। बंबई का संकरा, नुकीला प्रायद्वीपीय भाग अरब सागर में दूर तक घुसकर उसे दो खाड़ियों में बांटता है – पूर्वी और पश्चिमी। नगर का पुराना नाभिक पूर्वी खाड़ी के, जो एक आदर्श प्राकृतिक लंगरगाह है, तट पर ही स्थित था। यहां अंग्रेज़ों ने फ़ोर्ट जार्ज (१६६१) के गिर्द सेंट टामस गिरजा (१६७२–१७१८), टकसाल, चुंगीघर और म्यूनिसिपैलिटी का निर्माण किया। १७५० में खाड़ी के तट पर पहली गोदियां बनीं, जो फ़ोर्ट से उत्तर में ४ किलोमीटर तक फैली हुई थीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बंबई का संकरा प्रायद्वीपीय भाग शुरू से ही वाणिज्य-व्यवसाय का केंद्र बन गया। उन्नीसवीं शती के मध्य से नगर का केंद्रीय भाग तेज़ी से बढ़ने लगा। बंदरगाह के निकट १८६५ में विक्टोरिया टर्मिनस रेलवे स्टेशन का निर्माण हुआ। वह बंबई को अहमदाबाद से, जो कपड़ा उद्योग का पुराना और आज तक तेज़ी से बढता हुआ केंद्र है, तथा अन्य नगरों से जोड़ता है।

जीभनुमा कोलाबा अंतरीप और छोटे-से मलाबार हिल्स अंतरीप के बीच का इलाक़ा बंबई का सबसे यूरोपीकृत इलाक़ा है। लगभग सभी बड़ी सार्वजनिक और कारोबारी इमारतें इस हरियाली से भरपूर इलाक़े में ही स्थित हैं। नगर के इस भाग का विकास बिना किसी पूर्वनिर्धारित योजना के हुआ। विभिन्न कोणों पर एक दूसरी से मिलनेवाली उसकी सड़कें तटरेखा के अधिकांशतः या तो समानांतर हैं अथवा समकोण पर। नगर की बहुत-सी मुख्य सड़कें फ़लोरा फ़ाउंटेन नामक लंबे-चौड़े नगर चौक में आकर मिलती हैं, जिसकी आकृति एक अनियमित आयत जैसी है। चौक के बीच में एक बड़ा फ़ौवारा बना हुआ है और चारों ओर बैंकों, व्यावसायिक फ़र्मों, होटलों, आदि की इमारतें और मुख्य डाक-तार कार्यालय स्थित हैं। नगर उद्यान के पास बंबई विश्वविद्यालय और प्रिंस आफ़ वेल्स म्यूज़ियम की इमारतें बनी हुई हैं। यहीं, नगर के केंद्र में ही बहुमंज़िले डिपार्टमेंट स्टोरों के समीप एक बहुत बड़ा बंद मार्केट भी बनाया गया था।

कोलाबा और मलाबार हिल्स के बीच का हंसियानुमा समुद्र तटाग्र नगर का सबसे दर्शनीय भाग, लोगों के घूमने-टहलने की जगह और सभाओं तथा प्रदर्शनों की स्थली है। वर्तमान शती के पूर्वार्ध में यहां सफ़ेद कालर लोगों के रहने के लिए कई-कई फ़लैटोंवाले अनाकर्षक चारमंज़िले भवन बनाये गये।

उपनिवेशकालीन बंबई का अधिकांश विस्तार उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में हुआ, जब नगर में जाति, धर्म अथवा पेशे के आधार पर बहुत-से नये मुहल्ले बसे। बंबई का मुख्य, सबसे अधिक यूरोपीय दिखनेवाला भाग उत्तर में औद्योगिक इलाक़ों से लगा हुआ है, जो कल-कारख़ानों की चिमनियों, मज़दूरों और छोटे दफ़्तरी कर्मचारियों के रहने की बदसूरत तीन-चारमंज़िली इमारतों और मधुमक्खियों के छत्तों सरीखी अंधेरी, गंदी झोंपड़पट्टियों के जंगल जैसे लगते हैं। नगर का विकास एक ही दिशा, उत्तर की ओर मुख्यभूमि की दिशा में ही हुआ। यहां अनियंत्रित ढंग से एक के बाद एक करके अनगिनत मज़दूर और कर्मचारी बस्तियां पैदा होती गयीं, जिनके निवासियों को रोज़ाना काम की जगह तक पहुंचने के लिए बेहद थका देनेवाली यात्राएं करनी पड़ती थीं। अंतर्नगरीय परिवहन की समस्या अपने उग्रतम रूप में सबसे पहले बंबई में ही पैदा हुई।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बंबई के बाद देश का विदेशी मंडियों से जुड़ा हुआ सबसे महत्त्वपूर्ण बंदरगाह कलकत्ता था, जो आज पश्चिमी बंगाल राज्य की राजधानी है। अपने सारे अस्तित्व और संवृद्धि के लिए यह नगर पश्चिम बंगाल की धरती और लोगों का आभारी है, जिनके संसाधनों और श्रम ने इसे प्रचंड आकार का महानगर बनने में मदद की। आश्चर्य की बात है कि इतनी अत्यंत प्रतिकूल जगह पर भी कलकत्ता एक विशाल नगर बना और १७७३ से १९१२ तक ब्रिटेन के विराट भारतीय साम्राज्य की राजधानी की भूमिका निभा सका। डेल्टा के निकट क्षेत्र के प्राकृतिक केंद्र में इससे अधिक अनुकूल स्थल पर तो गौड़ शासकों की राजधानियां पांडुआ और राजमहल बसे थे, जो अब खंडहर बने पड़े हैं।

कलकत्ता की स्थापना तिथि २४ अगस्त, १६९० मानी जा सकती है, जब ईस्ट इंडिया कंपनी के एजेंट जॉब चारनाक के जहाज़ ने हुगली नदी में सूतानटी गांव के पास लंगर डाला था। असह्य गर्मी, आर्द्रता, दलदल और मलेरिया, पेचिश, आदि रोग पैदा करनेवाली उसकी भाप, कुछ भी दुर्दम विदेशी लुटेरों को न रोक सका। उनकी लालची नज़रें मलमल और रेशम जैसे बहुत ही महीन कपड़ों के उत्पादन के लिए विख्यात ढाका तथा मुर्शिदाबाद और बंगाल की उपजाऊ घाटियों में फूलते-फलते दूसरे नगरों की दौलत पर लगी हुई थीं। १६९७ में अंग्रेज़ों ने स्थानीय नवाब से, जिसे वे रिश्वत के रूप में खूब भेंटें देते रहते थे, मात्र १२०० रुपये में तीन गांव—सूतानटी, गोविंदपुर और कालीकाता—खरीद लिये और इन तीनों के मिलने से एक नयी बस्ती बस गयी, जो आगे चलकर कलकत्ता के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह नाम कालीकाता का ही रूपांतर था। अब से अंग्रेज सौदागर स्थानीय जमींदार बन बैठे और किसानों का निर्ममतापूर्वक शोषण करने लगे। उनकी चालाकी और लालच की कोई सीमा न थी। इन ज़मीनों पर ही उन्होंने भारत में पहली जूट मिलें क़ायम कीं, जिनके गिर्द मज़दूर बस्तियां बसती गयीं। १७०० में जब फ़ोर्ट विलियम का निर्माण पूरा हुआ, तो कलकत्ता को ब्रिटिश प्रेसीडेंसी घोषित कर दिया गया।

अंग्रेज़ों को व्यापार के अलावा बस्तियां और क़िले बनाने की इजाज़त देते हुए स्थानीय शासकों ने सोचा भी न था कि एक दिन ये सौदागर खुद उनके और बंगाल के लिए ही नहीं, बल्कि सारे भारत के लिए भी कितना बड़ा खतरा बन जायेंगे। उस समय किसी अंग्रेज़ को भी शायद ही अहसास हुआ होगा कि वे भारत में औद्योगिक युग का सूत्रपात करेंगे और उनकी मामूली-सी फ़ैक्टरी एक विशाल संकुल-नगर (एग्लोमेरेशन) में, विश्व के एक सबसे बड़े नगर में तबदील हो जायेगी। कलकत्ता के इलाके में नगरीय बस्तियों का संकेंद्रण मुख्यतया अंग्रेज़ उपनिवेशवादियों की बदौलत ही हुआ, जिन्होंने समुद्र के पहुंच-मार्ग पर स्थित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस जगह को भी भारत के सबसे घनी आबादीवाले और संपन्न इलाक़ों का शोषण करने तथा लूटने के लिए उपयुक्त जगह बनाया। ज्यों-ज्यों इलाक़े का औद्योगीकरण होता गया, ये नगर बढ़ते और विकास करते गये। कलकत्ता ही भारत की जूट उत्पादों की लगभग सारी आवश्यकता पूरी करता है और चाय के अधिकांश भाग का निर्यात भी यहीं से होता है। भारत में और कहीं इतना सघन औद्योगीकरण नहीं हुआ, जितना कि बृहत्तर कलकत्ता के इलाक़े में। हुगली नदी के किनारे-किनारे नगरों और बस्तियों की एक पूरी की पूरी शृंखला क़ायम हो गयी थी।

कलकत्ता को भारत में औद्योगिक पूंजी की जन्मस्थली और संपन्नता तथा दरिद्रता का प्रदेश कहा जा सकता है। ब्रिटिश उपनिवेशवाद की देन यह नगर राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का पालना और भारत की प्राचीन राष्ट्रीय परंपराओं तथा पश्चिमी यूरोपीय संस्कृति की उपलब्धियों के सम्मिश्रण से उत्पन्न आधुनिक भारतीय सभ्यता का मुख्य केंद्र बना। कलकत्ता ने रवींद्रनाथ ठाकुर सरीखा महान कवि तथा विचारक, प्रतिभाशाली विद्वान तथा वैज्ञानिक, माने-जाने सांस्कृतिक और सार्वजनिक कार्यकर्त्ता दिये। यहां सृजित बंगला साहित्य एवं कला की कृतियां अपनी वैचारिक उदात्तता, कल्पना-प्रवणता और मानव संवेदनाओं की गहनता से विस्मित कर देती हैं।

कलकत्ता को अपने इतिहास के दौरान अनगिनत विपदाएं और कष्ट भुगतने पड़े हैं। उपनिवेशवादियों की तो बात ही क्या, प्रकृति और जलवायु ने भी उसे और उसके निवासियों को नहीं बख़्शा। बाढ़ों, हैज़ा तथा चेचक की महामारियों और अकालों का सिलसिला खत्म ही होने को न आता था। १९४३ के विकराल दुर्भिक्ष ने लाखों लोगों की जान ली। १९४७ के देश-विभाजन ने तो कलकत्ता की मानो कमर ही तोड़ दी।

प्राकृतिक विपदाएं और राजनीतिक समस्याएं आती हैं, गुज़र जाती हैं, लेकिन कलकत्ता का स्थायी अभिशाप – पूंजीवाद के शिकंजे में स्वतःस्फूर्त ढंग से बढ़ती औद्योगीकरण और नगरीकरण की प्रक्रियाएं – ज्यों का त्यों बना हुआ है। बृहत्तर कलकत्ता में एक ओर, मृत्युदर जन्मदर से अधिक है और, दूसरी ओर, आबादी घटने के बजाय अभूतपूर्व तेज़ी से बढ़ती ही जा रही है। जैसा कि ओ० एच० के० स्पेट लिखते हैं, वास्तव में ऐसे नगर लोगों को खा जाते हैं और आबादी में जो वृद्धि दिखायी देती है, वह असल में औद्योगीकरण की वेदी पर नयी-नयी बलियों के अनवरत आप्रवाह का ही परिणाम होती है। स्पेट के इन शब्दों में हम "पूंजीपतियों के मुनाफ़ों की वेदी पर" भी जोड़ना चाहेंगे।

इस निस्सीम नगर को सीमाओं में बांध पाना, उसमें वर्गीय हितों, जातिगत तथा धर्मगत भेदों, पुरातन परंपराओं और आधुनिकतम प्राविधिक प्रक्रियाओं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का जो दुरूह अंतर्गुंफन पाया जाता है, उसे हृदयंगम कर पाना असंभव है। सुप्रसिद्ध बंगाली साहित्यकार प्रेमेंद्र मित्र की यह उक्ति कलकत्ता के बारे में बड़ी सटीक बैठती है : "यह किसी बड़े पुराने नासूर जैसे फैला हुआ महानगर है, जिसकी ऊंची-ऊंची छतें, मीनारें और गगनचुंबी अट्टालिकाएं एक ऐसी प्रार्थना की तरह लगती हैं, जो मनुष्य के अंतस्तल से निकली है... उसकी सड़कें कभी उनपर रहनेवाले लोगों के जीवन जैसी ही ऊबड़-खाबड़ और मोड़ों तथा घुमावों से भरपूर हैं, तो कभी सूने, हताश दिलों जैसी अंधकारग्रस्त तथा रहस्यमय और कभी इतनी खुली-खुली तथा प्रकाश से जगमग कि जैसे मानव की सृजन-प्रतिभा और उसकी उद्दाम जीवन-लालसा का प्रतिबिंब हों।"

बंबई की तुलना में, जो एक कास्मोपोलिटन नगर है, कलकत्ता अपनी जातीय संरचना की दृष्टि से अधिक एकरूप है। उसकी अधिकांश आबादी बंगाली है, यद्यपि यहां काफ़ी बड़ी संख्या में यू० पी०, बिहार तथा उड़ीसा से आये आप्रवासी भी रहते हैं। कलकत्ता की आबादी की सामाजिक असमानताएं और जातीय तथा सांस्कृतिक वैविध्य उसकी औपनिवेशिक काल से चली आ रही संरचना में प्रतिबिंबित हुए। ८० प्रशासनिक हल्क़ों में विभाजित कलकत्ता में स्वाधीनता से पहले तक एक दूसरे से सर्वथा भिन्न दो भाग स्पष्टत: देखे जा सकते थे : यूरोपीय भाग और देसी भाग। यूरोपीय मुहल्ले नगर के उत्तरी बायें तटवाले हिस्से में बसे हुए थे। उसके सामने नदी के पार उन्नीसवीं शती के मध्य में वनस्पति उद्यान लगाया गया और तभी हावड़ा पुल का निर्माण भी हुआ, जो भारत में लोहे के पहले ढांचों में से एक है।

कलकत्ता में रिहायशी मुहल्लों और दूसरी इमारतों का जो निर्माण १७०० में शुरू हुआ था, उन्नीसवीं शती के मध्य से उसमें बहुत तेज़ी आ गयी। अधिकांश निर्माण हुगली के किनारे-किनारे ही हुआ, जहां क़िला (फ़ोर्ट विलियम) भी स्थित था। क़िले में प्रशासनिक भवन, फ़ौजियों की रिहायशी इमारतें, सैनिक गोदाम और १७८३ – १७८७ में नवगोथिक शैली में निर्मित सेंट जॉन गिरजा स्थित थे। अभेद्य दीवारोंवाला, भूविन्यास में नक्षात्राकार और खाइयों से घिरा हुआ यह क़िला (क्षेत्रफल ५१८ हैक्टर) उस कार्य के लिए कभी इस्तेमाल न हो पाया, जिसके लिए उसे बनाया गया था। उसके भीतर रहनेवालों की सुरक्षा के लिए उसके इर्द-गिर्द तोप की मार जितनी दूरी तक जंगल साफ़ करके खुला मैदान छोड़ दिया गया था। आरंभ में यह विशाल मैदान खेलकूदों के लिए इस्तेमाल किया गया, लेकिन बाद में यहां सजी-संवारी हरियाली और कृत्रिम जलाशयों के बीच ३ किलोमीटर लंबी और २ किलोमीटर चौड़ी फूलों की क्यारियों की पट्टी बना दी गयी। उसमें किसी इमारत का निर्माण नहीं होने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिया गया और समय के साथ वह नगर का एक प्रमुख सार्वजनिक स्थल बन गया। उसका नाम भी मैदान ही पड़ गया। उसमें मीटिंगें होती थीं, हाटें, मेले लगते थे और प्रदर्शनियां आयोजित की जाती थी। उसके मध्य में एक विजयस्तंभ खड़ा है, जिसे १८५७ के विद्रोहियों पर अंग्रेज़ों की विजय की स्मृति में स्थापित किया गया था।

१८७६ में कलकत्ता को औपचारिकत: "भारत-साम्राज्ञी" महारानी विक्टोरिया के "भारतीय साम्राज्य" की राजधानी घोषित किया गया (कलकत्ता वैसे भी १७७३ से ब्रिटिश भारत की राजधानी था)। महारानी विक्टोरिया के सम्मान में कलकत्ता के मैदान में एक स्मारक संग्रहालय – विक्टोरिया मेमोरियल – बनाया गया (१९०६–१९२१), जिसका नक़्शा वास्तुशिल्पी वी० एमरसन ने तैयार किया था। क्लासिसिज़्म की शैली में निर्मित इस विशाल इमारत का आडंबरपूर्ण आकार और उसके भीतर की वस्तुओं, विशेषत: ब्रिटिश सम्राटों के छविचित्रों का उद्देश्य स्पष्टत: भारत के सर्वशक्तिमान विदेशी शासकों का महिमागान करना था, जिनकी मूर्तियां अब से नगर में हर महत्त्वपूर्ण स्थल पर स्थापित की जाने लगीं (भारत के स्वाधीन होने के बाद से इन मूर्तियों को हटाकर उनकी जगह महात्मा गांधी, सुभाषचंद्र बोस, इत्यादि राष्ट्रीय नेताओं की मूर्तियां लगा दी गयी हैं)। संग्रहालय के सामने, मैदान के दूसरे उत्तरी छोर पर असेंबली की इमारत (१८६२) और वायसराय निवास (१८७२), जो अब राजभवन कहलाता है, हाईकोर्ट और म्यूनिसिपैलिटी के भवन स्थित हैं। मैदान के पश्चिम में हुगली नदी है और पूर्व में नगर की सबसे मुख्य सडक चौरंगी, जो नगर की उत्तर-दक्षिण धुरी पर गुज़रते हुए उसे दो हिस्सों में बांटती है। चौरंगी पर नगर की सबसे फ़ैशनेबुल दूकाने और होटल स्थित हैं, लेकिन इसी के फ़ुटपाथ कलकत्ता के बेघर लोगों के लिए रैनबसेरे का काम भी करते हैं। इस सड़क के किनारे बनी इमारतों में टकसाल और इंडियन म्यूज़ियम की इमारतें उल्लेखनीय हैं, जिनका वास्तुशिल्प कई शैलियों की खिचड़ी है। आगे चलकर उसपर हरे-भरे बाग़ों के बीच शानदार कोठियोंवाले रिहायशी मुहल्ले बने हैं, जिनके दूसरी ओर विशाल पोलो मैदान स्थित है।

नगर के यूरोपीयों द्वारा निर्मित नाभिक और उससे लगे अलीपुर और बालीगंज के मुहल्लों को पीछे छोड़कर ज्यों ही हम बाहरी दक्षिण-पश्चिमी इलाक़ों में पहुंचते हैं, दृश्य एकदम बदल जाता है। कलकत्ता का असली, पारंपरिक भारतीय नगरवाला चेहरा यहीं दिखायी देता है। मिश्रित भू-उपयोगवाले और हरियाली तथा नागरिक सुविधाओं से वंचित इन इलाक़ों में लोग रहते भी हैं और अपने काम-धंधे भी चलाते हैं। यहां दूकानें कर्मशालाएं, फ़ैक्टरियां,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुटीर उद्योग-धंधे, आदि सब कुछ हैं। यहां के सुनारों, बुनकरों और संगतराशों की कला आज भी सम्मोहित कर देती है। यहां के निवासियों की श्रम, रहन-सहन, धर्म और कला से संबंधित अपनी परंपराओं में अटल आस्था आज भी बाहरी आदमी को आश्चर्य में डाल देती है। नगर के केंद्र से ये इलाक़े चौड़े संकेंद्री वलयों की तरह फैलते जाते हैं और दूरी बढ़ने के साथ आबादी की सघनता बढ़ती जाती है तथा रिहायशी मकान तथा परिवेश अधिक सुविधा-हीन बनते जाते हैं। ऊंची जातों के जो बंगाली व्यापार और उद्योग के क्षेत्र में काम करते हैं, वे नगर के उत्तरी भाग में रहते हैं। इन इलाक़ों के समीप ही उच्च तथा मध्यवर्गीय मुसलमानों के इलाक़े भी स्थित हैं। परंपरागत बंगाली बनिया वर्ग नगर के दक्षिणी भाग में रहता है। यहां की सड़कें अपेक्षाकृत सुनियोजित हैं और मकान, जिनका सारा अग्रभाग जालीदार बरामदों तथा बाल्कनियों से ढका होता है, एक दूसरे से सटे हुए और चार-पांचमंज़िले हैं। यहां परिवहन का मुख्य साधन ट्राम और रिक्शा हैं। पीने, नहाने, कपड़े धोने, वग़ैरह के लिए पानी कूओं से लिया जाता है।

नगर के बिल्कुल बाहरी छोर पर गंदी बस्तियों का सघन घेरा है। यहां असह्य गंदगी के बीच और बेतरतीब ढंग से निर्मित झोंपड़ियों में नगर की दो तिहाई आबादी रहती है। भारतीय अर्थशास्त्री बी० मुकर्जी के शब्दों में, इन बस्तियों के भीतरी अभिन्यास का फ़ोटो ले पाना तभी संभव होता है, जब सांप्रदायिक दंगों के परिणामस्वरूप, जो कि यहां आम बात हैं, कम से कम आधा इलाक़ा जलकर ख़ाक बन जाये। खुली नालियां बस्ती का सारा गंदा पानी और कूड़ा-कर्कट बस्ती के बीच ही स्थित पोखरों में उंडेल देती हैं। टट्टी-पेशाब बदबूदार मैदानों में और खुली जगहों पर कर लिया जाता है। कलकत्ता की आबादी का पांचवां हिस्सा बेघर है और सड़कों तथा फ़ुटपाथों पर सोता है। एक तिहाई आबादी के हिस्से में प्रति दो परिवारों के पीछे एक कमरा आता है। पानी-नलों का उपयोग केवल एक तिहाई आबादी के लिए सुलभ है और शेष को कूओं, हैंडपंपों अथवा पोखरों के पानी से ही काम चला लेना पड़ता है। कलकत्ता क्षेत्र में इक्की-दुक्की औद्योगिक बस्तियों को छोड़कर कोई भी मज़दूर बस्ती उपरोक्त गंदी बस्तियों से बेहतर नहीं है।

कलकत्ता के निवासियों की मुसीबतें मानसून के दिनों में और भी बढ़ जाती हैं। इस मौसम में नगर की सड़कें गंदे पानी के नालों में तबदील हो जाती हैं। आम तौर पर नगर के ऊपर दलदलों, पोखरों और गंदी नालियों से उठी भाप के घने बादल छाये रहते हैं। जब तापमान और आर्द्रता अपने चरम पर होते हैं, नगर के भीतर सांस लेना दूभर हो जाता है। गरमियों के मौसम में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धूल की आंधियां चलती हैं, जिनकी रफ़्तार १८-२२ मीटर प्रति सैकंड तक होती है। गरमियों और मानसून के दिनों में मच्छरों और दूसरे कीटों का प्रकोप भी वहुत बढ़ जाता है। अतः आश्चर्य नहीं कि कलकत्ता को विश्व के सबसे अधिक महामारी-प्रवण इलाकों में गिना जाता है।

१९११ में कलकत्ता में नगर-सुधार के लिए और निर्माण-कार्यों को व्यवस्थित करने के लिए एक विशेष परिषद बनायी गयी, जिसकी सिफ़ारिशों पर अनेक महत्त्वपूर्ण क़दम उठाये गये, जैसे टाला में नगर के मुख्य जलाशय का निर्माण, सेंट्रल एवेन्यू, रसा रोड जैसी चौड़ी छायादार सड़कों, पार्कों, उद्यानों तथा स्क्वायरों का वनाया जाना, आदि। किंतु अगले वर्ष १९२१ में जब ब्रिटिश साम्राज्य की राजधानी क्रांतिकारी रुझानवाले कलकत्ता से दिल्ली स्थानांतरित की गयी, तो नगर-सुधार तथा निर्माण संबंधी सभी काम रोक दिये गये, जो भारत के स्वाधीन होने के बाद ही फिर से शुरू हो पाये।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद की उपज बंबई, कलकत्ता और मद्रास नगरों में बीसवीं शती के आरंभ तक देश के तीन चौथाई उद्योग संकेंद्रित हो चुके थे। ये बंदरगाह-नगर सभी तरह के संचार के नाभिक और विदेशी पूंजी के मुख्य कार्य तथा जमाव-स्थल भी थे, जिसके फलस्वरूप वे बहुत ही ज्यादा फैल गये और संकुल-नगर (एग्लोमेरेशन) में बदलने लगे। उपनिवेशस्वामी देश और उपनिवेश के बीच श्रम-विभाजन के फलस्वरूप इन नगरों के गिर्द तीन आर्थिक क्षेत्र पैदा हुए, जिनमें कोई खास औद्योगिक उत्पादन संकेंद्रित था। उत्तर-पूर्वी क्षेत्र जिसका नाभिक कलकत्ता था, सारा जूट उत्पादन का केंद्र था। बंबई और उसके इर्द-गिर्द के पश्चिमी आर्थिक क्षेत्र में देश का तीन चौथाई सूत तथा सूती कपड़ा तैयार होता था। मद्रास के गिर्द बढ़ रहा दक्षिणी आर्थिक क्षेत्र चर्म और चर्मनिर्मित मालों के लिए प्रसिद्ध था। स्वयं नगरों में, भूमि तथा उत्पादन साधनों के सर्वशक्तिमान मालिकों की मनमानी और निजी संपत्ति के इस अनियंत्रित राज में संपन्नता तथा दरिद्रता के दो चरम ध्रुवों के बीच एक दुर्लंघ्य खाई पैदा हो गयी। पूंजीवादी नगर के जन्म के क्षण से ही यह खाई उसकी संरचना और उसके वास्तु-रूप में भी प्रतिबिंबित हुई। नगर की वृद्धि के साथ वह बढ़ती गयी। कार्ल मार्क्स अपनी कालजयी कृति 'पूंजी' के प्रथम खंड में लिखते हैं, "...उत्पादन के साधनों का जितना अधिक केन्द्रीयकरण होता है, मज़दूरों की उतनी ही बड़ी संख्या को थोड़े से स्थान के भीतर भर दिया जाता है, और पूंजीवादी संचय जितनी तेज़ी से होता है, मेहनत करनेवालों के रहने के मकान उतने ही खराब होते हैं।"*

*कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', खंड १, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९७५, पृ० ७३६।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवादियों की नगर निर्माण संबंधी जो गतिविधियां सत्रहवीं शती में आरंभ हुई थीं, वे बीसवीं शती की पहली चौथाई में नयी दिल्ली के निर्माण में अपनी चरम परिणति पर पहुंचीं। नयी दिल्ली सारे देश को अंग्रेज़ों के पंजे के नीचे दबोचे रखनेवाली नगर प्रणाली का अंतिम और सबसे महत्त्वपूर्ण आधारस्तंभ थी। उसमें हम भारत की यूरोपीकृत नगर निर्माण संस्कृति को अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ पाते हैं। भारत में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के विस्तार ने और बंगाल में वंग-विभाजन के फलस्वरूप जो क्रांतिकारी उथल-पुथल मची थी, उसने उपनिवेशवादियों को अपने उपनिवेशों का शासन-केंद्र कलकत्ता से देश के अंदर, अधिक सुरक्षित स्थान पर ले जाने को बाध्य कर दिया था और इस दृष्टि से यही उचित समझा गया कि राजधानी उसकी पुरानी जगह पर ही स्थानांतरित की जाये, जहां शाहजहानाबाद के गिर्द बसी पुरानी दिल्ली अभी भी भरा-पूरा जीवन जी रही थी।

नयी दिल्ली को ब्रिटेन के भारतीय साम्राज्य का ही नहीं, अन्य ब्रिटिश सभी उपनिवेशों का भी मुख्य प्रशासनिक केंद्र बनना था। इसके लिए पहले कैनबरा (आस्ट्रेलिया की राजधानी) को चुना गया था, किंतु इंगलैंड से बहुत दूर होने की वजह से वह ब्रिटिश वायसराय के निवास के लिए कम उपयुक्त था। दिसंबर, १९११ में अपनी ताजपोशी के समय नये ब्रिटिश सम्राट् जार्ज पंचम ने ब्रिटिश उपनिवेशों की राजधानी कलकत्ता से दिल्ली ले आने और यहां एक नया नगर बनाने के निर्णय की घोषणा की। इस नये नगर को ब्रिटिश साम्राज्य की शक्तिमत्ता और अटलता का प्रतीक भी बनना था।

एक सुनिश्चित योजना के अनुसार किसी पूरे के पूरे नगर का – विश्व के एक सबसे बड़े राज्य की राजधानी का तो और भी – निर्माण बहुत ही महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना होता है। आम तौर पर नगर के शिलान्यास के अवसर पर तोपें दागी जाती थीं और अन्य रस्में संपन्न की जाती थीं। किंतु नयी दिल्ली के निर्माण पर भारत में कोई ख़ास उत्साह नहीं दिखाया गया। शोषण के जुए तले दबी जनता के लिए यह एक और भारी बोझ था। महात्मा गांधी और दूसरे कई नेताओं ने उसका विरोध किया। नयी दिल्ली का निर्माण उन व्यवसायियों को भी पसंद न आया, जिन्होंने कलकत्ता की नागरिक परियोजनाओं में पैसा लगा रखा था और अब राजधानी दिल्ली स्थानांतरित कर दिये जाने से अपने संभावित मुनाफ़ों से हाथ धो बैठे थे। प्रेस में भी नये नगर के निर्माण की योजनाओं की अपरिहार्य विफलता की भविष्यवाणियां की गयीं। कहा गया कि दिल्ली में बसाया गया हर नगर उसके निर्माताओं की क़ब्र सिद्ध हुआ है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किंतु इस सारे विरोध के बावजूद १५ दिसंबर, १६११ को नगर का शिलान्यास हुआ। बीच में पहला विश्वयुद्ध आ जाने के कारण निर्माण १६३१ में जाकर पूरा हो पाया। नयी राजधानी अपने प्रतीकात्मक प्रयोजन को पूरा न कर सकी। निर्माण पूरा हुए १६ वर्ष ही गुज़रे थे कि १६४७ में अंग्रेज़ों को भारत छोड़ देना पड़ा। किंतु नगर जैसा अभिकल्पित किया गया था, वह वैसा ही अपने अक्षत रूप में बना रहा और स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद के वर्षों में भी अपने राजधानी के प्रकार्य को निभाता रहा। शायद विश्व में नयी दिल्ली जैसे आकार का ऐसा और कोई नगर नहीं है, जो कि प्रशासन-तंत्र के कार्यकलाप से इतने घनिष्ठतः संबद्ध हो। नयी दिल्ली में ३ लाख लोग, यानी सामाजिक उत्पादन में रत आबादी का एक तिहाई से अधिक भाग सरकारी दफ़्तरों में काम करता है। नयी दिल्ली के अकेले सचिवालय के ही गलियारों की कुल लंबाई १४ किलोमीटर है। सचिवालय भवन के द्वार के ऊपर यह बहुत ही अर्थपूर्ण उक्ति खुदी हुई है: "स्वतंत्रता लोगों तक स्वयं नहीं पहुंचती, लोगों को स्वयं उस तक उठना होता है।"

नयी दिल्ली के मध्य में एक विशाल उच्चाधार पर सरकारी इमारतों का अत्यंत भव्य समुच्चय खड़ा है, जो वर्साई के भवन-समुच्चय से किसी प्रकार छोटा नहीं है। उसके सामने हरे मैदानों, तालाबों और तरु-पंक्तियों के बीच राजपथ का — अंग्रेज़ों के ज़माने में इसे किंग्सवे कहते थे — शानदार और नयनाभिराम दृश्य फैला पड़ा है।

लाल बलुए पत्थर की छटा, बृहदाकृति और वास्तुशिल्प के स्वरूप की दृष्टि से नयी दिल्ली का भवन-समुच्चय, जैसी कि अभिकल्पना की गयी थी, सत्रहवीं शती में मुग़लों द्वारा निर्मित शाहजहानाबाद के शानदार वास्तु-स्मारकों से पूरी तरह मेल खाता है। किंतु दूसरी ओर, धूलभरे, घने बसे हुए शाहजहानाबाद के मुक़ाबले में, भुलभुलैयां जैसी टेढ़ी-मेढ़ी तंग गलियों, कूचों और अहातोंवाले इस ठेठ उत्तर भारतीय नगर की तुलना में और आसपास के काश्त किये हुए खेतों तथा मानो धूप से झुलसकर कोयला-सा बने हुए पत्थरों तथा कंटीली झाड़ियों से ढके उजाड़ मैदानोंवाले निरानंद भूदृश्य के बीच नयी दिल्ली एक हरित चमत्कार, उद्यान-नगर जैसा लगता है। वह सारा फूले-फले उद्यानों, वीथिकाओं तथा पार्कों की हरियाली में डूबा हुआ है, जिसमें बीच-बीच में सुंदर-सुंदर बंगले और कोठियां बनी हुई हैं। ये इमारतें अंग्रेज़ अभिजातों तथा उच्चाधिकारियों और भारतीय राजा-महाराजाओं के लिए बनायी गयी थीं। अब उनमें भारत सरकार के अधिकारी और नये उभरते हुए भारतीय बुर्जुआज़ी के प्रतिनिधि रहते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नयी दिल्ली की प्रायोजना और निर्माण दो प्रसिद्ध अंग्रेज़ वास्तुशिल्पियों – लूटियेन्स और बेकर – के निदेशन में हुआ था।* लूटियेन्स के हिस्से में नगर की सामान्य प्रायोजना बनाने और वायसराय निवास (वर्तमान राष्ट्रपति भवन) जैसी मुख्य इमारतें, मुख्य व्यापार-केंद्र कनाट प्लेस और स्थानीय अभिजातों के महल डिज़ायन करने का काम आया था, जबकि बेकर ने सेक्रेटेरियेट (सचिवालय), असेंबली हाउस (वर्तमान संसद भवन) और कुछ अन्य कोठियों को डिज़ायन किया।

नगर और सरकारी भवनों के लिए जगह चुनने में लूटियेन्स ने बड़ी दूरदर्शिता का परिचय दिया। वायसरॉय लार्ड हार्डिंज नयी दिल्ली को यमुना के किनारे मैदानी जगह पर बसाना चाहते थे, किंतु लूटियेन्स ने उन्हें नगर को रायसीना पहाड़ी पर बसाने के लिए राज़ी कर लिया। जलवायु की दृष्टि से यह जगह दलदली नदीतट के मैदान के मुक़ाबले अधिक स्वास्थ्यकर थी। फिर नगर निर्माण कला की दृष्टि से भी यह स्थान नगर के विकास के लिए आदर्श संभावनाएं पेश करता था। उसके एक ओर, उत्तर में, जीवन की हलचल से भरपूर, व्यापार तथा शिल्प का बहुत बड़ा केंद्र, विकासमान पुरानी दिल्ली थी और दूसरी ओर, दक्षिण में, दिल्ली सल्तनत के ज़माने की राजधानियों के खंडहर थे।

पड़ोस ही में स्थित होने से नयी और पुरानी दिल्लियों के बीच घनिष्ठ अन्योन्य-संबंध और कारगर कारोबारी संपर्क बने रह सकते थे। इसके साथ ही विस्तार की आवश्यकता पड़ने पर नयी दिल्ली दक्षिण और दक्षिण-पूर्व में जितना चाहे बढ़ सकती थी, जहां विशाल रिज़र्व क्षेत्र फैला पड़ा था और जहां स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद से अनेक रिहायशी इलाक़े बसाये भी गये हैं। पूर्व में नगर की सीमा यमुना नदी थी, जिसपर दो पुल बने थे।

नगर निर्माण परंपराओं की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध होने के बावजूद भारत में पहले कभी ऐसे विराट पैमाने पर नगर निर्माण नहीं हुआ था। एडविन लूटियेन्स ने यहां यूरोप से लायी गयी और भारत के लिए सर्वथा नयी नगर निर्माण की संकल्पना को मूर्तरूप दिया। उनके प्रेरणा-स्रोत निश्चय ही एबिनेज़र हावर्ड थे, जिनके उद्यान-नगर संबंधी विचार उन दिनों यूरोप में बड़े प्रचलित थे। किंतु वह इन विचारों के मूलतत्त्व को शायद पकड़ नहीं पाये। हावर्ड

---

* Hussey C., *The Life of Sir Edwin Lutyens*, vols I—III, London, New York, 1950, vol. I, pp. 237—359. Nilsson S., *The New Capitals of India, Pakistan and Bangladesh*, Lund, 1975, pp. 29—86.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के विचारानुसार नगर में नगरीय जीवन और ग्राम्य जीवन, दोनों की अच्छाइयों का समन्वय होना चाहिए। किंतु नयी दिल्ली में हम अरीय तथा वर्तुल सड़कों द्वारा विभाजित बड़े-बड़े, प्रचुर हरियालीयुक्त मैदान ही पाते हैं, जिनमें बीच-बीच में बग़ीचों से घिरे बंगले तथा कोठियां और बहुत-से गोल चौराहे तथा स्क्वायर बने हुए हैं।

नगर के रूप तथा अभिन्यास में सर्वोच्च सत्ता की शक्तिमत्ता का प्रदर्शन करने की नयी दिल्ली के निर्माताओं की आकांक्षा नगर की महायोजना में साकार बनी, जिसमें शानदार, सीधी, दोनों ओर से वृक्षपंक्तियों से घिरी सड़कों की त्रिभुजीय प्रणाली अपनायी गयी है। वायसराय निवास (वर्तमान राष्ट्रपति भवन) और उसके आसपास के भवन-समुच्चय से सड़कें पंखें जैसी फैलती हुई नदी की ओर बढ़ती हैं, जो यहां से ८ किलोमीटर दूर है, और दूर क्षितिज में जाकर खो जाती हैं। भारत के लिए अजानी-अपहचानी ऐसी देशिक व्यवस्था सबसे पहले फ़ांसीसी सम्राटों के निवास वर्साई में अपनायी गयी थी। आंद्रे ले नोत्र द्वारा वर्साई में प्रयुक्त त्रिभुजीय प्रणाली, जैसा कि ज्ञात है, बाद में विभिन्न रूपों में बहुत-से यूरोपीय वास्तुशिल्पियों की नगर-निर्माण संबंधी प्रायोजनाओं में दोहरायी गयी थी।

भारतीय नगर निर्माण कला के इतिहास में पहली बार नयी दिल्ली में अरीय अभिन्यास प्रणाली लागू की गयी, जिसमें मुख्य स्थान नगर परिवहन व्यवस्था से पूर्णतः असंपृक्त वायसराय निवास और उसके आसपास के भवन-समुच्चय को प्राप्त था। रचना-विन्यास में मुख्य धुरियां एक दूसरे को समकोण पर काटनेवाली सड़कें थीं: किंग्सवे (वर्तमान राजपथ), जो पश्चिम से पूर्व की ओर, नदी की ओर जाता है, और क्वीन्सवे (वर्तमान जनपथ), जो उत्तर से, व्यापार-केंद्र कनाट प्लेस से दक्षिण में लाल कोट के खंडहरों की ओर जाता है।

नयी दिल्ली की नगरीय संरचना में तीन घटकों पर विशेष ज़ोर दिया गया था: वायसराय निवास, इंडिया गेट (प्रथम विश्वयुद्ध में वीरगति को प्राप्त भारतीय सैनिकों की स्मृति में निर्मित विजय-तोरण) और कनाट प्लेस। वायसराय निवास इंडिया गेट से किंग्सवे द्वारा और कनाट प्लेस से पार्लियामेंट स्ट्रीट (वर्तमान संसद मार्ग) द्वारा जुड़ा हुआ था, जबकि कनाट प्लेस को इंडिया गेट से कर्ज़न रोड (वर्तमान कस्तूरबा गांधी मार्ग) जोड़ता था।

किंग्सवे (राजपथ) नगर के अभिन्यास का मुख्य संघटनात्मक कीलक था और है। कुल ३५८ मीटर चौड़े इस उद्याननुमा एवेन्यू में दोनों ओर बीच की पक्की सड़क के समानांतर तरुपंक्तियोंवाले घास के मैदानों और फ़ौवारेयुक्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तालाबों की पट्टियां बनी हुई हैं। वह वायसराय निवास (राष्ट्रपति भवन) के चौक (वर्तमान विजय चौक) के सामने से शुरू होता है और पूर्व-पश्चिम धुरी पर बढ़ते हुए यमुना तट की ओर जाता है। १९४० में अंग्रेज़ वास्तुशिल्पी वी० मेड ने इस एस्प्लेनेड के किनारे कुछ बेमेल इमारतें बनाकर इसकी शोभा को काफ़ी हद तक बिगाड़ दिया।

भारत के गणराज्य घोषित हो जाने के बाद से हर वर्ष २६ जनवरी को, जो कि भारत का गणराज्य दिवस है, इस अन्यथा निर्जन-सी सड़क की शक्ल अकल्पनीय रूप से बदल जाती है। उस दिन मानो सारा नानारूप भारत समुद्र की तरह उसपर उमड़ आता है। गणराज्य दिवस की परेड में सशस्त्र सेनाओं की टुकड़ियों के साथ-साथ देश के सभी राज्यों के प्रतिनिधि भी भाग लेते हैं। शाम को दिल्ली के सभी कोनों से लोग यहां घूमने और रोशनी तथा आतिशबाज़ी देखने आते हैं।

नगर का मुख्य दृश्य-स्थल वायसराय निवास तथा उसके आसपास की इमारतों को बनाया गया था। नगर निर्माण कला के क्लासिक नमूनों के अनुसार उन्हें नगर में उपलब्ध सर्वोच्च स्थली पर बनाया गया है और जैसे कि यह ऊंचाई भी काफ़ी न हो, उसे कृत्रिम तरीक़े से और ४.५ मीटर ऊंचा किया गया है। किंतु इस सारी रचना को पूर्णता प्रदान करनेवाला वायसराय निवास काफ़ी पीछे स्थित होने की वजह से अपेक्षित प्रमुखता नहीं पा सका। मुख्य पहुंच मार्ग से उसके गुंबद का केवल ऊपरी अर्धभाग ही दिखायी देता है। अग्रभाग पर सचिवालय की इमारतें छायी हुई हैं। फलस्वरूप सौंदर्यात्मक दृष्टि से यह भवन-समुच्चय ही नहीं, सारा नगर भी अपेक्षित चाक्षुष प्रभाव नहीं उत्पन्न कर पाता। पुरानी दिल्ली और कनाट प्लेस से सचिवालय और वायसराय भवन की ओर आने के लिए मुख्य दिग्सूचक असेंबली हाउस (वर्तमान संसद भवन) था। लूटियेन्स ने इस इमारत के लिए सिलिंडर की जो आकृति चुनी है, वह नगर निर्माण कला की दृष्टि से बड़ी उपयुक्त है। मध्य में गोल अहाते से युक्त यह इमारत बाहर से स्तंभावलि से घिरी हुई है।

नयी दिल्ली की संरचना में कनाट प्लेस का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह नयी और पुरानी दिल्ली के बीच मुख्य संयोजन कड़ी का काम भी करता है।

कनाट प्लेस से सभी दिशाओं में अरीय मार्ग जाते हैं। उनमें से एक, संसद मार्ग (भूतपूर्व पार्लियामेंट स्ट्रीट) संसद भवन पर जाकर खत्म होता है और कनाट प्लेस को सचिवालय तथा राष्ट्रपति भवन (भूतपूर्व वायसराय निवास) से जोड़ता है। उत्तर में इसी सड़क का सिलसिला मिंटो रोड है, जिससे शाहजहानाबाद (पुरानी दिल्ली) पहुंचा जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कनाट प्लेस नयी दिल्ली का ऐसा एकमात्र स्क्वायर (चौक) है, जहां हमेशा बड़ी भीड़, सक्रियता और चहल-पहल रहती है। शेष सभी स्क्वायर चौराहों के तौर पर बनाये गये थे। नयी दिल्ली के अभिन्यास में इस बात को ध्यान में नहीं रखा गया था कि कालांतर में नगर में आधुनिक परिवहन साधनों की तादाद और ट्रैफ़िक बढ़ जायेंगे। किंतु आज भी उसकी सीधी सड़कों और गोल चौराहों पर नियंत्रण की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती और ऐसे लगता है कि जैसे वे आधुनिक परिवहन साधनों के लिए ही बनाये गये हों। कहा जा सकता है कि ट्रैफ़िक संचार की ऐसी व्यवस्था में ही नयी दिल्ली की विशिष्टता निहित है, जो उसे भारत के अन्य नगरों से भिन्न वनाती है।

कनाट प्लेस यूरोपीय नियो-क्लासिसिज़्म की शैली में निर्मित एक अविभाज्य वास्तु-समुच्चय है। उसकी आकृति एक जैसी दोमंज़िली उजली इमारतों की दो क़तारों से घिरे गोल चौक जैसी है। दोनों क़तारों के बीच में एक सड़क है, जो माल ढोने, उतारने, रखने, आदि के लिए और फेरीवालों तथा मज़दूरों द्वारा इस्तेमाल की जाती है। इमारतों की दोनों कतारों के आगे टस्कनी ढंग के स्तंभोंवाले गलियारे बने हुए हैं, जिनके पीछे पहली मंज़िलों पर दूकानें हैं।

आज कनाट प्लेस का पहले जैसा संभ्रांत यूरोपीय रूप नहीं रह गया है और वह एक बहुत ही भीड़-भड़क्केवाला कोलाहलपूर्ण व्यापारिक इलाक़ा बन गया है।

कनाट प्लेस से राजपथ की ओर जानेवाले मार्ग जनपथ पर पुराने बड़े-बड़े वृक्षों के पीछे कई होटल स्थित हैं। कनाट प्लेस से भगतसिंह मार्ग (भूतपूर्व लेडी हार्डिंज रोड) के ज़रिये लक्ष्मीनारायण के विशाल मंदिर-समुच्चय में पहुंचा जा सकता है, जिसका निर्माण भारत के एक प्रमुख इजारेदार उद्योगपति घराने के संस्थापक घनश्यामदास बिड़ला ने १९३८–१९३९ में करवाया था। कैंटोनमेंट रोड (वर्तमान बाबा खड़गसिंह मार्ग) कनाट प्लेस को दिल्ली छावनी से और पालम अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे जानेवाले मार्ग से जोड़ती है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि लूटियेन्स के सामने भौतिक और आत्मिक दोनों ही दृष्टियों से अंग्रेज़ शासकों की नयी राजधानी का महान मुग़लों की राजधानी से संबंध दिखाने का जो लक्षय रखा गया था, उसे पाने में उसे पूर्ण सफलता मिली। वास्तुशिल्पी ने नवनिर्मित सड़कों से अतीत के किसी न किसी महत्त्वपूर्ण वास्तु-स्मारक के सर्वाधिक प्रभावी हिस्से की झलक दिखाने और बहुत बार तो उस स्मारक को नये नगर का एक उल्लेखनीय दिग्सूचक तक बना डालने का एक भी अवसर हाथ से नहीं जाने दिया।

किंग्सवे (राजपथ) यमुना के तट पर उस स्थान की ओर अभिमुख था,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जहां ३००० वर्ष पहले पांडवों की राजधानी इंद्रप्रस्थ बसी हुई थी और अब १५४० में निर्मित पुराना क़िला का मुख्य द्वार स्थित है। नयी दिल्ली के अभिन्यास में दिल्ली की दो सबसे महत्त्वपूर्ण इमारतों – लाल क़िला और जामा मस्जिद – के साथ संबंध को स्पष्टतः उभारा गया है और शाहजहानाबाद के पुनर्निर्माण की अपनी योजनाओं में आधुनिक वास्तुशिल्पी भी इस संबंध पर विशेष ज़ोर देते हैं।

नयी राजधानी के निर्माण में भारत के विभिन्न भागों से लाये गये ३५०० माहिर राजमिस्तरियों ने भाग लिया था। इसके अलावा उसमें किसानों से भी काम करवाया गया था। ई० लूटियेन्स ने राजधानी परियोजना को आधार बनाकर भारत में एक स्थायी वास्तुकला तथा शिल्प विद्यालय खोलने की सोची थी, जो कि वास्तुकार, मूर्तिशिल्पी, मिस्तरी, बढ़ई, माली, दीवारदरियां बनानेवाले और दूसरे कारीगर तैयार करता। लेकिन सरकार को यह प्रस्ताव मान्य न हुआ, क्योंकि प्रथम विश्वयुद्ध और रूस की महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति जैसी विश्व घटनाओं के बाद से वे भारत में अपनी स्थिति डगमगाती महसूस करने लगे थे।

अंत में नयी दिल्ली के संबंध में यही कहा जा सकता है कि वह पश्चिम यूरोपीय नगर निर्माण कला का एक ठेठ नमूना था और भारतीय परंपरा से किसी भी प्रकार नहीं जुड़ा हुआ था। उसका निर्माण भारत के अंग्रेज़ शासकों के लिए किया गया था। उत्पादन तथा कारोबारी जीवन पहले जैसे ही पुरानी दिल्ली में संकेंद्रित रहे। पुरानी दिल्ली में अंग्रेज़ों ने नयी दिल्ली के निर्माण से पहले उन्नीसवीं शती के अंत में अपनी छावनी क़ायम की थी, फ़ीलपायों से लाल क़िले की दीवारों को मज़बूत बनाया था, टाउन हॉल, रेलवे स्टेशन और सरकारी बैंक की इमारतों का निर्माण किया था। वर्तमान शती के तीसरे दशक में पुरानी दिल्ली के उत्तर में खाली पड़े इलाक़े में विश्वविद्यालय नगरी का निर्माण किया गया।

औपनिवेशिक शासन की परिस्थितियों में जहां एक ओर, परंपरागत नगर निर्माण कला की अवनति हुई तथा पुराने सामाजिक संबंध टूट रहे थे, वहां दूसरी ओर, एक नये उत्पादन आधार पर और नये सामाजिक संबंधों की पृष्ठभूमि में नगरीकरण की अपरिहार्य प्रक्रिया घट रही थी। नये परिवहन साधनों के प्रकट होने और रेल मार्गों का जाल फैलने से आर्थिक और देशिक अन्योन्य-संबंधों का नया ढांचा विकसित हुआ, जिसने आवासीय परिवेश को बदल डाला और देश को उपनिवेशस्वामी राष्ट्र से जोड़नेवाले वर्धमान बंदरगाह-नगरों के आसपास के इलाक़ों तथा नगरों को असामान्य महत्त्व प्रदान कर दिया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूसरा अध्याय

स्वाधीन भारत के नगर और नगर निर्माण की समस्याएं

स्वाधीनता पाने के बाद भारत के सामने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति के उत्थान, नगरों की संवृद्धि और नगरीकरण की अपूर्व संभावनाओं के द्वार खुल गये। नयी परिस्थितियों में देश का क्षेत्रीय तथा आर्थिक ढांचा बदलने लगा और इसके साथ ही बस्ती प्रणाली और स्वयं नगर का भी रूपांतरण शुरू हुआ।

औपनिवेशिक भारत का दो स्वतंत्र राज्यों – भारत और पाकिस्तान – में विभाजन १५ अगस्त, १९४७ को हुआ।

भूतपूर्व उपनिवेशों का स्वतंत्र राष्ट्रीय राज्यों के रूप में अंतर्राष्ट्रीय मंच पर पदार्पण एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना थी। औद्योगिक क्रांति संपन्न किये बिना ही ये देश वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति के वर्तमान युग में विश्व अर्थप्रणाली में शामिल हुए, जिसके सहगामी अभूतपूर्व पैमाने पर आबादी की वृद्धि, नगरों का विकास और नगरीकरण भी हैं।

साम्राज्यवादी देशों द्वारा कच्चे माल और खाद्य पदार्थ मुहैया करनेवाले देहात जैसी स्थिति में रहने को विवश किये गये देशों के लिए आज़ादी पा लेने के बाद आवश्यक हो गया कि वे आधुनिक युग की उपलब्धियों के आधार पर और अपनी जनता के हितों तथा स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपनी अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति का नये सिरे से निर्माण करें। किंतु औपनिवेशिक शासन के कुपरिणामों तथा सामंतवाद के अवशेषों के ख़ात्मे के बिना यह संभव नहीं है। सामाजिक और आर्थिक प्रगति के पथ पर अग्रसर होनेवाले इन सभी देशों में निम्न बातें पायी जाती हैं: देश के विभिन्न भागों के विकास-स्तरों में घोर असमानता, मुख्यतया खेतिहर अर्थव्यवस्था का बहुसंरचनात्मक स्वरूप, अपूर्ण औद्योगिक क्रांति, तेज़ी से बढ़ती आबादी और नगरीकरण की धीमी रफ़्तार।

ये सभी बातें भारत पर भी लागू होती हैं, जो तीसरी दुनिया का एक सबसे बड़ा तथा विकसित देश है। किंतु वह शेष भूतपूर्व उपनिवेशों से इस लिहाज़ से भिन्न था कि उसमें बड़ी राष्ट्रीय पूंजी अस्तित्व में आ चुकी थी और कारख़ाना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उद्योग तथा आधारिक संरचना, जो बड़े संकुल-नगरों में संकेंद्रित थे, काफ़ी विकसित थे, यद्यपि उत्पादन की सबसे मुख्य कड़ी – भारी उद्योग – लगभग अनुपस्थित था।

भारत स्वाधीन तो हो गया, किंतु उसके विभाजन ने अत्यंत जटिल तथा दीर्घकालिक साझी समस्याओं के अलावा कुछ ऐसी समस्याएं भी उत्पन्न कीं, जिनका तत्काल हल ज़रूरी था। विभाजन के बाद कुछ ही महीने तो क्या, कुछ ही हफ़्तों में १ करोड़ ७० लाख से अधिक लोग एक देश छोड़कर दूसरे देश में बसने को मजबूर हुए। पैमाने और अवधि, दोनों ही लिहाज़ों से आबादी का ऐसा देशांतरण विश्व इतिहास में पहले कभी नहीं देखा गया था।

भारत सरकार को ८० लाख से अधिक शरणार्थियों के लिए सिर छिपाने की जगह और रोज़गार की व्यवस्था करनी पड़ी। जो आवासीय निर्माण शुरू किया गया, वह अधिक से अधिक एक चौथाई लोगों की ज़रूरत पूरी कर सकता था। शेष ने बड़े नगरों, विशेषत: कलकत्ता और दिल्ली में बिखरकर बेघर और बेरोज़गारों की फ़ौज में ही वृद्धि की। पश्चिम बंगाल, जो मुख्य कच्चे माल – जूट – के स्रोतों से वंचित हो गया था, और पंजाब, जिसकी ४/५ सिंचाई नहरें पाकिस्तान के हिस्से में आ गयी थीं, विभाजन के दुष्परिणामों से आज तक नहीं उबर सके हैं।

ऐसी स्थिति में स्वाधीन भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने देश के सामने दीर्घावधि आर्थिक आयोजना के ज़रिये और औद्योगीकरण के आधार पर राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का लक्ष्य रखा। सरकार ने देश के आर्थिक विकास की पंचवर्षीय योजनाएं बनायीं, जो १९५१–१९५२ से लागू हुईं।

भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में देश में समाजवादी ढंग का समाज बनाने की बात कही जाती है। नेहरू समानता और ग़रीबी-उन्मूलन के आदर्शों को राजकीय आयोजना का अनिवार्य अंग बताते थे और जातपांत तथा सांप्रदायिकता के ख़ात्मे को इन आदर्शों की पूर्ति के लिए आवश्यक मानते थे।

स्वाधीनता पाने के बाद से देश के जीवन में राज्य की भूमिका अकल्पनीय रूप से बढ़ गयी है। अंग्रेज़ों के ही ज़माने में रेल तथा सड़क मार्गों, टेलीग्राफ़ तथा अन्य संचार साधनों, नगरों की अभियांत्रिक तथा तकनीकी सज्जा, आदि के निर्माण तथा दोहन का दायित्व सरकार के ऊपर रखा गया था। आधारिक ढांचा कहलानेवाला अर्थव्यवस्था का यह कम मुनाफ़ा देनेवाला भाग १९४७ में अंग्रेज़ों के हाथों से भारत की नयी सरकार के हाथों में आ गया। वर्तमान काल में परिवहन मार्गों, बंदरगाहों, सिंचाई प्रतिष्ठानों और बड़े बिजलीघरों के अलावा अनेक महत्त्वपूर्ण औद्योगिक उद्यम भी राज्य की संपत्ति हैं। सार्वजनिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्षेत्र को निर्यात व्यापार, वित्त व्यवस्था तथा देश के वैज्ञानिक व तकनीकी विभव के निर्माण के क्षेत्रों में प्रमुख स्थिति प्राप्त है। देश की आर्थिक संरचना के पुनर्गठन, जनसंख्या के वितरण और नगरों की संवृद्धि में राज्य की भूमिका बढ़ रही है। सरकारी मशीनरी के कार्य-क्षेत्र का विस्तार होने से नये-नये वैज्ञानिक अनुसंधान केंद्र पैदा हो रहे हैं. बड़ी-बड़ी सरकारी इमारतें बन रही हैं और औद्योगिक वास्तुशिल्प के क्षेत्र में प्रगति हो रही है।

सार्वजनिक क्षेत्र की बढ़ती आर्थिक शक्ति की रचनात्मक भूमिका सर्वथा स्पष्ट है। किंतु उसे किसके हित में इस्तेमाल किया जायेगा – जनता और समस्त राष्ट्र के हित में या निजी पूंजी और मुख्यतः इजारेदार पूंजी के हित में, यह ऐसा सवाल है, जो भारत के स्वाधीन होने के बाद से आज तक तय नहीं हो पाया है। कृषि, हल्के उद्योगों और अन्य क्षेत्रों में पूंजीवाद का स्वतःस्फूर्त विकास कुल मिलाकर आज भी अर्थव्यवस्था में राज्य की भूमिका पर अंकुश का काम कर रहा है।

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद से देश के आर्थिक जीवन में बड़े इजारेदार पूंजीपति घरानों की भूमिका बहुत बढ़ गयी है। बिड़ला, टाटा, मफ़तलाल तथा श्रीराम जैसे औपनिवेशिक काल में ही पैदा हो चुके इजारेदार घराने आज बहुत बड़ी शक्ति हैं। उन्होंने धातुकर्म, रसायन, इंजीनियरिंग उद्योगों और हल्के उद्योग की लगभग हर शाखा में जड़ें जमायी हुई हैं। विदेशी इजारेदारियों के साथ भी उनके संबंध बढ़ रहे हैं। यद्यपि विदेशी इजारेदारियों को उनकी महत्त्वपूर्ण जगहों से बेदख़ल कर दिया गया है और सरकार ने उनके कार्यकलाप पर कई पाबंदियां लगायी हुई हैं, फिर भी निजी विदेशी पूंजी की मात्रा में समग्रतः वृद्धि ही हो रही है।

भारत की अर्थव्यवस्था में छोटी पूंजी और छोटे पैमाने के माल उत्पादन का प्राधान्य आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है।

कुल मिलाकर देश में प्रभुत्वपूर्ण स्थिति राष्ट्रीय बुर्जुआज़ी को ही प्राप्त है।

देश में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास के साथ-साथ नगर और देहात, दोनों में ही संपन्नता और ग़रीबी के दो विरोधी ध्रुवों के बीच फ़ासला और विरोध बढ़ता जा रहा है। देश में एक ओर, ८ लाख से अधिक गांव हैं, जिनके उत्पादन साधन अभी भी आदिम स्तर पर हैं, और दूसरी ओर, लाखों की आबादीवाले आधुनिक महानगर हैं। इन नगरों में वित्तीय साधन, उत्पादन क्षमताएं, राजनीतिक और वैचारिक दबाव के साधन, सभी मुट्ठीभर इजारेदारियों के नियंत्रण में हैं। यह गगनचुंबी इमारतों में स्थित उनके बैंक ही हैं कि जो नगर की आकाशरेखा का निर्धारण करते हैं। उनके आलीशान होटलों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और बंगलों को इससे कोई सरोकार नहीं कि उनकी बग़ल में ही ग़रीबों की झोंपड़पट्टियां कुकुरमुत्तों जैसे उग रही हैं। किंतु सामाजिक विषमताओं और राजनीतिक घटनाओं के इस जटिल वातावरण में भी भारत ने आज़ादी के वर्षों में उल्लेखनीय प्रगति की है। तीन ही दशकों में भारत एशिया की जापान के बाद दूसरी सबसे बड़ी औद्योगिक शक्ति बन गया है। आज भारत विश्व के उन्नत देशों को कच्चा माल ही नहीं, इस्पात, लेथें तथा दूसरे भारी उद्योगों के तैयार माल भी मुहैया करता है, एशिया और अफ़्रीका के विकासमान देशों को वैज्ञानिक व तकनीकी सहायता देता है, उनके लिए कल-कारख़ाने, नगर, इमारतें बनाता है। इस सफलता में तीन निर्णायक कारकों का योगदान रहा है: प्रबंध के राजकीय उत्तोलकों का सुदृढ़ीकरण, दीर्घावधि आयोजना प्रणाली का सुसंगत क्रियान्वयन और अर्थव्यवस्था की बुनियादी शाखाओं के विकास में सोवियत संघ तथा दूसरे देशों से मिलनेवाली माली तथा तकनीकी सहायता।

भारत की योजनाबद्ध विकास की नीति का मुख्य उद्देश्य उत्पादक शक्तियों तथा आबादी के वितरण की औपनिवेशिक काल से विरासत में मिली पुरानी संरचना को बदलना और उसकी जगह पर अर्थव्यवस्था की ऐसी नयी क्षेत्रीय संरचना का विकास करना है, जो पिछड़े हुए, मगर प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से समृद्ध इलाक़ों में आर्थिक उन्नति और नगरों की संवृद्धि में सहायक हो सके।

औद्योगीकरण की नीति ने, विशेषत: भारी उद्योगों की स्थापना और अपने ऊर्जा आधार के निर्माण की नीति ने निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक बनकर अपना औचित्य पूर्णत: सिद्ध कर दिखाया है। भारत के औद्योगिक युग में प्रवेश ने उसका कायाकल्प कर डाला है। सारे देश में, यहां तक कि बिल्कुल उजाड़, पिछड़े इलाक़ों में भी, आधुनिकतम धातुकर्म संयंत्रों, विशाल बांधों तथा बिजलीघरों, लेथनिर्माण, अल्यूमीनियम, सीमेंट तथा औषधि-उत्पादन कारख़ानों का निर्माण हुआ है। रसायन और लेथनिर्माण उद्योग तो बड़ी तेज़ी से बढ़ रहे हैं।

१९५० और १९६० के दशकों में भारत में औद्योगिक निर्माण बहुत बड़े पैमाने पर और बड़ी तेज़ी से हुआ। पहली पंचवर्षीय योजनाओं के इन वर्षों में देश में भिलाई, राउरकेला, भद्रावती तथा दुर्गापुर के विराटाकार इस्पात कारख़ाने, बंगलौर के इंजीनियरिंग कारख़ाने और विशाल बांध तथा बिजलीघर बनाये गये।

औद्योकि वास्तु में मुख्य निर्मिति-प्ररूप बहुउद्देश्यीय नदी घाटी परियोजनाएं थीं। कृषि में सिंचाई के महत्त्व और कृषिप्रधान भारत की अर्थव्यवस्था के उत्थान में इन परियोजनाओं की निर्णायक भूमिका को देखते हुए जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें "नये धर्म, मानवतावाद के धर्म के मंदिर" कहा था। हज़ारों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर्षों से भारतीयों पर प्रकृति को देवतुल्य माननेवाला धर्म हावी रहा था और वे अपार साधन व्यय करके मंदिर बनाते आये थे। किंतु अब मानव के हितार्थ वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति द्वारा पैदा की गयी नये प्रकार की निर्मितियां बनायी जाने लगीं। बहुउद्देश्यीय नदी घाटी परियोजनाएं बाढ़, सूखा और भूक्षरण से बचाती हैं। इसके अतिरिक्त वे आसपास के कल-कारखानों तथा बस्तियों को प्रकाश, बिजली तथा जल मुहैया करती हैं। कुछ इलाक़ों में वे परिवहन की समस्या भी हल करती हैं, क्योंकि नहरें नौकायनयोग्य हो सकती हैं। इन परियोजनाओं का निश्चय ही बहुत बड़ा नगर निर्माण संबंधी महत्त्व है और आर्थिक क्षेत्रों के निर्माण तथा आवाद प्राकृतिक तथा भौगोलिक पर्यावरण के रूपांतरण में भी उनकी भूमिका निश्चय ही बहुत बड़ी है।

बहुउद्देश्यीय नदी घाटी परियोजनाएं व्यापक महत्त्व रखनेवाले और अभूतपूर्व पैमाने के नगर निर्माण का भौतिक तथा तकनीकी आधार बनती हैं। हज़ारों किलोमीटर के इलाक़े में फैला हुआ ऐसा निर्मिति-समुच्चय मैदानी अथवा पहाड़ी परिदृश्य के अपार विस्तार के साथ एकाकार होकर एक अत्यंत भव्य चित्र उपस्थित करता है: ऊंचे-ऊंचे बांध और उनसे प्रपातों जैसी गिरती जलधाराएं, कृत्रिम झीलों की दर्पण जैसी चमकती सतह तथा उसमें प्रतिबिंबित होता बिजली लाइनों, खंभों तथा ट्रांसफ़ार्मरों का जंगल, ग्रेनाइट और कंक्रीट के चौखटों में बंधे नदियों तथा नहरों के रमणीक तट और उनके बीच हरे-भरे मैदानों में अथवा वृक्षपंक्तियों के मध्य निर्मित बस्तियां, सेहतगाहें, विश्वविद्यालयों, स्कूलों, सेनेटोरियमों, अस्पतालों, स्टेडियमों और पर्यटन-केंद्रों की इमारतें।

१९५०–१९६० में ऐसी परियोजनाओं का निर्माण देश के लगभग सभी महत्त्वपूर्ण भागों में शुरू हुआ – पंजाब में भाखड़ा-नांगल में (१९५३), जहां भारत ही नहीं, सारे एशिया और यूरोप का भी सबसे बड़ा बांध बनाया गया, उडीसा में हीराकुड में (१९५५), मद्रास राज्य में नागार्जुनसागर में (१९५५, आज यह इलाक़ा आंध्रप्रदेश राज्य में है) और पश्चिम बंगाल में दामोदर घाटी में (१९५६)। किंतु इन महंगी और जटिल नदी घाटी परियोजनाओं (उनमें से बहुत-सी १०–१५ वर्ष बाद जाकर ही काम करने लगीं) से जितनी आशाएं लगायी गयी थीं, वे सभी पूरी न हो पायीं और कृषि का आशानुरूप उत्थान न हो सका। उन्हें ऐसे पिछड़े देहाती इलाक़ों में बनाया गया था, जहां उनके लिए ज़मीन तैयार न थी, यानी जहां अर्ध-सामंती अवशेषों, जात-पांत, सूदखोरी, खेती के आदिम तरीक़ों, आदि का अभी भी बोलबाला था। छठी पंचवर्षीय योजना में कृषि के उत्थान पर बड़ा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ध्यान दिया जा रहा है। १९६० के दशक से अनेक बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं में कमी करके केवल एकउद्देश्यीय परियोजनाओं पर ही ज़ोर दिया जाने लगा है। वर्तमान काल में जलविद्युत प्रतिष्ठानों का निर्माण लगभग सभी मुख्य नदी घाटियों में किया जा रहा है। भारत विश्व के उन गिने-चुने देशों में से है, जिनमें जलविद्युत उद्योग बहुत बड़ी भूमिका निभाता है, यानी देश में उत्पादित कुल बिजली का ४० प्रतिशत तक देता है।

जल की समस्या आज भारत ही नहीं, सारे विश्व के लिए भी एक मुख्य समस्या बनी हुई है। भारत के दिनोंदिन कम हो रहे जल संसाधनों के आगे उपयोग का एकमात्र सर्वाधिक विवेकसंगत तरीक़ा यह नज़र आता है कि गंगा से कावेरी तक एक संयुक्त नदी प्रणाली का निर्माण किया जाये। लगभग ३० वर्ष में और ४ अरब डालर की लागत से पूरी हो सकनेवाली ऐसी अत्यंत विशाल योजना बनायी भी जा चुकी है। उसके अनुसार शक्तिशाली पंपों की मदद से हर वर्ष २५ अरब घनमीटर पानी गंगा से उठाकर सोन नदी में पहुंचाया जायेगा, ज़हां से वह ४६० मीटर ऊंचे विंध्य पर्वतों को पार करके नदियों, नहरों, सुरंगों तथा जलाशयों के ज़रिये (कुल लंबाई ३३०० किलोमीटर) दक्षिण में कावेरी नदी में पहुंचेगा।

समाज का विकास-क्रम और उसके अंतर्विरोध भी अपने सर्वाधिक स्पष्ट तथा वास्तविक रूप में नगर निर्माण के क्षेत्र में दिखायी देते हैं।

नगर निर्माण के क्षेत्र में भारत में स्वाधीनता-प्राप्ति के पहले दशक में ही अभूतपूर्व परिमाणात्मक तथा गुणात्मक परिवर्तन आ गया। इन इने-गिने वर्षों में ही देश में इतनी नयी बस्तियां और क़सबे बसे कि जितने पूर्ववर्ती इतिहास के पांच हज़ार वर्षों में भी नहीं बसे थे और वह एक सर्वथा नये आधार पर, यानी किसी मंदिर-मठ या सामंत के निवास के गिर्द नहीं, अपितु औद्योगिक उद्यम के गिर्द।

इसके साथ ही औद्योगीकरण और वाणिज्य-व्यापार की बदौलत कुछ पुराने बड़े नगर भी विश्व के सबसे बड़े संकुल-नगरों में बदल गये।

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद से भारत का विदेश व्यापार बड़ी तेज़ी से बढ़ा है। वह चूंकि अधिकांशतः समुद्री मार्गों के ज़रिये होता है, अतः बंदरगाह नगरों का भी काफ़ी द्रुत गति से विकास हुआ है। भारत के आठ बंदरगाहों में सबसे प्रमुख बंबई है। उसके बाद मरमगाओ (गोआ का मुख्य बंदरगाह) का नाम आता है। विकास की रफ़्तार को देखते हुए तीसरे स्थान पर पूर्वी तट पर स्थित विशाखापत्तनम है, जो अब मद्रास से भी आगे निकल गया है। टूटीकोरिन (तमिलनाडु) और मंगलूर (कर्णाटक) भी काफ़ी बड़े

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बंदरगाह बन गये हैं। ख़ास विकास यदि किसी बंदरगाह का नहीं हुआ है, तो वह कलकत्ता है, जिसे औपनिवेशिक काल में प्रमुख स्थान प्राप्त था। कलकत्ता बंदरगाह के पिछड़ने का मुख्य कारण हुगली का निरंतर छिछला बनते जाना है, हालांकि हाल्दिया में गहरे पानीवाले बाह्य बंदरगाह के निर्माण से स्थिति में कुछ सुधार आया है। अखिल भारतीय महत्त्व के कुछ नये बंदरगाह भी पैदा हुए हैं, जैसे गुजरात में कांडला और उड़ीसा में परादीप। मंझोले और छोटे बंदरगाह उल्लेखनीय भूमिका केवल गुजरात में ही निभाते हैं। आर्थिक विकास की एक सबसे बड़ी कड़ी होने के नाते मुख्य बंदरगाहों का कार्यकलाप उनसे लगे पिछवाड़े के इलाक़ों के आर्थिक जीवन से अटूट रूप से जुड़ा हुआ है। नगरों की संवृद्धि में परिवहन ने बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद से देश में विमान सेवाओं का विकास हुआ है, जहाज़रानी बेड़ा बहुत बढ़ा है और रेल तथा सड़क मार्गों के जाल का काफ़ी विस्तार हुआ है।

छोरवर्ती इलाकों में सड़कों तथा रेलमार्गों का बड़ी तेज़ी से निर्माण किया जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ के एशिया तथा सुदूर पूर्व के लिए आर्थिक आयोग (इकाफ़े) की एक योजना के अनुसार निर्माणाधीन पार-एशियाई अंकारा-सिंगापुर महामार्ग भारत में अमृतसर, दिल्ली, आगरा, कानपुर, वाराणसी और कलकत्ता होते हुए गुज़रता है और वह इन नगरों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा।

परिवहन मार्गों का एक महत्त्वपूर्ण अंग पुल हैं। स्वाधीनता के वर्षों में भारत में २०० से अधिक उत्कृष्ट कोटि के पुल बनाये गये हैं।

सभी महाद्वीपों और सभी देशों में औद्योगीकरण और समाज की उत्पादक शक्तियों के अत्यंत तीव्र विकास का एक नतीजा यह निकला है कि अभूतपूर्व पैमाने पर नगरों की संवृद्धि तथा नगरीकरण तो हुए ही हैं, साथ ही तथाकथित "जनसंख्या विस्फोट" भी हुआ है। चीन, भारत तथा अन्य कृषिप्रधान देशों के लिए जनसंख्या की तेज़ वृद्धि विशेषतः लाक्षणिक है। तीस वर्षों में ही भारत की आबादी दोगुनी से अधिक बढ़कर १९८१ में ६८ करोड़ ३१ लाख तक पहुंच गयी। आबादी नियंत्रण के सरकार के प्रयत्नों के बावजूद सन् २००० तक भारत की जनसंख्या १ अरब तक पहुंच जाने की आशा है। यदि नगरीकरण के विकास की रफ़्तार आज जैसी ही रही (४.५% प्रतिवर्ष), तो इसमें से एक तिहाई जनसंख्या नगरों में रह रही होगी। इसका मतलब है कि कम से कम और साढ़े ८ करोड़ किसान देहात छोड़कर नगरों में बस जायेंगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसके अतिरिक्त औद्योगिक युग में नगर-संवृद्धि की एक स्पष्ट विशेषता बड़े संकुल-नगरों में परिवर्तन की ओर आम रुझान है, जिनमें पूंजी तथा श्रमशक्ति का संकेंद्रण होता है और आबादी की अतिशय सघनता बिल्कुल नये ढंग की तथा बहुत जटिल नगर-आयोजना संबंधी समस्याओं को जन्म देती है।

अपने सभी अंतर्विरोधों तथा गंभीर कुपरिणामों के साथ दिनोंदिन तेज़ होती नगरों की संवृद्धि की अपरिहार्य प्रक्रिया भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के काल में ही शुरू हो गयी थी और स्वाधीनता के वर्षों में वह पूरी प्रचंडता के साथ जारी है।

भारत में नगरीकरण के विकास का सामान्य क्रम वैसा ही है, जैसा कि विश्व के अन्य भागों में। बड़े नगरों के विकास, उनकी उत्पादन क्षमताओं तथा तकनीकी सज्जा के स्तर की दृष्टि से भारत विश्व के सर्वाधिक विकस्ति देशों से किसी भी भांति पीछे नहीं है और संयुक्त राज्य अमरीका और जापान के बाद तीसरे स्थान पर आता है। दूसरी ओर, ८ लाख से अधिक गांवों और कुटीर उद्योगों पर आधारित हज़ारों क़सबोंवाला देश होने के कारण भारत को अल्पविकसित देशों जैसी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। भारत में वर्तमान नगरीकरण जटिल बहुस्तरीय रास्ते से हो रहा है, जो कि देश की बहुस्तरीय अर्थव्यवस्था को प्रतिबिंबित करता है। छोटे नगर मंझोले नगरों में और मंझोले नगर बड़े नगरों में तब्दील हो रहे हैं।

१९०१ से १९६० के बीच बड़े नगरों की आबादी पांचगुना बढ़ी और देश की कुल नगरीय आबादी के, जो कि इसी अवधि में केवल तीनगुना बढ़ी, आधे के बराबर थी। १९७१ में देश की चौथाई नगरीय आबादी १० लाख से अधिक निवासियोंवाले ९ नगरों में संकेंद्रित थी (कलकत्ता, बंबई, दिल्ली, मद्रास, हैदराबाद, अहमदाबाद, बंगलौर, कानपुर और पूना)। कलकत्ता भारत का ही नहीं, विश्व का भी एक सबसे बड़ा संकुल-नगर है, किंतु उसका स्थान अब बंबई लेने लगा है, जिसके विकास की रफ़्तार कलकत्ता से तेज़ है। भारत और जापान जैसे देशों के लिए बड़े संकुल-नगर लाक्षणिक हैं और जितने ही बड़े ये संकुल होते हैं, उतनी ही तेज़ इनकी संवृद्धि भी होती है। १९७१ से पहले के २० वर्षों में भारत में १ लाख से अधिक नगरीय आबादीवाले नगरों की संख्या लगभग दोगुना बढ़ी और देश की आधे से अधिक आबादी उनमें संकेंद्रित थी, जबकि ५ हज़ार से कम आबादीवाले सबसे छोटे नगरों की संख्या में तिगुना से ज़्यादा कमी आयी। १० से २० हज़ार तक की आबादीवाले मंझोले नगर, जिनकी तादाद सबसे ज़्यादा है, बहुत ही धीरे-धीरे बढ़ रहे हैं। १९७९ में भारत में कुल २९०० नगर थे, जिनमें से १९००

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की आबादी २० हज़ार से कम थी।

फिर भी भारत में अन्य देशों जितना नगरीकरण नहीं हुआ है। उसके नगरों में देश की कुल आबादी का कोई २० प्रतिशत ही रहता है। अन्य कृषिप्रधान देशों की भांति भारत में भी नगरीय आबादी औद्योगीकरण के मुक़ाबले अधिक तेज़ी से बढ़ रही है। पर अपने कमज़ोर औद्योगिक आधार के कारण भारतीय नगर देहातों की क़ीमत पर बढ़ रही इस सारी श्रमशक्ति को खपाने में समर्थ नहीं हैं। नगरों की अत्यधिक आबादी, उसकी ऊंची प्राकृतिक वृद्धि-दर और वर्धमान बेरोज़गारी देहातों से आये लोगों को, जिन्हें नगर में कोई काम नहीं मिल पाया है, वापस देहात लौटने को बाध्य करती हैं, जिससे वैसे भी अत्यधिक आबादीवाला देहात और अतिजनसंख्यक बन जाता है। भारतीय नगरों का यह प्रतिकर्षी बल उनका एक विशिष्ट लक्षण है।

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद से नगर और ग्राम के परस्पर संबंधों की समस्या का स्वरूप बदल गया है। औपनिवेशिक काल में विदेशी शासन के केंद्र होने के कारण नगरों की शोषणकारी भूमिका सर्वथा स्पष्ट थी। यही कारण है कि महात्मा गांधी के विचारों में देहात के शोषक नगर के प्रति अविश्वास और नगरीय जीवन-पद्धति के औचित्य में शंका को इतना प्रमुख स्थान प्राप्त था। नगर में रहनेवाला हर व्यक्ति भारतीय जनता के शोषण में सहायक माना जाता था। स्वदेशी आंदोलन के दिनों में दिया गया "गांव की ओर वापसी" का नारा भारत के सारे ही स्वाधीनता संघर्ष के दौरान गूंजता रहा।

स्वाधीन भारत की सभी सरकारों ने बड़े नगरों में संपदा के बढ़ते संकेंद्रण और देहातों की बढ़ती ग़रीबी तथा कृषि के पिछड़ेपन पर गंभीर चिंता व्यक्त की है और उद्योगों का भौगोलिक पुनर्वितरण करने के साथ-साथ कृषि और कुटीर उद्योग-धंधों में पूंजीनिवेश बढ़ाने, छोटे उद्यमपतियों को प्रोत्साहन देने, आम उपयोग की वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने की नीति अपनायी है। इससे जहां दिनोंदिन बढ़ती बेरोज़गारी को कम करने में मदद मिल सकती है, वहां कृषि कच्चे मालों के संसाधन के आधार पर छोटे और मंझोले नगरों का विकास भी हो सकता है।

किंतु इस मार्ग पर बहुत-सी दूसरी, मुख्यतया सामाजिक और आर्थिक ढंग की, बाधाओं के अलावा सबसे बड़ी बाधा औपनिवेशिक काल से विरासत में मिली देश के विभिन्न क्षेत्रों के विकास-स्तरों के बीच घोर असमानता है, जिसे स्वाधीनता के वर्षों में भी ख़त्म नहीं किया जा सका है। सबसे पिछड़े राज्य आज भी वैसे ही पिछड़े और ग़रीब बने हुए हैं। नये उद्योग स्थापित करके उनका स्तर ऊंचा उठाने के प्रयास निरर्थक सिद्ध हुए हैं, क्योंकि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शक्तिशाली आधुनिक उत्पादन के विरले द्वीपों सरीखे ये उद्योग उनके आसपास की पिछड़ी हुई अर्ध-उपभोक्ता कृषि के, जिसमें ८० प्रतिशत श्रमसक्षम आबादी काम करती है, समुद्र में डूब जाते हैं। भारत ऐसा कृषिप्रधान देश है और निकट भविष्य में भी रहेगा, जहां औद्योगीकरण तथा नगरीकरण की समस्याएं कृषि से अविभाज्य रूप से जुड़ी हुई हैं।

पश्चिम के उन्नत देशों के विपरीत भारत में आबादी की उच्च सघनता औद्योगिक इलाक़ो में नहीं, अपितु उन इलाक़ों में पायी जाती है, जो प्राचीन काल से ही कृषि के केंद्र रहे हैं (सर्वाधिक सघनता केरल, बिहार, उत्तरप्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा तमिलनाडु में है: प्रति वर्ग किलोमीटर ३००–५०० व्यक्ति)।

विभिन्न राज्यों के विकास-स्तरों में अंतर को खत्म कर पाना बहुत कठिन कार्य है। यह समस्या किसी एक राज्य के दायरे में सीमित रहकर ही हल नहीं की जा सकती। देश के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न प्रकार के संसाधन उपलब्ध होने के कारण और देश के विशाल पैमाने को देखते हुए आवश्यक है और संभव भी है कि अन्तर्प्रादेशिक श्रम विभाजन हो और हर इलाक़ा उन क़िस्मों के उत्पादन में विशिष्टता हासिल करे, जिनके लिए उसके संसाधन सर्वाधिक उपयुक्त हैं। विकास-स्तरों में संतुलन स्थापित करने में प्रादेशिक नियोजन सहायक हो सकता है,जिसमें हर राज्य की विशेषताओं को ध्यान में रखा गया हो तथा उनके बीच सामंजस्य बिठाया गया हो।

स्थानीय हितों तथा कार्यभारों को ध्यान में रखते हुए हो रहा राज्यों का आर्थिक सुदृढ़ीकरण और उससे संबद्ध उत्पादन विकेंद्रीकरण कुल मिलाकर फ़िलहाल सारे देश के पैमाने पर आर्थिक एकीकरण की अपरिहार्य प्रक्रिया के विपरीतगामी सिद्ध हो रहे हैं। इस द्वंद्वात्मक विरोधपूर्ण परिघटना के विकास के दौरान देश में एक नये प्रकार की आर्थिक-क्षेत्रीय संरचना जन्म ले रही है, जो अपनी बारी में नगरों की नयी प्रणाली को जन्म देती है। १९५१–१९६१ में भारत में ४५२ नये नगर पैदा हुए, जिनमें कुल मिलाकर ३५ लाख लोग रहते थे। उनमें से २० नगर ऐसे थे, जिनकी आबादी १ से ५ लाख के बीच थी।*

नया जमशेदपुर (बिहार), भिलाईनगर (मध्यप्रदेश), राऊरकेला (उड़ीसा) और भद्रावती (मैसूर) जैसे इनमें से अधिकांश नगरों को देश के पिछड़े इलाक़ो के विकास में सहायक और उनका औद्योगिक, व्यापारिक

* Koenigsberger O., *New Towns of India. Town Planning,* Review, 1952, August, vol. 23, no. 2, pp. 94, 131.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा सांस्कृतिक केंद्र बनना था। गुजरात में गांधीधाम नामक एक नया बंदरगाह तथा औद्योगिक नगर बसा। कई नये प्रशासनिक केंद्रों का भी निर्माण हुआ, जैसे पंजाब में चंडीगढ़ और उड़ीसा में भुवनेश्वर। नये नगरों के लिए कममंज़िले मकान, प्रति हैक्टर ३०–१२० व्यक्ति आबादी सघनता, सड़कों का समकोणिक ग्रिड और बीच में मुख्य मोटर सड़क, जो नगर को दो समानांतर बढ़ते इलाक़ों – कारोबारी और आवासीय – में बांटती है, लाक्षणिक हैं। पट्टीनुमा नगर के निर्माण की पद्धति, जो सस्ती और आसान भी है, भारत ही नहीं, कई उष्णकटिबंधीय खेतिहर देशों में बड़े पैमाने पर अपनायी गयी है। इसका अपवाद गांधीधाम है, जो कांडला बंदरगाह से १० किलोमीटर उत्तर में स्थित है। कांडला समुद्री ज्वारों के दौरान प्रायः पानी में डूब जाता है। अतः गांधीधाम के योजनाकार जर्मन वास्तुशिल्पी ओ० केनिग्सबर्गर ने उसके लिए पट्टीनुमा अभिन्यास चुनने के बजाय अधिक सुसंहत अभिन्यास चुना, ताकि औद्योगिक उद्यमों का कारोबार केंद्र तथा रिहायशी इलाक़ों के साथ संपर्क बने रहने में कठिनाई न हो।

पट्टीनुमा नगर की संरचना नगर को सभी बुनियादी सामुदायिक व सांस्कृतिक सुविधाओं से युक्त लघु इलाक़ो में विभाजित करने पर आधारित है। आम तौर पर एक लघु इलाक़े में ५–७ हज़ार निवासी रह सकते हैं और उसका औसत आकार ८००×८०० मीटर अथवा ६०–७० हैक्टर जितना होता है। यदि उसमें सिनेमाघर, शिक्षा संस्था और कोई विशेष कांप्लेक्स भी हुआ, तो उसका क्षेत्रफल ज़्यादा हो सकता है। उसमें हर ४०० मीटर के दायरे के लिए एक किंडरगार्टन और प्राथमिक स्कूल और हर ८०० मीटर के दायरे के लिए एक माध्यमिक स्कूल और बाज़ार की व्यवस्था रहती है। प्रशासनिक केंद्रों में सरकारी इमारतें पृथक् भवन-समूह के रूप में होती हैं।

विभिन्न सरकारी कार्यालयोंवाले नये प्रशासनिक और व्यापारिक केंद्रों की संवृद्धि से नगर में सरकारी अधिकारियों, नौकरीपेशा लोगों और बुद्धिजीवियों की तादाद बढ़ती है, जो मज़दूरों के मुक़ाबले ज़्यादा ख़ुशहाल होते हैं। अधिक आरामदेह आवास इसी तबक़े के लिए बनाये जाते हैं। भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक और सांपत्तिक असमानताओं ने नये नगरों के वास्तुरूप पर अपनी छाप छोड़ी है। सैक्टरों में विभाजित इन नगरों में आवासों की श्रेणियां, आकार और उनमें उपलब्ध सुविधाएं उनके निवासियों अथवा मालिकों की माली हैसियत पर निर्भर होती हैं। बिजली, पानी और मलवाह की व्यवस्था सामान्यतः सभी घरों में होती है। बड़ी कोठियों में नौकरों के लिए अलग क्वार्टर भी होते हैं। नये नगरों में ज़्यादातर ज़ोर वैयक्तिक मकानों,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यानी एक-दो मंज़िले छोटे मकानों के निर्माण पर ही दिया जा रहा है, न कि रहन-सहन संबंधी प्रक्रियाओं के समाजीकरण की ओर लक्षित बहुमंज़िली कई-कई फ़्लैटोंवाली इमारतों के निर्माण पर।

इसका एक नतीजा यह होता है कि ऐसे नगरों का क्षेत्रफल ज़रूरत से ज़्यादा बढ़ जाता है, जो परिवहन के संगठन में कठिनाई पैदा करने के अलावा तरह-तरह की नगरीय सुविधाओं तथा सेवाओं और नगर के नियोजन को व्ययसाध्य बना देता है। दूसरी ओर, कममंज़िली इमारतों का निर्माण परिवार-वृद्धि के साथ पैदा होनेवाली आवासीय क्षेत्रफल बढ़ाने की समस्या को कुछ हद तक हल कर देता है। भारत के लिए यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, जहां पितृसत्तात्मक परिवार आज तक विद्यमान हैं। ऐसे परिवारों में दो-दो, तीन-तीन पीढ़ियों के लोगों का होना आम बात है। अलग परिवार के लिए पहली या दूसरी मंज़िल पर दो कमरे का फ़्लैट दे दिया जाता हैं, जिससे एक खुला प्रांगण भी लगा होता है। निवासियों का अधिकांश समय खुले में बीतने की वजह से यह प्रांगणयुक्त फ़्लैट ऊपरी मंज़िलों के तीन अथवा चार कमरोंवाले फ़्लैट के बराबर बन जाता है।

भारत के लिए नयी इन नगरीय संरचनाओं के दोष अब जाकर ही प्रकट होने लगे हैं। ऐसे नगरों का निर्माण अधिकांशतः या तो परिवहन और सिविल इंजीनियरिंग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर रचित योजनाओं के अनुसार किया गया था या फिर उनमें पश्चिम की उद्यान-नगर अवधारणा का अंधानुकरण किया गया था। इमारतें एक दूसरी से भारत की परंपरागत सड़कों की चौड़ाई से ३—४ गुना ज़्यादा फ़ासले पर बनायी गयी हैं। इस तरह उत्पन्न नगरीय परिवेश न तो मानव सहजीवन के मानकों से मेल खाता है, न भारतीय रहन-सहन के ढंग से ही।

नगर-योजनाकार राम सेट्या के मत में ये नगर नहीं, वरन बड़ी-बड़ी अप्रयुक्त खाली जगहों (अमरीकी वास्तुकार ए० स्टाइन के निदेशन में निर्मित दुर्गापुर में ऐसी जगहें नगर के ५० प्रतिशत क्षेत्रफल के बराबर हैं) और दूर-दूर बिखरे कार्यस्थलोंवाले गांवों के जमघट जैसे हैं। बी० घोष के शब्दों में, ऐसे नगर उन्हीं लोगों को संतुष्ट कर सकते हैं, जिन्हें "घर, गाय और एक एकड़ ज़मीन" की याद सताती है। आज जब भूमि का हर चप्पा बेहद क़ीमती है, नगर की भूमि का ऐसा अपव्यय उन्हें अक्षम्य लगता है।

वर्तमान काल में विदेशी नगर-योजनाकार और समाजशास्त्री कार्यशः क्षेत्र-विभाजन की उपयोगिता में संदेह प्रकट करने लगे हैं, जिसमें कारगर ढंग से इस्तेमाल न की जानेवाली जगहें छूट जाती हैं और कारोबारी तथा सांस्कृतिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संपर्क और बस्ती के लोगों का आपस में मिलना-जुलना कठिन हो जाते हैं।

इन्हीं सब बातों को देखते हुए भारतीय वास्तुशिल्पी और नगर-योजनाकार बस्ती के भीतर सोपानित दिक्-स्थान व्यवस्था की पारंपरिक भारतीय पद्धति की ओर अधिकाधिक ध्यान देने लगे हैं, जिसमें नगर को शुद्धत: कारोबारी और शुद्धत: आवासीय क्षेत्रों में नहीं बांटा जाता और नगर के सभी भाग मिश्रित भूमिका निभाते हैं।

भारत के नये नगरों में चंडीगढ़* का विशिष्ट स्थान है। इस नगर का जन्म पंजाब के दो भागों में विभाजन (१९४७) के फलस्वरूप हुआ था। पंजाब का प्रशासनिक केंद्र लाहौर चूंकि पाकिस्तान में चला गया था, अत: भारत के हिस्से में आये भाग के लिए नयी राजधानी की ज़रूरत पड़ी। उसे शिवालिक पहाड़ों की तलहटी में चंडीगढ़ नामक गांव की जगह पर बसाया गया।

भारत की केंद्रीय सरकार ने चंडीगढ़ के निर्माण को एक राष्ट्रीय परियोजना जैसा महत्त्व दिया। जवाहरलाल नेहरू के मत में इस नगर को नये भारत का गौरव बनना था। ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य के लिए विश्वविख्यात विदेशी वास्तुशिल्पियों को आमंत्रित किया गया।

चंडीगढ़ की पहली प्रायोजना १९४९ में अमरीकी विशेषज्ञ ए० मायर और पोलिश वास्तुशिल्पी एम० नोवीत्स्की द्वारा तैयार की गयी थी। नोवीत्स्की की मृत्यु के बाद पंजाब की राजधानी के अभिकल्पन तथा निर्माण का निदेशन सुप्रसिद्ध फ़्रांसीसी वास्तुशिल्पी ला कार्बूज़िये को सौंपा गया। नगर की अभिन्यास योजना और वृक्षारोपण योजना उनकी ही बनायी हुई हैं। सरकारी भवन – विधान भवन, सचिवालय तथा उच्च न्यायालय – भी उनकी प्रायोजनाओं के मुताबिक़ बनाये गये हैं। चंडीगढ़ के डिज़ायनिंग और निर्माण में ला कार्बूज़िये के निकट सहयोगी पी० जान्नेरे, अंग्रेज़ वास्तुशिल्पी मैक्सवेल फ़्राई तथा जेन ड्रयू, अमरीकी वास्तुशिल्पी ए० मायर और भारतीय वास्तुशिल्पियों ने भी भाग लिया।

वित्तीय कठिनाइयों, सीमेंट तथा लोहे की कमी, सुप्रशिक्षित कर्मियों के अभाव और औद्योगिक आधार तथा यंत्रीकरण की अपर्याप्तता के बावजूद इस बेजोड़ आधुनिक नगर का निर्माण अकल्पनीय रूप से न्यून अवधि में ही संपन्न हो गया। उसके निर्माण में केवल तीन वर्ष लगे (१९५२–१९५५)।

भारत की विशिष्ट परिस्थितियों में ला कार्बूज़िये द्वारा किये गये इस

* *Chandigarh*, L'architecture D'aujourdhui, 1956, nos. 67, 68, pp. 173—197.
Chandigarh, Marg, 1961, December, vol. XV. XV, no. 1.
कोरोत्स्काया अ० अ०, 'चंडीगढ़', मास्को, १९७२। (रूसी में)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नगर निर्माण प्रयोग की सभी संभव कमियों के बावजूद चंडीगढ़ अतुलनीय महत्त्व रखता है। अपने जन्म के दिन से ही यह नगर वास्तुशिल्पियों, अर्थशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों और पर्यटकों का ध्यान आकर्षित करता आ रहा है। स्वयं नगर ही नहीं, उसके मूल में निहित वास्तुशिल्प संबंधी दर्शन और इन दर्शन को साकार रूप देने की यथार्थ संभावनाएं भी जीवन और समय की कसौटी पर परखी जा रही हैं।

ला कार्बूज़िये प्रकार्यवाद के, जो १९२०–१९५० में आधुनिक वास्तुशिल्प की प्रमुख धारा थी, एक प्रवर्तक के रूप में विख्यात हैं। प्रकार्यवाद का जन्म ऐसे समय में हुआ था, जब विश्व पहले विश्वयुद्ध और अक्तूबर क्रांति के बाद की उथल-पुथलों से गुज़र रहा था, औद्योगीकरण और नगरीकरण अभूतपूर्व तेज़ी से बढ़ रहे थे, यूरोप के बहुत-से नगर युद्ध-ध्वस्त हुए पड़े थे और जो बचे रहे थे, उनमें भी बुनियादी पुनर्निर्माण की ज़रूरत महसूस की जा रही थी। उस काल में विश्व में जनवाद और समाजवाद के विचारों का व्यापक प्रसार हुआ। वास्तुशिल्प के क्षेत्र में नगर-नियोजन और बृहद्स्तरीय आवास निर्माण को उस समय भी प्रमुखता दी जाने लगी थी। इन अत्यावश्यक कार्यभारों की पूर्ति के लिए माली साधनों, श्रमशक्ति और समय की अधिकतम किफ़ायत ज़रूरी बनती जा रही थी और ऐसी किफ़ायत तभी हो सकती थी, जबकि वास्तुशिल्प में औद्योगीकरण तथा यंत्रीकरण की उपलब्धियों से लाभ उठाया जाता और निर्माण में एकरूपण तथा प्ररूपण का सहारा लिया जाता। प्रकार्यवाद की मान्यताओं के अनुसार इन परिस्थितियों में वास्तुशिल्प में रूपविधान ऐसे सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिये था, जो प्रकृति में पाये जाते हैं। दूसरे शब्दों में, आकृति को अंतर्य, यानी स्वयं वस्तु के मुख्य प्रकार्य, के अनुरूप होना चाहिए था।

पिछले वर्षों में वास्तुवैज्ञानिक हल्क़ों में प्रकार्यवाद के सिद्धांतों और ला कार्बूजिये की रचनाओं की, विशेषत: चंडीगढ़ के वास्तुशिल्प की, गंभीर आलोचना हुई है।

चंडीगढ़ ने भारत के वास्तुशिल्प तथा नगर निर्माण संबंधी चिंतन में एक महत्त्वपूर्ण उत्प्रेरक का काम किया। उसके निर्माण के दौर में भारत में अनेकानेक प्रतिभाशाली वास्तुशिल्पी उभरे, जो आज भारतीय वास्तुशिल्प का दिशा-निर्धारण कर रहे हैं। इनमें के० चौधरी, ए० कानविंदे, जे० भल्ला, विजित घोष, बी० दोशी, एम० एन० शर्मा, चार्ल्स कोरेआ, वी० धमेजा, जे० मलहोत्रा, बी० माथुर, आदि के नाम सर्वोपरि आते हैं। चंडीगढ़ का निर्माण निर्धारित अवधि के भीतर और उत्कृष्ट ढंग से पूरा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करने का श्रेय प्रतिभाशाली इंजीनियर ए० एन० थापर और पी० पी० वर्मा को भी जाता है। नगर निर्माण की आधारभूत अपेक्षाओं की दृष्टि से चंडीगढ़ की अवस्थिति लगभग आदर्श है। उसकी स्थितिपरक विशेषताएं उसके लिए संवृद्धि की और उत्तर भारत का एक प्रमुख औद्योगिक तथा व्यापारिक केंद्र भी बन जाने की अपरिमित संभावनाएं पेश करती हैं, बशर्ते कि सभी संसाधनों और स्थानीय अवस्थाओं से समुचित लाभ उठाया जाये। चंडीगढ़ भारत के एक प्रमुख खेतिहर इलाक़े के लगभग मध्य में और कश्मीर तथा तिब्बत जानेवाले व्यापार-मार्गों के समीप स्थित है। उसके पडोस में ही भाखड़ा-नांगल का विशाल जल-विद्युत प्रतिष्ठान स्थित है। इस तरह विकास करते जाने के लिए नगर के पास खाद्य-सामग्री, कच्चे मालों और ऊर्जा का काफ़ी दृढ़ आधार मौजूद है।

चंडीगढ़ के लिए शिवालिक पहाड़ियों की उर्वर तलहटी में दो नदियों के बीच चुनी हुई जगह अपने असामान्य रूप से भव्य सौंदर्य से मन मोह लेती है। मज़बूत ज़मीन, पारंपरिक निर्माण-सामग्रियों की प्रचुरता और सिंचाई और जलनिकासी, दोनों दृष्टियों से आदर्श हल्का ढलवां धरातल नगर के निर्माण में बड़े सहायक सिद्ध हुए। ज़मीन काफ़ी उपजाऊ होने के कारण बहुत कम समय में ही नगर को हरा-भरा बना दिया गया।

वास्तुशिल्पियों के सम्मुख समस्या जलवायु की थी। शीतकाल में यहां दिन में तो प्रचुर धूप और गरमाहट होती है, किंतु रात में ठंड से दांत किटकिटा जाते हैं। गरमियों में असह्य सूखी गरमी पड़ती है और फिर जब मानसून का मौसम आता है, तो ऐसी मूसलाधार बारिश होती है और बाढ़ आती है कि पूरी की पूरी बस्तियां ही बह जायें। सरदियों और गरमियों में धूल के अंधड़ भी उठते हैं।

ऐसी परिस्थितियों में सर्वाधिक किफ़ायती सामग्रियां और निर्माण के तरीक़े और रूप चुने गये। मुख्य निर्माण-सामग्री पकायी हुई ईंट थी। कंक्रीट और इस्पात केवल मुख्य सरकारी भवनों के निर्माण में ही प्रयोग किये गये।

१ अक्तूबर, १९५३ को चंडीगढ़ को विधिवत पंजाब की राजधानी घोषित किया गया। यांत्रिक साधनों के इस्तेमाल के बिना भी इस नगर का निर्माण इन्हीं वर्षों में इंगलैंड में निर्मित किसी भी नये नगर के मुक़ाबले तिगुने कम समय में पूरा हुआ।

कोई भी नया नगर मनुष्य के स्वप्नों तथा आशाओं का, अपनी शक्ति तथा अपने मिशन में वास्तुशिल्पी के विश्वास का प्रतिबिंब होता है। ए० मायर तथा ला कार्बूज़िये की आदर्श नगर की मान्यताएं भिन्न-भिन्न थीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मायर पर ई० हावर्ड के बंगलोंवाले उद्यान-नगर विषयक विचारों का प्रभाव था और ला कार्बूज़िये ऐसे "देदीप्यमान नगर" के स्वप्न देखते थे, जिसमें आधुनिक नागर सभ्यता की सभी उपलब्धियां तो साकार बनें, किंतु उसके दोष न हों। ला कार्बूज़िये का नगर ऐसा सुसंहत नगर था, जिसमें इस्पात, कंक्रीट और कांच की ऊंची-ऊंची इमारतें सार्वजनिक पार्कों तथा मैदानों के लिए ज़्यादा से ज़्यादा ज़मीन खाली छोड़ देती हैं। मायर और ला कार्बूज़िये, दोनों ने नगर की अपनी कल्पना के अनुसार अपने विचारों को साकार बनाने का प्रयास किया।

ला कार्बूज़िये के पूर्वगामियों ने चंडीगढ़ के लिए अनियमित समलंब आकृति प्रस्तावित की थी, जो सुपर-ब्लॉकों में विभक्त हो और जिसमें सड़कें तरंगाकार हों। हर सुपर-ब्लॉक (आकार लगभग ८००x४५० मीटर तथा आबादी ११५० परिवार) में अपना सार्वजनिक तथा व्यापारिक केंद्र और प्राथमिक स्कूल होना था। अधिक विशेषीकृत व्यापारिक प्रतिष्ठान और माध्यमिक स्कूल तीन-तीन ब्लॉकों के लिए होने थे। सुपर-ब्लॉकों को निवासियों की आय के मुताबिक़ तीन वर्गों में बांटा गया था: उच्च आय ब्लॉक, मध्यम आय ब्लॉक और निम्न आय ब्लॉक। नगर के बीचोंबीच बिज़नेस सेंटर होना था। मुख्य सरकारी भवनों को पहाड़ी की पृष्ठभूमि में नगर की उत्तर-पूर्वी सीमा के पार बनाया जाना था। नगर के आरपार दो उद्यान पंक्तियां बनायी जानी थीं। औद्योगिक उद्यम नगर के बाहर रेलवे स्टेशन के पास बनाने की योजना थी। यहां से हवाओं का रुख नगर की ओर न होने के कारण नगर का पर्यावरण प्रदूषण से बच सकता था। मायर तथा नोवीत्स्की ने मुख्य सरकारी भवनों, बिज़नेस सेंटर, औद्योगिक क्षेत्र और पार्कों के लिए जो स्थल सुझाये थे, कार्बूज़िये ने उन्हें तो स्वीकार कर लिया, लेकिन नगर के अभिन्यास के लिए ग्रिड योजना को चुना, ताकि दो मुख्य संरचनात्मक धुरियों – पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण धुरियों – पर विस्तार के बाद सन् २००० तक नगर सलीब जैसी शक्ल अख़्तियार कर ले। नगर ५ लाख की आबादी के लिए बनाया गया था और उसमें इतनी आबादी १९७० के दशक के अंत तक ही हो गयी। पहले चरण में नगर में ४० वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल के इलाक़े में डेढ़ लाख लोगों को बसाने की योजना थी। नगर की योजना का निर्माण करने से पहले ला कार्बूज़िये ने इसकी जल और खाद्य आपूर्ति के बारे में सोचा, जिनके बिना नगर बस ही नहीं सकता था।

पटियाला चौ और सुखना चौ नामक नालों पर २० मीटर ऊंचा और ४ किलोमीटर लंबा बांध खड़ा करके निर्मित जलाशय नगर के लिए जल का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्रोत ही नहीं, शानदार विश्राम और जलक्रीड़ा स्थल भी बना। इस जलाशय के तट पर लगी एक स्मारक शिला पर लिखा है: "वास्तुशिल्पियों ने यह झील और बांध चंडीगढ़ के नागरिकों को भेंट किये हैं, ताकि यहां के शांत वातावरण में वे विश्राम और प्रकृति-सौंदर्य का उपभोग कर सकें।"

आसपास के २६ गांवों को, जिन्हें ला कार्बूज़िये के आग्रह पर ज्यों का त्यों रहने दिया गया, नगरवासियों को ताज़ी साग-सब्ज़ियों और फलों की निरंतर आपूर्ति करना था। इन गांवों की स्थिति ऐसी है कि चंडीगढ़, उसके आवासीय मकानों की पट्टी और इस पट्टी के समानांतर स्थित औद्योगिक क्षेत्र लंबाई में कितने भी बढ़ाये जा सकते हैं। एक संकरी पट्टी के रूप में बने होने के कारण आवासीय इलाक़े आसपास के ग्रामों के प्राकृतिक परिदृश्य से सहज ही एकाकार हो जाते हैं।

नगरवासियों को प्रकृति की गोद में रहने का अवसर देने, जो मनुष्य की सृजन शक्तियों की बहाली के लिए इतना ज़रूरी है और प्राकृतिक परिवेश को सुरक्षित रखने की ला कार्बूज़िये की आकांक्षा को उनके कुछ आलोचक प्रकृति की ओर लौटने के रूसो के विचारों का प्रतिबिंब मानते हैं। कुछ हद तक ला कार्बूज़िये के विचार महात्मा गांधी के दर्शन से भी मेल खाते हैं, जो हस्त-शिल्पों और गांवनुमा बस्तियों के बड़े समर्थक थे। ऐसे विचार आज के युग में बिल्कुल यूटोपियाई लगते हैं। नगर और ग्राम के चिर विरोध को हल करने का—और वह भी पूंजीवादी विकास तथा औद्योगीकरण की परिस्थितियों में—यह तर्कसंगत रास्ता नहीं है।

नगर को एक सजीव विकासमान अवयवी जैसा समझने के ला कार्बूज़िये के विचार से ए० मायर भी सहमत थे, किंतु दोनों में अंतर यह था कि नगर के रूपविधान में ला कार्बूज़िये मुख्यतया दो बुनियादी कारकों को महत्त्व देते थे, यानी नगर के प्रकार्य और उसके संचार-मार्गों को।

संचार-मार्ग नगर का आधारिक ढांचा होते हैं। अंतर्नगरीय परिवहन की सहायता से नगर की प्रकार्यात्मक प्रक्रियाओं को कारगर बनाये रखना आधुनिक नगर निर्माण कला की एक प्रमुख समस्या है। कोई भी नगर-योजनाकार ऐसा नगर बनाने को अपने लिए गौरव की बात समझेगा, जिसमें कि निवासी मोटर परिवहन के अपरिहार्य कुपरिणामों—कोलाहल, ज़हरीली गैसों, मोटरगाड़ी द्वारा कुचले जाने के ख़तरे, आदि—से अपने को मुक्त अनुभव करे। नगर निर्माण कला के इतिहास में यह विचार परिवहन-मार्गों के विभेदीकरण की मदद से पहली बार चंडीगढ़ में ही साकार बनाया गया है। प्रयोग के अनुसार—पैदल चलनेवालों के लिए, हाथियों के आने-जाने के लिए, ऊंटों के क़ाफ़िलों के लिए अथवा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुछ और – नगर की सड़कों की चौड़ाई में भेद भारत में प्राचीन काल से ही रखा जाता रहा है। आवागमन मार्गों का श्रेणी-विभाजन ही चंडीगढ़ के अभिन्यास का आधार बना। नगर में निर्बाध द्रुत आवागमन सुनिश्चित करने के लिए ला कार्बूज़िये ने नगर और मुहल्लों के लिए वक्ररेखीय अभिन्यास न चुनकर समकोणिक ग्रिडनुमा अभिन्यास चुना, जिसमें सीधी द्रुत परिवहन सड़कों का जाल नगर को ३० आवासीय सेक्टरों में बांटता है, जिनमें से प्रत्येक का आकार ८००×१२०० मीटर है। सेक्टर के भीतर मोटरगाड़ी केवल चार जगहों से, जहां द्रुतगामी सड़कें एक दूसरी से मिलती हैं और जहां बसों के स्टाप भी हैं (उनके बीच ४००–६०० मीटर की दूरी रखी गयी है), प्रवेश कर सकती है। सेक्टर में एक भी इमारत ऐसी नहीं होती, जिसका प्रवेशद्वार द्रुत परिवहन सड़क की ओर खुलता हो।

चंडीगढ़ की परिवहन प्रणाली में सात प्रकार की सड़कें हैं। पहले प्रकार की सड़क द्रुत परिवहन धमनी है, जो चंडीगढ़ को दिल्ली तथा अन्य नगरों से जोड़ती है। दूसरे प्रकार की सड़क सभी तरह के यातायात के लिए है और नगर की मुख्य संरचनात्मक धुरी के साथ गुज़रते हुए उसे दो बराबर भागों में बांटती है और नगर केंद्र को मुख्य सरकारी भवनों से जोड़ती है। तीसरे प्रकार की सड़कें सेक्टरों की सीमाओं को छूते हुए गुज़रती हैं और द्रुतगामी परिवहन और नगरीय बस परिवहन के लिए इस्तेमाल होती हैं। चौथे प्रकार की सड़कें धीरे चलनेवाले परिवहन के लिए हैं और बाज़ार सड़कों की पांचवें प्रकार की सड़कें सहायक सड़कें हैं। छठी तरह की सड़कें घरों के दरवाज़ों के सामने से गुज़रनेवाली पगडंडी-सड़कें हैं। सातवें प्रकार की सड़कें सामूहिक खेलकूद, घूमने, टहलने, आदि के लिए हैं।

भारत के अन्य नगरों की भांति चंडीगढ़ में भी मोटरगाड़ियां अभी चूंकि गंभीर समस्या नहीं बनी हैं, अतः इस विशद परिवहन प्रणाली ने अपना औचित्य पूरी तरह सिद्ध नहीं किया है। भारत में नगर की भीतरी परिवहन की समस्या अभी पश्चिम जितनी उग्र नहीं बनी है। यहां आज भी यातायात में ६०–७० प्रतिशत भाग साइकिलों का है। इसके अलावा निर्धनता की वजह से अधिकांश आबादी पैदल ही चलने को विवश है।

भारत के अन्य नये नगरों की भांति चंडीगढ़ में भी अभी चौड़े-चौड़े मार्गों की आवश्यकता नहीं है।

नगर की संरचना के निर्माण में नगर के प्रकार्यों की भी बड़ी भूमिका होती है। ला कार्बूज़िये ने निम्न प्रकार्यों को ध्यान में रखते हुए चंडीगढ़ का क्षेत्रों में बंटवारा किया था: प्रशासन, उत्पादन, व्यापार, शिक्षा, खेलकूद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और विश्राम। नगर का मुख्य भाग, जिसमें सभी महत्त्वपूर्ण सरकारी इमारतें स्थित हैं, उसकी सीमाओं के बाहर पहाड़ों और झील के निकट है।

नगर के उद्यान क्षेत्र के अधिकांश भाग में पंजाब विश्वविद्यालय की इमारतें बनी हुई हैं। नगर में एक काफ़ी बड़े खाली क्षेत्रफल पर पोलीटेक्नीक, वास्तु-शिल्प तथा कला विद्यालय और इंजीनियरिंग कालेज के भवन स्थित हैं। स्कूल भी खुली-खुली, हरी-भरी और भीड़-भड़क्के से दूर की जगहों पर बनाये गये हैं। इन सबसे ही लगी हुई स्टेडियम, संग्रहालय, क्लब, पुस्तकालय, खुली रंगशाला, तैराकी तालाब, आदि की इमारतें हैं। हरित पट्टी नगर को औद्योगिक क्षेत्र तथा आसपास के गांवों से अलग करती है।

नगर के उद्यान क्षेत्र के अधिकांश भाग में पंजाब विश्वविद्यालय की इमारतें सक्रियता का एक अनिवार्य घटक है। चंडीगढ़ में व्यापारिक और कारोबारी केंद्र सेक्टर १७ में दो मुख्य सड़कों के मिलनस्थल के समीप लैटिन के टी अक्षर के आकार के एक विशाल, ५६० मीटर लंबे भूखंड पर बना हुआ है। आसपास की चार – पांच मंज़िली इमारतों के अनुपात में यह भूखंड ज़रूरत से ज़्यादा बड़ा लगता है। यहीं पी० जान्नेरे द्वारा अभिकल्पित टाउन हॉल की इमारत, वास्तुकला संग्रहालय, वाणिज्यिक और व्यावसायिक इमारतें स्थित हैं।

ला कार्बूज़िये ने आवासीय सेक्टरों में व्यापार केंद्र आम चौकों जैसे नहीं, बल्कि पारंपरिक भारतीय बाज़ार-सड़कों जैसे बनाये हैं (केवल दो सेक्टरों में ही ए० मायर की योजना के अनुसार चौकनुमा व्यापार केंद्र बनाये गये थे)। बाज़ार-सड़कों के चौराहों पर और हरित पट्टियों के साथ-साथ इलाक़े की मुख्य सार्वजनिक इमारतें – सिनेमा, क्लब, पुस्तकालय, अस्पताल, रेस्तरां, थाना, आदि – बनायी गयी हैं।

योजनाकारों का सोचना था कि दूकानें बाज़ार-सड़कों के केवल पेड़ों की पंक्तिवाले हिस्से में ही होंगी। किंतु शीघ्र ही लोगों ने दूसरी ओर खुले में और सीधे फ़ुटपाथ पर भी दूकानें लगानी शुरू कर दीं। इसके साथ ही बाज़ारों और गली-मुहल्लों में रेहड़ीवाले भी प्रकट हो गये। कुछ सेक्टरों में इन रेहड़ीवालों के कारण स्थानीय व्यापार केंद्र काफ़ी फैल गया है और उनमें खूब चहल-पहल रहती है। सबसे अधिक रेहड़ीवाले बाईसवें सेक्टर में हैं, जो सबसे पहले बना था और जहां की दूकानें और सिनेमा अरसे तक कई दूसरे सेक्टरों के लोगों की भी ज़रूरतें पूरी करते रहे थे। आज भी इस सेक्टर का सार्वजनिक केंद्र दूसरे नगर केंद्र का काम करता है। १९७२ में नगर प्रशासन ने यहां से सभी रेहड़ियां और अस्थायी स्टाल हटवा दिये थे, किंतु सालभर बाद ही वे उसी रूप में और उसी जगह पर फिर प्रकट हो गये। उल्लेखनीय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है कि सार्वजनिक मनोरंजन स्थलों का सबसे समीचीन उपयोग सर्वाधिक घनी आबादीवाले बाईसवें सेक्टर के निवासियों द्वारा ही, जो अधिकांशत: निम्न आय वर्ग में आते हैं, किया जाता है। बच्चों के लिए खेलकूद और विश्राम के लिए हर जगह की अच्छी देखभाल की जाती है।

कतिपय आलोचक कई बातों में एक ओर चंडीगढ़ और दूसरी ओर नयी दिल्ली तथा ब्रिटिश ज़माने की केंटोनमेंटों के बीच साम्य पाते हैं। किंतु हमें यह उचित नहीं लगता। आवासीय इलाक़ों के मात्रिक समकोणिक ग्रिड के आकार और कतिपय अन्य बातों में चंडीगढ़ का अभिन्यास भारतीय परंपरा के अधिक अनुरूप है और अठारहवीं शती में निर्मित जयपुर से काफ़ी साम्य रखता है। दोनों ही नगरों में शासकीय भवन (जयपुर में राजप्रासाद-समुच्चय और चंडीगढ़ में मुख्य सरकारी भवन-समुच्चय) तथा कृत्रिम झील पहाड़ियों के समीप हैं और अन्य दिशाओं में नगर के विस्तार में बाधक नहीं बनते। जयपुर की सड़कें (चौड़ाई ३० मीटर) चंडीगढ़ के मुक़ाबले कुछ संकरी हैं। दूसरी ओर, चार-पांचमंज़िले मकानोंवाला जयपुर अधिक सुघटित, अविभाज्य लगता है और आधुनिक नगर की कसौटी पर अधिक खरा उतरता है। जैसा कि मध्ययुग में होता था, जयपुर में कारोबार की जगह और रहने की जगह साथ-साथ हैं। किंतु चंडीगढ़ में, जैसा कि आज होता है, दोनों को अलग-अलग रखा गया है। चंडीगढ़ की सड़कों का समकोणिक ग्रिड नगर को समान आकार के कई सेक्टरों में बांटता है, किंतु उनमें न आबादी की सघनता समान है (किसी सेक्टर में वह केवल ५ हज़ार है, तो किसी में २५ हज़ार तक) और न सार्वजनिक सेवाओं तथा सुविधाओं का स्तर और हरियाली की मात्रा ही समान हैं। इसके अलावा विभिन्न सेक्टरों के निवासियों के सांपत्तिक स्तरों में भी अंतर है।

चंडीगढ़ में सरकारी आवास निर्माण कार्यक्रम में सरकारी कर्मचारियों के पद तथा हैसियत के मुताबिक़ १३ श्रेणियों के मकान बनाने का प्रावधान था। इस कार्यक्रम के निर्माताओं ने कोई सामाजिक प्रयोग करने का प्रयास नहीं किया और अपने को यहीं तक सीमित रखा कि विशेषाधिकारों की उच्चतम सीमा कुछ कम और निम्नतम सीमा कुछ ऊंची कर दी। आवासीय क्षेत्रफल तथा भूखंड के आकार संबंधी पाबंदियां उच्च पदस्थ लोगों को पसंद नहीं आयी हैं, जो दसियों नौकर-चाकर रखने के आदी थे।

चंडीगढ़ में चूंकि पुराने भारतीय नगरों जैसे जातपांत पर आधारित मुहल्ले नहीं हैं, अतः कहा जा सकता है कि यहां कुछ सामाजिक प्रगति हुई है। भारतीयों को एक दूसरे से अलग रखनेवाली पुरानी दीवारें तोड़ दी गयी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। किंतु जैसा कि वास्तुशिल्पी सी० के० गुप्ता का कहना है, पड़ोसी संबंधों का नया, सरकारी श्रेणीतंत्र को प्रतिबिंबित करनेवाला आर्थिक आधार लोगों के बीच नयी दुर्लंघ्य दीवारें खड़ी कर रहा है।* सरकारी नौकरशाही का श्रेणीतंत्र सेक्टरों के ज्यामितीय ग्रिड में प्रतिलक्षित हुआ है। उच्च आय वर्ग के लोग–मंत्री, न्यायाधीश, उच्च पदाधिकारी, आदि–की संख्या नगर की कुल आबादी के ५ प्रतिशत के बराबर है और ये लोग अधिकांशतः उत्तर-पूर्व में सेक्टर २ और ५ में रहते हैं, जो मुख्य सरकारी भवन-समुच्चय से लगे हुए हैं। सेक्टर १५ में ज़्यादातर वास्तुशिल्पियों, डाक्टरों और प्राध्यापकों के मकान हैं। सबसे घने बसे दक्षिण-पश्चिम के सेक्टर २०,२२ और २७ की अधिकांश आबादी निम्न आय वर्ग में आती है।

चंडीगढ़ के मकानों में ऐसे परंपरागत भीतरी अहाते नहीं हैं, जिनमें मवेशी रखे जा सकें। नगर के बहुत-से निवासियों को यह बात आज भी खलती है। चंडीगढ़ में पुराने घरों जैसी खुली छतें और बाल्कनियां भी नहीं हैं, जो यहां की गरमी को देखते हुए बहुत ज़रूरी हैं। फिर भी ७६ प्रतिशत निवासियों को यहां के घर उनके सुविधाजनक अभिन्यास, शौचालय, स्नानघर, आदि के कारण पुराने नमने के घरों के मुक़ाबले ज़्यादा पसंद हैं।

अब पता चल रहा है कि चंडीगढ़ में निर्मित सबसे सस्ता मकान भी अल्प आय वर्ग के लोगों की क्रयक्षमता के बाहर है, बेरोज़गारों की बात तो रही दूर, जिनकी तादाद दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। फलस्वरूप दूसरे नगरों की तरह चंडीगढ़ में भी झुग्गी-झोंपड़ियों की तादाद बढ़ रही है।

नगर का जब निर्माण हो रहा था, तभी नगर के प्रायोजित क्षेत्र के बाहर निर्माण मज़दूरों की अस्थायी बस्तियां पैदा हो गयी थीं, जो बिल्कुल सुविधारहित थीं। उनकी दो तिहाई आबादी विभिन्न पेशों के ऐसे लोगों की है, जो बहुत ही कम कमा पाते हैं। आबादी की सघनता में वृद्धि उन्हीं इलाक़ों में हो रही है, जो वैसे भी बहुत घने बसे हैं। दूसरी ओर, कम घने बसे सेक्टरों में आबादी सघनता पहले जैसे ही कम है। निवासी की आमदनी जितनी ही कम होगी, उसके घर में जगह की उतनी ही तंगी होगी, क्योंकि उसमें उसका अपना परिवार ही नहीं, बहुत-से नाते-रिश्तेदार भी रहते हैं। मकानों के ऊंचे किरायों की वजह से बहुत-से निवासी घर में उपकिरायेदार रखने अथवा मकान ही आगे किराये पर देने को बाध्य होते हैं। यद्यपि ला कार्बूज़िये के सुझाव पर नगर में मकानों की सघनता बढ़ा दी

* Gupta C. K., *Chandigarh Twenty Years Later*, Architectural Design, 1974, vol. 44, no. 6, pp. 350—361.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गयी है, फिर भी बाहर से आनेवाला खाली-खाली सड़कों, चौराहों और बाग़ों के विस्तार में खोयी हुई, बिखरी-बिखरी, मानो अधूरी-सी कममंज़िली इमारतों को देखकर निराश-सा हो उठता है।

चंडीगढ़ की एक निर्विवाद उपलब्धि भारत के इतिहास में पहली बार आम आदमी के लिए ऊंचे पेशेवर स्तर पर निर्मित आवास है। सभी सरकारी मकानों में से ८० प्रतिशत सस्ते आवासों की श्रेणी में आते हैं। अल्प आय वर्ग के कर्मचारियों के लिए ७. ५×२० मीटर अथवा ५×२१. ५ मीटर के भूखंडों पर आपस में सटे हुए एकमंज़िले या दोमंज़िले मकान बनाये गये हैं। हर फ़्लैट के साथ दो आंगन हैं। एक परिवार के लिए निर्मित सबसे सस्ते आवास में भी दो कमरे, बरामदा, रसोई, शौचालय, स्नानघर और अहाता हैं। इस प्रकार के घर देहाती घरों के नमूने पर, किंतु उसमें कुछ सुधार करके, बनाये गये हैं। स्थान के उपयुक्ततम इस्तेमाल, हर वास्तु अंग के परिष्करण और भीतरी अभिन्यास की निर्दोषता की दृष्टि से चंडीगढ़ में सबसे उत्कृष्ट सेक्टर २०,२२,२३ हैं, जिन्हें जेन ड्रयू और जीत मलहोत्रा ने डिज़ायन किया था। सेक्टर २० में जीत मलहोत्रा ने चपरासियों के लिए निर्मित एकमंज़िले घरों को चौड़ाई में दो-दो और लंबाई छह-छह या आठ-आठ की संख्या में समूहित करके एक ऐसी स्वसीमित समष्टि की रचना की है, जो पंजाब के ७००-८०० निवासियोंवाले गांव की याद दिलाती है। घर छोटे होने के कारण निवासी अपना अधिकतर समय खुले में अहाते में या इमारतों के बीच की खाली जगह में बिताते हैं। मोटर साइकिलों और ठेलों के लिए सेक्टर के भीतर प्रवेश वर्जित है।

चंडीगढ़ उसके निर्माता वास्तुशिल्पियों की दक्षता, सूझबूझ और सुरुचि-संपन्नता का शानदार प्रतीक है। सारा नगर लाल ईंटों का बना हुआ है, जिनकी छटा जालियों, धूप-अवरोधकों और कंक्रीट के खंभों की सफ़ेदी के बीच और भी निखर उठती है। बहुत-सी इमारतों के निर्माण में अनतराशे पत्थर और गोल पत्थर भी इस्तेमाल किये गये हैं। मानक नक़्शों के अनुसार निर्मित इमारतों के रचना-विन्यास में एक जैसे तत्त्व बार-बार दोहराये जाते हैं, किंतु भिन्न-भिन्न संयोगों, रंगों और बनावट की वजह से वे हर बार नये लगते हैं। खिड़कियों और बाल्कनियों में कांच के बजाय जालियां लगायी गयी हैं। धूप-अवरोधकों (दीवारों पर बने उभार, जो अपनी छाया से घर के भीतर ठंडक बनाये रहते हैं) और जालियों को ऐसी-ऐसी असामान्य ज्यामितीय आकृतियों में अभिकल्पित किया गया है कि वे मकानों के अग्रभागों की सज्जा का एक कारगर साधन बन गये हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नगर के कुछ भागों की सुंदरता उनमें स्थित अनुपम सार्वजनिक भवनों के कारण और भी खिल उठी है। इस संबंध में जीत मलहोत्रा तथा बी० पी० माथुर के डिज़ायनों के अनुसार निर्मित एक स्कूली भवन उल्लेखनीय हैं। क्रमश: अतिच्छादन के पुराने तरीक़े से चिनी गयी ईंटों से निर्मित असामान्य तोरणिका टेढ़ी-मेढ़ी पट्टी जैसे इमारत को घेरती हुई उसे धूप और पानी से बचाती है। ऐसी युक्ति का प्रयोग इमारत के क्षैतिज अथवा अनुलंब विस्तार के लिए पर्याप्त गुंजायश भी छोड़ता है। बाहर खुले आसमान तले पढ़ाई के लिए अनतराशे और गोल पत्थरों से बनी दीर्घवृत्ताकार कक्षाएं विशाल फूलों की क्यारियों जैसी लगती हैं। नगर के मुख्य मार्ग पर स्थित विधायक निवास की इमारतों के अग्रभाग, जो अपनी सज्जा में अमूर्त चित्रों से सादृश्य रखते हैं, सहज ही ध्यान आकृष्ट कर लेते हैं।

चंडीगढ़ की वनस्पति सज्जा की योजना खूब सोच-समझकर बनायी गयी है। वृक्ष तथा अन्य वनस्पतियां नगर को कोलाहल, धूल, तेज़ हवा और धूप से ही नहीं बचाती हैं और वायुमंडल में प्रचुर आक्सीजन ही नहीं बनाये रहती हैं, अपितु नगर परिदृश्य का एक अभिन्न और सर्वाधिक नयनाभिराम अंग भी हैं। वृक्ष-चयन और वृक्षारोपण में स्थानीय स्थलाकृति, सड़कों के स्वरूप तथा प्रयोजन, वृक्षों की क़िस्मों, फूलने के मौसम तथा शिखर की आकृति, आदि सब कुछ को ध्यान में रखा गया है। दक्षिण ढलानों पर स्थित इलाक़े अधिकतम हरे-भरे हैं। अलग-अलग सड़कों पर अलग-अलग क़िस्मों, वर्ण-छटाओं और सुगंधों के वृक्ष लगाये गये हैं। नगर के मुख्य मोटर-मार्ग – जनमार्ग – के दोनों ओर ऊंचे सदाबहार वृक्षों की दो-दो पंक्तियां लगी हैं। ला कार्बूज़िये ने इसका विशेष ध्यान रखा था कि मुख्य सरकारी भवन-समुच्चय नगर से बिल्कुल पृथक् रहे और इस तरह अपने असामान्य महत्त्व का प्रदर्शन करे।

रोज़मर्रा की दौड़-भाग की ज़िंदगीवाले आवासीय इलाक़ों की तुलना में नागरता के स्मारक मुख्य सरकारी भवन-समुच्चय में पैमाना भी बिल्कुल दूसरा है और वातावरण भी बिल्कुल अलग है। यहां सर्वत्र राजसी वातावरण के ही दर्शन होते हैं। मुख्य सरकारी भवन-समुच्चय में मानव के हाथों द्वारा सृजित चमत्कार नीरव, गरिमामय प्रकृति के चमत्कारों से प्रतिस्पर्द्धा करते हैं। मुख्य सरकारी भवन-समुच्चय की भव्य इमारतों के पीछे आकाश के नील कुहासे में जाकर विलीन होती शिवालिक पहाड़ियां चित्रखचित-सी प्रतीत होती हैं। सारे रचना-विन्यास में ऊर्ध्वस्तर इमारतों को जान-बूझकर शामिल नहीं किया गया है। पर्वत शिखरों के साथ वे सर्वथा असंगत लगतीं। बौनी, क्षैतिज इमारतें पृथ्वी में से उगती हुई सी प्रतीत होती हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुख्य सरकारी भवन-समुच्चय के चौक को मोटर-मार्गों के स्तर से ५-८ मीटर ऊंचा रखा गया है। इस कृत्रिम टीले को काटते हुए बनाये गये मोटर-मार्ग सीधे इमारतों के मुख्य द्वारों पर नहीं पहुंचाते, बल्कि आगे के अहातों के छोर पर आकर खत्म हो जाते हैं।

चंडीगढ़ का मुख्य सरकारी भवन-समुच्चय अपने सुरम्य रचना-विन्यास में, जो उसे फ़तेहपुर सीकरी के प्रासाद-समुच्चय से काफ़ी मिलता-जुलता बना देता है, काफ़ी गत्यात्मकतापूर्ण है। यह गत्यात्मक प्रभाव उसे उसका कर्णीय अभिन्यास प्रदान करता है। देखने में इमारतें एक दूसरे के संदर्भ में चलायमान लगती हैं। भवन-समुच्चय के चौक से, उच्च न्यायालय की खिड़कियों और छत से सचिवालय और विधान भवन की इमारतें जुड़ी हुई और एक अविभाज्य समष्टि का आभास देती हैं। सचिवालय के नक़्क़ाशीदार अग्रभाग की पृष्ठभूमि पर विधान भवन अधिक बड़ा तथा बृहदाकार दिखता है। असममिति का राज भवनों के मौलिकतायुक्त अग्रभागों में भी दिखायी देता है।

विशाल कंक्रीटनिर्मित अतिपरवलयज विधान सभा भवन की वर्गाकार रचना का मुख्य नाभिक है। इस भवन में ही एक अन्य कक्ष भी स्थित है, जिसके ऊपर तिकोने पिरामिड जैसी कांच की छत बनी हुई है। अतिपरवलयज और कांच का पिरामिड जैसे कि सपाट छत में से फूटे पड़े हैं। इन दो कक्षों के बीच की जगह में ऊंचे-ऊंचे पतले स्तंभ और नीचे जाने के ढलवां गलियारे बने हुए हैं। विधान सभा भवन में कंक्रीट की जाली जैसे आठ तोरणोंवाले भव्य सिंहद्वार से होकर प्रवेश किया जाता है। तोरणों के अंडाकार छिद्रों से दिखायी देनेवाला परिदृश्य उनपर बने मिनियेचर चित्र जैसा लगता है।

अतिपरवलयज की आकृति, जिसके लिए ला कार्बूज़िये को प्रेरणा अहमदाबाद की लवण कार्यशालाओं से मिली थी, उनके मत में औद्योगिक युग की भावना से मेल खाती है। ~~सनातनी हिंदू के लिए यह आकृति शिव के प्रतीक लिंग से संबद्ध है।~~

विधान सभा भवन के सामने आकाश की पृष्ठभूमि पर उच्चन्यायालय का भवन खड़ा है। छत्र जैसी उठी हुई उसकी विशाल छत और अग्रभाग आगे उभरी हुई पार्श्व भित्तियां इमारत के लिए अच्छे धूप-अवरोधक का काम करती हैं, हालांकि धूप को रोकने के लिए जाली भी बनी हुई है। विशालाकार छत के बाद भवन का विराट सिंहद्वार ध्यान आकृष्ट करता है। पूरी इमारत जितने ऊंचे तीन भारी-भरकम तोरण एक तरह की दरारें-सी बनाते हैं। दर्शक को आतंकित-सा करते तोरणों के बीच और अति भव्य प्रवेशकक्ष के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गुंबद के नीचे मनुष्य अपने को बौना महसूस करता है।

ला कार्बूज़ियं का प्रस्ताव था कि राजनिवास (राज्यपाल का निवास) भवन-समुच्चय के मध्य में हो। किंतु जवाहरलाल नेहरू ने इसे यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि ऐसा भारत गणराज्य के जनवादी सिद्धांतों के विरुद्ध होगा। ला कार्बूज़िये का उस स्थल पर विज्ञान संग्रहालय का भवन बनाने का दूसरा प्रस्ताव भी साकार नहीं हो पाया।

चौक के मध्य में शहीदों की समाधि के ऊपर एक विशाल स्मारक बनाने की योजना है, जिसके लिए आगे बढ़ी हुई हथेली की आकृति चुनी गयी है। आगे बढ़ी हुई हथेली हमारे युग में शांति और सौहार्द की प्रतीक मानी जाती है (पंजाब में वह उदारता तथा मेहमाननवाज़ी की प्रतीक है और प्राय: घरों की दीवारों पर अंकित की जाती है)। विधान सभा भवन के बायीं ओर स्वाधीनता सेनानियों का स्मारक बनाया गया है।

हमारी राय में मुख्य राजकीय भवन-समुच्चय अधूरा-सा लगता है। उच्चन्यायालय और विधान भवन की इमारतों के बीच अनावश्यक ही इतनी अधिक दूरी (८०० मीटर) रखी गयी है। चाक्षुष स्तर पर इस दूरी को पाटने में न कृत्रिम जलाशय में उनके प्रतिबिंब का प्रभाव ही सहायक होता है और न चौक में लगी बड़ी-बड़ी सिल्लियां ही।

चाक्षुष स्तर पर इतने विशाल क्षेत्रफल में संतुलन केवल बहुत बड़ी इमारतों द्वारा ही क़ायम किया जा सकता था। स्थूल तर्क के विपरीत, सभी भवन निचाई में स्थित हैं, जब़कि चौक ऊंचाई पर है। भवनों की पहली मंज़िलों के स्तरों और चौक के स्तर के बीच भूआकृति को देखते हुए ४ से ८ मीटर का अंतर है। इस प्रकार चौक रंगशाला के मंच जैसा बन जाता है, जिस पर पर्वों तथा उत्सवों के मौक़ों पर "रंग कार्यक्रम"—परेडें, समारोही प्रदर्शन, आदि होते हैं, इमारतों पर रोशनी की जाती है। इन्हें देखने के बाद लोग पक्की पगडंडियों से समीपवर्ती झील की ओर चल पड़ते हैं, जहां शांति छायी होती है। वास्तुशिल्पियों की अभिकल्पना यही थी।

नगर से मुख्य सरकारी भवन-समुच्चय का अलगाव बहुत ही स्पष्ट है और कोई भी आलोचक इसे अनदेखा नहीं कर पाता। मुख्य सरकारी भवन-समुच्चय नगर से न कार्यतः जुड़ा हुआ है न दृश्यतः ही। अतीत की क्लासिक मिसालों के विपरीत यह भवन-समुच्चय किसी सहज दृश्य स्थल पर नहीं बना है। वह न नगरवासियों का आकर्षण-स्थल है, न आगंतुकों के लिए दिक्-सूचक ही, यद्यपि स्थानीय भूआकृति को देखते हुए उसे ऐसा बनाया जा सकता था। सरकारी दफ़्तरों और उनमें रोज़गार के अलावा और कोई संपर्क-सूत्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नागरिकों और इस भवन-समुच्चय के बीच नहीं है। यहां न थियेटर हैं, न क्लब या संग्रहालय हैं और न कोई दूकानें, वगैरह ही। शाम होते ही यहां हर ओर वीरानगी छा जाती है।

सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ पुरातत्त्वविद मार्टीमर व्हीलर ने चंडीगढ़ के शासकीय भवन-समुच्चय के वास्तुशिल्प से अभिभूत होकर कहा था कि तीसरी सहस्राब्दी ईसापूर्व के हड़प्पाई नगरों की भांति यह भी इतिहास में अपने लिए शाश्वत स्थान बना लेगा और हमारी बीसवीं शती की उपलब्धियों का स्मारक बनेगा। मार्टीमर व्हीलर की ऐसी श्लाघापूर्ण सहमति से इने-गिने भारतीय ही सहमत है। ऐसा ही मत उन लोगों का भी है, जिन्हें परंपरागत राजपूत-मुग़ल शैली की इमारतों अथवा उनसे भी पुरानी बौद्ध इमारतों के वास्तु-रूप अधिक भाते हैं।

माने-जाने भारतीय लेखक और कला पत्रिका 'मार्ग' के संपादक मुल्कराज आनंद को चंडीगढ़ के वास्तुशिल्प में भारतीय दर्शन और पश्चिमी नगर निर्माण संबंधी चिंतन का संश्लेषण दिखायी दिया है। भारत के एक मूर्धन्य वास्तुशिल्पी चार्ल्स कोरेआ का कहना है कि ला कार्बूज़िये ने भारत की सामाजिक, नगर निर्माण तथा वास्तुशिल्प संबंधी समस्याओं के सार और विशिष्ट स्वरूप में पैठने का या तो प्रयत्न नहीं किया है या वह ऐसा नहीं कर पाये हैं और इसके बदले उन्होंने अपने ही द्वारा प्रतिपादित सार्वत्रिक सिद्धांतों का अनुप्रयोग करके संतोष कर लिया है, जो अमूर्त मनुष्य, संभवत: पुनर्जागरण काल के यूरोपीय आदर्श से मिलते-जुलते मनुष्य की जैविक विशेषताओं की दृष्टि से ही समीचीन जान पड़ते हैं। कोरेआ के मत में चंडीगढ़ में ला कार्बूज़िये को नये वास्तु-रूपों की खोज के लिए निर्बाध क्षेत्र मिला और इसमें उन्होंने अनुपम दक्षता का परिचय दिया, जिसकी तुलना बाज़ीगर की दक्षता से ही हो सकती है। पश्चिमी पत्र-पत्रिकाओं में कोरेआ के मत की न केवल व्यापक गूंज हुई और अनेक वास्तुशिल्पियों, समाजशास्त्रियों तथा कलाविशेषज्ञों ने उसका समर्थन ही किया, अपितु चंडीगढ़ और उसके रचयिता की आलोचना और भी ऊंचे स्वर में की जाने लगी। स्वीडिश विशेषज्ञ स्टेन नीलसन* ने दो-टूक शब्दों में कहा कि चंडीगढ़ नगर का विद्रूप है, ब्रिटिश नमूने का एक और "कैंटोनमेंट" है, कि ला कार्बूज़िये ने ई० लूटियेंस के पदचिह्नों पर चलते हुए "उद्यान-नगर" रचा है, जिसमें मुख्य स्थान आडंबरपूर्ण शासकीय भवन-समुच्चय को दिया गया है, और इस भवन-समुच्चय के वास्तुशिल्प

---

* Nilsson S., *New Capitals of India, Pakistan, Bangladesh*, Lund, pp. 87—138.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में उन्होंने शासकों के महिमा प्रदर्शन की उसी प्रवृत्ति को प्रतिबिंबित किया है, जो कि प्राचीन रोम के वास्तुशिल्प की विशेषता थी और जिसे आगे चलकर सत्रहवीं शती के राजतांत्रिक फ़्रांस के भवन-समुच्चयों में, ओस्मन की पेरिस के पुनर्निर्माण की योजनाओं (उन्नीसवीं शती) में और फिर नयी दिल्ली के वास्तु-समुच्चय में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। नीलसन के शब्दों में, चंडीगढ़ नयी दिल्ली से इसी मानी में भिन्न है कि उसके पार्श्व में कोई पुराना, आज भी फूलता-फलता नगर नहीं है। वह ला कार्बूज़िये पर लूटियेन्स जैसी ही पदलोलुपता का आरोप लगाते हैं और कहते हैं कि कार्बूज़िये को जिस देश में वह निर्माण कर रहे थे, उसके राष्ट्रीय हितों की कोई परवाह नहीं थी। हमारे मत में स्टेन नीलसन के ये सभी विद्वेषपूर्ण आक्षेप स्वयं ला कार्बूज़िये को इतना नहीं, जितना कि १९३३ की अंतर्राष्ट्रीय वास्तुशिल्पी कांग्रेस द्वारा एथेंस में स्वीकृत घोषणापत्र में उल्लिखित विचारों को लांछित करने की पश्चिम में पायी जानेवाली व्यापक प्रवृत्ति के प्रतिबिंब हैं। प्रसंगतः, नीलसन इस दस्तावेज़ को विश्व नगर निर्माण कला के लिए सबसे घातक दस्तावेज़ मानते हैं। हम इससे सहमत नहीं हो सकते। एथेंस घोषणापत्र ने आधुनिक वास्तुशिल्प के विकास में काफ़ी बड़ी रचनात्मक भूमिका अदा की थी और उसमें निहित मानवतावादी विचारों ने अपना महत्त्व आज भी नहीं खोया है।

चंडीगढ़ वह "देदीप्यमान नगर" नहीं है, जिसका कि कभी ला कार्बूज़िये ने स्वप्न देखा था। उनके जीवन में एक विडंबनापूर्ण घटना घटी। एक ओर तो वह गगनचुंबी इमारतोंवाले नगर के पक्षधर थे, जो कि खुलेपन, हरियाली और धूप के लिए प्रचुर गुंजायश छोड़तीं, और, दूसरी ओर, जब उन्हें एक पूरे के पूरे नगर के निर्माण का अवसर मिला, जो कि उनके द्वारा सृजित एकमात्र नगर था, तो उन्होंने इस सारतः प्रगतिशील वास्तुकलात्मक संकल्पना को त्यागकर एक ऐसा नगर रच डाला, जिसमें सर्वत्र छोटे-छोटे बग़ीचों और अहातोंवाली एक-दो मंज़िली इमारतें ही थीं, जैसा कि भारत के अन्य निर्माणाधीन नगरों में भी पाया जाता है। इतना ही नहीं, उन्हें चंडीगढ़ की वास्तु योजना में सामाजिक भेदभाव को स्थान देने की नगर बनवानेवाले की इच्छा के सामने झुककर अपने जनवादी विश्वासों से भी पीछे हटना पड़ा।

भारत की परिस्थितियों में ऐसा नगर बना पाना सहज नहीं है, जो कि राजधानी-नगर के प्रातिनिधिक स्वरूप के भी अनुरूप हो और उसके रचयिता वास्तुशिल्पी के आदर्शों को भी साकार बनाता हो। प्रश्न भारत के आर्थिक तथा तकनीकी पिछड़ेपन और उसकी जलवायु की सनकों का ही नहीं है, यद्यपि ये भी कम महत्त्वपूर्ण कारक नहीं हैं। प्रश्न भारतीय समाज के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जीवन तथा दृष्टिकोण में गहरी जड़ें जमाये हुई परंपराओं और सामाजिक अवरोधों को ख़त्म करने का है और यह काम वास्तुशिल्पी अकेला नहीं कर सकता।

१९६० के दशक में भारत में नगरों के विकास में नयी प्रवृत्तियां उभरीं, जो घरेलू सामाजिक और आर्थिक प्रक्रियाओं को प्रतिबिंबित करती थीं। राष्ट्रीय हितों के बजाय स्थानीय हितों को प्रमुखता दी जाने लगी। १९६६ में पंजाब के दो राज्यों – पंजाब और हरियाणा – में विभाजन के बाद चंडीगढ़ दोनों ही राज्यों की राजधानी बन गया और उसका प्रशासन दिल्ली से चलाया जाने लगा। तब से नगर में सरकारी आवासीय निर्माण रुक सा गया है।

आवासीय निर्माण पहले पूरी तरह सरकार के हाथों में था, लेकिन अब वह निजी हाथों में आता जा रहा है और ७० प्रतिशत से अधिक निर्माण कार्य अब ग़ैर-सरकारी व्यक्तियों द्वारा ही करवाया जा रहा है।

आधुनिक नगर की संवृद्धि उद्योगों के विकास पर निर्भर होती है, क्योंकि उद्योगों की बदौलत ही नगर में पूंजी, मज़दूर, कच्चा माल और आवास संकेंद्रित होते हैं। चंडीगढ़ का औद्योगिक विकास लगभग ठप्प पड़ा है। पहले चरण के उद्योगों के लिए जो भूक्षेत्र नियत किया गया था, वह अपर्याप्त है। दूसरे चरण के उद्योगों के लिए जो भूमि आरक्षित थी, उसका अधिकांश बेच दिया गया है। नगर की नियति अन्य आधुनिक पूंजीवादी नगरों की नियति जैसे ही बन गयी है। अनियंत्रित निजी उद्यम चंडीगढ़ पर छाता जा रहा है। देहातों से रोज़गार की खोज में आनेवालों की भीड़ बढ़ने से नगर की आबादी बढ़ गयी है और आवासों की भारी किल्लत महसूस की जा रही है। फलस्वरूप झुग्गी-झोंपड़ियों की बस्तियों का अनियंत्रित विस्तार हुआ है।

भारत के नये नगरों की चर्चा करते हुए भारत में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से एक आदर्श नगर औरवील के निर्माण के रोमांटिक प्रयास का भी अवश्य उल्लेख किया जाना चाहिए।* अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक सहयोग के केंद्र के रूप में कल्पित इस नगर के लिए वैचारिक तथा व्यावहारिक प्रेरणा महान भारतीय स्वाधीनता-सेनानी तथा विचारक श्री अरविंद से मिली थी, जिन्होंने मानव समाज में सुसामंजस्यपूर्ण सहयोग तथा सहजीवन के अपने स्वप्न को साकार बनाने के लिए पांडीचेरी में एक आश्रम की स्थापना की थी। यह आश्रम ही नये नगर की बुनियाद बना। श्री अरविंद के सम्मान में ही नगर को औरोवील (शाब्दिक अर्थ "उषानगरी") नाम दिया गया। विश्व नगर निर्माण कला

*कोरोत्स्काया अ० अ०, 'औरोवील', सोवियत सघ में वास्तु-कला, १९७६, नं०८, पृ०५९-६२। (रूसी में)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अलेक्जेंड्रिया) का निर्माण यूनानी वास्तुशिल्पी डिनोक्रीटस ने अरस्तू के विचारों से प्रेरित होकर ही किया था।

आदर्श नगरों की योजनाएं प्राचीन भारत और यूरोप में भी बनायी के इतिहास में अनेक बार ऐसा हुआ है, जब दार्शनिक और नगर-निर्माता के सहयोग ने नगरों को जन्म दिया है। मिसाल के लिए, सिकंदरिया गयी थीं, किंतु वे साकार न हो पारीं। अरविंद के विचार यूटोपियाई कम्युनिज़्म के एक आरंभिक प्रतिपादक, सत्रहवीं शती के मनीषी तोमाज़ो कंपानेल्ला की "सूर्यनगरी" की कल्पना से काफ़ी साम्य रखते हैं। कंपानेल्ला अपने स्वप्नों की नगरी कहीं हिंद महासागर में बनाना चाहते थे और उसमें केवल ऐसे सुखी तथा समानाधिकारप्राप्त लोगों को रहना था, जिनके लिए श्रम पुनीत कर्त्तव्य और सम्मान की बात होता। अरविंद ने भी ऐसे ही नगर के स्वप्न देखे थे, जिसमें भारत की उस युग की गौरवशाली परंपराएं पुनरुज्जीवित होतीं, जब इस देश में नालंदा, तक्षशिला तथा कांचीपुरम के विश्वविद्यालयों जैसे जगतप्रसिद्ध शिक्षा केंद्र थे और भारतीय संस्कृति का प्रभाव दूर-दूर तक फैला था।

भारत सरकार और संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक आयोग (यूनेस्को) के समर्थन से १९६८ में औरोवील का निर्माण आरंभ हुआ, जिसमें भाग लेने के लिए विश्व के सभी कोनों से अनेक उत्साही युवा आये। निर्माण कार्य के निदेशक फ्रांसीसी वास्तुशिल्पी रोजेर आंजे बने। भारतीय और विदेशी वास्तुशिल्पियों की सहभागिता से निर्मित उनकी प्रायोजना के अनुसार पांडीचेरी के निकट बंगाल की खाड़ी के तट पर एक अनुपम नगर बनने लगा। औरोवील जिस स्थली पर बनाया जा रहा है, वह प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से अत्यंत उत्कृष्ट है और वहां की जलवायु भी अपेक्षया उत्तम है। नगर से कुछ ही क़दम की दूरी पर समुद्र की लहरें नर्तन करती हैं और आसपास कदली और ताड़ वृक्षों के कुंजों के बीच असंख्य झीलों का नील जल सूर्य-किरणों से क्रीड़ा करता है।

नगर के जीवन में मुख्य भूमिका विभिन्न देशों और भारत के राज्यों के स्थायी सांस्कृतिक मिशनों को प्रदान की गयी है। हर देश उसके लिए नियत भूखंड पर अपनी परंपराओं के अनुरूप भवनों का निर्माण कर रहा है और राष्ट्रीय मंडपों में विज्ञान, प्रविधि तथा कला की उपलब्धियों का प्रदर्शन किया जा रहा है।

औरोवील में इनके अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार केंद्र, सूचना केंद्र तथा औद्योगिक उद्यमों के निर्माण की भी योजना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। औरोवील को अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों तथा गोष्ठियों की स्थायी आयोजन-स्थली और मनुष्य को उसकी जीवन-सक्रियता के लिए सर्वाधिक अनुकूल परिवेश मुहैया करने के क्षेत्र में यूनेस्को के तत्त्वावधान में किये जानेवाले अनुसंधानों तथा गोष्ठियों का केंद्र बनना है। औरोवील के क्षेत्र में गांवों तथा मछुआरा बस्तियों को रहने दिया गया है, ताकि उन्हें आदर्श ग्राम बस्तियों में परिवर्तित किया जा सके।

विज्ञान, संस्कृति, शिक्षा, सूचना साधनों और सामाजिक तथा अंतर्राष्ट्रीय संपर्कों का केंद्र होने की वजह से औरोवील एक आधुनिक नगर है। साथ ही औरोवील, जैसी कि उसकी कल्पना की गयी है, सामान्य अर्थ में नगर नहीं है, बल्कि मध्ययुग के नगर से मिलती-जुलती एक आत्मनिर्भर नगररूप बस्ती है, जिसमें उत्पादनशालाएं, नगरीय भवन, खेत, बग़ीचे, गांव, आदि सब एक साथ समूहित हैं और नगरवासी अपने व्यवसायों के साथ-साथ कृषिकर्म तथा ग्राम-जीवन में भी भाग लेते हैं।

जनसंख्या और क्षेत्रफल के लिहाज़ से औरोवील कोई ख़ास बड़ा नहीं है। उपनगरीय इलाक़ों समेत उसमें कोई १ लाख लोग रहते हैं। आधी आबादी नगर में संकेंद्रित है, २० हज़ार लोग आदर्श गांवों में रहते हैं और शेष ३० हज़ार आनुषंगिक क्षेत्रों में बिखरे हुए हैं। योजना के अनुसार औरोवील को सभी दृष्टियों से, विशेषतः संरचना की दृष्टि से विश्व में अद्वितीय नगर बनना था। उसके निर्माताओं ने उसके लिए न तो ग्रिडनुमा अभिन्यास चुना है, न अरीय-वृत्तीय प्रणाली और न रैखिक, पट्टीनुमा बस्ती व्यवस्था ही। उन्होंने भविष्यविज्ञान और आदितत्त्वविद्या के आधुनिक विचारों से भी प्रेरणा ग्रहण नहीं की है। औरोवील का अभिन्यास सामान्य से सामान्य आदमी को भी ब्रह्मांड की याद दिला देता है। ब्रह्मांडोत्पत्ति विषयक विचार भारतीय दार्शनिकों के लिए लाक्षणिक थे, जो ब्रह्मांड के, संपूर्ण सृष्टि के स्तर पर सोचते थे और जिनकी कल्पना में नगर हमारी सृष्टि का प्रतिरूप था। संभवतः औरोवील की गतिशील संरचना पर इन्हीं विचारों की छाप है। कुछ भी हो, नगर का रचना-विन्यास केंद्रमूलक है और उसमें सबसे अधिक उद्व्यक्ति मध्य में स्थित सार्वजनिक केंद्र को ही दी गयी है।

नगर के मध्य में सबसे ऊंचे स्थल पर सूर्य जैसी चमकती हुई औरोवील की सबसे बड़ी इमारत स्थित है। उसे एक विशाल सुनहरे गोले के आकार का बनाया गया है, जिसपर लगे ताम्रफलक घूमते रहते हैं। यह ऊष्मा तथा ऊर्जा के स्रोत सूर्य का प्रतीक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन भवन है। उससे सभी दिशाओं में पुच्छल तारों जैसे, सर्पिल आकृतियां बनाती हुई, नगरोपांत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की ओर छोटी होती जाती भवन-समूहों की पंक्तियां विकीरित होती हैं और उनके बीच में ग्रहों, नक्षत्रों तथा आकाशगंगा जैसे अलग-अलग भवन तथा ग्राम बिखरे पड़े हैं।

सार्वजनिक केंद्र का निर्माण १९७६ में मुख्य भारतीय मंडप के साथ ही पूरा हुआ। तब तक बिजलीघर, कपड़ा मिलों, बेकरियों और कई बड़े कृषि फ़ार्मों का निर्माण भी पूर्ण हो चुका था और नगर के निर्माताओं के लिए स्थानीय सामग्रियों से अलग काटेजें बनायी जा चुकी थीं।

१९७६ में औरोवील में निर्माण कार्य रुक गया और इस यूटोपियाई नगर को, असंख्य असमाधेय सामाजिक अंतर्विरोधों से भरपूर पूंजीवादी जगत के सागर में स्थित इस एकाकी द्वीप को भाग्य के भरोसे छोड़ दिया गया। स्पष्ट है कि किसी नये, समृद्धिशील नगर की स्थापना एवं निर्माण के लिए अलग-अलग लोगों का उत्साह और उदात्त लक्ष्य ही पर्याप्त नहीं है।

चंडीगढ़ और औरोवील, दोनों ने अपने-अपने ढंग से अपनी वास्तु-योजना में अपने काल की पश्चिमी यूरोपीय नगर निर्माण संबंधी चिंतन की धाराओं को प्रतिबिंबित किया है। यदि चंडीगढ़ में हम विवेकवाद का प्राधान्य पाते हैं, तो औरोवील पर प्रतीकवाद की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है।

दोनों में से कोई भी नगर आधुनिक भारत की बुनियादी समस्याओं का समाधान पेश न कर सका। फिर भी उनके निर्माण के अनुभव से बहुत कुछ सीखा जा सकता है। बहुत संभव है कि अन्य स्थानों और काल में, विशेषत: देहाती इलाक़ों में होनेवाले निर्माण में यह अनुभव लाभदायी सिद्ध हो। नगर और देहात के बीच संबंध-स्थापन का इन दोनों नगरों में किया गया प्रयास श्लाघ्य है।

१९६० के दशक के मध्य से नये नगरों के निर्माण में ह्रास आ गया है। दूसरी ओर, बड़े संकुल-नगर, मुख्यतया कलकत्ता बंबई, दिल्ली और मद्रास पहले से भी ज्यादा तेज़ी से विकास करने लगे हैं।

भारत में कोई एक प्रधान केंद्र नहीं है और इन चार महानगरों की प्रभाव-परिधि में सारा ही देश आ जाता है। ये देश के औद्योगीकरण और नगरीकरण के सबसे प्रबल नाभिक हैं। उनके गिर्द अखिल भारतीय महत्त्व के और आर्थिक विशेषीकरण की दृष्टि से सर्वाधिक उन्नत आर्थिक क्षेत्र विकसित हुए हैं। वे सर्वाधिक विकसित क्षेत्रीय नगर शृंखलाओं में मूर्धन्य स्थान रखते हैं। रेल, सड़क तथा वायु मार्ग इन चारों केंद्रों को आपस में जोड़ते हैं। सर्वाधिक उन्नत आधारिक संरचना से युक्त ये मुख्य मार्ग देश की आर्थिक बृहत् संरचना का आयताकार ढांचा हैं, जिसमें कर्णरेखा का काम बंबई-कलकत्ता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मार्ग करता है। इन मार्गों की रेखाओं से देश की संकेंद्रित आर्थिक संवृद्धि तथा नगरीकरण की मुख्य दिशाएं स्पष्टतः पहचानी जा सकती हैं। यह ढांचानुमा प्रणाली अपने मुख्य आधार-बिंदुओं से राष्ट्रीय और प्रादेशिक महत्त्व के "संवृद्धि के गलियारों" में विशाखित होती है। मुख्य मार्गों के साथ-साथ तेज़ी से बढ़ते नगरों की शृंखला विकसित हुई है। इन धुरियों पर अनेक नयी विकास तथा निर्माण परियोजनाएं आरंभ की गयी हैं, जिनके गिर्द देश की अर्थव्यवस्था के अतिरिक्त अवलंबों का काम करनेवाली नयी बस्तियां बस रही हैं। उदाहरण के लिए, बंबई-कलकत्ता रेलमार्ग पर, जो १९४७ तक केवल पारवहन मार्ग ही था और जिसपर तब तक केवल नागपुर का औद्योगिक केंद्र ही था, अब भिलाई, कोब्रा, राऊरकेला, हीराकुड जैसे अनेक नये औद्योगिक स्थल पैदा हो गये हैं, जो देश की आर्थिक क्षेत्रीय एकता को सुदृढ़ बनानेवाली प्रबल भारी उद्योग पट्टी का निर्माण करते हैं।

चंबल घाटी में ऊर्जा तथा उद्योग समुच्चय के निर्माण से, जिसका नाभिक कोटा है, दिल्ली-मथुरा-कोटा-बड़ौदा-बंबई मार्ग की सबसे कमज़ोर कड़ी मज़बूत हो गयी है। कलकत्ता-मद्रास मार्ग पर सबसे तेज़ी से विशाखपतनम का बंदरगाह-नगर बढ़ रहा है, जहां देश का सबसे बड़ा जहाज़निर्माण कारखाना बनाया गया है और अब सोवियत सहयोग से एक और विशाल इस्पात कारखाना खड़ा किया जा रहा है।

बंबई से नगरों की शृंखलावाले "संवृद्धि के गलियारे" अन्य बड़े नगरों – हैदराबाद (पूना और वारंगल होते हुए), बंगलौर और विजयवाड़ा (कृष्णा-गोदावरी दोआब के कृषि-औद्योगिक क्षेत्र का नाभिक) को जाते हैं।

स्वाधीनता के वर्षों में देश के एकीभूत आर्थिक ढांचे के सुदृढ़ीकरण में दिल्ली की तीव्र संवृद्धि का बहुत बड़ा हाथ रहा है। दिल्ली-केंद्रिक नगरों में बहुसंख्य बड़े उद्यमों का निर्माण हुआ है और परियोजनाओं को साकार बनाया गया है।

देश की औद्योगिक गतिविधियों का संकेंद्रण तीन मुख्य दिशाओं में हो रहा है: कलकत्ता-दामोदर औद्योगिक पट्टी से, जो कि देश में कोयला उत्पादन तथा धातुकर्म उद्योग का सबसे बड़ा आधार है, बंबई की ओर (जो बेलित लोहा तथा इस्पात का मुख्य उपभोक्ता है), दिल्ली की ओर तथा मद्रास की ओर। मालों की सर्वाधिक ढुलाई भी इन्हीं तीन दिशाओं में होती है।

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद से राष्ट्रीय महत्त्व की चतुर्केंद्रीय नगर-प्रणाली का गुरुत्वाकर्षण केंद्र कलकत्ता से हटकर बंबई और दिल्ली स्थानांतरित हो गया है, जो उससे अधिक तेज़ी से विकास कर रहे हैं। इसका एक मुख्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कारण यह है कि घरेलू और बाह्य कारक कलकत्ता के उत्कर्ष में सहायक नहीं रह गये थे। आज यह नगर अर्ध-गतिशून्य दशा में है। उसकी आबादी की वृद्धि दर भी घट गयी है। कलकत्ता में और उसपर निर्भर उत्तर-पूर्वी इलाक़ों में बहुत ही गंभीर स्थिति १९७२ में तब उत्पन्न हुई, जब उन्हें बांगलादेश से १ करोड़ २० लाख शरणार्थियों की बाढ़ को झेलना पड़ा।

कलकत्ता औपनिवेशिक काल में देश का प्रमुख बंदरगाह था। लेकिन अब वह कई बातों में अन्य बंदरगाहों से पिछड़ गया है और पहले के स्तर पर ही बना हुआ है, जबकि देश का कुल माल-आवर्त तिगुना बढ़ गया है। हुगली-भागीरथी थाले की नदियों में जल की कमी, जो गंगा का पानी अधिकाधिक मात्रा में अन्यत्र इस्तेमाल किये जाने के कारण उन्नीसवीं शती के मध्य में ही शुरू हो गयी थी, समुद्र से १४० किलोमीटर दूर हुगली के तट पर स्थित कलकत्ता बंदरगाह की सक्रियता को बहुत घटा देती है। खारापन बढ़ने के कारण हुगली का पानी रहन-सहन तथा उद्योगों की आवश्यकताओं के लिए भी अधिक उपयोगी नहीं रह गया है। १९७० के वर्षों में हाल्दिया में गहरे पानी का बाह्य बंदरगाह बनाये जाने के बाद से स्थिति में कुछ सुधार आया है।

किंतु इन सभी बातों के बावजूद स्वाधीनता के वर्षों में देश के पूर्वोत्तर भाग के, जिसमें पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा और असम आते हैं, मुख्य केंद्र के रूप में कलकत्ता का राष्ट्रीय महत्त्व बढ़ता ही गया है। देश का यह भाग पहले मुख्यतया जूट और चाय का ही उत्पादक था, अब वह धातुकर्म उद्योग और उसके आधार पर बढ़ रहे भारी इंजीनियरिंग उद्योग का मुख्य गढ़ भी बन गया है। बृहत्तर कलकत्ता में शामिल औद्योगिक केंद्रों की संख्या १९७१ तक के २० वर्षों में दोगुना से ज़्यादा बढ़कर ३७ तक पहुंच गयी और वे ४२० वर्गकिलोमीटर के क्षेत्रफल में फैले हुए थे (उनमें से प्रत्येक की आबादी ५० हज़ार से ऊपर थी)। इन नगरों में मुख्य हावड़ा है, जो कलकत्ता का मुख्य प्रतिद्वंद्वी भी है। हुगली के पार स्थित यह नगर दक्षिण और पश्चिम से आनेवाले रेलमार्गों पर अंतिम स्टेशन है। टीटागढ़ और बाटानगर में कारख़ाना मज़दूरों का बहुत ज़्यादा संकेंद्रण है (कुल आबादी में ६५ से ८२ प्रतिशत तक)। ऐसे जबर्दस्त संकुल-नगर के प्रभाव तथा संपर्कों की परिधि में आसपास के इलाक़े ही नहीं, सारा देश और उसके बाहर विश्व मंडी भी आ जाती है।

कलकत्ता का संकुल-नगर और उसका पूर्वोत्तर भारत के समस्त आर्थिक क्षेत्र के आर्थिक आधार से अत्यंत घनिष्ठ संबंध वास्तुशिल्पियों को नगर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निर्माण की समस्याएं किसी एक ही नगर के दायरे में, स्थानीय रूप से हल करने के प्रयास त्यागने को विवश करते हैं। कलकत्ता और उसके विकास को दामोदर घाटी में स्थित कोयला तथा धातुकर्म उद्योगों के केंद्रों से अलग करके नही देखा जा सकता। यहां भारत के भारी उद्योग के पहलौठे जमशेदपुर इस्पात कारखाने के अलावा भिलाई, बोकारो, राऊरकेला तथा दुर्गापुर के इस्पात कारखाने भी स्थित हैं।

१९५० के वर्षों के अंत में चालू की गयी दामोदर तथा हीराकुड जल तथा विद्युत परियोजनाएं पूर्वोत्तर आर्थिक क्षेत्र को एक अविभाज्य आर्थिक समष्टि बनाती हैं। संयुक्त बिजली ग्रिड, रेल, सड़क तथा जल मार्गों के द्वारा कलकत्ता से जुड़े हुए औद्योगिक तथा ऊर्जा प्रतिष्ठान खनिज संसाधनों की दृष्टि से समृद्ध इस अत्यंत महत्त्वपूर्ण आर्थिक क्षेत्र के मुख्याधार हैं।

कलकत्ता के सामने राष्ट्रीय महत्त्व के सबसे बड़े केंद्र के रूप में आगे भी विकास करते जाने के मानो सभी अवसर मौजूद हैं। इन सभी अवसरों से लाभ उठा पाना संभवत: सबसे पहले देश की सामान्य सामाजिक और आर्थिक दिशा पर निर्भर है। काफ़ी हद तक कलकत्ता का भविष्य राज्य के नेताओं तथा वास्तुशिल्पियों के संयुक्त प्रयासों पर भी निर्भर है।

किंतु कलकत्ता इंप्रूवमेंट ट्रस्ट की बहुत-सी योजनाएं वास्तुशिल्पियों और साधनों की कमी के कारण अभी अक्रियान्वित ही पड़ी हुई हैं। कलकत्ता के गिर्द आत्मनिर्भर उपनगरों की शृंखला, जो देहात से कलकत्ता आनेवालों की भीड़ को जज़्ब कर सके, स्थापित करने के अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पर भी अमल नहीं हो पाया। इसी प्रकार झुग्गी-झोंपड़ियों के २० हज़ार निवासियों के पुनर्वास की योजना भी कागज़ पर ही रह गयी। वास्तुशिल्पियों ने झुग्गी-झोंपड़ियों को गिराकर उनकी जगह पर कई-कई फ़्लैटोंवाले बहुमंज़िले मकानों के ब्लॉक बनाने का सुझाव दिया था। उनकी पहली मंज़िल पर दूकानें, कर्मशालाएं, वग़ैरह होनी थी; दूसरी मंज़िल की सतह पर सभी मकानों को आपस में जोड़नेवाला गलियारा बनाया जाना था, जिसकी खुली छत सार्वजनिक तथा धार्मिक कार्यों के लिए इस्तेमाल की जा सकती। इन छतों पर पहुंचने के लिए खंभों पर टिके फ़ुटपाथ बने होने थे।

देहाती आप्रवासियों के दबाव के कारण कलकत्ता दिनोंदिन सघनतर बनता जा रहा है, गंदी बस्तियां फैलती जा रही हैं और रातें फ़ुटपाथ पर काटनेवाले बेघरों की तादाद बढ़ती जा रही है। इसके साथ ही नगर में बहुफ़्लैटीय बहुमंज़िले मकानों-वाले नये सुविधासंपन्न इलाक़े भी पैदा होते जा रहे हैं, जिनमें संख्या में बढ़ते जा रहे मध्यवर्ग के लोग रहते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बड़े इजारेदारों को नगर के मध्य में गगनचुंबी व्यावसायिक इमारतें खड़ी करने से कुछ भी नहीं रोक सका है। १९७३–१९७६ में सरकार ने अपने कर्मचारियों के लिए बड़े पैमाने पर आवासीय निर्माण शुरू किया।

महानगर में निवास की एक मुख्य समस्या परिवहन भी है। कलकत्ता के लिए मोटरकारें अभी ख़तरा नहीं बनी हैं। नगर की ८७ प्रतिशत आबादी न्यून आय वर्ग में आती है। इसके अलावा नगर की दो तिहाई आबादी उन पुरुषों की है, जो अपनी आमदनी का एक हिस्सा देहात अपने घरवालों को भेज देते हैं। इसलिए अधिकांश नगरवासी पैदल चलना ही बेहतर समझते हैं। नगर में सार्वजनिक परिवहन के मुख्य साधन हैं: दोमंज़िली बसें, ट्रामें, टैक्सियां, साइकिल रिक्शा और हैंड रिक्शा।

परिवहन की दृष्टि से सबसे अधिक भार हावड़ा पुल पर पड़ता है, जो नगर के मध्य में स्थित है और कलकत्ता तथा हावड़ा को जोड़ता है। हर रोज़ पांच लाख से ज़्यादा मुसाफ़िर उसपर से गुज़रते हैं।

वास्तुशिल्पी जार्ज ऊमन ने एक बड़ी मौलिक योजना प्रस्तावित की है, जिसके अनुसार एक ही निर्मिति से एक साथ दो प्रयोजन सिद्ध हो सकते हैं: पुल के बोझ को कम करना और नगर के बहुत-से बेघर लोगों को सस्ता आवास मुहैया करना।*

वास्तुशिल्पी का कहना है कि हुगली नदी पर एक ही जैसी संरचनावाले तीन पुलों का निर्माण किया जाये, और उनमें आवासीय कोष्ठ भी हों। पुल के संघटनात्मक घटक कड़ी झिल्लियां होंगी, जो १० हज़ार की आबादीवाली आवासीय संरचना को टिकाये रहेंगी। आवासीय संरचना पुल का भार बढ़ाकर उसे और अधिक टिकाऊ और कलकत्ता के इलाक़े में आम तौर से चलनेवाली तेज़ हवाओं को झेलने में और अधिक समर्थ बना देगी। १२ खंभों पर टिके बहुस्पैनी पुल पर २४० आवासीय कोष्ठोंवाला पिरामिडनुमा ढांचा खड़ा होगा। आवासीय पिरामिड की आबादी समूहों में बंटी होगी। हर समूह के लिए ४ व्यक्तियों पीछे ८० वर्गफ़ुट के हिसाब से जगह की व्यवस्था होगी। इस जगह में १२ आवासीय कोष्ठ, दो शौचालय, एक ३२० वर्गफ़ुट की सामूहिक रसोई और इतना ही बड़ा टैरेस होंगे। हर खंभे में पानी के नल लगे होंगे। मलवाह प्रणाली नगर की मलवाह प्रणाली से जुड़ी होगी।

केवल कलकत्ता की परिस्थितियों में ही ऐसे सर्वांगीण समाधान का विलक्षण विचार जन्म ले सकता है, जिसमें कि पुल तथा आवास, दोनों का कार्य

* Oomen G., *Housing Transportation, Integral Structure*, Existics, vol. 33, 1974, January, no. 194, pp. 70—72.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक ही निर्मिति करती है। दूसरी ओर, यह भी सच है कि पुल के ढांचे में निर्मित और यातायात तथा लोगों के प्रवाह द्वारा लगातार झकझोरा जाता आवास हताशाग्रस्त बेघर लोगों तथा झोंपड़पट्टीवालों के अलावा शायद ही किसी को आकर्षित कर सकता है।

फिर भी यह स्वैरकल्पना नहीं है। इस योजना के प्रस्तावकों ने विद्यमान स्थिति को देखते हुए ही उसे पेश किया है। गंदी बस्तियों के निवासियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, जिनके लिए आवासीय निर्माण करने के वास्ते भूमि और वित्तीय तथा अन्य साधनों की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी। दिनोंदिन फैलती जाती गंदी बस्तियां नगर को बहुमूल्य भूमि से वंचित ही नहीं करतीं, अपितु अपनी गंदगी से नगरवासियों के स्वास्थ्य के लिए खतरा भी बनती हैं। प्रस्तावित योजना आवासीय निर्माण के लिए न तो विशेष व्यय की ज़रूरत पैदा करती है, न विशेष भूखंड दिये जाने की मांग ही करती है। इसके अलावा वह महत्त्वपूर्ण परिवहन समस्या—पुराने, अपना प्रयोजन पूरी तरह निभाने में असमर्थ हावड़ा पुल के बोझ को कम करने की समस्या—का हल भी पेश करती है। इसलिए आशा की जा सकती है कि सरकार भी और उद्योगपति भी इस योजना को साकार बनाने में दिलचस्पी दिखायेंगे। निर्माण पर बहुत अधिक लागत आने के बावजूद न केवल यह लागत आसानी से वसूल हो जायेगी, बल्कि जो पैसा लगायेगा, उसका मुनाफ़ा भी बढ़ जायेगा।

"सेतु आवास" योजना कलकत्ता ही नहीं, नदियों से विभाजित दिल्ली, अहमदाबाद, लखनऊ, कानपुर, हैदराबाद जैसे कई अन्य बड़े तथा बढ़ते हुए नगरों के लिए भी लाभकर सिद्ध हो सकती है। कल्पनाशील वास्तुशिल्पियों के अनुसार मनुष्य के रहने के लिए उपयुक्त जगह पानी टंकियों की मीनारें, नदियों पर निर्मित बांध और बहुत-सी दूसरी औद्योगिक व अभियांत्रिकीय निर्मितियां भी हो सकती हैं, जिनके लिए साधन देने में सरकार और उद्योगपति कोई कंजूसी नहीं करते।

विकास के मामले में बंबई कलकत्ता से आगे निकलता जा रहा है। इसका कारण यह है कि वह देश का सबसे महत्त्वपूर्ण समुद्री बंदरगाह ही नहीं, सबसे बड़ा औद्योगिक और व्यापारिक केंद्र भी है। अंतर्राष्ट्रीय संपर्कों तथा हवाई पारवहन के विस्तार से परिवहन स्थल के रूप में उसका महत्त्व बढ़ गया है। संयुक्त राज्य अमरीका और यूरोप से दक्षिण-पूर्व एशिया जानेवाले ८० प्रतिशत हवाई जहाज बंबई होते हुए गुज़रते हैं। यहां से पंखे जैसे फैले रेल तथा सड़क मार्गों द्वारा दोनों ही दिशाओं में—बंबई को और बंबई से—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मालों की अजस्र धारा बहती रहती है, जबकि औपनिवेशिक काल में यह प्रवाह इकतरफ़ा, यानी भारत की संपदा बंबई बंदरगाह के ज़रिये उपनिवेशस्वामी देश को भेजने की ओर ही लक्षित था।

देश के जीवन में बंबई की भूमिका बढ़ती ही जा रही है। पहले भी इंगलैंड और भारत के बीच मुख्य कड़ी होने की वजह से वह एक बड़े औद्योगिक केंद्र के रूप में उभर आया था और उसके गिर्द राष्ट्रीय महत्त्व का पश्चिमी आर्थिक क्षेत्र विकसित हो गया था, जिसे कुछ निश्चित कच्चे तथा तैयार औद्योगिक मालों के उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त थी। इस आर्थिक क्षेत्र में महाराष्ट्र और गुजरात राज्य आ जाते हैं। देश का दो तिहाई से अधिक सूती कपडा उत्पादन इसी क्षेत्र में होता है।

स्वाधीनता के वर्षों में यहां भारी उद्योगों का भी विकास होने लगा। यहां टेक्सटाइल मशीनरी बनानेवाले बड़े-बड़े कारखाने स्थापित हुए। गुजरात में खनिज तेल के निक्षेप पाये जाने से अंकलेश्वर, कोयली, बड़ौदा, खंभात और अहमदाबाद में तेलनिकासी और तेलशोधन उद्यम काम करने लगे हैं। बंबई के तटवर्ती समुद्र में भी बड़े पैमाने पर तेलनिकासी की जा रही है।

औद्योगिक उद्यमों की अवस्थिति के अनुरूप तटवर्ती इलाक़े के साथ-साथ विद्युत-ऊर्जा प्रणाली का विस्तार हुआ है। उसका केंद्र बंबई है। देश में उपभुक्त एक तिहाई बिजली पश्चिमी आर्थिक क्षेत्र के बिजलीघरों द्वारा ही पैदा की जाती है। सबसे अधिक बिजली बंबई-पूना क्षेत्र के बिजलीघर देते हैं, जो खोपली, भीड़ा और भीवपुरी में स्थित हैं। खोपली बिजलीघर भारत का पहला जल-ऊर्जा प्रतिष्ठान था और उसका निर्माण १६१५ में उद्योगपति टाटा ने करवाया था। १६६० के वर्षों में कोयना नदी पर विश्व का एक सबसे बड़ा भूमिगत पनबिजलीघर बनाया गया, जिसकी सुरंग २.३ किलोमीटर लंबी है और टर्बाइनें, आदि २४० मीटर की गहराई पर स्थित हैं। ऐसे उन्नत ऊर्जा उद्योग के आधार पर पश्चिमी आर्थिक क्षेत्र के नगरों, जिनमें मुख्य बंबई हैं, और उद्योगों के विकास के लिए अच्छा आधार बन सका है।

बंबई आसपास के देहातों की ज़मीनें छीनकर बढ़ा था। उसकी संवृद्धि ने परिधीय प्रदेशों के विकास को अवरुद्ध कर दिया। उसकी वजह से देश के अनेक फूलते-फलते कपड़ा उत्पादन केंद्र और बंदरगाह उजड़ गये। उनमें से कई अब फिर से उभरने लगे हैं। सूरत, बड़ौदा, भड़ोच और अहमदाबाद देश का एक शक्तिशाली औद्योगिक नाभिक बन गये हैं। इसी इलाक़े में अखिल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारतीय महत्त्व का कांडला बंदरगाह बनाया गया है। बंबई से दक्षिण-पूर्व में एक और औद्योगिक पट्टी तेज़ी से विकास कर रही है, जिसमें पूना (आबादी – १० लाख से अधिक), किर्की और लोनौली स्थित हैं। एक तीसरी औद्योगिक पट्टी भी द्रुत गति से विकसित हो रही है, जिसके तीन मुख्य केंद्र हैं: शोलापुर, कोल्हापुर और सांगली।

पश्चिमी आर्थिक क्षेत्र में सुस्थापित और विकासशील औद्योगिक नगरों की काफ़ी बड़ी संख्या होने के बावजूद बंबई उनका अगुआ बना हुआ है और अपनी उत्पादन क्षमता का विस्तार करता जा रहा है। आज वह देश में लेथ-निर्माण उद्योग का सबसे बड़ा केंद्र है।

सामान्यतः, अपनी सीमाओं से बाहर फैलते नगर को ही बढ़ता हुआ आधुनिक नगर कहा जाता है। किंतु यह बात बंबई पर लागू नहीं होती। संवृद्धिशील नगर की सभी जटिलताएं बंबई में इसलिए कई गुना बढ़ जाती हैं कि उसके क्षेत्रीय प्रसार की संभावनाएं सीमित हैं। वह खाड़ी के पार दूसरे तट के अलावा और कहीं नहीं फैल सकता। उसका सारा व्यावसायिक और वाणिज्यिक कार्यकलाप संकरे प्रायद्वीपीय अंतरीप में ही संकेंद्रित है, जिसके भवनों की आकाशरेखा निरंतर ऊंची ही उठती जा रही है। नगर के अभिन्यास के दो मुख्य बिंदु बंदरगाह तथा रेलवे स्टेशन यहीं स्थित हैं। अंतरीप की रेखा के समानांतर जानेवाली नगर की परिवहन धमनियां उनसे ठीक उस जगह पर जुड़ी हुई हैं, जहां कि नगर को फैलाने की आवश्यकता है। भारत के और किसी नगर में गगनचुंबी इमारतों का ऐसा संकेंद्रण नहीं है, जैसा कि "भारतीय न्यूयार्क" के इस भाग में है। इमारतों की ऊंची मीनारें सर्वाधिक संपन्न बंबईवासियों के फ़ैशनेबुल आवासीय इलाक़े मलाबार हिल्स पर कुकुरमुत्तों की भांति उग रही हैं।

लगभग सभी ओर से समुद्र से घिरा हुआ बंबई कभी सारे तटवर्ती क्षेत्र का एक सबसे आकर्षक नगर था। किंतु समय के साथ उसमें इमारतें तट से दूर-दूर हटकर और मुख्यभूमि के उत्तरी इलाक़ों में भी बनने लगीं। बंबई के सारे क्षेत्र में दक्षिण-उत्तर धुरी पर रेल तथा सड़क मार्गों का घना और जटिल जाल बिछा हुआ है। उनके किनारे-किनारे नगर को कुरूप बनानेवाली औद्योगिक इमारतें और झोंपड़पट्टियां स्थित हैं।

बिजली की रेलगाड़ियां बंबई के व्यावसायिक भाग को मुख्यभूमि पर विभिन्न कालों में अनियोजित ढंग से पैदा हुए उपनगरों से जोड़ती हैं। लंदन और दूसरे बड़े यूरोपीय नगरों की भांति यहां भी ये उपनगर "रैनबसेरा-नगरों" की भूमिका निभाते हैं। महानगर के सक्रिय तथा बहुविध कार्यकलाप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के अधिकाधिक घनिष्ठ संपर्क में आने और काम की जगह के निकट रहने के लिए लालायित लोगों को ये "रैनबसेरा नगर" आकृष्ट नहीं करते। उनके निवासियों की संख्या वर्ष-प्रतिवर्ष घटती जा रही है और स्वयं वे नयी गंदी बस्तियों में बदलते जा रहे हैं। दूसरी ओर, खुद बंबई में बेघर लोगों की तादाद बढ़ रही है, जो रोज़ की क्लांतिकर यात्रा पर समय बर्बाद करने के बजाय नगर के केंद्र में सड़कों और फ़ुटपाथों पर सोना बेहतर समझते हैं।

बंबई अब तक एक ही दिशा में, मुख्यभूमि की दिशा में बढ़ता रहा है। मुख्य रेललाइन, जो उसे दो भागों में बांटती है और दूसरे नगरों से जोड़ती है, उसके पुनर्निर्माण में बाधा है। रेललाइन के आरपार लोगों का निर्बाध, निरापद प्रवाह बना रह सके, इसके लिए हर किलोमीटर पर सुरंगें और पुल बनाया जाना ज़रूरी है।

जल-आपूर्ति और अन्तर्नगरीय परिवहन की समस्या बंबई में कलकत्ता जितनी उग्र नहीं है। फिर भी नगर के केंद्र में भी कूओं और नलों के पास लोगों की क़तारें प्राय: देखी जा सकती हैं। बंबई शायद भारत का एकमात्र नगर है, जहां सार्वजनिक परिवहन की उत्तम व्यवस्था है और रिक्शे तथा तांगे क़तई नहीं हैं। सर्वाधिक भीड़ के घंटों में बसें मुसाफ़िरों से खचाखच भरी रहती हैं। यदि केंद्रीय सरकार द्वारा कलकत्ता और बंबई में भूमिगत संचार – मेट्रो रेल – की योजना क्रियान्वित हो जाये, तो यह इन दोनों तेज़ी से बढ़ते महानगरों की परिवहन समस्या का सर्वाधिक कारगर समाधान होगा। हवाई संचार के क्षेत्र में भी बंबई का सांताक्रुज़ हवाई अड्डा चूंकि अपर्याप्त सिद्ध हो रहा था, अत: एक नये, बड़े हवाई अड्डे का निर्माण किया गया है।

बंबई की जनसंख्या भयंकर तेज़ी से बढ़ रही है। १९४७–१९५१ में पाकिस्तान से आये ५ लाख से ज़्यादा विस्थापितों ने उसमें शरण पायी थी। बंबई और उसके औद्योगिक उपनगरों में अधिकांश नये लोग देहाती इलाक़ों से आये होते हैं। लेकिन अहमदाबाद और पूना के विपरीत, जहां अधिकांश आप्रवासी मौसमी कामगार होते हैं, बंबई में वे ज़िंदगी भर के लिए ही बस जाते हैं।

स्वाधीनता के वर्षों में बंबई की आबादी तीनगुना बढ़कर लगभग ६० लाख तक पहुंच गयी है। भारतीय विशेषज्ञों का अनुमान है कि सन् २००० में वह डेढ़ करोड़ तक पहुंच जायेगी और यदि अमरीकी विशेषज्ञों का हिसाब सही माना जाये, तो साढ़े ३ करोड़ तक। हम कल्पना भी नहीं कर सकते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारतीय महत्त्व का कांडला बंदरगाह बनाया गया है। बंबई से दक्षिण-पूर्व में एक और औद्योगिक पट्टी तेज़ी से विकास कर रही है, जिसमें पूना (आबादी – १० लाख से अधिक), किर्की और लोनौली स्थित हैं। एक तीसरी औद्योगिक पट्टी भी द्रुत गति से विकसित हो रही है, जिसके तीन मुख्य केंद्र हैं: शोलापुर, कोल्हापुर और सांगली।

पश्चिमी आर्थिक क्षेत्र में सुस्थापित और विकासशील औद्योगिक नगरों की काफ़ी बड़ी संख्या होने के बावजूद बंबई उनका अगुआ बना हुआ है और अपनी उत्पादन क्षमता का विस्तार करता जा रहा है। आज वह देश में लेथ-निर्माण उद्योग का सबसे बड़ा केंद्र है।

सामान्यतः, अपनी सीमाओं से बाहर फैलते नगर को ही बढ़ता हुआ आधुनिक नगर कहा जाता है। किंतु यह बात बंबई पर लागू नहीं होती। संवृद्धिशील नगर की सभी जटिलताएं बंबई में इसलिए कई गुना बढ़ जाती हैं कि उसके क्षेत्रीय प्रसार की संभावनाएं सीमित हैं। वह खाड़ी के पार दूसरे तट के अलावा और कहीं नहीं फैल सकता। उसका सारा व्यावसायिक और वाणिज्यिक कार्यकलाप संकरे प्रायद्वीपीय अंतरीप में ही संकेंद्रित है, जिसके भवनों की आकाशरेखा निरंतर ऊंची ही उठती जा रही है। नगर के अभिन्यास के दो मुख्य बिंदु बंदरगाह तथा रेलवे स्टेशन यहीं स्थित हैं। अंतरीप की रेखा के समानांतर जानेवाली नगर की परिवहन धमनियां उनसे ठीक उस जगह पर जुड़ी हुई हैं, जहां कि नगर को फैलाने की आवश्यकता है। भारत के और किसी नगर में गगनचुंबी इमारतों का ऐसा संकेंद्रण नहीं है, जैसा कि "भारतीय न्यूयार्क" के इस भाग में है। इमारतों की ऊंची मीनारें सर्वाधिक संपन्न बंबईवासियों के फ़ैशनेबुल आवासीय इलाक़े मलाबार हिल्स पर कुकुरमुत्तों की भांति उग रही हैं।

लगभग सभी ओर से समुद्र से घिरा हुआ बंबई कभी सारे तटवर्ती क्षेत्र का एक सबसे आकर्षक नगर था। किंतु समय के साथ उसमें इमारतें तट से दूर-दूर हटकर और मुख्यभूमि के उत्तरी इलाक़ों में भी बनने लगीं। बंबई के सारे क्षेत्र में दक्षिण-उत्तर धुरी पर रेल तथा सड़क मार्गों का घना और जटिल जाल बिछा हुआ है। उनके किनारे-किनारे नगर को कुरूप बनानेवाली औद्योगिक इमारतें और झोंपड़पट्टियां स्थित हैं।

बिजली की रेलगाड़ियां बंबई के व्यावसायिक भाग को मुख्यभूमि पर विभिन्न कालों में अनियोजित ढंग से पैदा हुए उपनगरों से जोड़ती हैं। लंदन और दूसरे बड़े यूरोपीय नगरों की भांति यहां भी ये उपनगर "रैनबसेरा-नगरों" की भूमिका निभाते हैं। महानगर के सक्रिय तथा बहुविध कार्यकलाप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के अधिकाधिक घनिष्ठ संपर्क में आने और काम की जगह के निकट रहने के लिए लालायित लोगों को ये "रैनबसेरा नगर" आकृष्ट नहीं करते। उनके निवासियों की संख्या वर्ष-प्रतिवर्ष घटती जा रही है और स्वयं वे नयी गंदी बस्तियों में बदलते जा रहे हैं। दूसरी ओर, खुद बंबई में बेघर लोगों की तादाद बढ़ रही है, जो रोज़ की क्लांतिकर यात्रा पर समय बर्बाद करने के बजाय नगर के केंद्र में सड़कों और फ़ुटपाथों पर सोना बेहतर समझते हैं।

बंबई अब तक एक ही दिशा में, मुख्यभूमि की दिशा में बढ़ता रहा है। मुख्य रेललाइन, जो उसे दो भागों में बांटती है और दूसरे नगरों से जोड़ती है, उसके पुनर्निर्माण में बाधा है। रेललाइन के आरपार लोगों का निर्बाध, निरापद प्रवाह बना रह सके, इसके लिए हर किलोमीटर पर सुरंगें और पुल बनाया जाना ज़रूरी है।

जल-आपूर्ति और अन्तर्नगरीय परिवहन की समस्या बंबई में कलकत्ता जितनी उग्र नहीं है। फिर भी नगर के केंद्र में भी कूओं और नलों के पास लोगों की क़तारें प्रायः देखी जा सकती हैं। बंबई शायद भारत का एकमात्र नगर है, जहां सार्वजनिक परिवहन की उत्तम व्यवस्था है और रिक्शे तथा तांगे क़तई नहीं हैं। सर्वाधिक भीड़ के घंटों में बसें मुसाफ़िरों से खचाखच भरी रहती हैं। यदि केंद्रीय सरकार द्वारा कलकत्ता और बंबई में भूमिगत संचार – मेट्रो रेल – की योजना क्रियान्वित हो जाये, तो यह इन दोनों तेज़ी से बढ़ते महानगरों की परिवहन समस्या का सर्वाधिक कारगर समाधान होगा। हवाई संचार के क्षेत्र में भी बंबई का सांताक्रुज़ हवाई अड्डा चूंकि अपर्याप्त सिद्ध हो रहा था, अतः एक नये, बड़े हवाई अड्डे का निर्माण किया गया है।

बंबई की जनसंख्या भयंकर तेज़ी से बढ़ रही है। १९४७–१९५१ में पाकिस्तान से आये ५ लाख से ज़्यादा विस्थापितों ने उसमें शरण पायी थी। बंबई और उसके औद्योगिक उपनगरों में अधिकांश नये लोग देहाती इलाक़ों से आये होते हैं। लेकिन अहमदाबाद और पूना के विपरीत, जहां अधिकांश आप्रवासी मौसमी कामगार होते हैं, बंबई में वे ज़िंदगी भर के लिए ही बस जाते हैं।

स्वाधीनता के वर्षों में बंबई की आबादी तीनगुना बढ़कर लगभग ६० लाख तक पहुंच गयी है। भारतीय विशेषज्ञों का अनुमान है कि सन् २००० में वह डेढ़ करोड़ तक पहुंच जायेगी और यदि अमरीकी विशेषज्ञों का हिसाब सही माना जाये, तो साढ़े ३ करोड़ तक। हम कल्पना भी नहीं कर सकते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि बंबई की संवृद्धि नगरनिर्माताओं और भारत सरकार के सामने कितनी जटिल और बहुसंख्य समस्याएं पैदा कर रही है। मुख्य समस्या बढ़ते हुए औद्योगिक उद्यमों और बड़े पैमाने पर आवासीय निर्माण के लिए स्थान चुनने की है। वर्तमान काल में बंबई में कम से कम २० लाख से अधिक लोगों के लिए आवास की व्यवस्था करने की तात्कालिक ज़रूरत है। संयुक्त राज्य अमरीका में अरसे से साढ़े ३ करोड़ की आबादीवाले भावी बंबई के लिए ऊर्ध्वमुखी नगर की योजनाएं बनायी जा रही हैं।

किंतु नगर निर्माण संबंधी समस्याओं का अलग से लिये हुए नगर के दायरे में ही और जिस आर्थिक क्षेत्र का वह केंद्र है, उससे उसके संबंधों को अनदेखा करके समाधान ढूंढने की कोशिशें क्या सफल हो सकती हैं?

मौजूदा परिस्थितियों को देखते हुए प्रसिद्ध भारतीय वास्तुशिल्पी चार्ल्स कोरेआ का यह सुझाव* अधिक समीचीन प्रतीत होता है कि पुराने बंबई जैसे ही बड़े एक नये औद्योगिक और वाणिज्यिक केंद्र का निर्माण किया जाये, जिससे मुख्यभूमि के भीतरी भागों और उनकी अर्थव्यवस्था का भी विकास हो सकेगा। इस योजना में नये बंबई को वर्तमान गोदियों की रेखा के समानांतर, उनसे १० किलोमीटर दूर समुद्र में दूसरे कम आबाद तथा कम विकसित द्वीपों पर बसाने की जो बात कही गयी है, वह दिलचस्प है। इन द्वीपों में से एक, सुप्रसिद्ध एलीफेंटा द्वीप पर कभी घारापुरी नाम का नगर हुआ करता था, जिसे सत्रहवीं शती में पुर्तगालियों ने नष्ट कर डाला। नयी परिस्थितियों में एलीफेंटा द्वीप पर्यटकों ही नहीं, व्यावसायिक लोगों का भी आकर्षण-स्थल बन सकता है। एलीफेंटा के एक निकटवर्ती द्वीप ट्रांबे में १९६० में भारत का प्रथम परमाणु रिएक्टर स्थापित किया गया था, जिसके आसपास शीघ्र ही कई नयी बस्तियां बस गयीं।

यदि यह योजना साकार बनती है, तो बंबई फिर सागर नगर जैसा स्वरूप तथा सौंदर्य प्राप्त कर लेगा। एलीफेंटा द्वीप के सामने निर्मित नयी गोदियां पुरानी, जर्जर गोदियों के मुक़ाबले कई गुना अधिक माल हैंडल कर सकेंगी। ठाणा की संकरी खाड़ी में मालों से लदे बजरे चल सकेंगे। पुराना बंबई दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ता रहा है। एलीफेंटा द्वीप पर नया प्रशासनिक तथा व्यावसायिक केंद्र बन जाने में परिवहन मार्गों और औद्योगिक तथा आवासीय इलाक़ों का विकास पूर्व-पश्चिम धुरी पर होगा। बेशक इस सिलसिले में ठाणा

* Correa C., *New Bombay: Self-help City*, Architectural Design, 1974, vol. 44, no. 1, pp. 48—51.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की खाड़ी पर एक विशाल सेतु बांधना होगा। नये बंबई के सारे अभिन्यास में मुख्य मार्ग और संरचनात्मक कीलक का काम कुरला-करजात महामार्ग करेगा।

इस महामार्ग के साथ-साथ दक्षिण की दिशा में नये बंबई का विकास उसे तेज़ी से बढ़ते हुए बड़े औद्योगिक नगर तथा भूतपूर्व मराठा राजधानी पूना से जोड़ेगा। इस प्रकार भावी औद्योगिक इलाक़े पुराने औद्योगिक वलय से मिल जायेंगे। पुराने बंबई के समीप ही बढ़ता हुआ और उसके जैसा ही महत्त्वपूर्ण नया विशाल नगरीकृत केंद्र रोज़गार और आवासीय स्थानों के समीप होने तथा नगरीय सुविधाओं की सहज उपलभ्यता के कारण लोगों के लिए नया आकर्षण-ध्रुव बनेगा। ऐसे आत्मनिर्भर नगर के "रैनबसेरा-नगर" में परिणत होने की संभावनाएं लगभग शून्य हैं। अपने भावी विकास में नया बंबई पुराने बंबई से आगे भी निकल सकता है और उसके अपने उपनगर भी पैदा हो सकते हैं।

योजना में औद्योगिक तथा आवासीय इलाक़ों के लिए २७०० एकड़ और व्यावसायिक केंद्र के लिए १२५ एकड़ का क्षेत्रफल निर्धारित किया गया है। सारी योजना नगर-समुदाय के सिद्धांत पर आधारित है। हर मुहल्ले में २ से १५ हज़ार तक और यदि सांपत्तिक तथा सामाजिक विभेदीकरणों को ध्यान में रखकर औसत लगाया जाये, तो कोई ७ हज़ार निवासी होंगे। प्रस्तावित आबादी सघनता ९३ व्यक्ति प्रति एकड़ है। मुहल्ले में औद्योगिक उद्यम, स्कूल, दूकानें, सेवा संस्थान पैदल पहुंचने की दूरी के भीतर होंगे। आवासीय भवन तिमंज़िले तथा सीढ़ीदार छतोंवाले होंगे। नहरों-नालियों का जाल बिछाकर सभी खुली जगहों को हरा-भरा रखा जायेगा।

नये बंबई के निर्माण की यह योजना, जिसपर चार्ल्स कोरेआ १० वर्ष से भी ज़्यादा से काम कर रहे हैं, अभी क्रियान्वित नहीं हुई है। वास्तव में उसके लिए, विशेषत: नगर की आधारिक संरचना के विकास तथा बड़े पैमाने पर आवासीय निर्माण के लिए बहुत अधिक साधनों की आवश्यकता होगी। सरकार के पास संभवत: इतने साधन हैं नहीं और पूंजीपतियों को नये बंबई की योजना मुनाफ़ों की आशा नहीं बंधाती।

बंबई के भाग्यविधाता बड़े थैलीशाहों के लिए अधिक लाभकर दूसरा प्रस्ताव लगता है। वह यह है कि छिछले समुद्रतालों को सुखाकर उस जगह पर न्यूयार्क के मैनहैटन जैसे गगनचुंबी इमारतों के झुंड खड़े किये जायें और उनमें बैंकों, कंपनियों, आदि के दफ़्तर खुलें। धन्नासेठों की मनपसंद इस योजना में उन समस्याओं को बिल्कुल अनदेखा किया गया है, जो बढ़ती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुई गंदी बस्तियों के निवासियों के भाग्य से संबंध रखती हैं।*

स्पष्ट है कि चार्ल्स कोरेआ की योजना भी-यदि वह साकार बन जाती है और इसमें १० वर्ष से कम नहीं लगेंगे – उन सभी समस्याओं को हल नहीं करेगी, जो बढ़ते नगरीकरण की प्रक्रिया में इस अवधि के दौरान पैदा हो सकती हैं। फिर भी इतना तो है ही कि कोरेआ ने देश के इस सबसे महत्त्वपूर्ण बंदरगाह और आर्थिक तथा सांस्कृतिक केंद्र की संवृद्धि के लिए अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य चुना है। राष्ट्रीय महत्त्व के आर्थिक क्षेत्रों के अन्य बड़े केंद्रों की भांति बंबई के लिए भी विकास की ऐसी महायोजना बनायी जानी चाहिए, जिसकी परिधि में सारे आर्थिक क्षेत्र की उत्पादक शक्तियों के वितरण के साथ समन्वित जनसंख्या वितरण की प्रणाली भी आ जाये।**

कलकत्ता और बंबई के बाद भारत का सबसे बड़ा नगर दिल्ली है, जो देश की राजधानी और संघशासित क्षेत्र दिल्ली का प्रशासनिक केंद्र भी है।

दिल्ली की जनसंख्या उत्तरोत्तर तीव्र गति से बढ़ती जा रही है। १९११ से १९५१ के बीच वह चौगुनी हुई। १९१२ में जब अंग्रेज़ों ने उसे ब्रिटिश साम्राज्य की राजधानी बनाया था, उसमें केवल ४ लाख लोग रहते थे। अब हर दो वर्ष में इतने ही लोग बाहर से दिल्ली में आकर बस जाते हैं। गत ३० वर्षों में दिल्ली की आबादी तिगुनी से ज्यादा बढ़ी और अब ५० लाख से अधिक है। १९५० से दिल्ली का क्षेत्रफल दोगुना बढ़ा है और सभी दिशाओं में २४–३० किलोमीटर तक फैला है। यदि विस्तार की गति यों ही बढ़ी रही, तो वह दिन दूर नहीं, जब दिल्ली का दायरा ८०–१६० किलोमीटर हो जायेगा। अनुमान लगाया गया है कि सन् २००० तक उसकी आबादी १ करोड़ ८० लाख से ३ करोड़ ३० लाख के बीच होगी।

दिल्ली का विस्तार उसके आसपास के देहातों की क़ीमत पर हो रहा है। इस संबंध में उसके जनांकिकीय आंकड़े काफ़ी निदर्शात्मक हैं। १९६१ से पहले के दस वर्षों में दिल्ली के आसपास के इलाक़ों में प्रति किलोमीटर आबादी सघनता में ५३० व्यक्तियों की कमी हुई और वह १५२७ से गिरकर ९९७ व्यक्ति ही रह गयी, जबकि इसी अवधि में स्वयं दिल्ली में आबादी

* Ranade A. D., *The Burden of Bombay's Backbay Reclamation Scheme*, Design, Incorporating Indian Builder, 1976, vol. 20, no. 12, pp. 23—27.

** Meier R. L., *A Stable Urban Ecosystem*, Design, Incorporating Indian Builder, 1978, vol. 22, no. 12, pp. 29—34.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सघनता दोगुना से ज़्यादा बढ़ी। दिल्ली "बिंदु-नगर" से "संकुल-नगर" में बहुत पहले ही बदल चुका है। १९७५ में उसके क्षेत्र में १२ नगर और १२९० ग्राम थे। दिल्ली के साथ ही उसके उत्तर में मेरठ में एक और संकुल-नगर विकसित हो रहा है।

स्वाधीनता से पहले दिल्ली में न कोई विशेष उद्योग थे और न उसका आर्थिक प्रभाव-क्षेत्र ही कलकत्ता या बंबई जैसा व्यापक था। किंतु स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद दिल्ली में भी उद्योगों का तीव्रता से विकास हुआ है। वर्तमान काल में वह उत्तर-पश्चिमी भारत के नये आर्थिक क्षेत्र का मुख्य संयोजनकारी केंद्र बन गया है। इस आर्थिक क्षेत्र के अंतर्गत पश्चिमी उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान के राज्य और दिल्ली तथा चंडीगढ़ के संघशासित क्षेत्र आते हैं। १९५५ में इस क्षेत्र में सतलज नदी पर विशाल भाखड़ा-नांगल जल-विद्युत प्रतिष्ठान का निर्माण हुआ, जहां की बिजली पंजाब तथा हरियाणा के अलावा दिल्ली को और राजस्थान के भी बहुत-से नगरों (राजधानी जयपुर समेत) को मुहैया की जाती है।

विभाजन के बाद जब उत्तर भारत का सबसे महत्त्वपूर्ण आर्थिक और सांस्कृतिक केंद्र और पुराने ज़माने से दिल्ली का प्रतिद्वंद्वी नगर लाहौर पाकिस्तान में चला गया, तो इस क्षति की पूर्ति का ज़िम्मा दिल्ली को उठाना पड़ा। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद राजधानी के रूप में उसकी भूमिका तो बढ़ी ही, साथ ही उसके प्रकार्य भी बढ़ गये। दिल्ली आज विदेशी दूतावासों, व्यापारिक, व्यावसायिक तथा सांस्कृतिक मुलाक़ातों और अंतर्राष्ट्रीय कांफ्रेंसों की स्थली है। इस बहुप्रयोजन राजधानी केंद्र ने अपने ज़माने में इतिहास के असंख्य उतार-चढ़ाव देखे हैं, जिनका प्रभाव स्वयं उसपर ही नहीं, सारे देश पर पड़ा है। भारत के और किसी नगर में निरंतर परिवर्तनशील अतीत के सूत्र वर्तमान के स्पंदनशील, सतत वर्धमान ताने-बाने के साथ इतने घनिष्ठ रूप से गुंथे हुए नहीं मिलेंगे। यहां नये इलाक़ों और आधुनिक इमारतों के बीच पुराने वास्तु-स्मारक प्रेतछायाओं जैसे यों खड़े हैं कि जैसे नगर के अतीत के गौरव और अतीत की अवमाननाओं की याद दिला रहे हों। दिल्ली की ऐतिहासिकतः विकसित नागरिक संरचना भी भारत के अन्य नगरों की तुलना में अद्वितीय है। वह औपनिवेशिक शासन और सामंती-जातीय व्यवस्था के अभी भी बने हुए दुष्परिणामों का स्पष्ट और बड़े विश्वासोत्पादक ढंग से प्रदर्शन करती है। इसके साथ ही दिल्ली की संरचना में नगर की अनियंत्रित संवृद्धि तथा इस संवृद्धि में जो अंतर्विरोध निहित हैं, वे भी प्रतिबिंबित होते हैं।

प्रशासन की दृष्टि से दिल्ली का संघशासित क्षेत्र तीन समानाधिकारपूर्ण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इकाइयों में बंटा हुआ है: नयी दिल्ली (नयी दिल्ली म्यूनिसिपल कमेटी के अंतर्गत क्षेत्र, जिसकी आबादी कोई ३ लाख है), पुरानी दिल्ली (दिल्ली म्यूनिसिपल कार्पोरेशन के अंतर्गत क्षेत्र, जिसकी आबादी कोई ५० लाख है) और दिल्ली छावनी (दिल्ली केंटोनमेंट बोर्ड के अंतर्गत क्षेत्र, जिसकी आबादी कई दशक हज़ार है)। समस्त संघशासित क्षेत्र में सर्वोच्च सत्ता भारत की संसद है। दिल्ली कार्पोरेशन का अध्यक्ष जनता द्वारा निर्वाचित और नयी दिल्ली म्यूनिसिपल कमेटी का अध्यक्ष केंद्रीय सरकार द्वारा मनोनीत होता है।

वास्तव में भारत की राजधानी दो सर्वथा भिन्न रूपों के नगरों से बनी है। उनके प्रकार्यों तथा विशेषाधिकारों में भी अंतर है। नयी दिल्ली देश के प्रशासन, सांस्कृतिक तथा शैक्षिक केंद्र की भूमिका अदा करती है और उसमें राजधानी के विशेषाधिकारभोगी तबक़े रहते हैं। पुरानी दिल्ली, मुख्य रूप से शाहजहानाबाद में सामाजिक उत्पादन और भौतिक संपदाओं का सृजन संकेंद्रित है। इसलिए वह बहुत ही घनी बसी हुई है। नयी दिल्ली सभी दिशाओं में क्षेत्रीय विस्तार के ज़रिये बढ़ रही है (पूर्व में यमुना नदी उसकी सीमा है), जबकि पुराना नगर अपनी अपरिवर्तित सीमाओं के भीतर रहते हुए आबादी तथा उद्योगों के सघनीकरण के ज़रिये विकास कर रहा है।

१९४७ में देश के विभाजन के बाद दिल्ली में, ख़ास तौर से शाहजहानाबाद और उसके आसपास के इलाक़ों में कोई १५ लाख विस्थापितों की बाढ़ आ गयी। अब भी देहातों और आसपास के छोटे नगरों से निरंतर बढ़ती संख्या में आनेवाले आप्रवासी नयी दिल्ली में नहीं, अपितु पुरानी दिल्ली में ही डेरा जमाते हैं, जहां वैसे भी जनसंख्या का अतिबाहुल्य है। इसका कारण यह है कि यहां के अनगिनत छोटे-बड़े कल-कारख़ानों, वर्कशापों और दूसरे उद्यमों में रोज़गार पाने की संभावना अधिक है। फलस्वरूप यहां आये रोज गंदी बस्तियां पैदा होती हैं, तोड़ी जाती हैं, फिर से बसती हैं।

पहले रेललाइन तथा खाली मैदान द्वारा विभाजित नयी दिल्ली और शाहजहानाबाद अब एक दूसरे से बिल्कुल सट गये हैं। १९६० के दशक के अंत में निर्मित बिजलीकृत वलय रेलमार्ग ने भी उनके सम्मिलन में योग दिया है। इसके बावजूद दोनों ही अपना-अपना रूप सुरक्षित रखे हुए हैं।

नयी दिल्ली में हल्की पूर्वी झलक लिये हुए पश्चिमी यूरोप के आधुनिक लक्षण स्पष्टतः देखे जा सकते हैं। नगर का सुनियत ज्यामितीय अभिन्यास उसके निवासियों के व्यवस्थित जीवन को प्रतिबिंबित करता है। उसकी चौड़ी-चौड़ी, प्रचुर हरियाली युक्त सड़कें केवल परिवहन धमनियों का काम करती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। यहां बड़े-बड़े खुले मैदान और पार्क हैं। नयी दिल्ली के केंद्र के आवासीय इलाक़े सार्वजनिक प्रयोजन की इमारतों से अलग रखे गये हैं। उनके गिर्द न फ़ैक्टरियां हैं, न कारखाने ही। नयी दिल्ली के आवासीय इलाक़ों में सामाजिक तथा जातिगत पृथक्करण भी नहीं दिखायी देता और बहुत हुआ, तो लोगों की भौतिक खुशहाली के स्तर में ही अंतर किया जा सकता है।

नयी दिल्ली में आजकल जो नयी कालोनियां बस रही हैं, वे काफ़ी बिखरी-बिखरी हैं और उनमें आबादी सघनता कम है। मकान निजी तथा कममंज़िले हैं। फलस्वरूप इन इलाक़ों का निर्माण अत्यंत व्ययसाध्य बन जाता है, क्योंकि सड़कों, सीवेज प्रणाली, जल प्रणाली, बिजली लाइनों, टेलीफ़ोन लाइनों, आदि को लंबा बनाना पड़ता है। शाहजहानाबाद में दूसरी ही तस्वीर दिखायी देती है, जहां मध्ययुग और इस्लाम की काफ़ी छाप है। यहां की आकाशरेखा का निर्माण मस्जिदों की गुंबदें, मीनारें और कारख़ानों की चिमनियां करती हैं।

शाहजहानाबाद में भूमि का जैसा अत्यंत कारगर और सघन उपयोग किया गया है, वैसा उपयोग प्राक्-औद्योगिक काल में विकसित अन्य भारतीय नगरों में भी मिलता है। पुराने भारतीय नगरों की इस असाधारण विशेषता ने आधुनिक नगरनिर्माताओं का ध्यान आकृष्ट किया है।

भारतीय सांख्यिकी संस्थान द्वारा प्रकाशित आंकड़े बताते हैं कि पुराने भारतीय नगरों में सड़कें, गलियां और चौक नगर के कुल क्षेत्रफल का १५ प्रतिशत घेरते हैं, मकानों के भीतरी अहाते २५ प्रतिशत, धार्मिक तथा सार्वजनिक इमारतें ६ प्रतिशत और आवासीय भवनों समेत अन्य इमारतें ५४ प्रतिशत। इसके विपरीत आधुनिक नगरों में अनुपात बिल्कुल दूसरे ही हैं। यहां २५ प्रतिशत भूमि सड़कों तथा चौकों, २३ प्रतिशत भूमि पार्कों, २४ प्रतिशत भूमि आवासीय इमारतों और १२ प्रतिशत भूमि सार्वजनिक इमारतों द्वारा घिरी होती है। १६ प्रतिशत भूमि खाली मैदानों और संयोगवशात् अनिर्मित भूखंडों के अंतर्गत आती है। नयी दिल्ली और शाहजहानाबाद की तुलना सुसंहत निर्माणवाले पुराने नगरों के भू-उपयोग की श्रेष्ठता को स्पष्टतः प्रकट करती है। *

नयी दिल्ली आधुनिक अर्थों में उद्यान-नगर है। उसकी बड़ी-बड़ी, हरियाली। से भरपूर खुली जगहें सारे ही नगर की हैं और इसलिए वे वैयक्तिकताहीन हैं। नगरवासी उनका बहुत कम इस्तेमाल करते हैं। खाली जगहों के साथ उनका कुल क्षेत्रफल एक नगर के विशाल क्षेत्रफल के बराबर है। शाहजहानाबाद को भी उद्यान-

* Rao D. V. R., *Housing of Squatters in Delhi. Search for Solution*, Existics, 1974, July, vol. 38, no. 224, pp. 56—60.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नगर कहा जा सकता है, यदि उसके हरित क्षेत्रफल के इमारतों, सड़कों और चौकों के क्षेत्रफल के साथ अनुपात पर ही दृष्टिपात किया जाये। वहां सड़कों का क्षेत्रफल केवल १०–१२ प्रतिशत है, जबकि खुली, हरित जगहों का क्षेत्रफल नगर के कुल क्षेत्रफल का एक चौथाई है और उसका इस्तेमाल भी अधिकतम होता है। जैसा कि ज्ञात है, उष्ण जलवायु में घर का भीतरी खुला आंगन भी आवासीय क्षेत्रफल से कम महत्त्व नहीं रखता। लोग यहां काम करते हैं, आराम करते हैं और गर्मियों में सोते भी हैं। इस तरह शाहजहानाबाद भी उद्यान-नगर है, किंतु केवल भीतर की ओर, इमारतों के अहातों की ओर उन्मुख।

भीतरी अहाते की अंतरंगता मुहल्ले की गलियों और मुहल्ले की बाहर की दीवारों के ज़रिये सार्वजनिक जीवन के केंद्रों, बाज़ारों और मुख्य मार्गों से बची हुई होती है। ऐसे देशिक अनुक्रम की निश्चय ही अपनी अच्छाइयां हैं।

शाहजहानाबाद में उत्पादन तथा उपयोग के लिए प्रयुक्त क्षेत्र और आवास के लिए प्रयुक्त क्षेत्र के बीच विभाजन नहीं पाया जाता और नगर के सभी भागों में विभिन्न प्रकार के प्रकार्यों का मिश्रण देखा जाता है। १९५० के दशक में पुरानी दिल्ली के गिर्द बसे मज़दूरों और दफ़्तरी कर्मचारियों के नये इलाक़े आपस में नहीं जुड़े हुए हैं और उनका कोई एक साझा केंद्र भी नहीं है। उनकी अधिकांश इमारतें चार-पांचमंज़िली और कई-कई फ़्लैटोंवाली हैं। १९६१ में ऐसी स्वतंत्र कालोनियों की संख्या छह थी: किंग्सवे कैंप, आज़ादपुर, मध्यम आयवर्ग के कर्मचारियों के लिए कृत्रिम झील, सिनेमाघर, दूकानों और बग़ीचों के बीच स्थित बंगलोंवाली बस्ती माडल टाउन, गीह-नगर, शक्तिनगर और रूपनगर।

१९६१ में दिल्ली के विकास की बीसवर्षीय (१९६१–१९८१) महायोजना बनायी गयी। उसके अनुसार ४० किलोमीटर के दायरे में कई उपनगर बसाये गये, जिनमें दिल्ली के कुछ औद्योगिक उद्यमों को स्थानांतरित किया गया। यमुना पर दो नये पुल बनाये गये। १९७५ में लाल कोट के कुछ किलो-मीटर दक्षिण में एक बड़ी खाली जगह पर जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय का निर्माण पूरा हुआ। दिल्ली के विभिन्न भागों में अनेक नये कालेजों और अस्पतालों की स्थापना हुई।

१९५० के दशक में नयी दिल्ली की सीमाओं के भीतर डिफ़ेंस कालोनी, हौज़ ख़ास, गोल्फ़ लिंक्स, लोदी एस्टेट, जोरबाग़, आदि नयी आवासीय बस्तियों का निर्माण हुआ, जिनकी दोमंज़िली-तीनमंज़िली कोठियां और बंगले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बहुत शानदार तो नहीं, तड़कीले-भड़कीले ज़रूर थे। उनमें मालिक ख़ुद रहते हैं अथवा उन्हें किराये पर उठाया जाता है। संपन्न लोगों की कोठियों में पिछवाड़े में नौकरों, मालियों, वग़ैरह के लिए बैरकनुमा सर्वेंट्स क्वार्टर बने हुए हैं। १९५० के दशक में ही केंद्रीय सरकार ने अपने कर्मचारियों के लिए नयी दिल्ली के दक्षिणी भाग में अनेक विशाल आवासीय कालोनियों का निर्माण आरंभ कर दिया था।

भारत के अंतर्राष्ट्रीय संपर्कों की वृद्धि तथा विस्तार के फलस्वरूप नयी दिल्ली में बहुत-से नये होटल तथा सरकारी दफ़्तरों की इमारतें बनीं। राष्ट्रपति भवन के दक्षिण और सफ़दरजंग हवाई अड्डे के पश्चिम में पालम अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे के मार्ग पर चाणक्यपुरी के इलाक़े में १९५०–१९६० के दशकों में एक राजनयिक नगरी – डिप्लोमेटिक एनक्लेव – पैदा हो गयी, जो आधुनिक वास्तुशिल्प की नवीनतम शैलियों की अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी जैसी लगती है। यहां स्थित राजनयिक मिशनों के भवनों के निर्माण में माने-जाने वास्तुशिल्पियों ने भाग लिया है, जिनमें से हर किसी ने अपने ढंग से अपने देश की महत्ता को प्रतिबिंबित करने की कोशिश की है। इसी इलाक़े में अत्याधुनिक 'अशोक' और 'अकबर' होटलों का भी निर्माण हुआ है।

नयी दिल्ली में ही १५वीं शती के लोदी मक़बरों के पास परिवेश से पूर्ण सामंजस्य रखता हुआ इंडिया इंटरनेशनल सेंटर का भवन-समूह स्थित है, जो वास्तुशिल्प में अतीत तथा वर्तमान के समन्वय की शानदार मिसाल प्रस्तुत करता है। इसे भारतीय वास्तुशिल्पी जे० भल्ला और अमरीकी वास्तुशिल्पी ए० स्टाइन ने डिज़ायन किया था।

फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ द्वारा निर्मित कोटला के आसपास वास्तुशिल्पियों ने परंपरागत उद्यान कला को पुनरुज्जीवित किया है और पार्क तथा उद्यान बनाये हैं, जिनके फूलों की क्यारियों से घिरे हरे-भरे मैदानों तथा नहरों के बीच चौकोर, तराशे हुए पत्थरों से निर्मित सादगीपूर्ण गांधी स्मारक स्थित है।

गांधी स्मारक से, जो राजघाट के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, कुछ आगे पूर्व की ओर चलकर एक बहुत बड़ा प्रदर्शनी मैदान स्थित है, जहां राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रदर्शनियां आयोजित की जाती हैं। इसके समीप ही नेशनल स्टेडियम भी स्थित है।

नयी दिल्ली में कनाट प्लेस से लगे इलाक़ों में बड़े पैमाने पर मुख्यतया व्यावसायिक इस्तेमाल के लिए गगनचुंबी इमारतें बन रही हैं। यहां ज़मीन के दाम भी आसमान छूने लगे हैं। अधिकांश निर्माण अनियोजित ढंग से और निजी व्यवसायियों तथा फ़र्मों द्वारा किया जा रहा है। १९६० में भारतीय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वास्तुशिल्पी राज रेवल तथा कुलदीपसिंह ने नयी दिल्ली के इस व्यावसायिक केंद्र के पुनर्निर्माण की एक मौलिक तथा साहसिक योजना पेश की थी, और प्रशासन ने उसे स्वीकार भी कर लिया था, किंतु अभी तक वह अक्रियान्वित ही पड़ी हुई है।

वास्तुशिल्पियों का प्रस्ताव यह था कि चूंकि और कोई विकल्प नहीं है, अतः नगर के इस सर्वाधिक सक्रिय भाग में इमारतों की और आबादी की भी सघनता को चरम सीमा पर पहुंचा किया जाये। दूसरे शब्दों में, नगर का ऊर्ध्वमुखी विकास हो। इसके साथ ही वास्तुशिल्पियों ने नगर परिवेश के पुनर्सृजन में मानवीय कारक को पूरी तरह ध्यान में रखने और पैदल चलनेवाले को परिवहन से अलग रखने की कोशिश की है। उनका सुझाव है कि कनाट प्लेस की सड़कें दो स्तरों पर हों – निचला स्तर परिवहन तथा पार्किंग के लिए और ऊपरी स्तर पैदल चलनेवालों के लिए। दूकानें, रेस्तरां, काफ़े, कार्यालय, आदि इस ऊपरी स्तर पर ही हों।

अपने प्रकार्यात्मक प्रयोजन की दृष्टि से आम भारतीय नगर की सड़क जैसी यह सड़क यहां असामान्य आधुनिक रूप ग्रहण कर लेगी। इमारतों का सड़क से लगा भाग पीछे की कितनी भी ऊंची इमारतों के लिए एक तरह के परदे का काम करेगा।

वास्तुशिल्पियों ने इस "परदे" को एकमंज़िले, मनुष्य के समपरिमाण मात्रिक अवयवों से बनाने का सुझाव दिया है, जो बेलनाकार गुंबदों से ढके होंगे। कांच अथवा जालियां लगे ये अवयव चूंकि आगे को उभरे होंगे या एक दूसरे के ऊपर झुके होंगे, इसलिए निचली मंज़िलों पर प्रचुर छाया रहेगी।

बाराखंभा सड़क के किनारे के निर्माण के लिए कुछ भिन्न योजना सुझायी गयी है। उसका आधार षट्फलक मात्रिक अवयव चुना गया है। अनुलंब और अनुदैर्घ्य में षट्फलकों को तरह-तरह से व्यवस्थित करके सड़क को चित्र-विचित्र रूप दिये जा सकते हैं। आवश्यकता हो, तो उसे मध्ययुगीन सर्पिल सड़कों जैसी टेढ़ी-मेढ़ी बनाया जा सकता है। इमारतों के अभिविन्यास को देखते हुए सड़क की ओर दूकानों तथा कार्यालयों की विशाल, कांच से मढ़ी सजावटी खिड़कियां हो सकती हैं अथवा जालीदार गलियारे। राज रेवल और कुलदीपसिंह की प्रायोजना में नगर निर्माण की समस्याओं के समाधान के प्रश्न पर पर्याप्त लचीलापन दिखाया गया है और ज़मीन के मालिक और निर्माता को नगर परिवेश का सामान्य सौंदर्य अथवा सामंजस्य बिगाड़े बिना अपने भूखंड पर मनोनुकूल निर्माण करने की प्रचुर गुंजायश दी गयी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुरानी दिल्ली की अनियंत्रित संवृद्धि, उसका जनसंख्या अतिबाहुल्य और गंदगी प्रशासकों और वास्तुशिल्पियों के लिए गंभीर चिंता का विषय हैं। कुछ लोगों का सुझाव है कि पुराने, जर्जर शाहजहानाबाद को भूमिसात् करके उसकी जगह पर नये नगर का निर्माण किया जाये। ऐसे सुझाव की बेहूदगी के बारे में दो रायें नहीं हो सकतीं। इस बढ़ते हुए विशाल नगर में जीवन के प्रवाह को रोक पाना संभव नहीं है। आवश्यकता उसे व्यवस्थित करने और सही दिशा में मोड़ने की है।

सरकार द्वारा प्रस्तावित शाहजहानाबाद के पुनर्निर्माण की योजना में नगर के विभिन्न क्षेत्रों को सुव्यवस्थित रूप देने, इमारतों की मंज़िलें बढ़ाने, भूमिकर पर नियंत्रण लागू करने और गंदी बस्तियों को हटाने का प्रावधान रखा गया है।

इस योजना के अनुसार सबसे पहले उन मुहल्लों का पुनर्निर्माण किया जायेगा, जो नगर-केंद्र से लगे हुए हैं। उनका कुल क्षेत्रफल ४५ हैक्टर है। पुरानी, ध्वस्तप्राय इमारतों की जगह पर राजकीय स्वामित्व के अंतर्गत नयी सार्वजनिक इस्तेमाल की इमारतें बनायी जायेंगी, जैसे राष्ट्रीय थियेटर, प्राचीन तथा आधुनिक कला का संग्रहालय, चित्र दीर्घा, इत्यादि।

एक योजना यह भी है कि दिल्ली के नये और पुराने इलाक़े को जोड़ने के लिए मेट्रो रेल का निर्माण किया जाये।

किंतु नगर परिवेश के सुधार के इस कार्यक्रम के सभी मुद्दे जीवन की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। कुछ मामलों में वे नगरीकरण की स्वाभाविक रफ़्तार में बाधक बनते हैं। सदियों से विकसित, सुस्थापित संरचनावाले नगर में नये क्षेत्र-विभाजन का औचित्य भी संदेह से परे नहीं कहा जा सकता।

ये हैं वे परिवर्तन, जो स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद से देश में औद्योगीकरण के आधार पर, राष्ट्रव्यापी आयोजना की मदद से और भारतीय समाज के तेज़ी से होते पूंजीवादी विकास की परिस्थितियों में राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के फलस्वरूप आये हैं। निष्कर्ष के तौर पर हम पाते हैं कि देश की क्षेत्रीय तथा आर्थिक संरचना का आमूल पुनर्गठन हो रहा है, जो उसे पहले से अधिक समेकित बनाती है और उत्पादक शक्तियों की संवृद्धि तथा परिवहन एवं संचार व्यवस्था के विस्तार में सहायक होता है। इस प्रक्रिया में जनसंख्या वितरण की प्रणाली काफ़ी अधिक बदल गयी है और नये संकुल-नगरों तथा नये नगरों की संवृद्धि के साथ-साथ पुराने मेट्रोपोलिटन नगरों की भूमिका भी बहुत बढ़ गयी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपसंहार

(भारतीय नगर निर्माण कला के इतिहास का समारंभ तीसरी सहस्राब्दी ईसापूर्व में होता है, जब प्राचीन विश्व हड़प्पा की अनुपम नागर सभ्यता का साक्षी बना था। मनुष्य के लिए पहली बार उस काल में ही आरामदेह तथा सुविधासंपन्न परिवेश एवं आवासगृहों का निर्माण किया गया था, नगरों की संवृद्धि को त्वरित करनेवाले पहियेदार परिवहन का प्रादुर्भाव हुआ था, आबादी वितरण की केंद्रीयकृत प्रणाली लागू की गयी थी और निर्माण के क्षेत्र में हमारे युग में भी असामान्य प्रतीत होनेवाले पैमाने पर भवनों का प्ररूपण तथा एकरूपण किया गया था।) हड़प्पाई नगरों के अपकर्ष के बाद भारत में फिर कभी वैसे नगरों का निर्माण न हो पाया। किंतु हड़प्पा सभ्यता ने जिन परंपराओं का बीजारोपण किया, उनकी छाप भारत के सारे इतिहास के दौरान देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए, बस्तियां समकोणिक ग्रिडनुमा अभिन्यास योजना के अनुसार बनायी जाती रहीं और मकानों का खाका, जिसमें भीतरी आंगन के गिर्द तरह-तरह के कमरे होते थे, तथा अठारहवीं शती तक ईंटों की चिनाई का तरीक़ा भी ज्यों के त्यों बने रहे। बुनियादी तौर पर इसका कारण संभवतः प्राकृतिक और जलवायवीय परिस्थितियों के अलावा दीर्घ काल तक अपरिवर्तित उत्पादन रीति थी। भारत की अर्थव्यवस्था में पहले की भांति आज भी सिंचित कृषि प्रमुख भूमिका निभाती है।

भारत के इतिहास में नगरों के विकास-क्रम पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि भारत अपनी नगर निर्माण संस्कृति की मौलिकता और सामाजिक संरचनाओं एवं ऐतिहासिक विकास की विशिष्टताओं के मामले में औरों से चाहे कितना ही भिन्न क्यों न हो, उत्पादक शक्तियों का विकास, सामाजिक श्रम विभाजन का गहनीकरण और उत्पादन संबंधों की अवस्था नगरों के आविर्भाव तथा संवृद्धि एवं नगरीकरण की जिन सार्विक, विश्व के सभी देशों के लिए समान नियमसंगतियों को जन्म देते हैं, वे भारत पर भी लागू होती हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

ÇC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदि बहुत-सी अपरिहार्य सांयोगिकताओं को अनदेखा कर दिया जाये, तो कहा जा सकता है कि भारत की उत्पादक शक्तियों के विकास के साथ-साथ उसका उत्पादन आधार और परिणामत: लोगों के आपसी संबंध भी बदलते व जटिल बनते गये हैं और संस्कृति का स्तर ऊंचा उठता गया है। सामाजिक और आर्थिक विकास के साथ देश में नगरीकरण की प्रक्रिया तेज़ होती गयी है, नगरों में आबादी के संकेंद्रण की मात्रा बढ़ती गयी है, नगरों को जन्म देनेवाले आधार का निरंतर विस्तार होता गया है और उनके वैज्ञानिक और तकनीकी विभव में वृद्धि हुई है। भारत भी हर सामाजिक विरचना के लिए लाक्षणिक नगर निर्माण के उन्हीं दौरों से गुज़रा है, जिनसे कि विश्व के अन्य देश गुज़रे हैं। सामाजिक विकास की हर सीढ़ी के बाद नयी, अधिक ऊंची सीढ़ी आयी और नयी सामाजिक-आर्थिक पद्धति के अनुरूप नये प्रकार की बस्तियां पैदा हुईं, मानव संस्कृति के केंद्र नगरों के प्रकार्य जटिलतर बने, उनकी संरचना बदली अथवा नयी संरचना पैदा हुई। इस तरह दासप्रथात्मक युग में व्यापार के आधार पर बढ़े प्राचीन नगर के स्थान पर विनिमयहीन अर्थव्यवथा पर आधारित, दीवारों के भीतर बंद मध्ययुगीन सामंती नगर आया और फिर जब औद्योगीकरण शुरू हुआ, तो सामंती नगर का स्थान एक सर्वथा नये प्रकार की बस्ती – पूंजीवादी नगर – ने ले लिया। और अब वैज्ञानिक-तकनीकी क्रांति के युग में इससे भी नये ढंग की नगरीय परंपराएं तथा बस्ती-संरूप जन्म ले रहे हैं।

मनुष्य की जीवन सक्रियता के लिए आवश्यक कृत्रिम परिवेश के सृजन में स्वत:स्फूर्त ढंग से अथवा जानबूझकर प्रकृति, मनुष्य और समाज के बीच एक निश्चित संबंध और संतुलन के नियम प्रकट होते हैं। ऐतिहासिक विकास के हर चरण में नगर निर्माण की प्रक्रिया में दिक्-स्थान की विवेकसंगत आयोजना तथा उसके सुदर्शनीकरण से संबंधित समस्याएं पैदा हुई हैं और युग की अपेक्षाओं के अनुरूप हल की गयी हैं। इसी तरह नगर के नये आदर्श भी जन्म लेते रहे हैं। किंतु साथ ही साथ इस मार्ग पर नये अवरोध और नये – मुख्यतया सामाजिक ढंग के – विरोध भी प्रकट होते रहे हैं।

नगर का प्रादुर्भाव कृषि से शिल्पोत्पादन के पृथक्करण, माल-विनिमय के विकास, निजी संपत्ति की उत्पत्ति और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण से संबद्ध था। नगरों का जन्म गांवों से हुआ। विरोधपूर्ण समाज की परिस्थितियों में सदियों के दौरान बढ़ता हुआ नगर और गांव का वैपरीत्य, सामाजिक श्रम विभाजन की प्रक्रिया में जन्मे इन दो बस्ती प्ररूपों का वैषम्य एक ऐसे विरोध में परिणत हो जाता है, जो पूंजीवाद के अंतर्गत शोषक नगर और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शोषित देहात के परस्पर विरोधों की अत्युग्रता के चरम पर पहुंच जाता है।

नगरीकरण की प्रक्रिया में उसके जन्म के क्षण से ही घरेलू और विदेश व्यापार एक स्थायी कारक रहा है। दूसरी ओर, व्यापार और नगर, दोनों ही परिवहन एवं संचार के विकास के बिना नहीं बढ़ सकते। हड़प्पा की नगरीय सभ्यता इतनी महती उपलब्धियां पहियेदार परिवहन साधनों की बदौलत ही पा सकी थी। परिवहन बस्तियों के बीच संपर्क-स्थापन और नगरों के क्षेत्रीय विस्तार में सहायक ही नहीं होता, अपितु श्रम विभाजन के तरीक़े को प्रभावित भी करता है। सबसे प्राचीन नगर नदियों – परिवहन की जल-धमनियों – के तटों पर पैदा हुए थे और बंदरगाह आज भी विकास में अन्य नगरों से आगे हैं। बंबई और कलकत्ता इसके उदाहरण हैं। आज के तीव्रगामी परिवहन साधनों को देखते हुए अंतर्नगरीय परिवहन की समस्या आधुनिक नगर निर्माण तथा आयोजना की एक सबसे जटिल तथा फ़ौरी समस्या बन गयी है।

औद्योगिक युग में उत्पन्न नगर निर्माणकारी नये कारक उद्योग ने सभी सामाजिक-आर्थिक और नगरीकरण संबंधी प्रक्रियाओं को तीव्र बना दिया है। सदियों तक उत्पादन रीति, सामाजिक संरचना और परिवहन तथा संचार साधन अपरिवर्तित रहे थे। सत्रहवीं शती के अंत से पश्चिमी देशों में और उन्नीसवीं शती के मध्य से भारत में जो औद्योगिक क्रांति शुरू हुई, उसने काल के इस मंथर प्रवाह को तीव्र धारा में बदल डाला। मानव-जाति ने महान सामाजिक-आर्थिक रूपांतरणों और वैज्ञानिक आविष्कारों के युग में पदार्पण किया। वह विश्व को अब एक नयी दृष्टि से देखने लगा। केवल गत सौ वर्षों में ही ऐसी न जाने कितनी घटनाएं घटी हैं कि जिन्होंने विश्व को झकझोर ही नहीं, आमूलतः बदल डाला है और लोगों की चेतना में क्रांति ला दी है। ये हैं विश्व औद्योगिक क्रांति, पूंजीवादी पद्धति का विश्वव्यापी प्रचलन, दो विश्वयुद्ध, अक्तूबर समाजवादी क्रांति की विजय, जिसने सामाजिक परिवर्तनों के एक नये युग का सूत्रपात किया, वैज्ञानिक-तकनीकी क्रांति, जिसने असाधारणतम नगर निर्माण योजनाओं को साकार बनाने के लिए भौतिक और तकनीकी आधार सुनिश्चित किया है, और, अंततः, भारत समेत लगभग सभी भूतपूर्व उपनिवेशों का स्वतंत्र रूप से विकासमान राज्यों के रूप में विश्व मंच पर पदार्पण।

आंतरिक और वाह्य शक्तियों के प्रभाव से भारत भी विश्वव्यापी घटनाओं के इस तीव्र प्रवाह में खिंच आया। उसमें नयी प्रवृत्तियां सबसे पहले बंबई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और कलकत्ता में प्रकट हुई, जहां पहली औद्योगिक सर्वहारा की टुकड़ियां पैदा हुई थी, राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का नेतृत्व करनेवाला राष्ट्रीय बुर्जुआज़ी का पहला समूह प्रकट हुआ था और सामाजिक चिंतन की पहली प्रगतिशील धाराओं का जन्म हुआ था। यहीं औद्योगिक उद्यमों और दूसरे नये प्रकार की इमारतों, जैसे रेलवे स्टेशन, डाक व तारघर, व्यावसायिक इमारतों, मज़दूरों के लिए निर्मित आवासों और बुर्जुआ लोगों की कोठियों, आदि के रूप में एक नये नगर निर्माणकारी कारक का प्रादुर्भाव हुआ। यहीं आबादी वितरण की नयी प्रणाली विकसित हुई और यहीं पूंजीवादी नगर औद्योगिक आधार पर पहले पहल विकास करने लगा। भारत में नगर निर्माण के मध्ययुगीन रूपों से आधुनिक रूपों में संक्रमण ऐसी परिस्थितियों में हुआ, जब एक ओर, देश औपनिवेशिक गुलामी के जुए तले कराह रहा था, उसकी अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति का गला घोंटा जा रहा था और उसपर पश्चिमी यूरोपीय सभ्यता थोपी जा रही थी और, दूसरी ओर, देश की प्रगतिशील शक्तियां इस बाध्यकारी प्रक्रिया का विरोध कर रहे थे।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारत के सामने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और संस्कृति का उत्थान करने के लिए अपूर्व तथा व्यापक संभावनाओं के द्वार खुल गये। भारत ऐसे समय में स्वाधीन हुआ, जब पश्चिमी देश वैज्ञानिक और तकनीकी क्रांति की देहरी पर खड़े थे, जिसके साथ-साथ अभूतपूर्व पैमाने पर जनसंख्या वृद्धि, नगरों और नगरीकरण की संवृद्धि भी हो रही थीं। उन्नत देशों में सर्वशक्तिमान विज्ञान और प्रौद्योगिकी के आधार पर उत्पादक शक्तियों की संरचना में बुनियादी परिवर्तन आ रहा है और विज्ञान स्वयं एक उद्योग ("ज्ञान का उद्योग") बनकर समाज की प्रेरक शक्ति का रूप धारण करता जा रहा है। परमाणु ऊर्जा का विकास, अंतरिक्ष विजय, उत्पादन में इलेक्ट्रानिकी, साइबरनेटिकी तथा बायोनिकी का प्रयोग, कंप्यूटरों के ज़रिये स्वचलीकरण और अन्य वैज्ञानिक-तकनीकी अभिनवताएं मानव इतिहास में एक सर्वथा नये, ऊंचे चरण में पहुंचने के परिचायक हैं। ऐसी परिस्थितियों में नगर के विकास और नगरीकरण को नया आवेग मिला है और पहले से अधिक गतिशील नगर निर्माणकारी कारक उत्पन्न हुए हैं। अपनी बारी में यह कई नयी, दुःसाध्य सामाजिक समस्याओं और विसंगतियों को जन्म दे देता है।

विश्व के सभी देशों में अभूतपूर्व तेज़ी से और पैमाने पर हो रहा देहाती आबादी का नगरों में स्थानांतरण, जिसे "बीसवीं शती का महा-जनरेला" नाम दिया गया है, हमारे युग की एक सबसे असामान्य परिघटना है। वर्तमान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शती में आबादी वितण की प्रणाली में बड़े नगरों, संकुल-नगरों और नगरीकृत क्षेत्रों, जो देहाती इलाक़ों का निरंतर अतिक्रमण करते जा रहे हैं, का स्थान और भूमिका काफ़ी बढ़ गये हैं। नगरीकरण की जटिल और विषम प्रक्रिया में उसके केंद्राभिमुखी पहलू को केंद्रापसारी पहलू से, आत्मसीमित, समुदाय के भीतर की जीवनपद्धति और उसके जड़ीभूत आत्मिक मूल्यों को शनैःशनैः स्थानच्युत करके नागर संस्कृति की उपलब्धियां सभी प्रकार की बस्तियों में प्रसारित करनेवाले पहलू से अलग नहीं किया जा सकता है।

बीसवीं शती की तीसरी चौथाई से क्लासिकल, सुगठित "बिंदु-नगर" का स्थान संकुल-नगर लेने लगा। संकुल-नगर क्षेत्रीय दृष्टि से परस्पर संबद्ध आबादी केंद्रों का पुंज है, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रकार्यों के बीच आपस में समन्वय होता है और मुख्य भूमिका केंद्र के लिए छोड़ दी जाती है। आधुनिक नगरीकरण की प्रक्रिया में समाज की जीवन-सक्रियता के अधिकाधिक बड़े सभ्यता केंद्रों में सिमटते जाने की सर्वथा नियमसंगत प्रवृत्ति प्रकट हो रही हैं। सभ्यता के प्रकर्ष का युग अतीत में भी हमेशा बड़े नगरों की प्राधान्यता का संपाती होता था। बड़े नगर प्राक्-औद्योगिक युग में भी थे। उनकी औसत आबादी १-२ लाख हुआ करती थी (कुछ मामलों में ५-७ लाख तक, जबकि प्राचीन रोम अथवा मध्ययुगीन दिल्ली की आबादी तो २० लाख से भी ज़्यादा थी)। लेकिन तब समाज की प्रगति उनपर निर्भर नहीं होती थी। सामान्यतः वे स्वतःस्फूर्त ढंग से पैदा और विनष्ट हुआ करते थे। इसके विपरीत आधुनिक समाज में बड़े नगरों की भूमिका निरंतर बढ़ती जा रही है और साथ ही विभिन्न प्रकार के आबादी केंद्रों – नगर और गांव, नगर केंद्र और नगर उपांत – के बीच भेद और वैषम्य प्रगाढ़ होते जा रहे हैं। बड़े नगर विकास की रफ़्तार के मामले में मंझोले नगरों से भी और छोटे नगरों से भी कहीं आगे हैं और महानगर अथवा "आक्टोपस-नगर" का रूप धारण करते जा रहे हैं। छोटे नगरों की अन्योन्यक्रिया केवल अपने आसपास के इलाक़े से ही होती है। इसके विपरीत बड़े नगर का प्रभाव क्षेत्र कहीं विशाल है। सुदूर संबंधों के बिना उसका अस्तित्व संभव नहीं है। बड़े नगर में सबसे विकसित सामाजिक कार्यकलाप का उसके सबसे परिष्कृत रूप में सर्वाधिक संकेंद्रण होता है। बड़ा नगर समाज की भौतिक और आत्मिक संपदा के पुनरुत्पादन और संचय का सबसे कारगर साधन है। जैसा कि हमने ऊपर भारत के मामले में देखा, कला, साहित्य और वास्तुशिल्प की सर्वोत्कृष्ट कृतियों का सृजन बड़े नगरों में ही हुआ था। इतिहास बड़े नगरों के प्रगतिमुखी सार और उच्च कारगरता की पुष्टि करनेवाली अनगिनत मिसालों से भरा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पड़ा है। विश्व के अन्य देशों की भांति भारत में भी बड़े नगर ही देश की क्षेत्रीय-आर्थिक संरचना में सर्वोच्च स्थान रखते हैं और वैज्ञानिक-तकनीकी क्रांति के वास्तविक अग्रदूत हैं।

किंतु उन्नीसवीं शती के अंत से बड़े नगरों की जैसी सघन संवृद्धि होने लगी है, वह देहाती इलाक़ों और प्राकृतिक संसाधनों के लिए अधिकाधिक घातक बनती जा रही है। उससे पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ गया है और पारंपरिक संस्कृति का ह्रास हुआ है। पूंजीवादी नगर का अतिवृद्धि की हद तक अनियंत्रित विकास महाविपदा का रूप ग्रहण करता जा रहा है। उसके आबादी-बाहुल्य, नगर क्षेत्र के धीरे-धीरे फैलते जाने, झोंपड़पट्टियों की वृद्धि, गंदगी और दूसरे सभी दोषों को पूंजीवादी विश्व में प्रायः महानगर के अंगभूत अवगुण माना जाता है। बहुत-से अध्येता उपनगरियों से घिरे महानगर की घोर आलोचना करते हैं। उसकी "सर्वभक्षी दानव", "कैंसर के फोड़े", अनियंत्रणीय प्राकृतिक विपदा, आदि से तुलना की जाती है, लेकिन साथ ही निरपवादतः सभी सर्वत्र उसके बढ़ते जाने की भविष्यवाणी भी करते हैं।

बड़े नगर की उत्तरोत्तर द्रुत संवृद्धि और उसके निवास के लिए अनुपयोगी परिवेश को देखकर कुछ हल्क़ों में विनगरीकरण के पक्ष में आवाज़ उठायी गयी है और नगरों के विनाश की भविष्यवाणियां की गयी हैं। विचित्र बात तो यह है कि ऐसे विचार मुख्य रूप से संयुक्त राज्य अमरीका में व्यक्त किये गये, जो कि विश्व का सर्वाधिक नगरीकृत औद्योगिक राष्ट्र है (उसकी ८० प्रतिशत आबादी नगरों में रहती है) और जिसके नगर पिछले एक-डेढ़ दशक से गंभीर संकट से गुज़र रहे हैं। भारत में ऐसे विचार सबसे पहले महात्मा गांधी ने प्रतिपादित किये थे, जिन्होंने नगरीकरण के नकारात्मक परिणामों से लोगों को आगाह किया था।

भारत के कुछ सार्वजनिक नेता न केवल बड़े नगरों के विकास के खिलाफ़ हैं, बल्कि वे समग्रतः नगरीकरण की वृद्धि और उसमें सहायक औद्योगीकरण के विकास के भी पक्ष में नहीं हैं। किंतु उनके दृष्टिकोण सरकारी नीति से मेल नहीं खाते, जिसकी बुनियाद जवाहरलाल नेहरू ने रखी थी और जिसपर अब श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार अमल कर रही है। यह इस नीति का ही परिणाम है कि गंभीर कठिनाइयों और घोर पिछड़ेपन के बावजूद भारत बहुत कम समय में ही औद्योगीकरण के आधार पर आज एक उन्नत विकासशील देश बन गया है।

जैसा कि स्पष्ट है, नगरीकरण और बड़े नगरों के विकास के विरोधी नगरीकरण की प्रक्रियाओं की वास्तविकता को ध्यान में नहीं रखते और इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिघटना के सामाजिक पहलुओं को अनदेखा कर देते हैं। किंतु इतिहास की अपरिवर्त्य अग्रमुखी गति को रोकना या पीछे मोड़ना संभव नहीं है।

नगरों का इतिहास इसकी पुष्टि करता है कि नगरों के विकास के सभी दौरों में और नगर निर्माण संबंधी सभी बातों, जैसे अभिन्यास युक्तियों, निर्माण विधियों, नगर परिवेश के सुधार के तरीक़ों, आदि में सामाजिक उत्पादन के लक्ष्य तथा रीतियां, उत्पादक शक्तियों के विकास का स्तर और अपने सभी अंतर्विरोधों सहित समाज का सामाजिक व आर्थिक ढांचा प्रतिविंबित होते हैं। पूंजीवादी नगरों में नगर निर्माण संबंधी समस्याओं के हल में और नगर निर्माण संबंधी योजनाओं के क्रियान्वयन में, जिनकी कि कभी कोई कमी नहीं रही है, मुख्य बाधा भूमि तथा उत्पादन साधनों पर निजी स्वामित्व और सामाजिक असमानता हैं। बंबई, कलकत्ता और दिल्ली के उदाहरणों से हम यह देख ही चुके हैं।

भारत का इतिहास बाहर से जो कुछ भी लाया गया, उसे सृजनात्मक ढंग से ग्रहण करने और अपनी विशिष्ट परिस्थितियों, मान्यताओं तथा रीति-रिवाजों के अनुरूप ढालने-संवारने की भारत की असामान्य क्षमता की पुष्टि करता है और इस तरह उसकी उस महान संस्कृति की प्राणवत्ता को दर्शाता है, जिसने एक ज़माने में समस्त विश्व के देशों की संस्कृति पर अपनी प्रबल छाप छोड़ी थी। स्वाधीन विकास के पथ पर दृढ़तापूर्वक अग्रसर होकर भारत ने प्रभावोत्पादक प्रगति की है और मानवजाति के उज्ज्वल भविष्य तथा विश्व शांति के लिए छिड़े संघर्ष में सम्मानपूर्ण स्थान पाया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

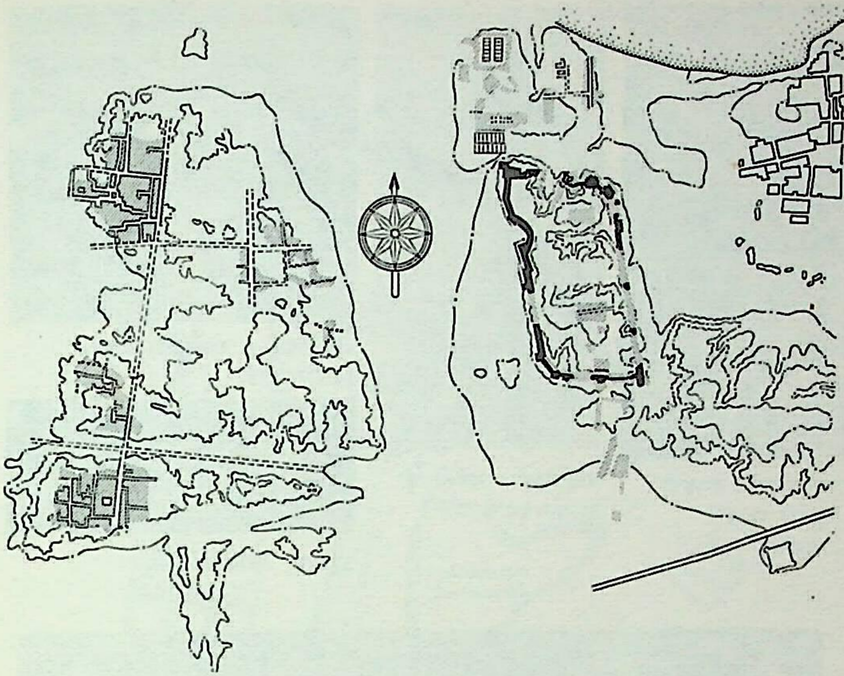

मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा। नगरों की अभिन्यास योजनाएं। २३वीं-१७वीं शती ईसापूर्व

मोहेंजोदड़ो। एक आवासीय मुहल्ले की अभिन्यास योजना

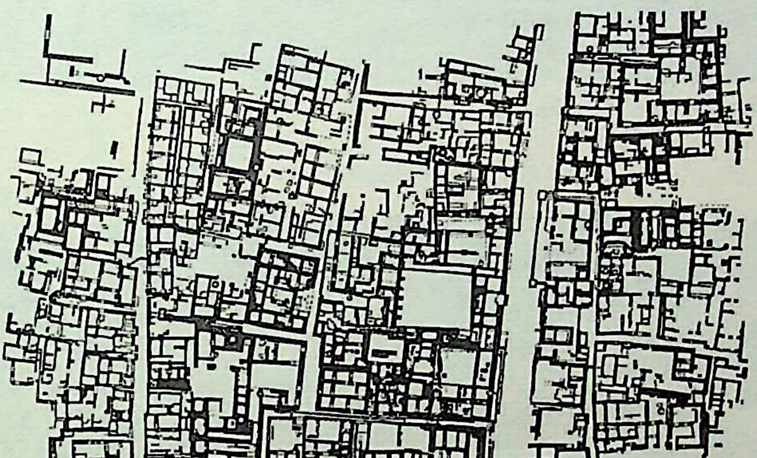

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मोहेंजोदड़ो। सेलखड़ी मुद्राओं पर बनी उद्भृतियां

मोहेंजोदड़ो। नर्तकी की कांस्य-लघुमूर्त्ति

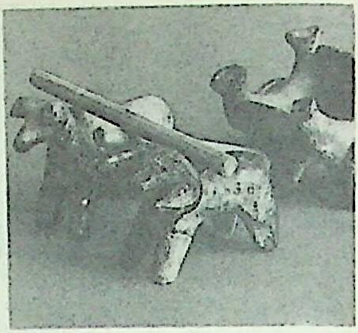

मोहेंजोदड़ो। पक्वमृत्तिका की खिलौना गाड़ी

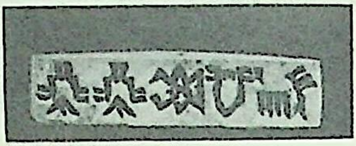

हड़प्पाई लिपि के नमूने

मोहेंजोदड़ो। मुख्य नगर-मार्ग

मोहेंजोदड़ो। पानी का कूआं

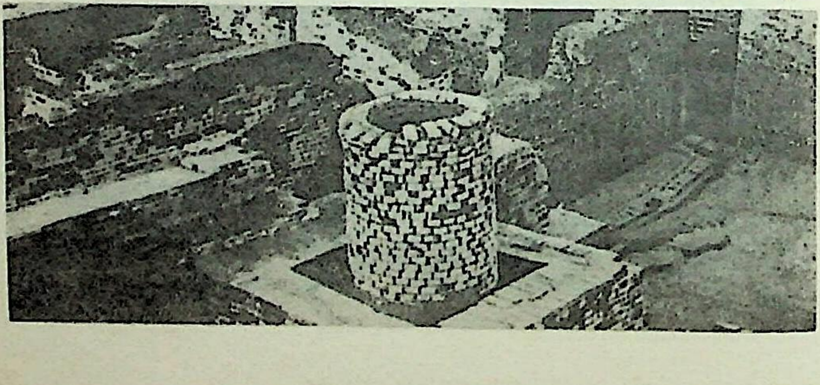

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

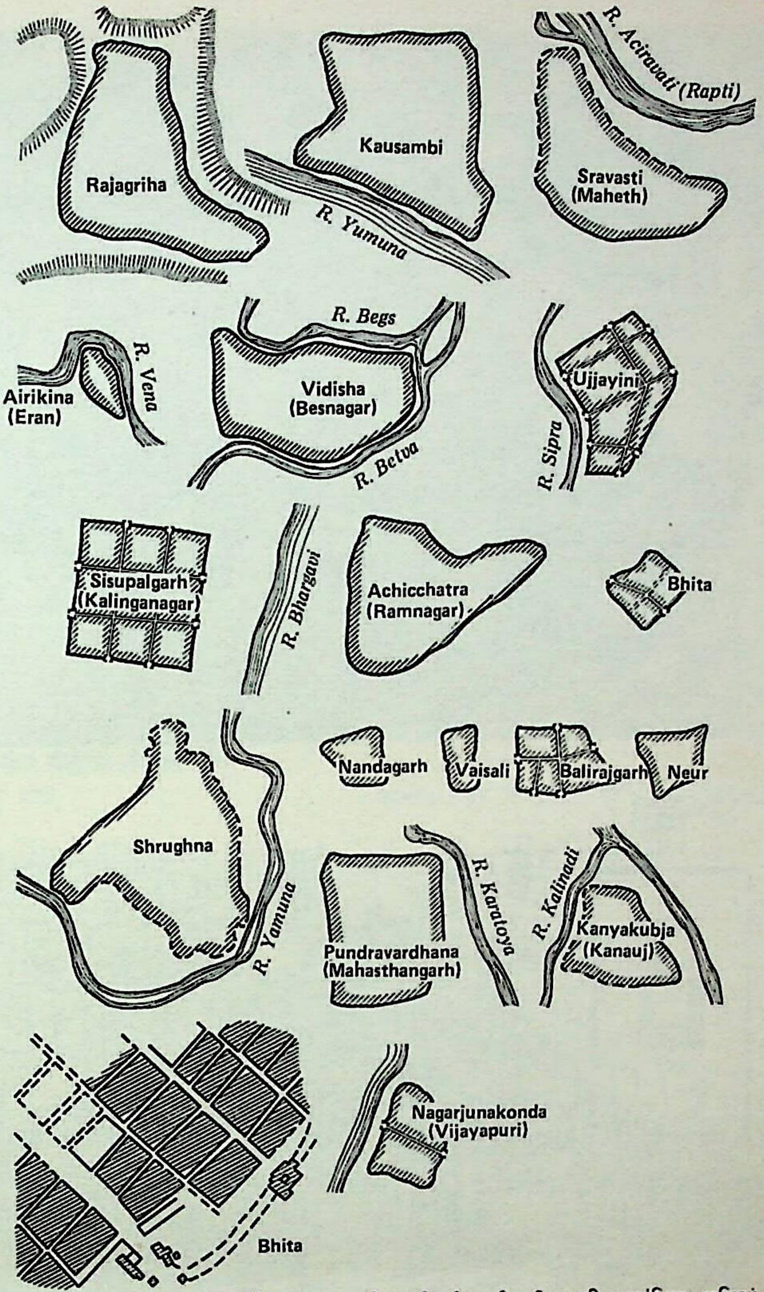

प्राचीन भारत के नगर। ८वीं शती ईसापूर्व – ईसा की आरंभिक शतियां।
आकृतियां और दिगभिन्यास।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुषाणकालीन स्वर्ण मुद्राएं।
पहली-तीसरी शती

तक्षशिला। सिरकप बस्ती का नक्शा। छठी शती ईसापूर्व – पांचवीं शती ई०

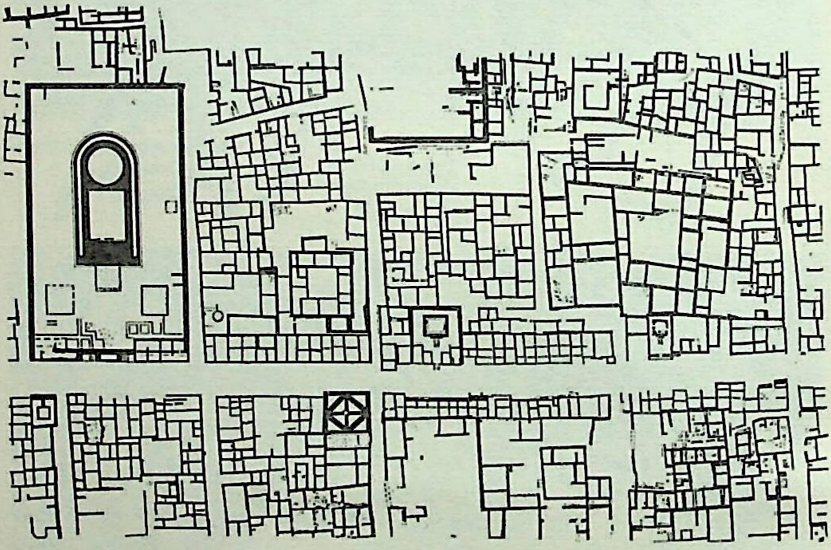

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

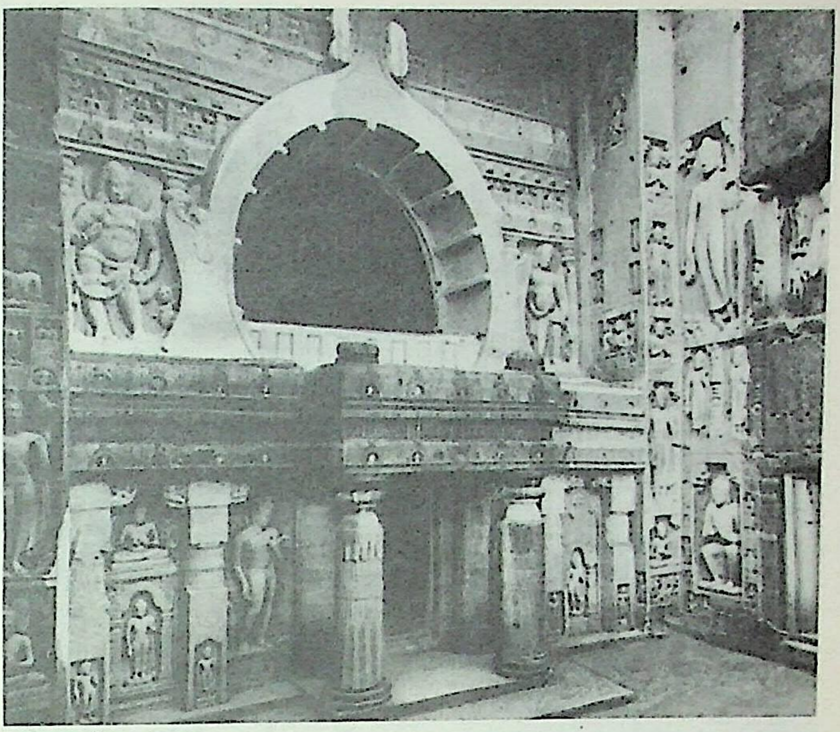

अजंता। चैत्य सं० १९।
५वीं शती

सांची। स्तूप सं०१। तीसरी शती ईसापूर्व –
पहली शती ई०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

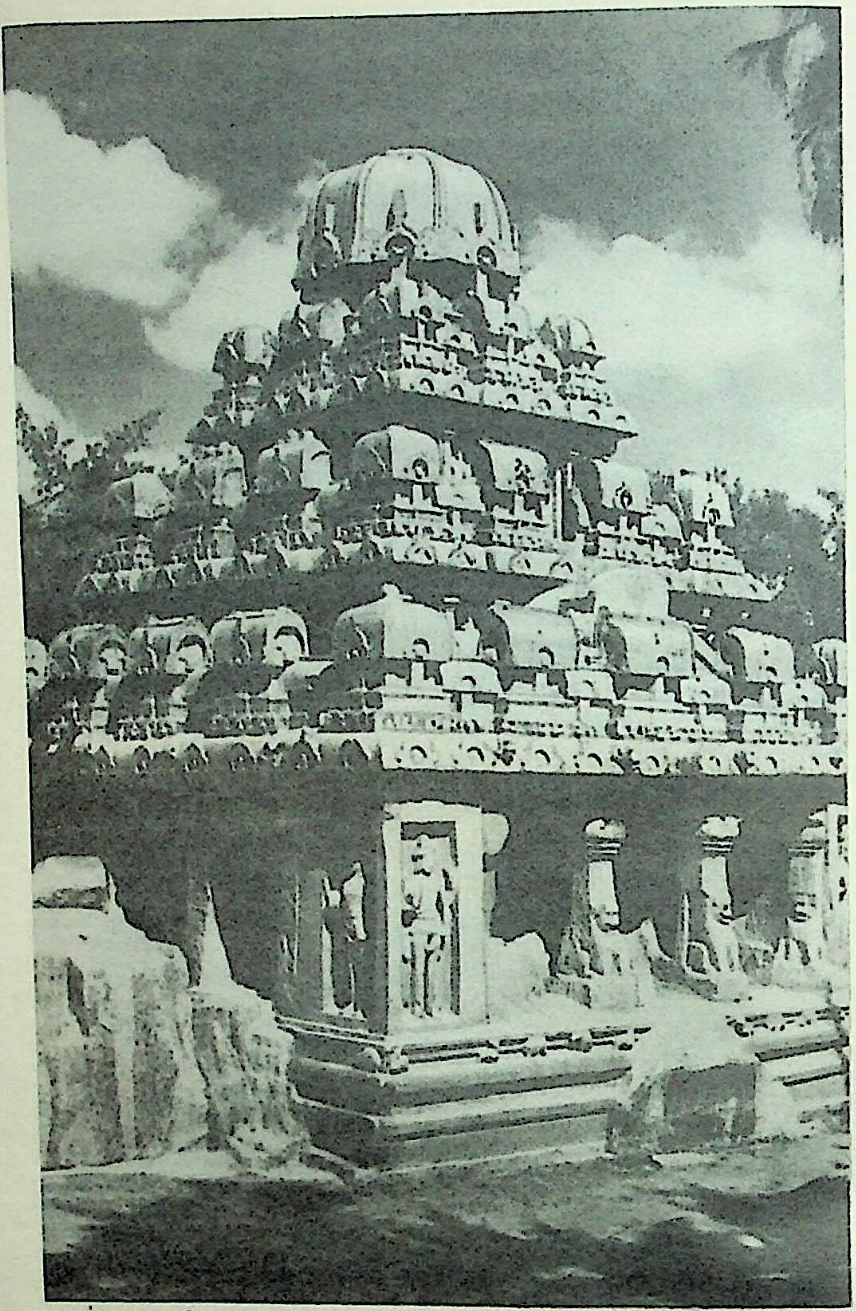

मामल्लपुरम। धर्मराज रथ। ७वीं शती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

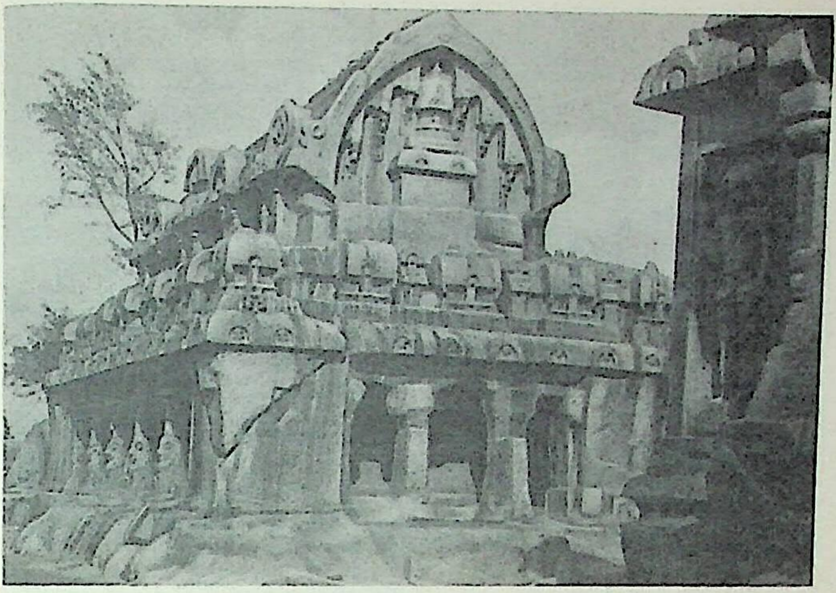

मामल्लपुरम। भीम रथ।
७वीं शती

काष्ठ चैत्य तथा विहार की
पुनर्कल्पित आकृतियां

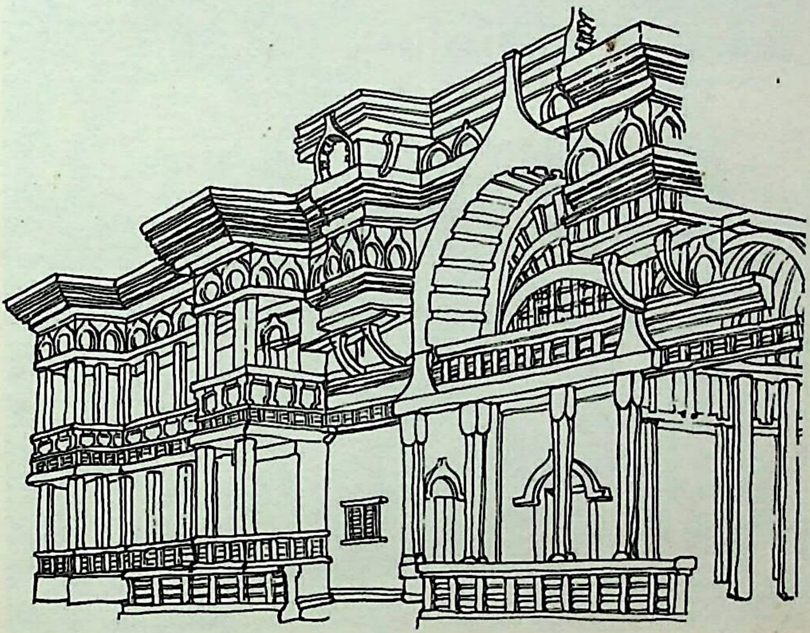

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

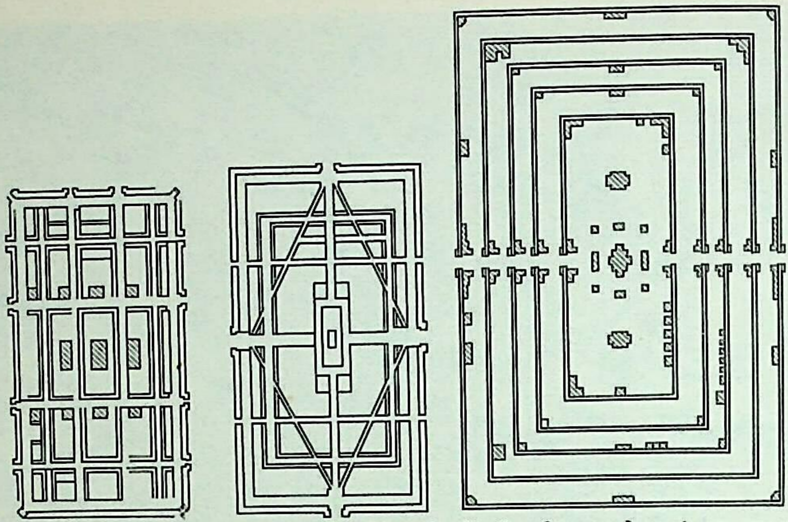

'मानसार' (छठी – ग्यारहवीं शती) में वर्णित बस्तियों की अभिन्यास योजनाएं। १. प्रस्तर ; २. नंदीवर्त ; ३ सर्वतोभद्र ; ४. चतुर्मुख ; ५. कामुर्क ; ६. पद्मक ; ७ दंडक

अयोध्या नगरी का निदर्श

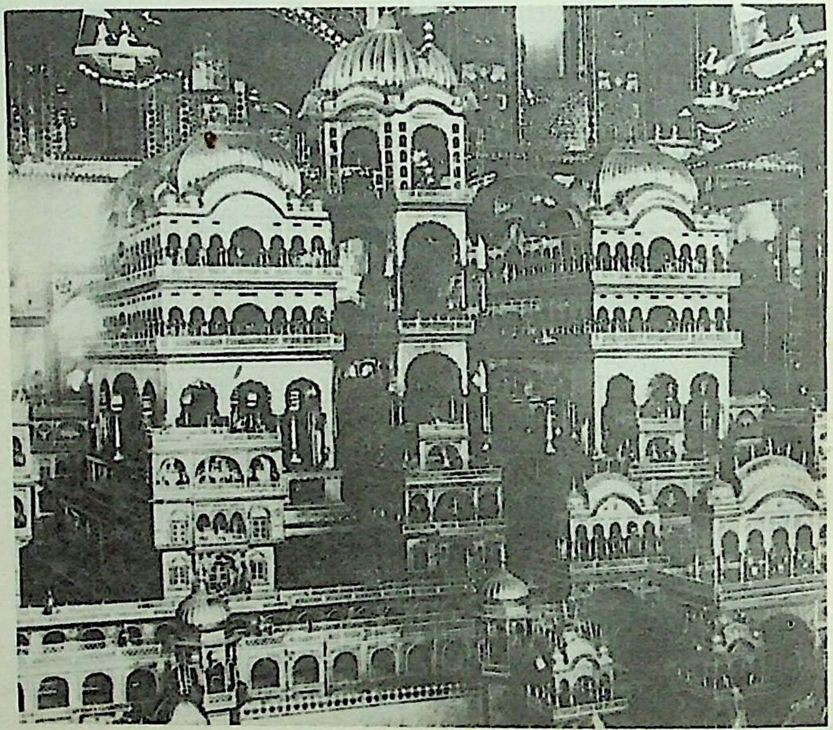

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

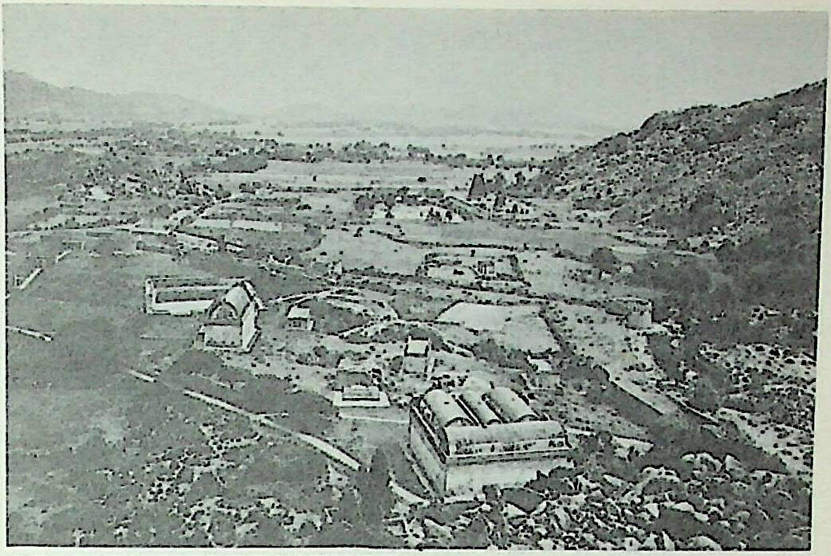

विजयनगर (१३५०-१५६५ ई०) के खंडहर

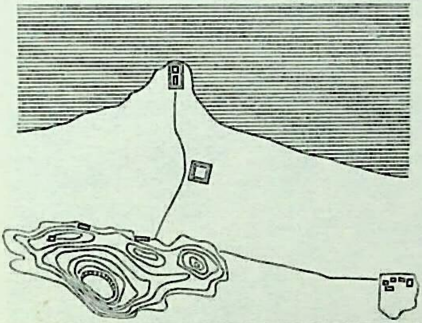

मामल्लपुरम। नगर के केंद्रीय भाग का नक़्शा। ७वीं शती

मामल्लपुरम। द्रौपदी, अर्जुन, भीम और धर्मराज रथ। ७वीं शती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मामल्लपुरम। तट मंदिर। ७वीं शती

मामल्लपुरम। "गंगावतरणम" उद्भृति। ७वीं शती

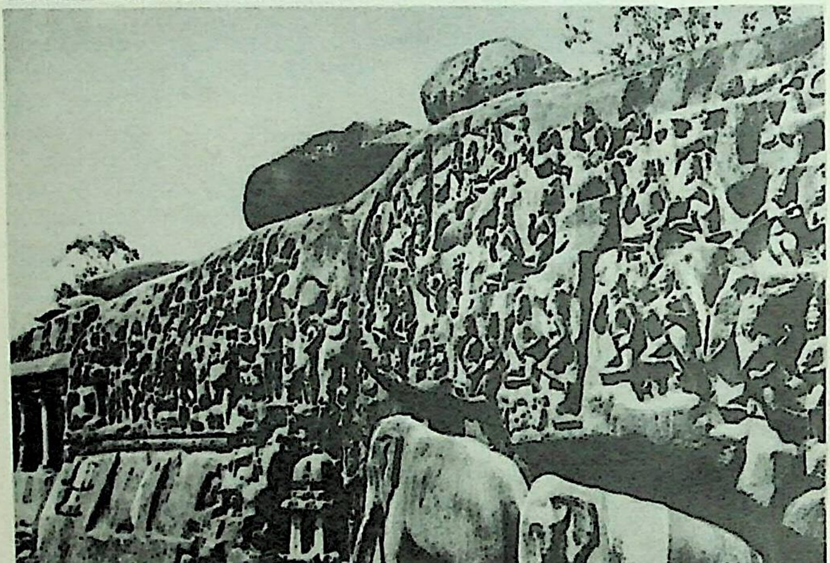

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

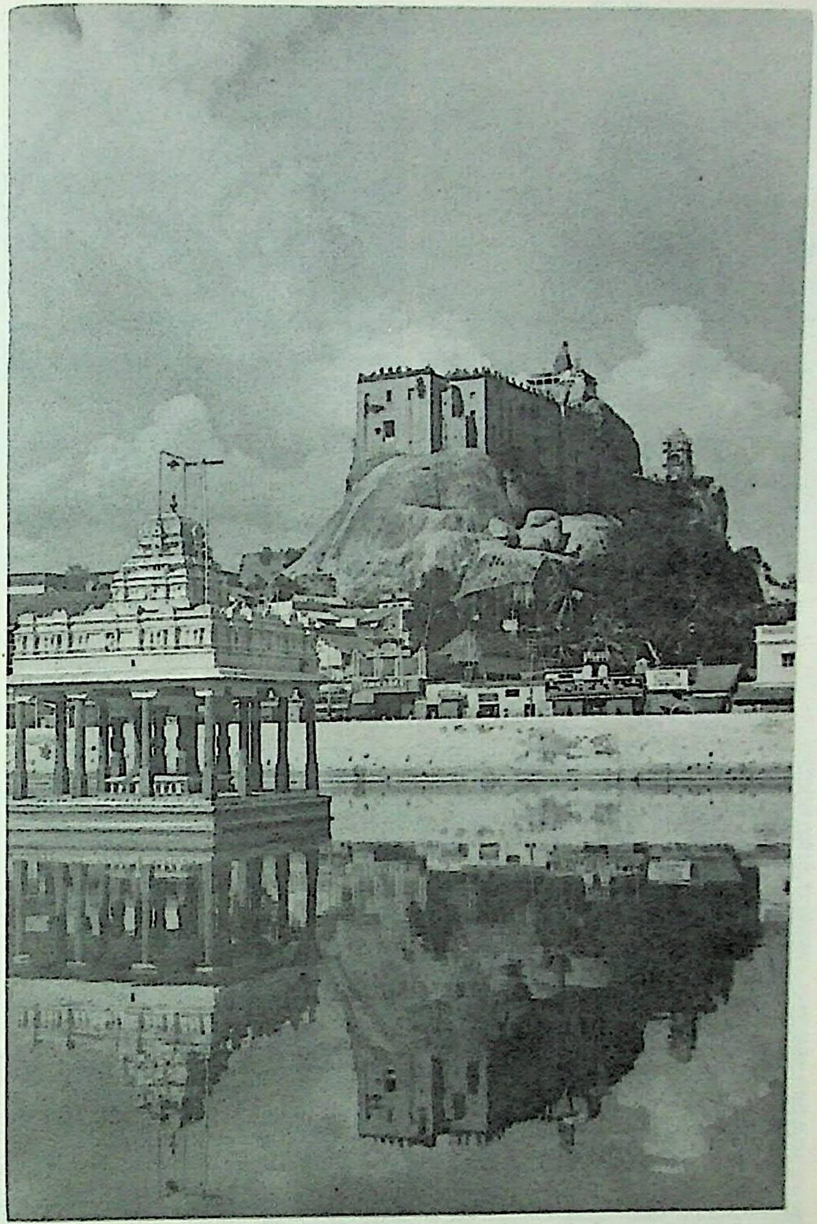

तिरुचिरापल्ली। पल्लवों के दुर्ग का एक दृश्य। छठी – आठवीं शती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

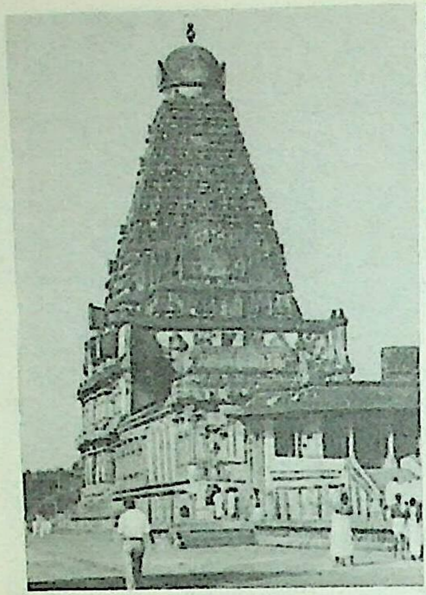

तंजौर। राजराजेश्वर मंदिर। लगभग १००० ई०

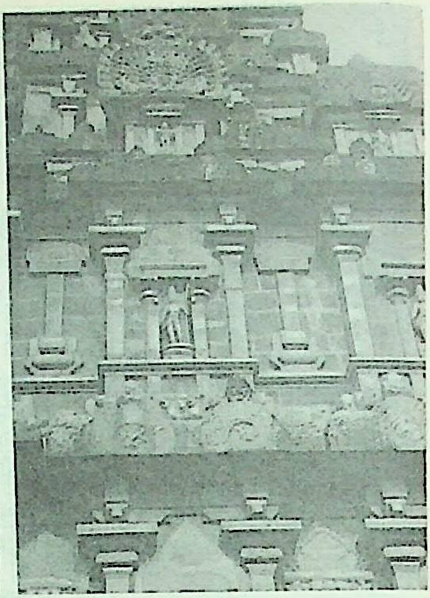

तंजौर। राजराजेश्वर मंदिर के अग्रभाग का एक दृश्य

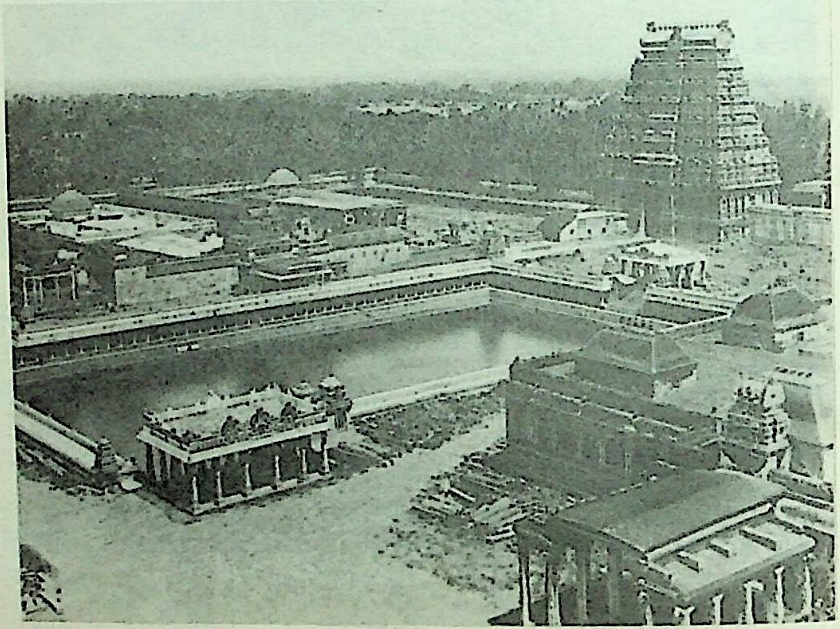

चिदंबरम। मंदिर-नगर। १३वीं-१६वीं शती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

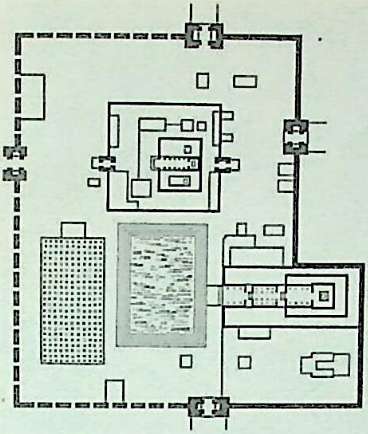

चिदंबरम। मंदिर-नगर की अभिन्यास योजना। १३वीं-१६वीं शती

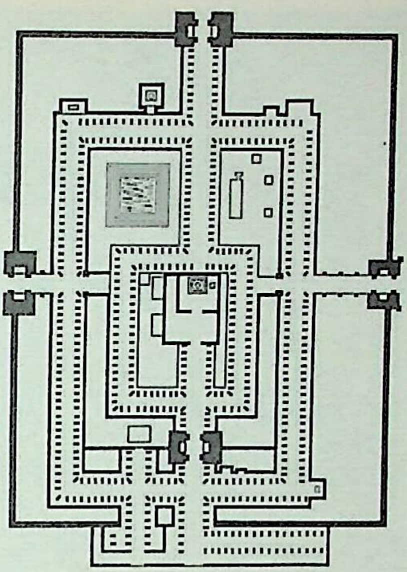

रामेश्वरम। मंदिर-नगर की अभिन्यास योजना। छठी – सत्रहवीं शती

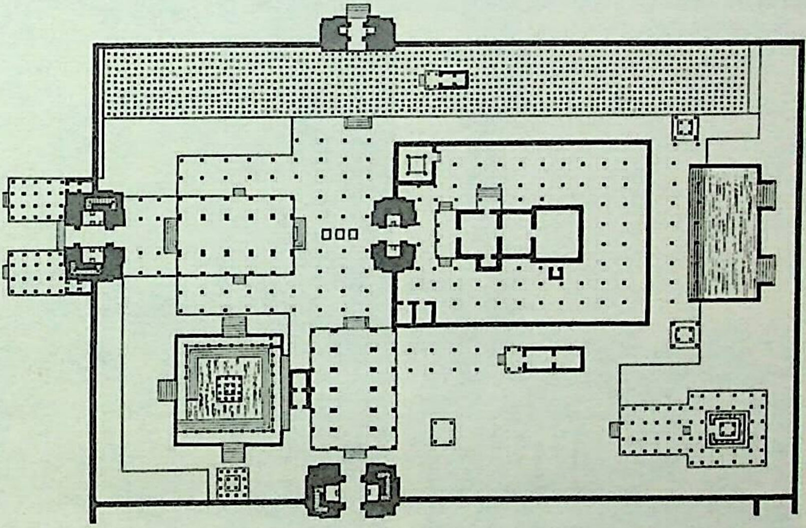

तिन्नेवेल्ली। मंदिर-नगर की अभिन्यास योजना का एक भाग। ७वीं-१७वीं शती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

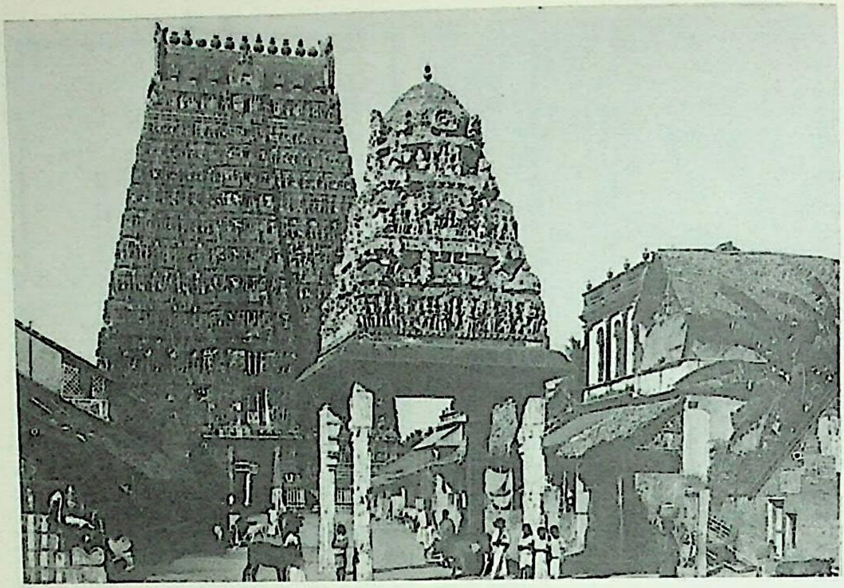

कुंभकोणम। एक नगर-मार्ग

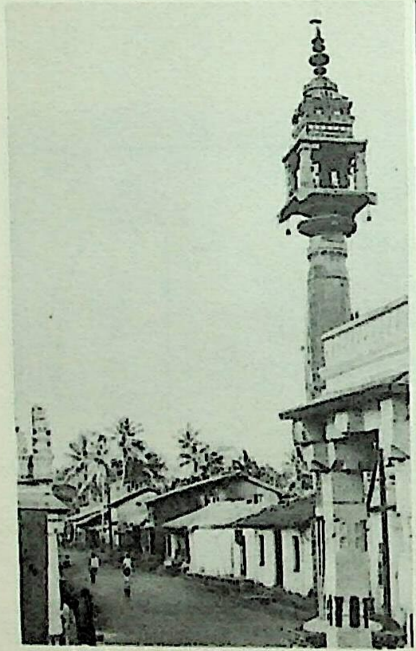

श्रवण-बेलगोला। मार्ग-दीप

तंजौर। मंदिर-मूर्तिशिल्प

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

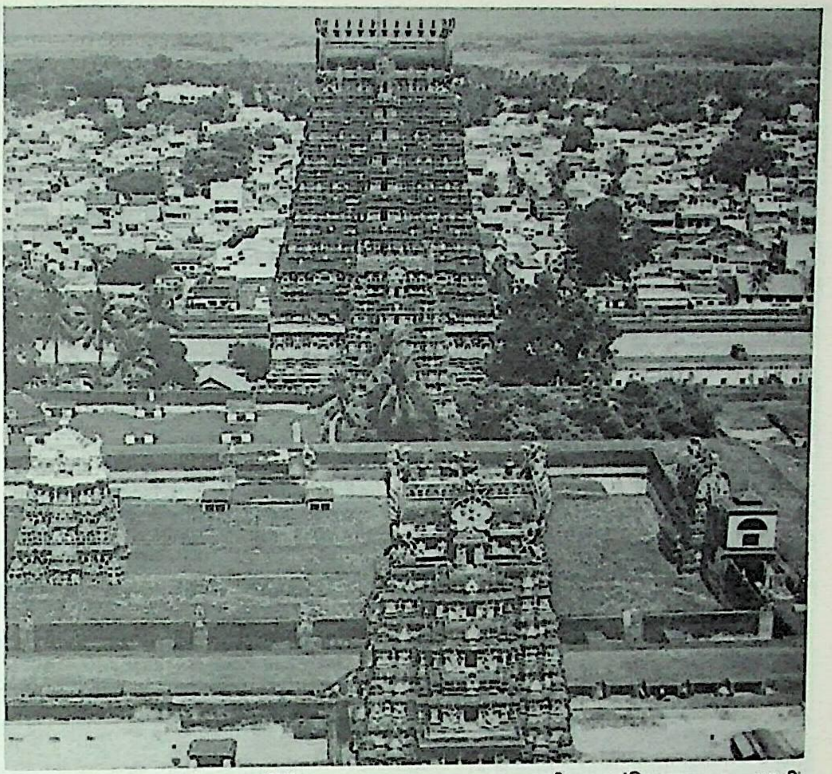

मदुराई । मंदिर-नगर । १३वीं-१९वीं शती

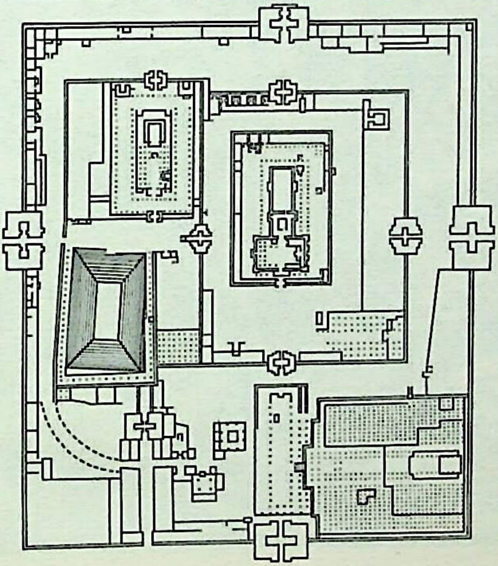

मदुराई । मंदिर-नगर की अभिन्यास योजना । १३वीं-१७वीं शती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दक्षिण भारतीय मंदिर-मूर्तिशिल्प

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

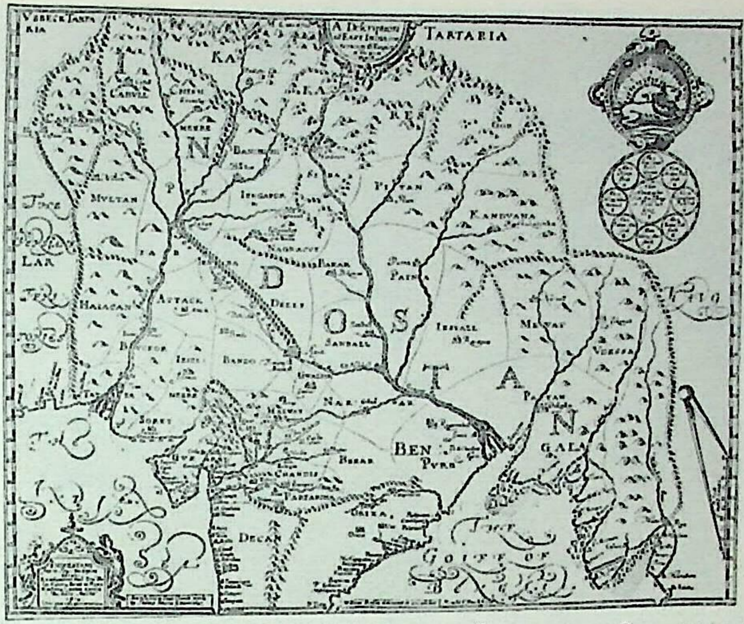

उत्तरी भारत का मानचित्र। १६१९ ई०

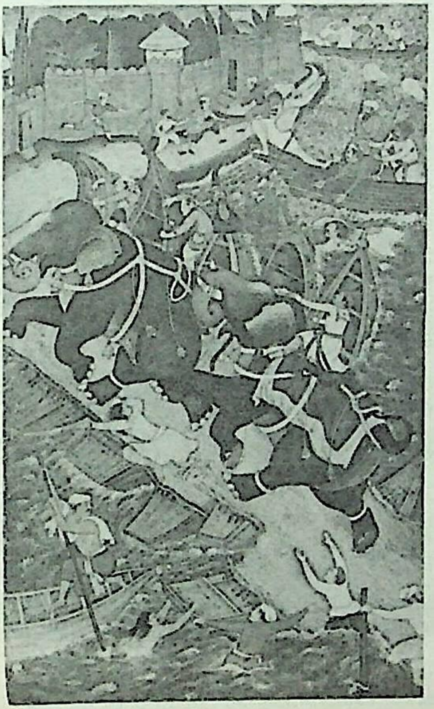

'अकबरनामा' से एक मिनियेचर चित्र। १६वीं शती। झेलम के तट पर अकबर की लड़ाई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

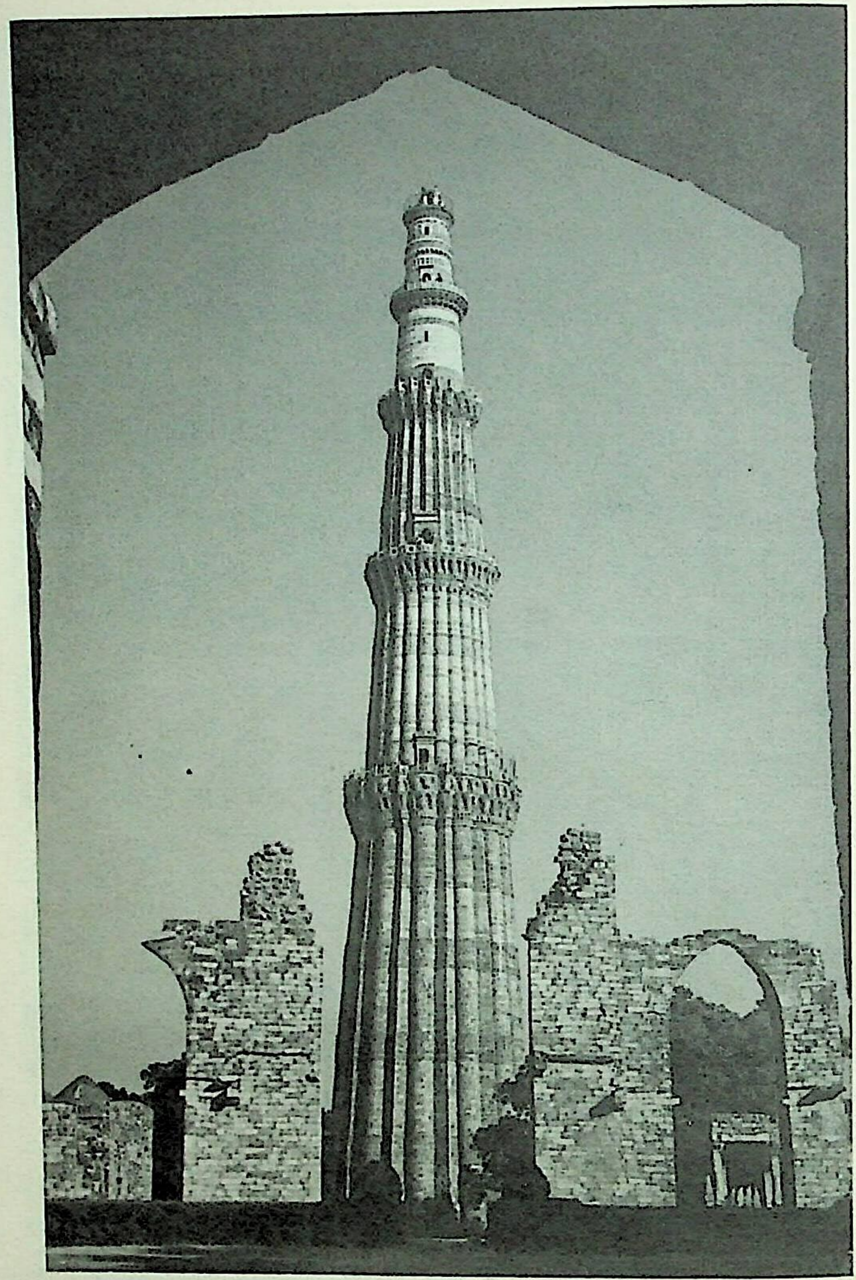

दिल्ली। कुतुब मीनार। १२००-१२२० ई०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

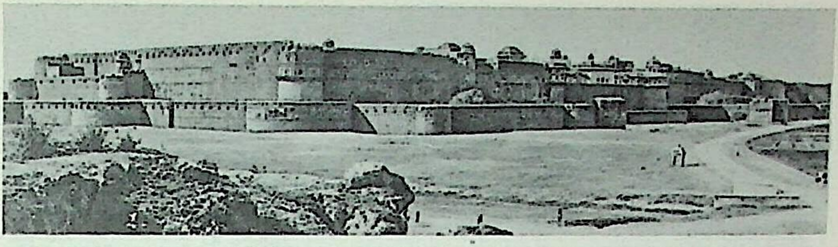

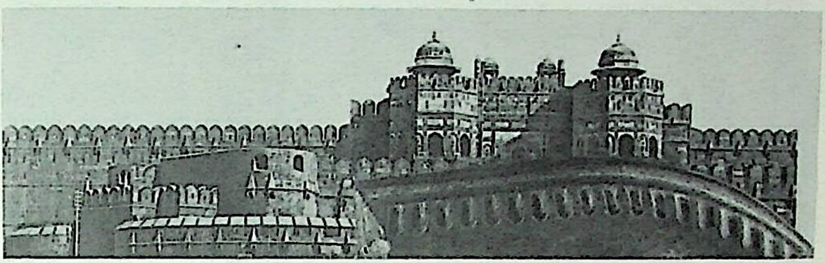

आगरा। लाल क़िला। १५७०-१६०० ई०

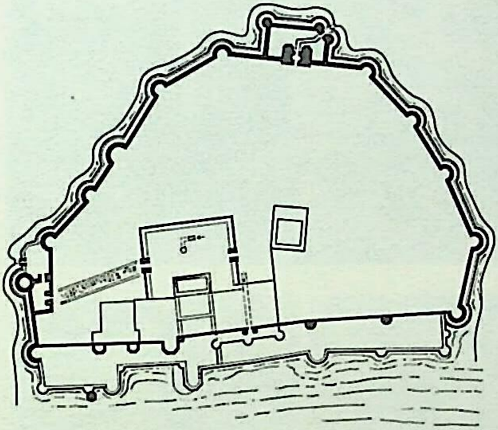

आगरा। लाल क़िले की अभिन्यास योजना

आगरा। लाल क़िले से नगर का दृश्य

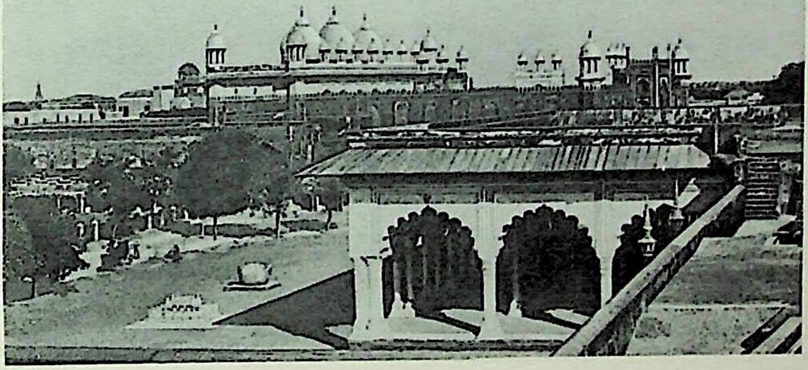

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

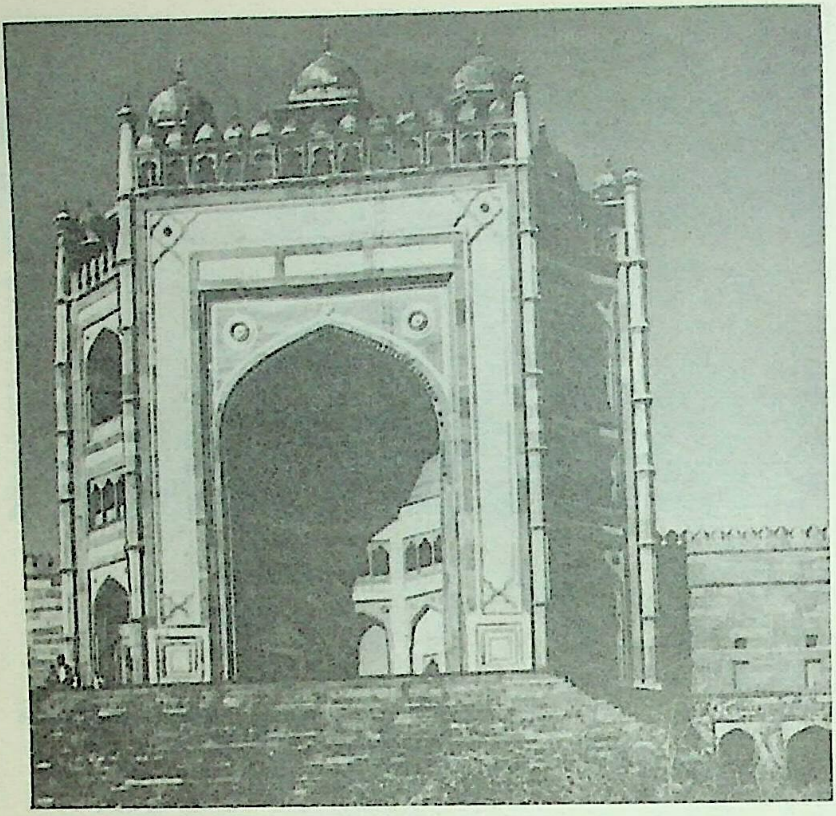

फ़तेहपुर सीकरी। बुलंद दरवाज़ा।
१५७२ ई०

फ़तेहपुर सीकरी। दीवाने-ख़ास।
१५७० ई०

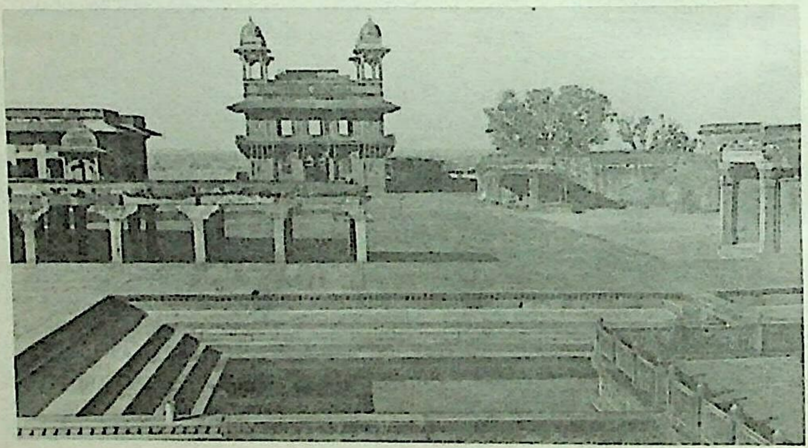

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

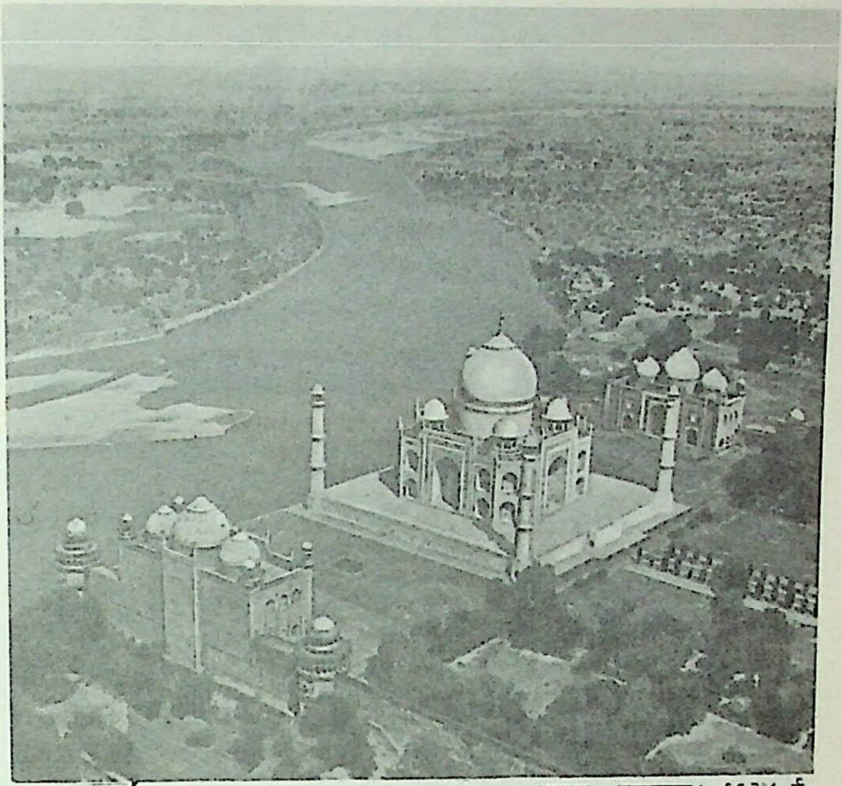

आगरा। ताजमहल। १६३४ ई०

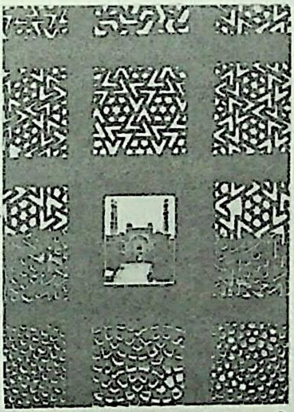

सिकंदरा में अकबर के मक़बरे की एक जालीदार खिड़की। १६१३ ई०

फ़तेहपुर सीकरी। पंचमहल। १५८० ई०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

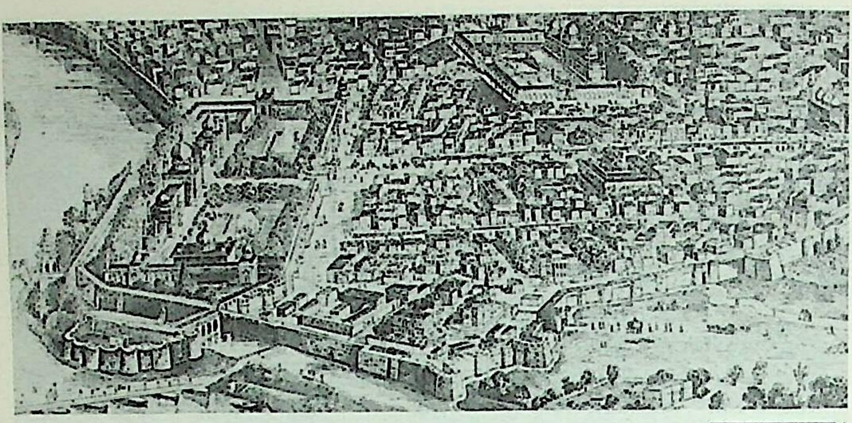

शाहजहानावाद।
१६३६-१६४८ ई०।
ग्राव्यूर

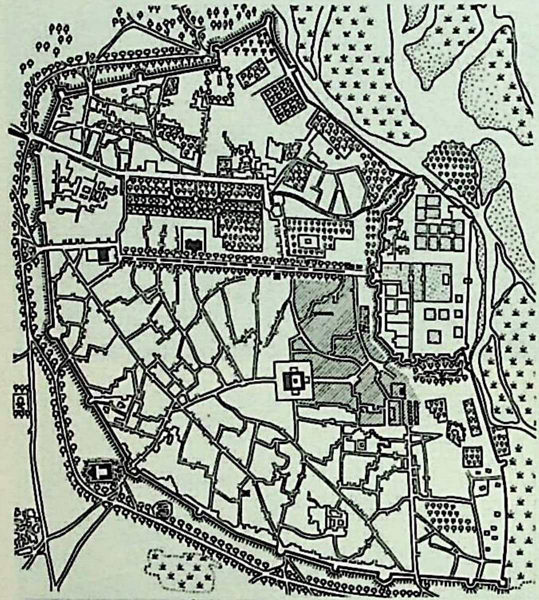

शाहजहानावाद।
शहरपनाह के भीतर
स्थित नगर का नक़्शा

शाहजहानावाद। जामा
मस्जिद। १६४४-१६५८
ई०। ग्राव्यूर

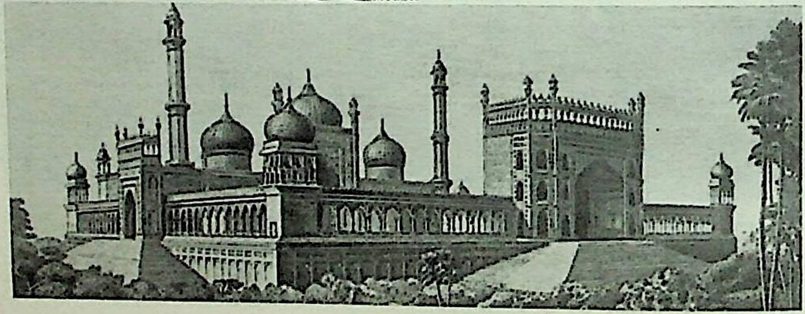

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

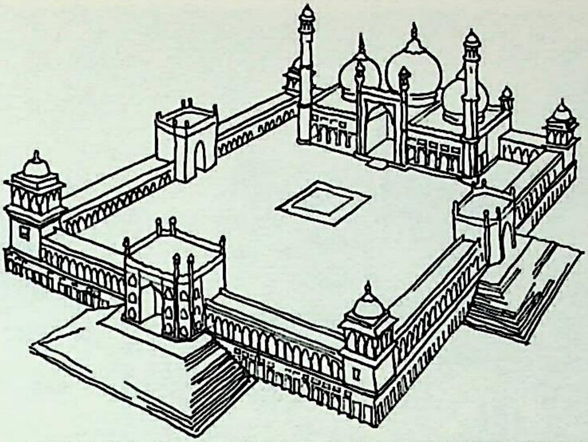

मस्जिद का क्लासिकल
रचना-विन्यास

शाहजहानाबाद के
किले का एक दरबार
हॉल। ग्राव्यूर

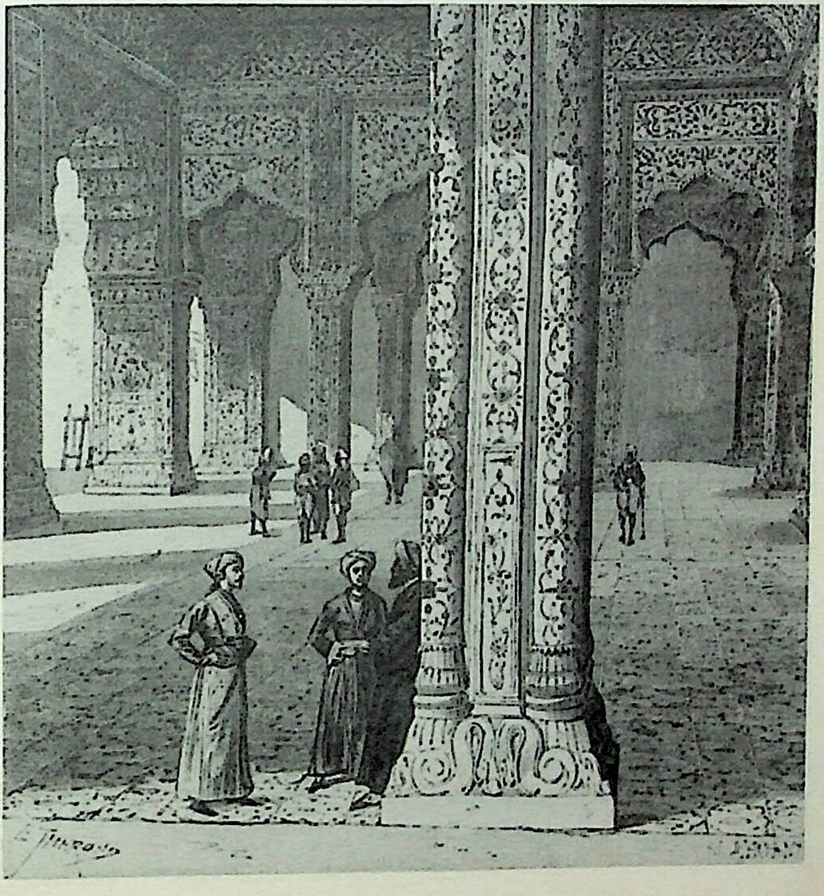

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

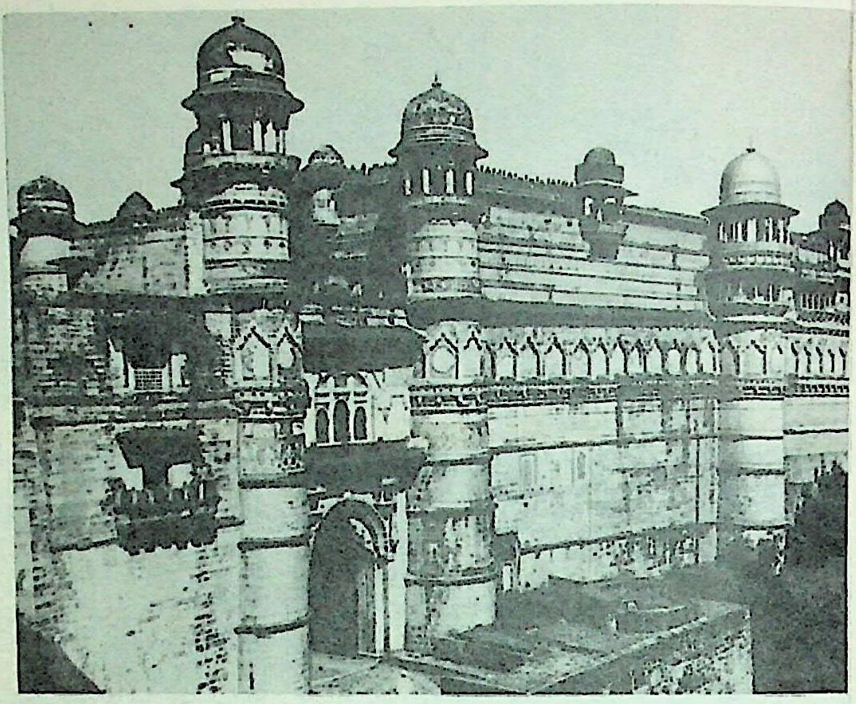

ग्वालियर। क़िला। ६हीं-१६वीं शती

लखनऊ। नगरोद्यान। १८वीं शती

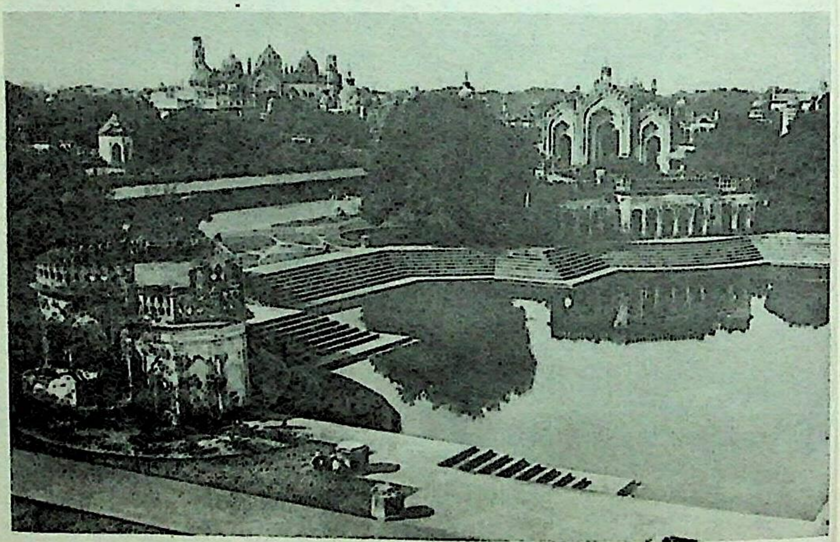

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

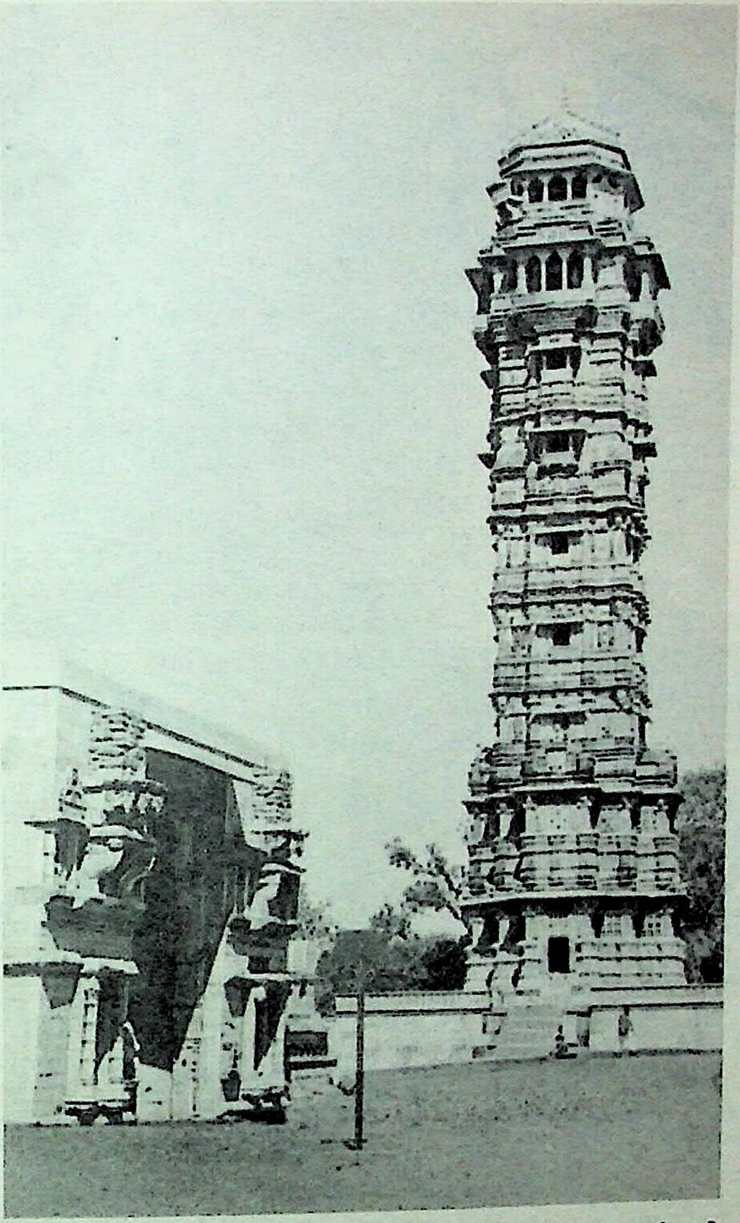

चित्तौड़गढ़। दुर्ग-द्वार और कीर्त्तिस्तंभ। १३वीं शती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जैसलमेर। प्राचीर के भीतर स्थित नगर का नक़्शा। १३वीं शती

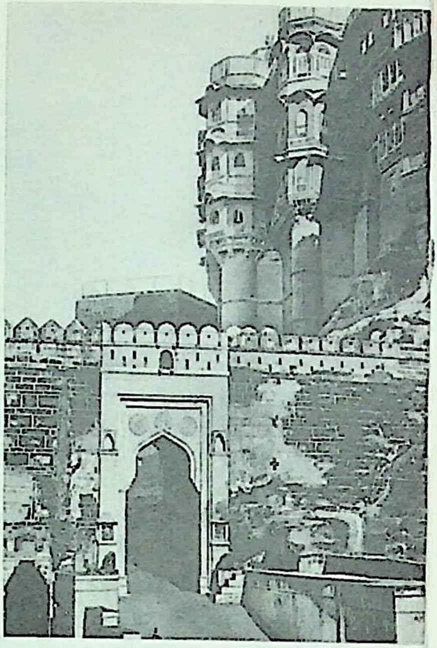

जोधपुर। १६वीं शती के दुर्ग का सातवां द्वार

जोधपुर। दुर्ग। १६वीं शती

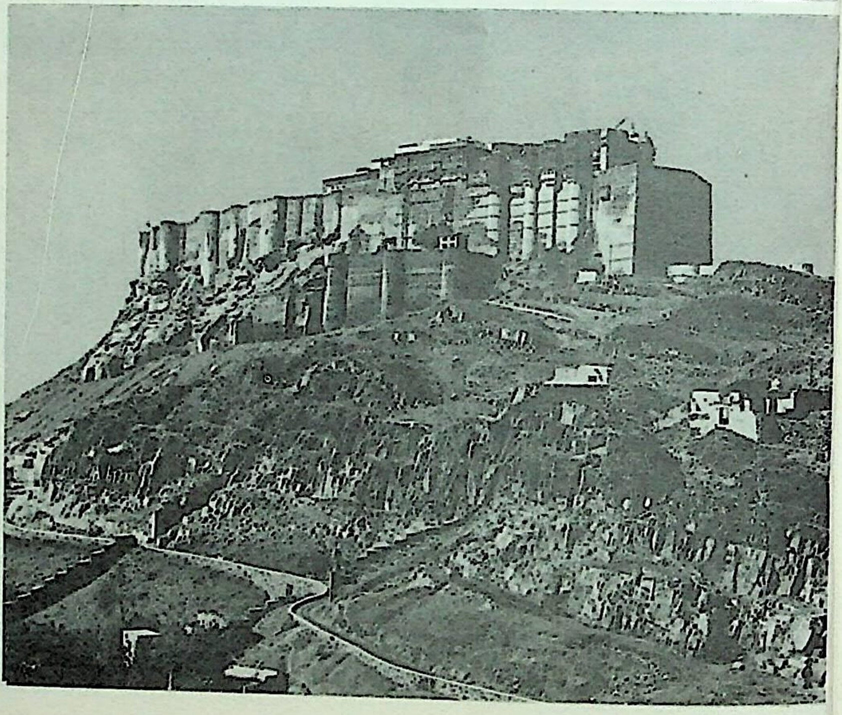

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

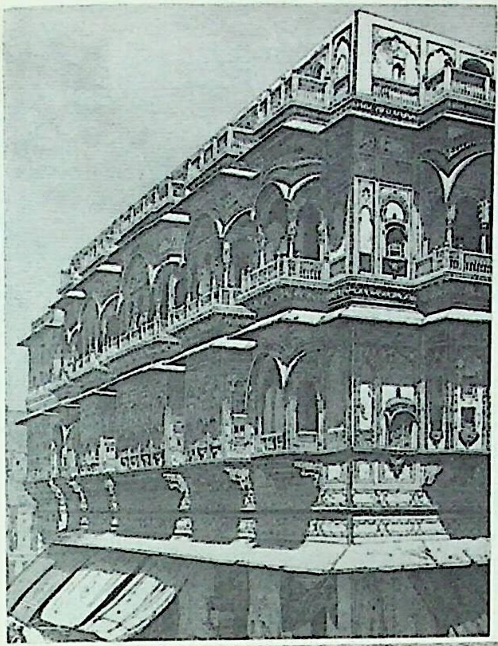

अजमेर। एक व्यापारी की हवेली। ग्राव्यूर

अजमेर। नगर की मुख्य सड़क। ग्राव्यूर

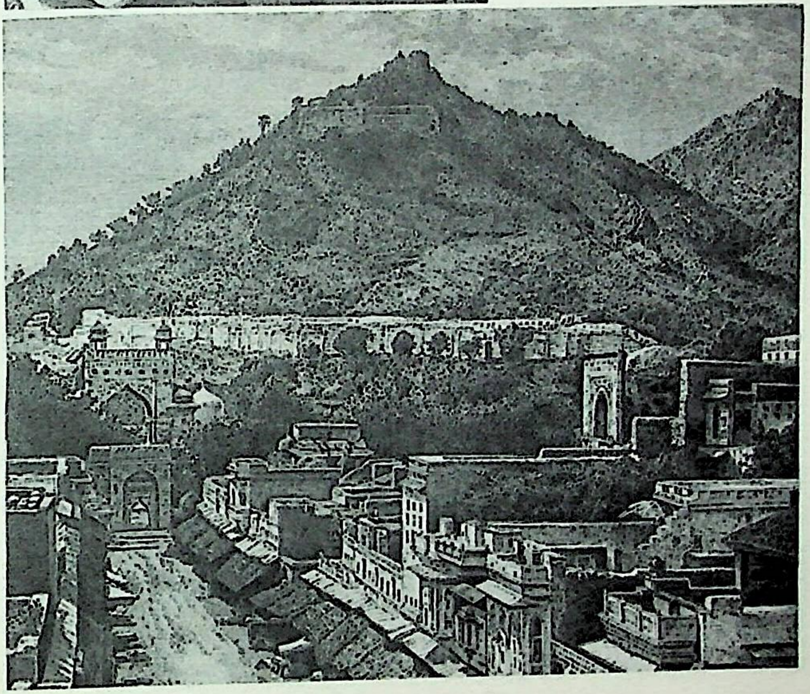

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

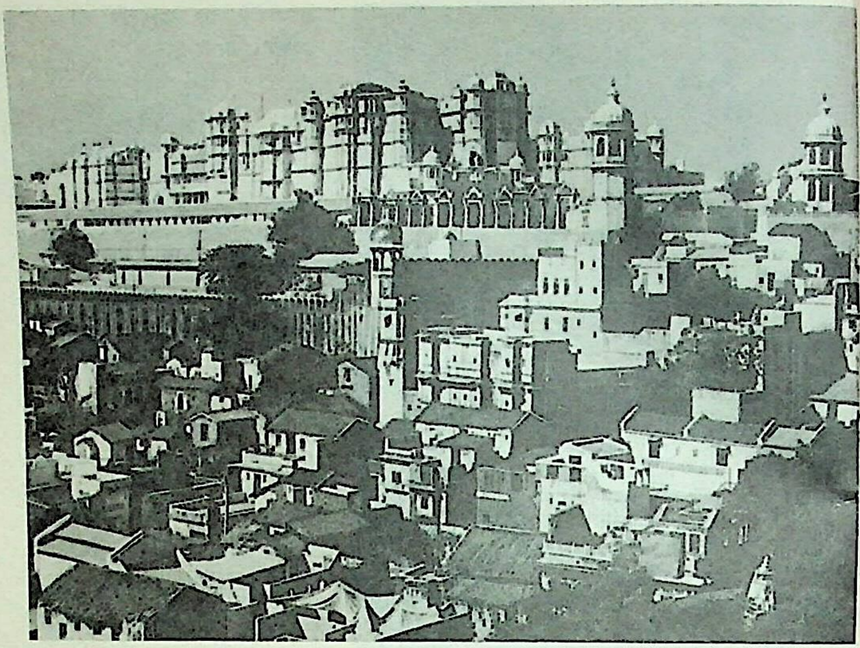

उदयपुर। नगर-द्वार। १६वीं शती.

उदयपुर। राजमहल से पिछौला भील का दृश्य

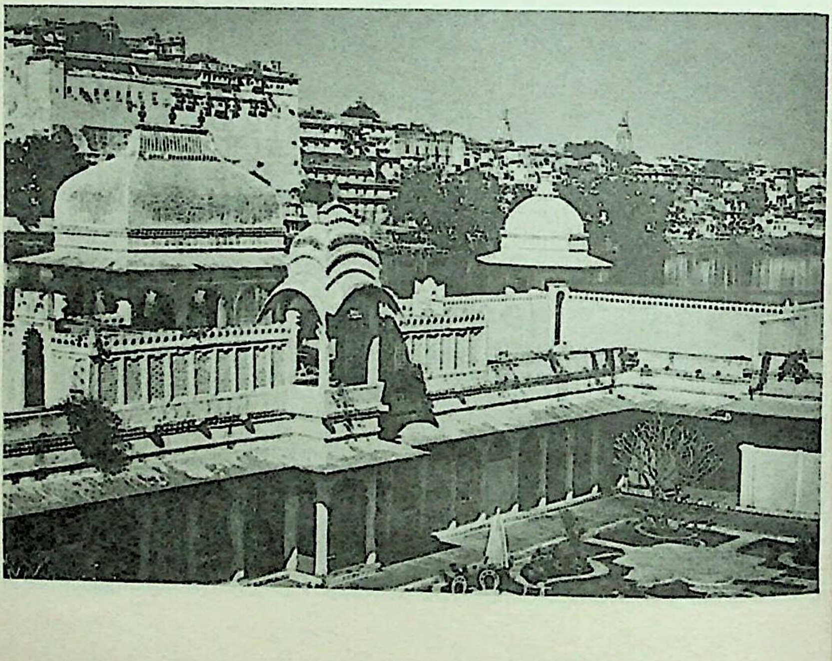

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

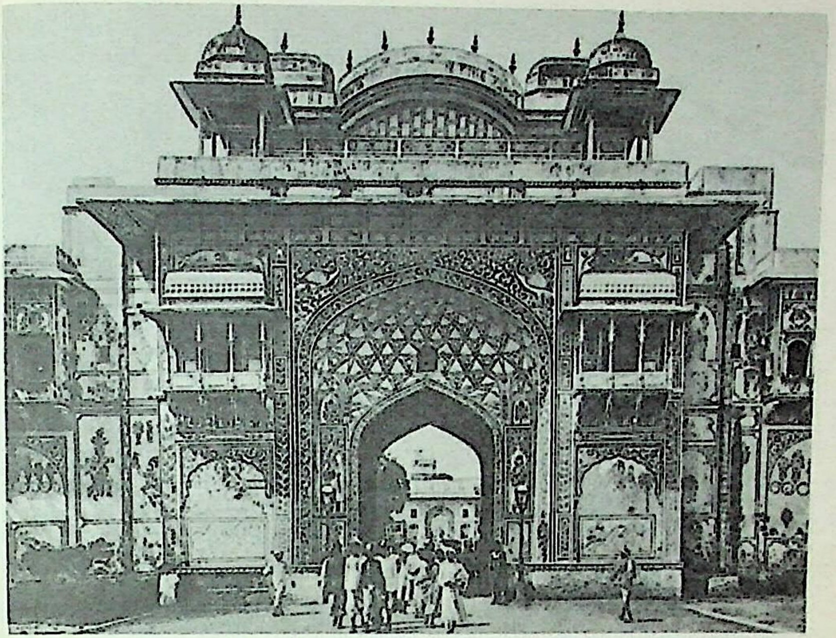

जयपुर। नगर-द्वार। १८वीं शती। ग्राव्यूर

आमेर। ६वीं-१७वीं शती। ग्राव्यूर

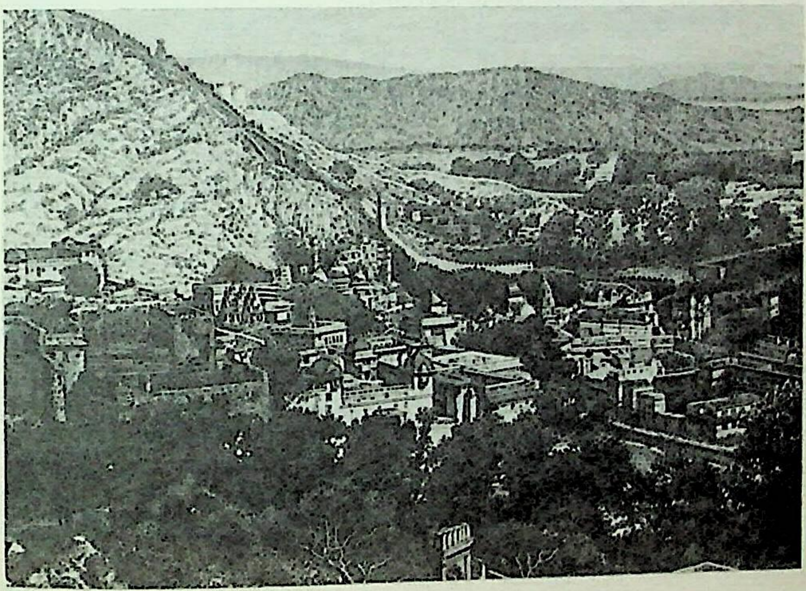

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

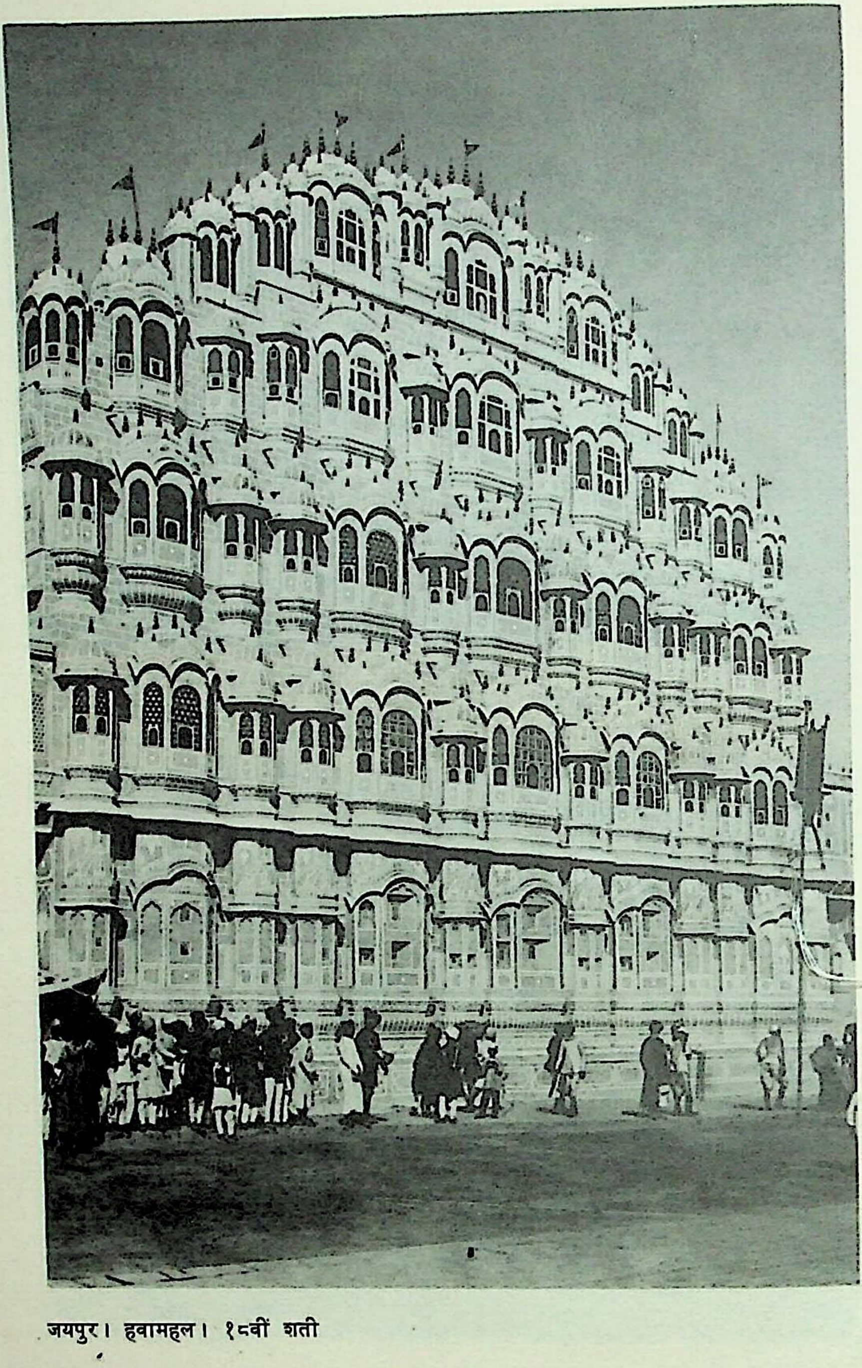

जयपुर। हवामहल। १८वीं शती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

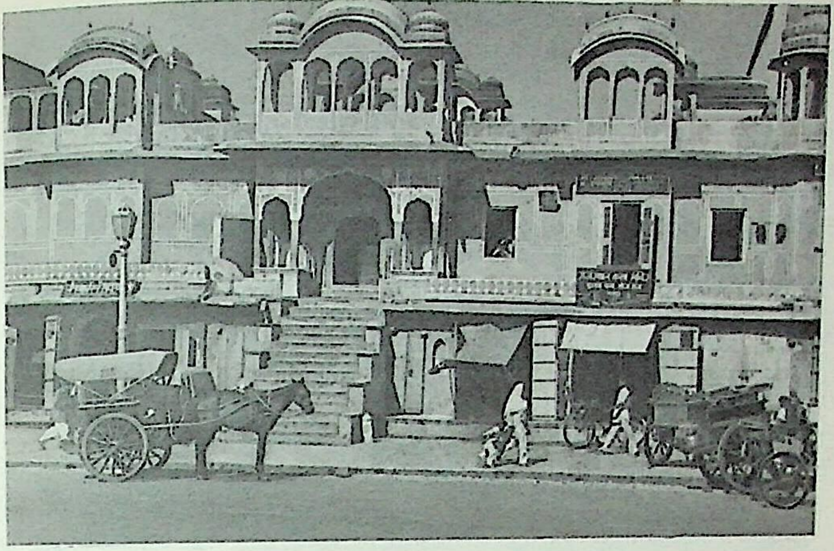

जयपुर। नगर का एक मार्ग

जयपुर। नगर का नक़्शा। १७२८ ई०

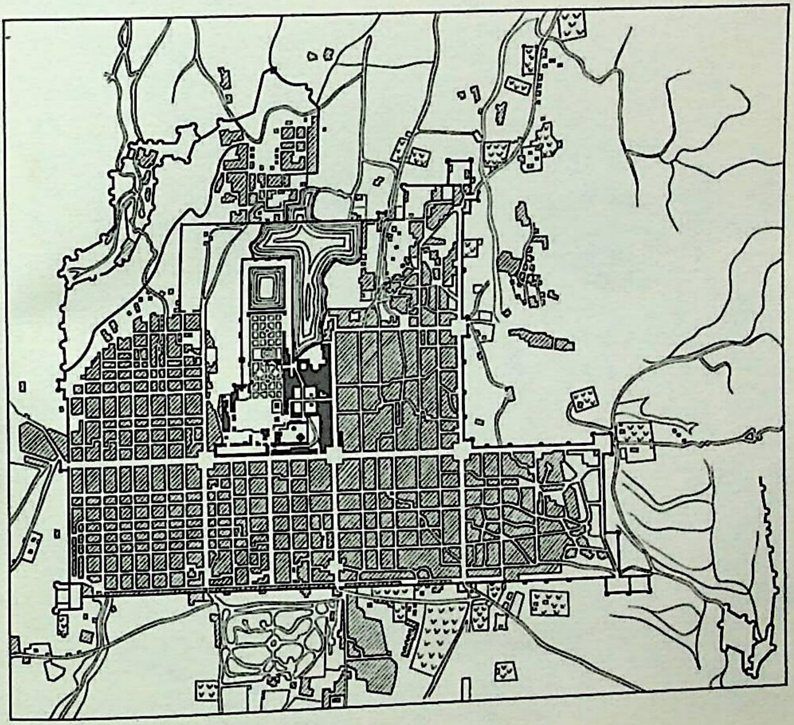

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

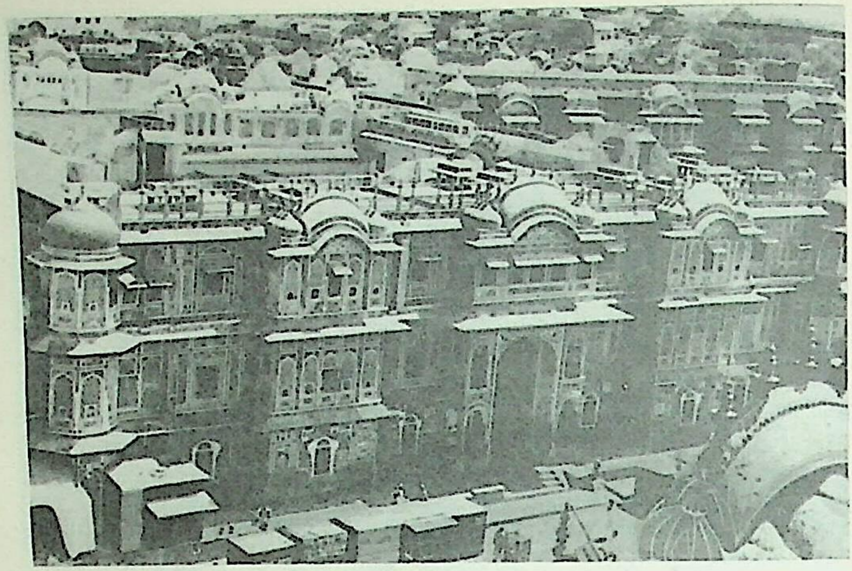

जयपुर। हवामहल की छत से एक दृश्य

वालंजर। नगर चौक। ग्राव्यूर

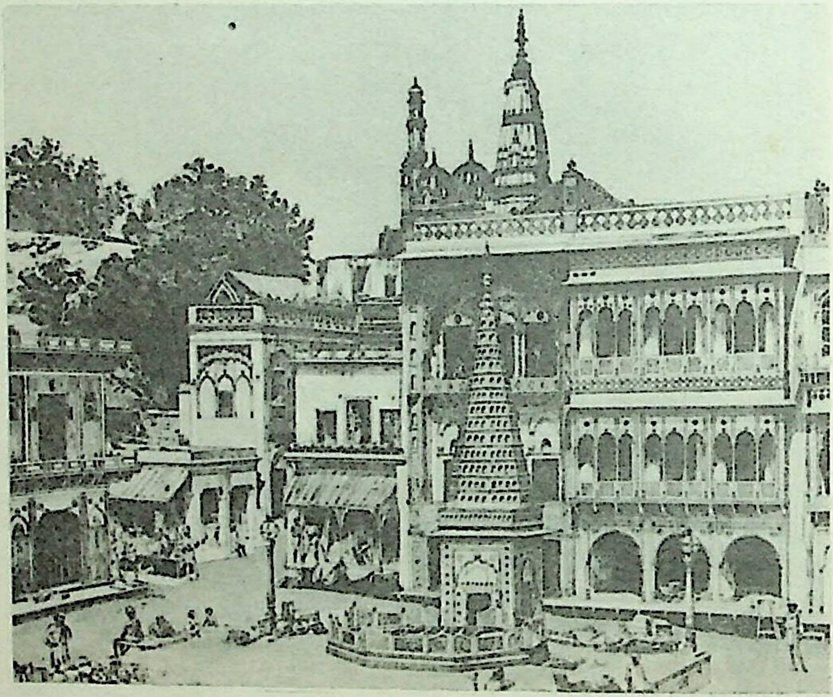

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

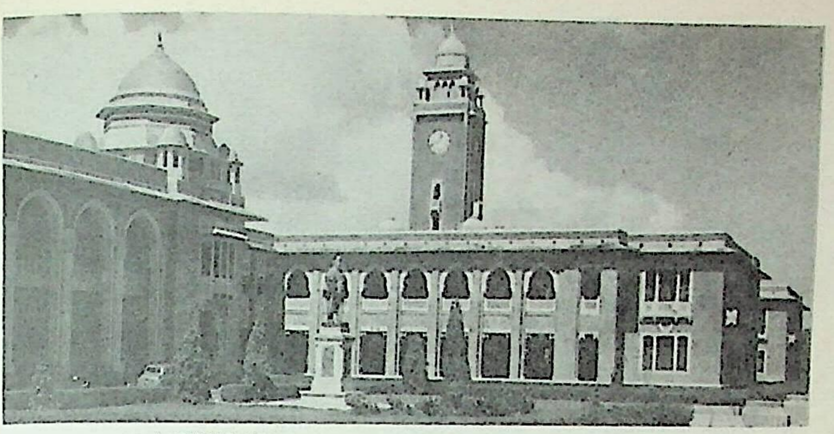

मद्रास। विश्वविद्यालय
भवन। १९वीं शती

मद्रास। नगर का नक़्शा।
१८वीं-२०वीं शती

वाराणसी। घाट।
ग्राव्यूर

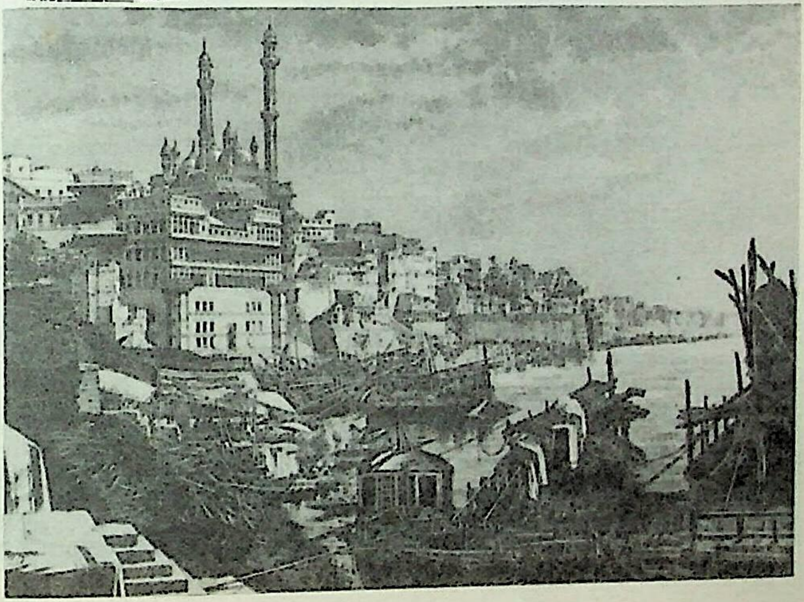

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

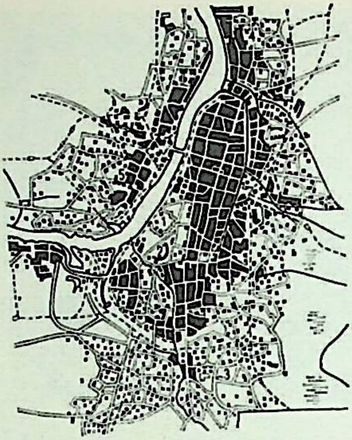

कलकत्ता। नगर का नक्शा। २०वीं शती

कलकत्ता। नगर की इमारतें। १९वीं शती

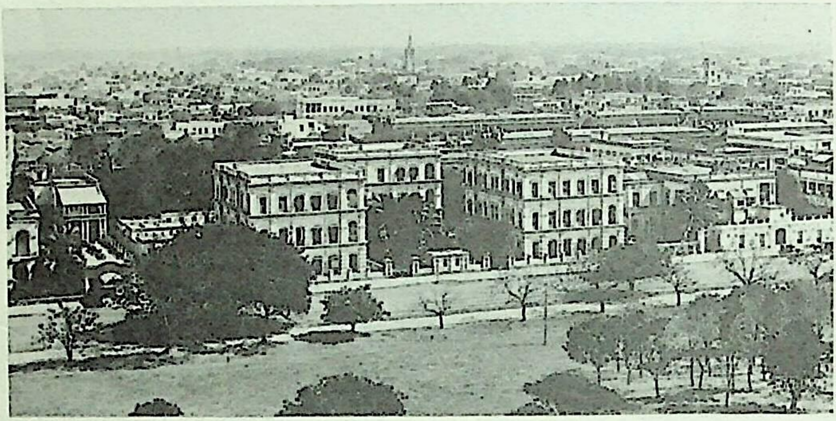

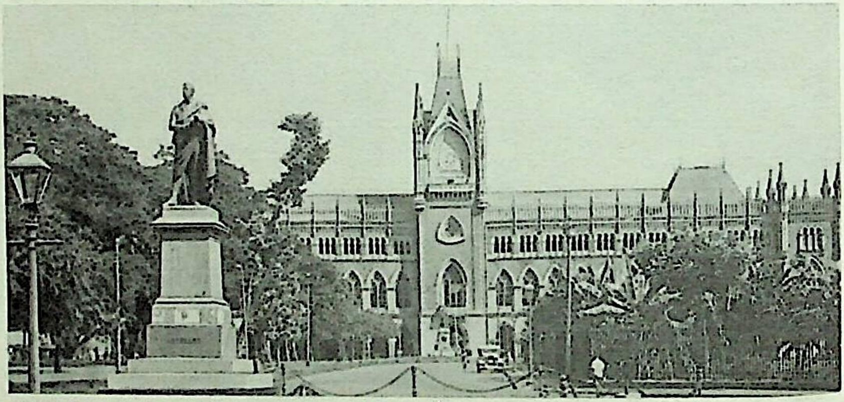

कलकत्ता। उच्च न्यायालय का भवन। १८७२ ई०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कलकत्ता। ओल्ड कोर्ट हाउस स्ट्रीट। १७४६ ई०

कलकत्ता। नगर का एक स्क्वायर

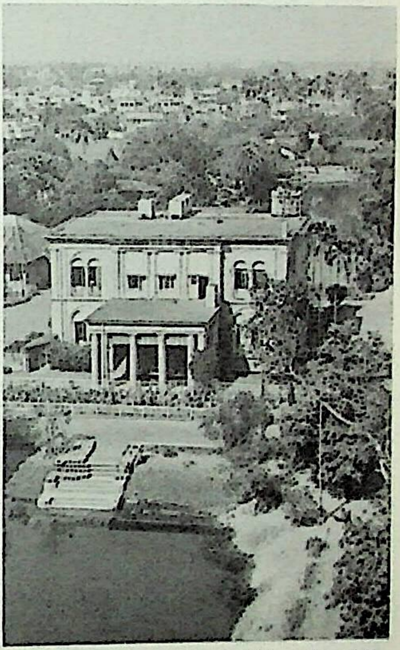

कलकत्ता। ब्रिटिश रेजीडेंट की कोठी।
१८वीं शती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

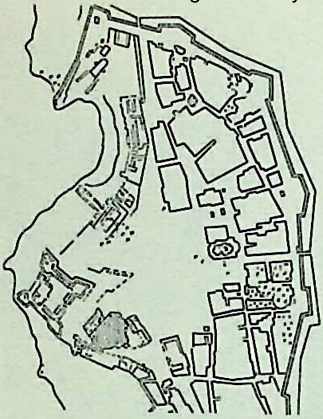

बंबई । द्वीपों पर निर्मित इमारतों का नक्शा । १६७० ई०

बंबई का नक्शा । १९वीं शती-२०वीं शती का आरंभ

बंबई । गेटवे ऑफ़ इंडिया । १९वीं शती

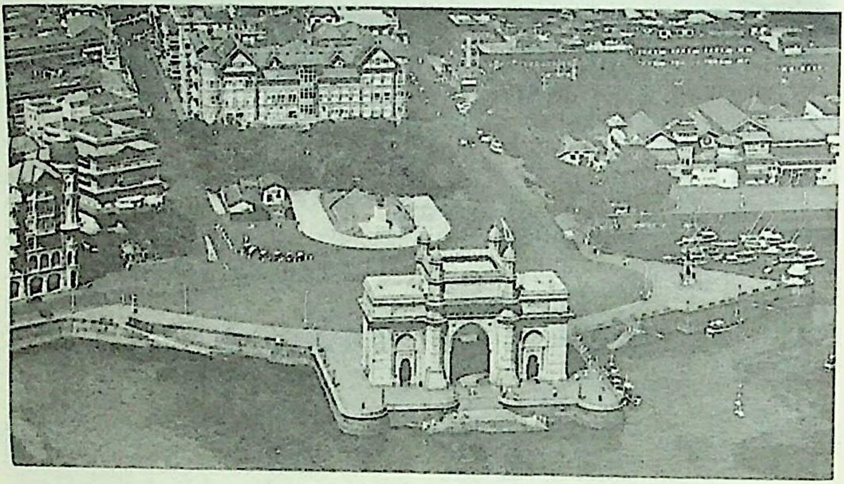

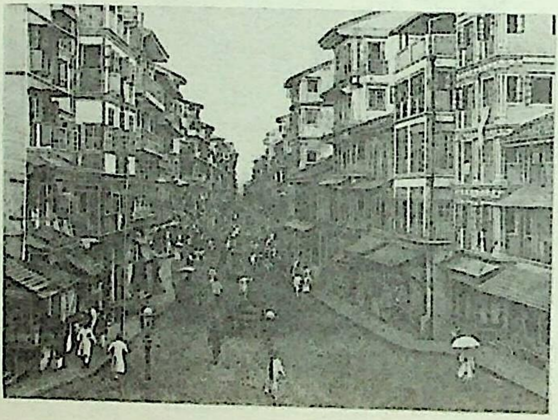

बंबई । १८वीं शती के अंत की एक सड़क । ग्राव्यूर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

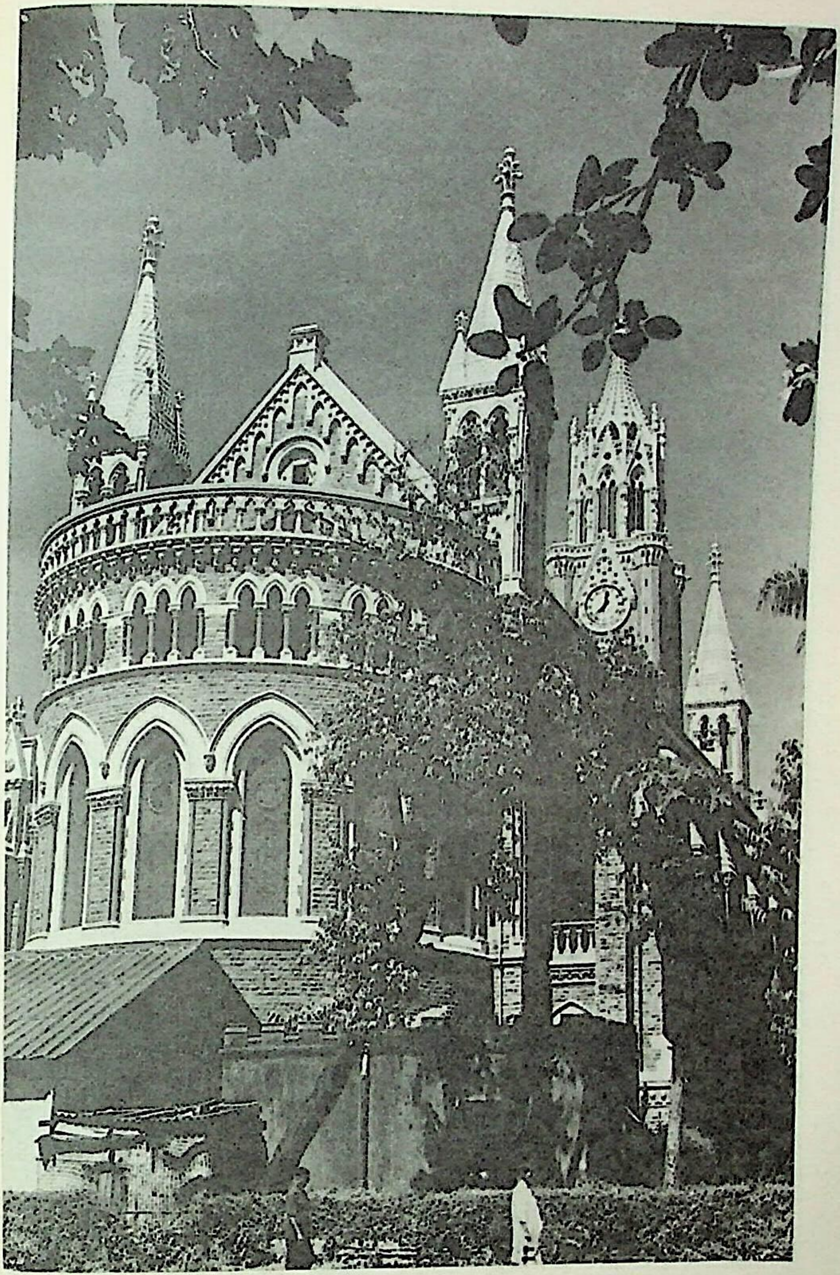

बंबई। नवगोथिक शैली में निर्मित विश्वविद्यालय की इमारत। १९वीं शती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बंबई। विक्टोरिया टर्मिनस रेलवे स्टेशन। १८६५ ई०

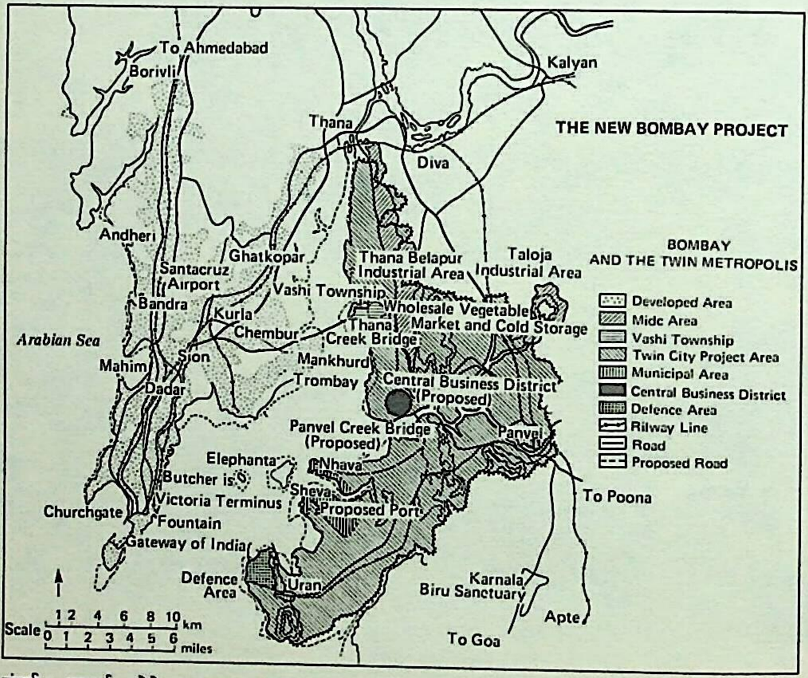

बंबई। चार्ल्स कोरेआ द्वारा १९६०-१९७० में प्रस्तावित नये बंबई की अभिन्यास योजना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

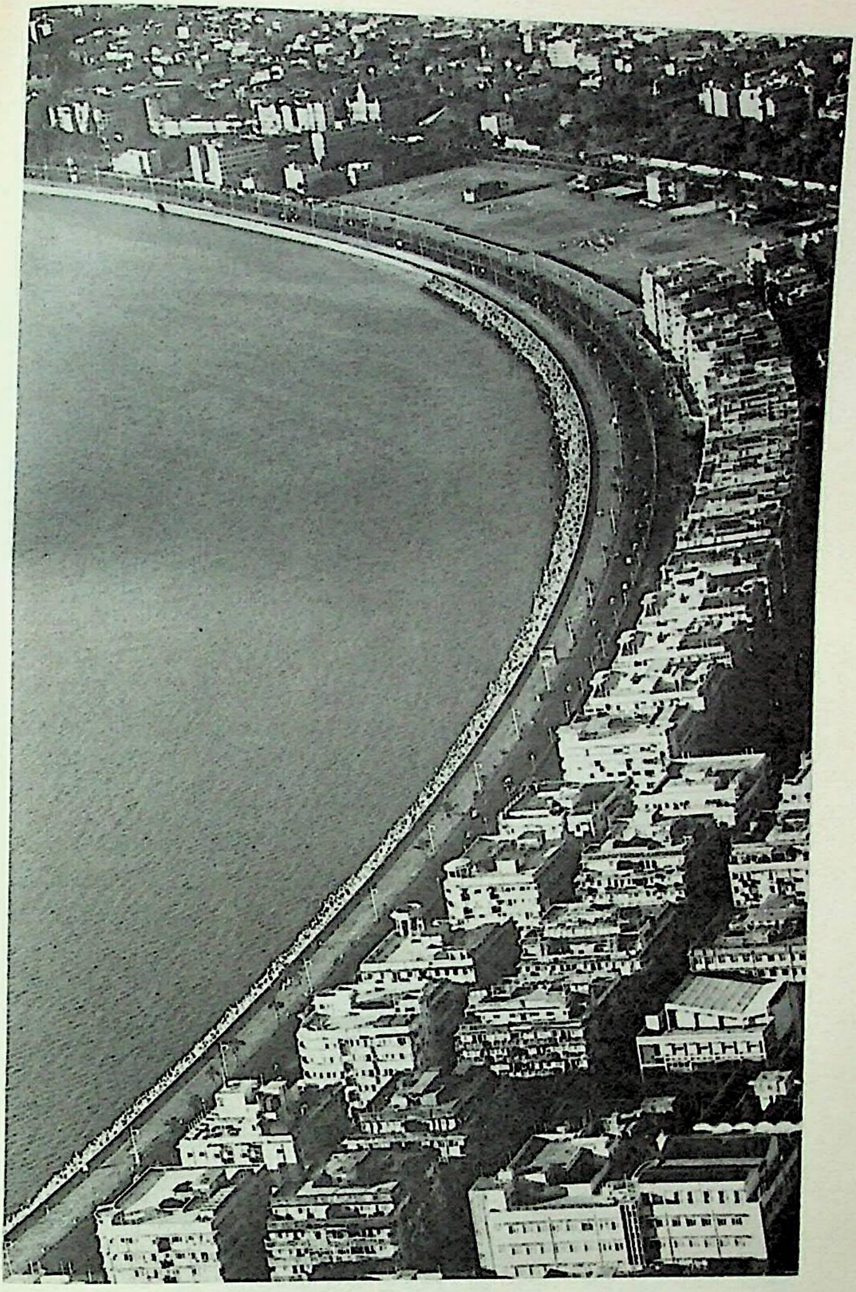

बंबई का समुद्रतट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

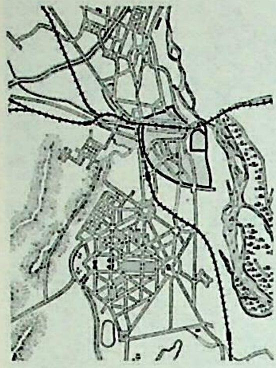

नयी दिल्ली। ई० लूटियेन्स के डिज़ायन के अनुसार नगर की अभिन्यास योजना। १९११ ई०

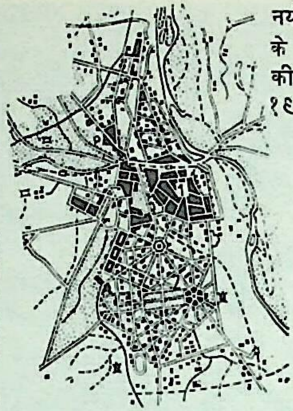

दिल्ली। नयी तथा पुरानी दिल्ली का नक़्शा

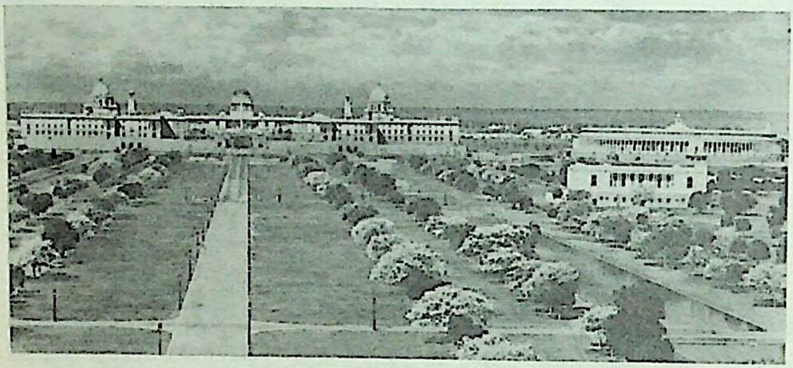

नयी दिल्ली। सरकारी इमारतों का एक दृश्य। १९११-१९३१ ई०

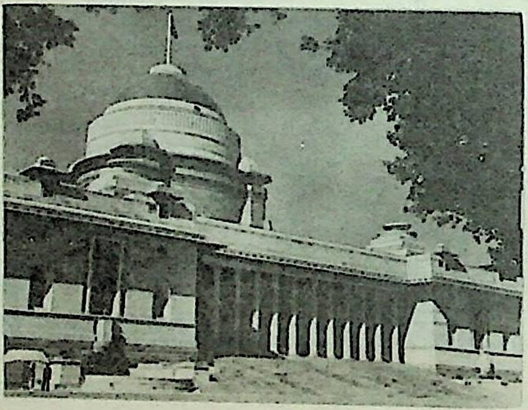

नयी दिल्ली। राष्ट्रपति भवन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

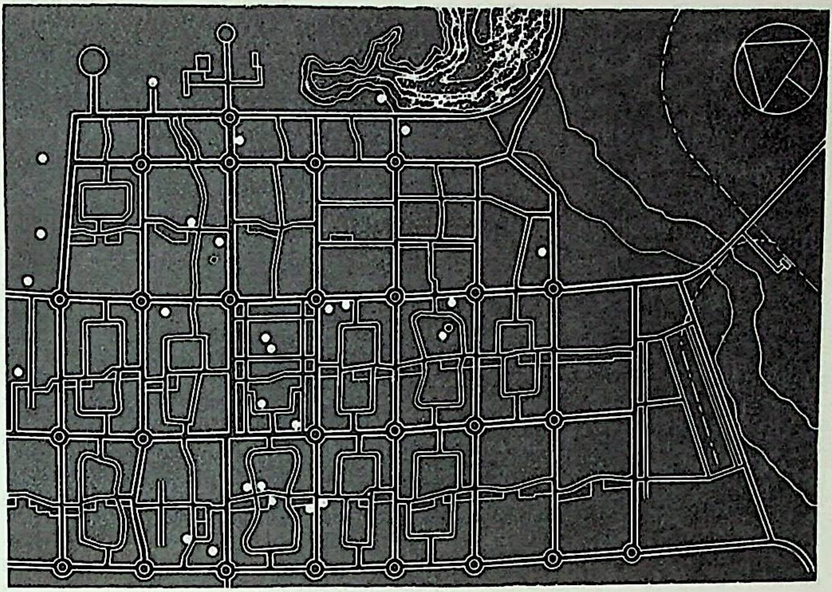

चंडीगढ़। नगर की अभिन्यास योजना। १९५२। डिज़ायनर – ला कार्बूज़िये

चंडीगढ़। विधान भवन। १९५६। वास्तुशिल्पी – ला कार्बूज़िये

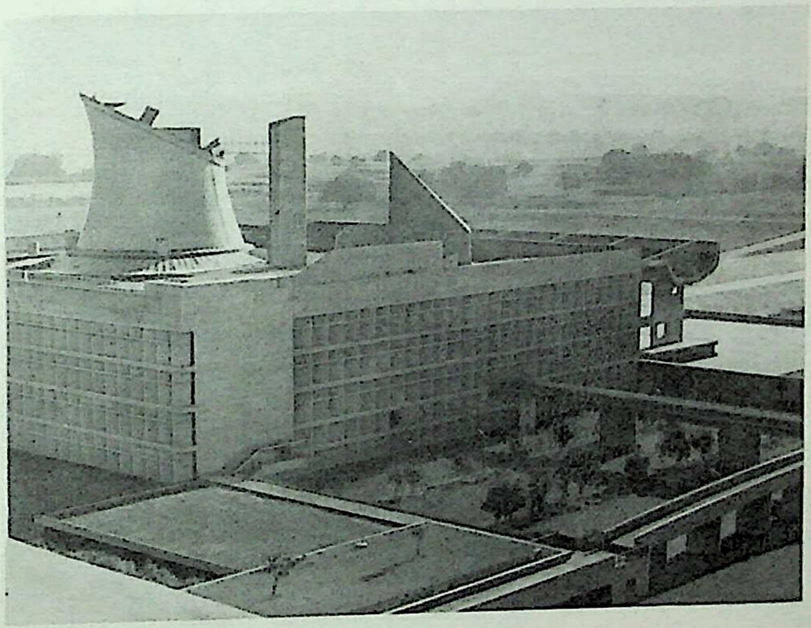

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

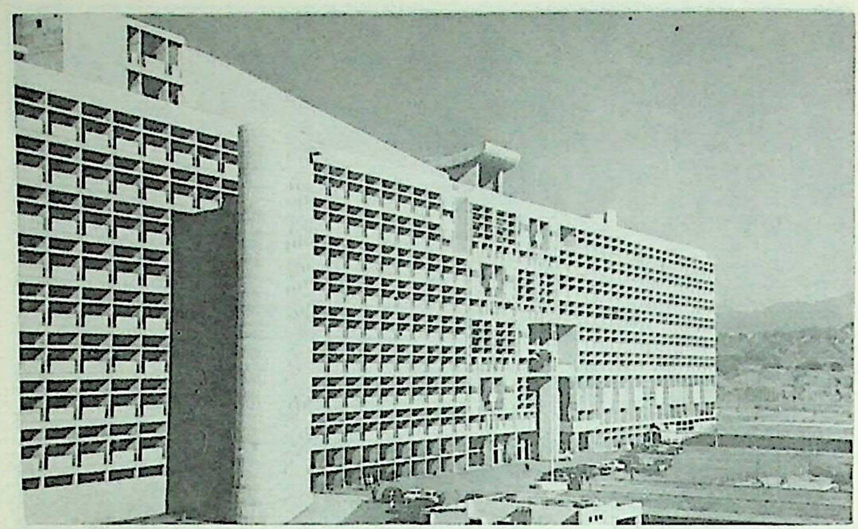

चंडीगढ़। सचिवालय भवन। १९५५। वास्तुशिल्पी – ला कार्बूज़िये

चंडीगढ़। सचिवालय भवन। अग्रभाग का एक हिस्सा

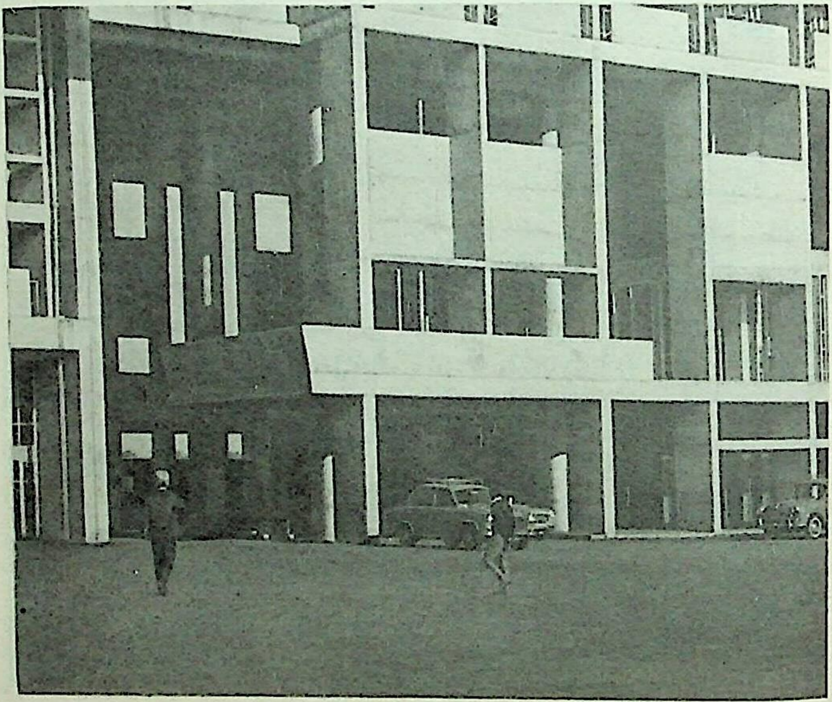

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

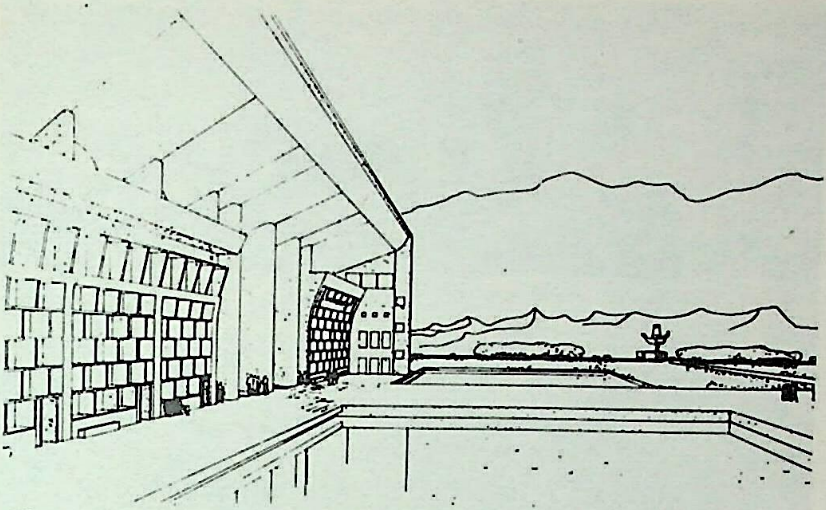

चंडीगढ़। उच्च न्यायालय भवन। १९५६। वास्तुशिल्पी – ला कार्बूज़ियें। कच्चा नक्शा

चंडीगढ़। गांधी भवन। १९५६। वास्तुशिल्पी – बी० माथुर

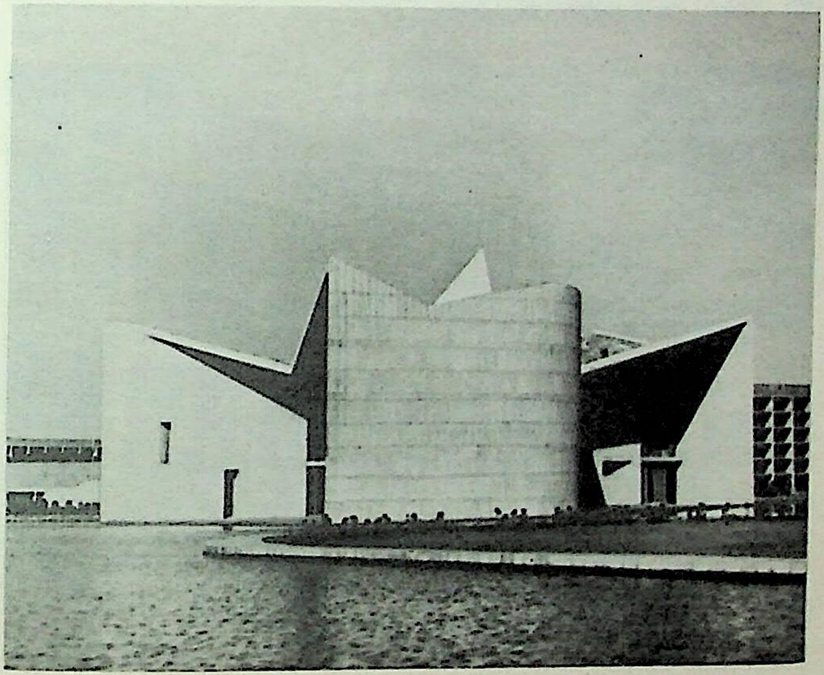

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

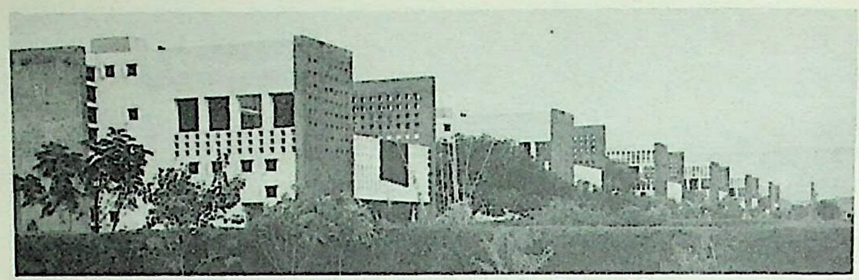

चंडीगढ़। सेक्टर १६ की आवासीय इमारतें। वास्तुशिल्पी – पी० जान्नेरे

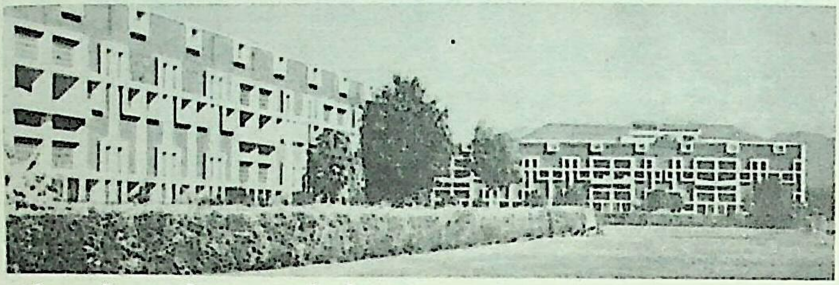

चंडीगढ़। विधायक निवास। वास्तुशिल्पी –
डी० चौधरी, जे० मल्होत्रा तथा अन्य

चंडीगढ़। एक बाज़ार

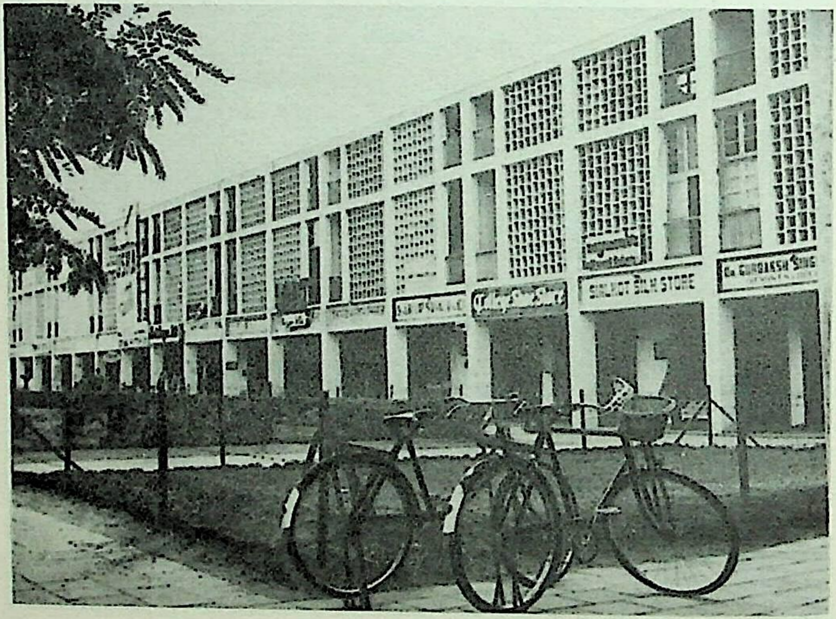

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चंडीगढ़। नगर का एक चिकित्सा केंद्र। वास्तुशिल्पी – एम० शर्मा, ओ० मेहता तथा अन्य

अहमदाबाद। इंस्टीट्यूट ऑफ़ बिज़नेस मैनेजमेंट। १९७२। वास्तुशिल्पी – लुई कान। कच्चा नक़्शा

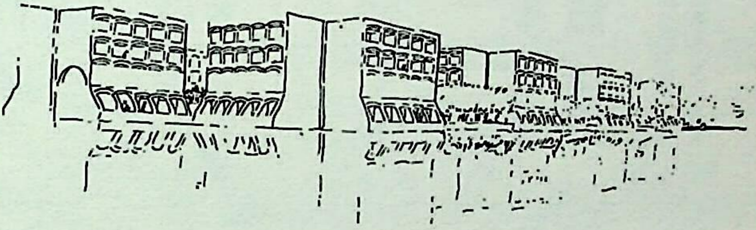

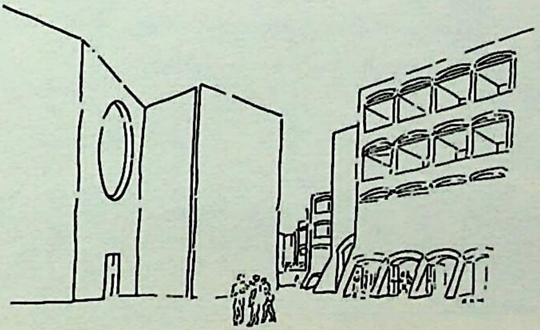

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

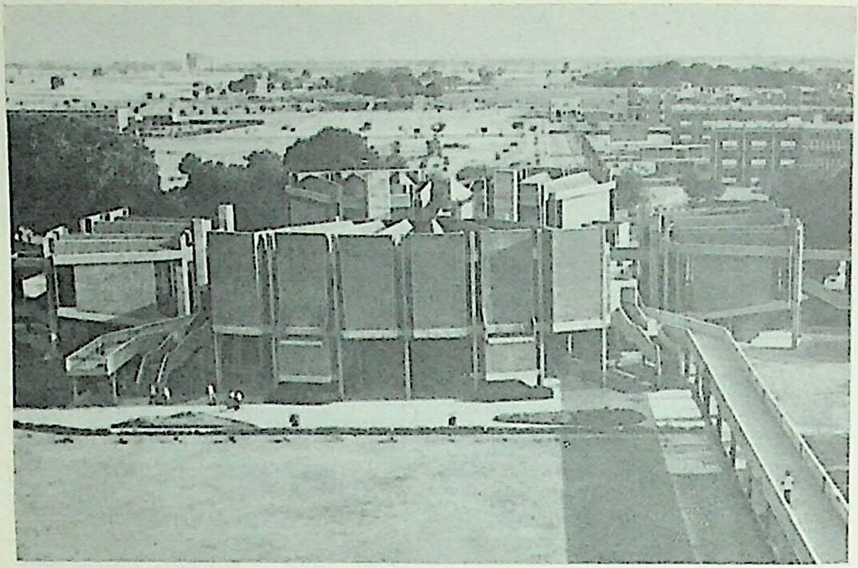

कानपुर। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी। १९६३-१९७०। वास्तुशिल्पी – ए० कानविंदे

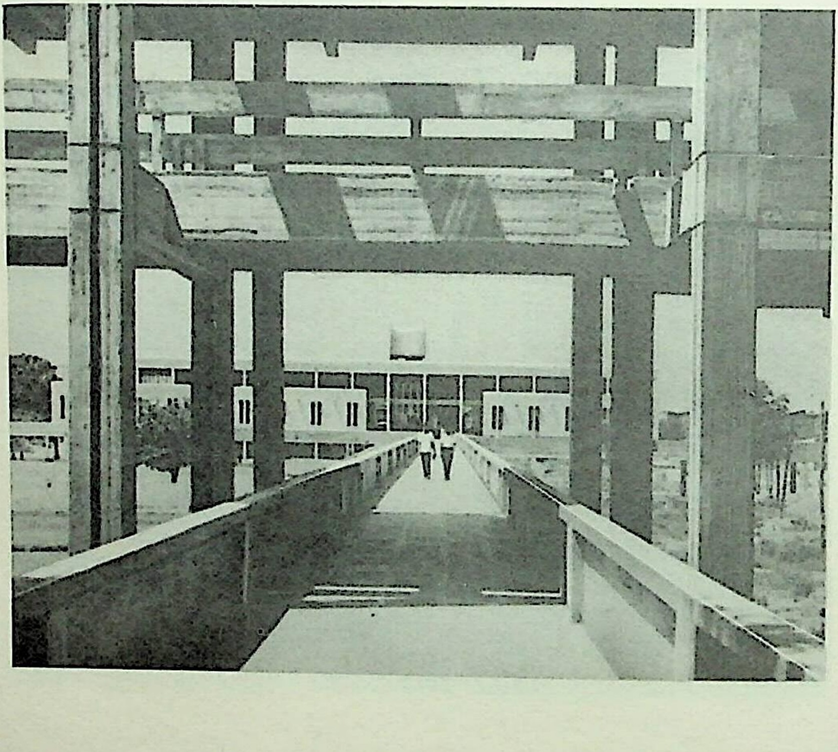

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

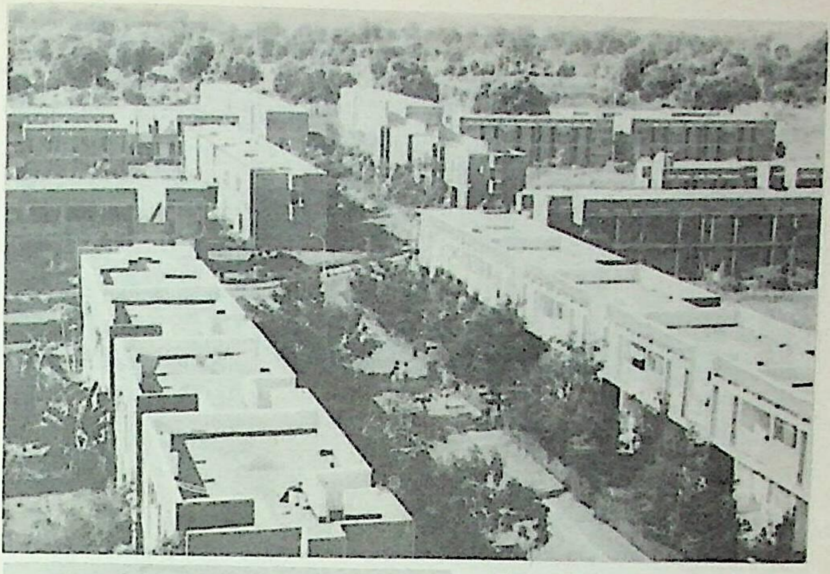

फ़र्टिलाइज़र्स । १९६४ । वास्तुशिल्पी – बी० दोशी

फ़र्टिलाइज़र्स । पानी की टंकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

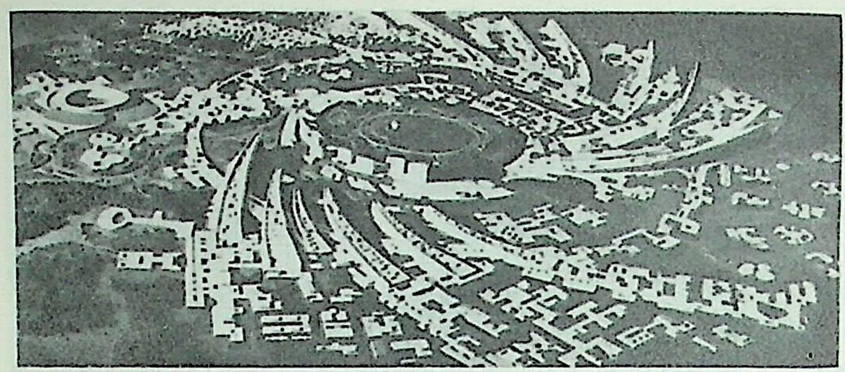

औरोवील। १९६८-१९७६। मॉडल।
वास्तुशिल्पी – रोजेर आंजे

कोटा। १९६० के दशक में निर्मित मज़दूर बस्ती। वास्तुशिल्पी – ए० कानविंदे

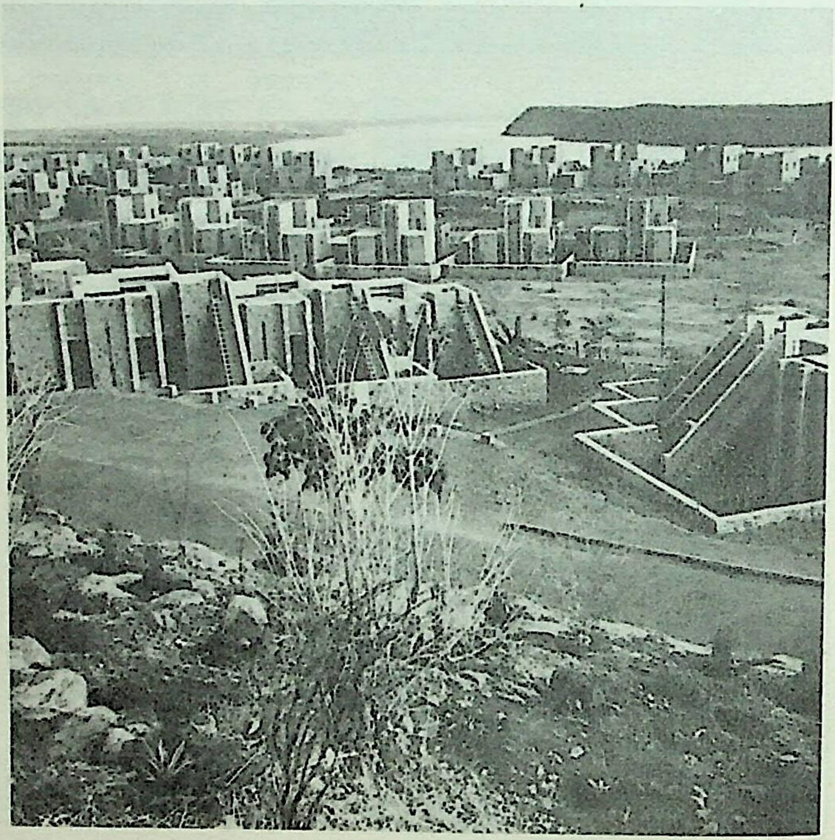

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

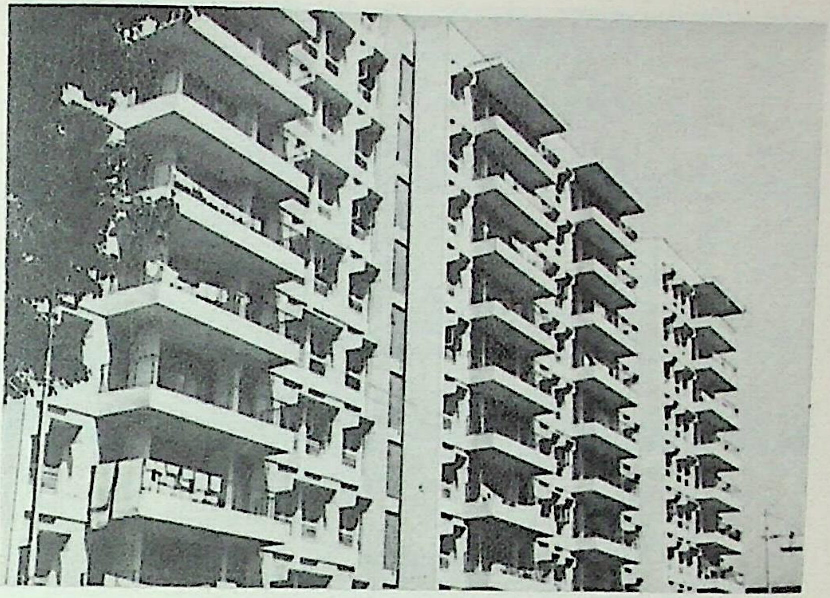

कलकत्ता। आवासीय भवन-समूह।
१९७० का दशक

हैदराबाद। मजदूर बस्ती के मकान। १९६० का दशक। वास्तुशिल्पी – बी० दोशी

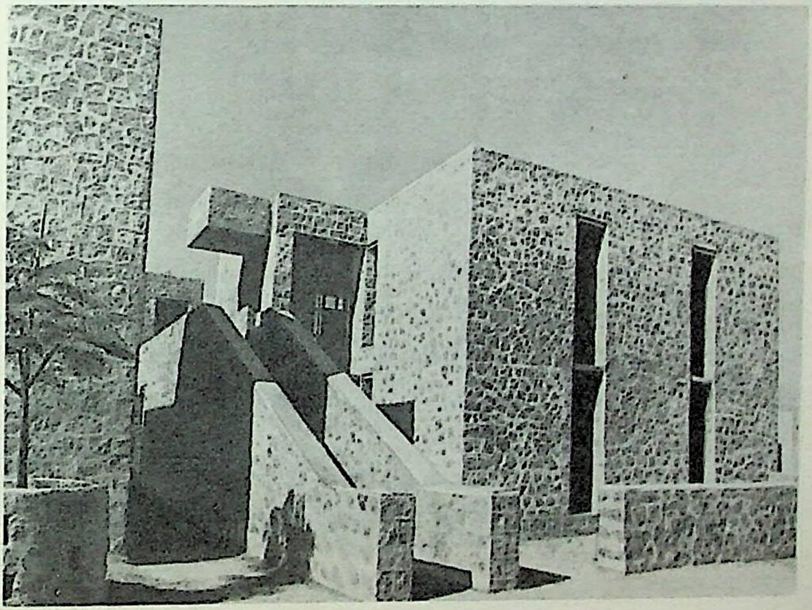

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

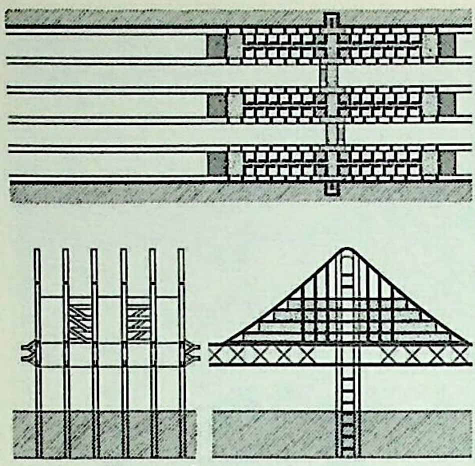

कलकत्ता। "आवास-सेतु" का नक्शा।
योजनाकार—जे० ऊमन। १६७१

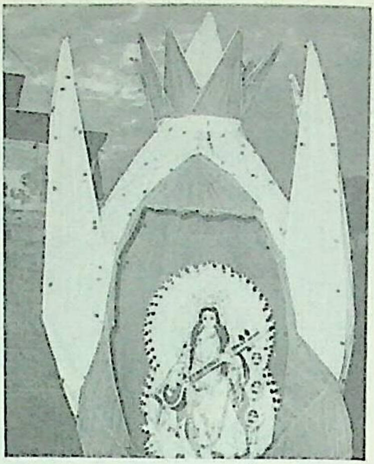

कलकत्ता। सरस्वती
पूजा के दिन

सरस्वती पूजा के अवसर पर कलकत्ता की
सड़कों की सजावट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

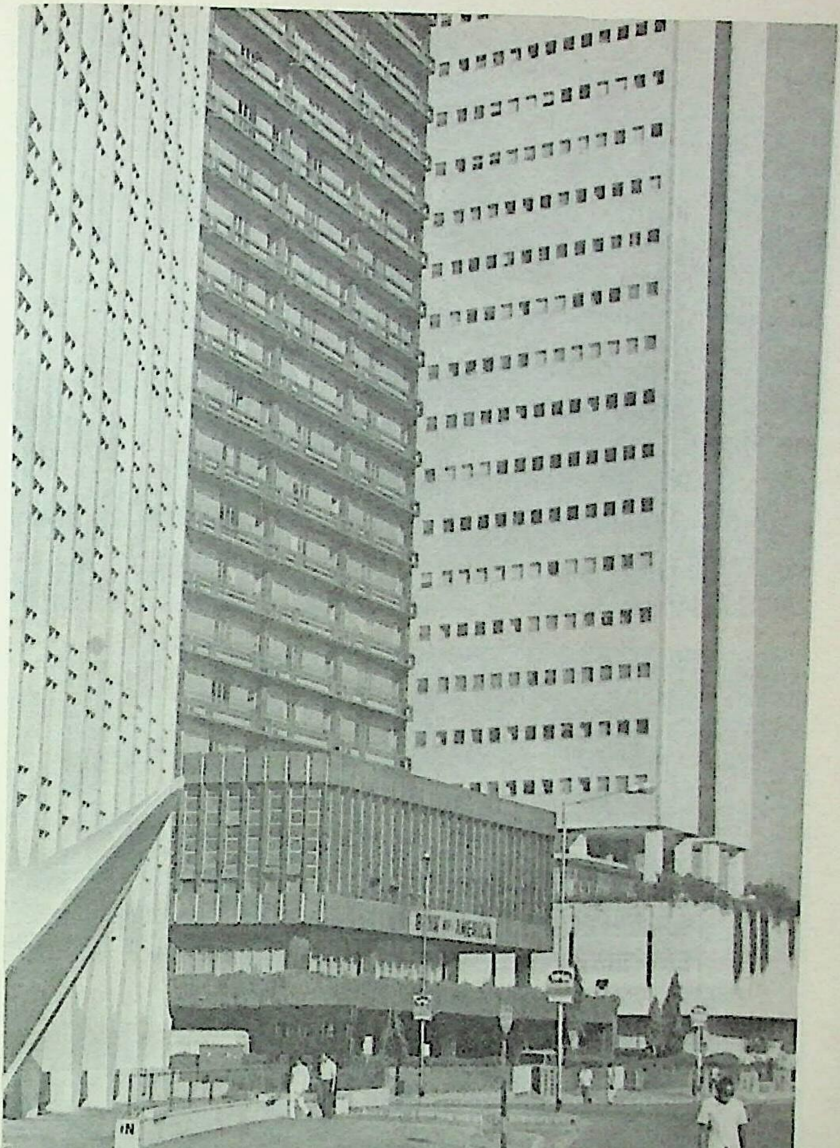

बंबई। नगर का एक व्यावसायिक केंद्र।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

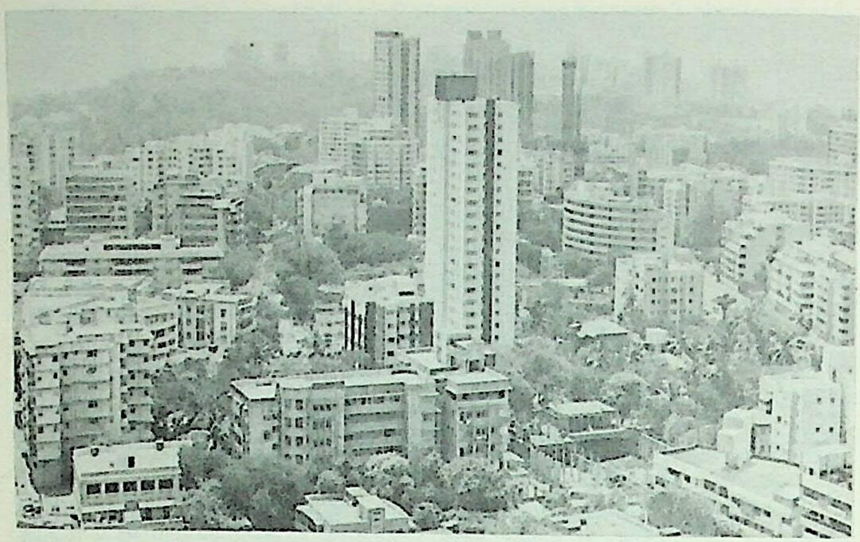

बंबई। मलाबार हिल्स
से एक दृश्य।

बंबई। तारदेव इलाके में
नवनिर्माण। १९६०-१९७० के दशक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

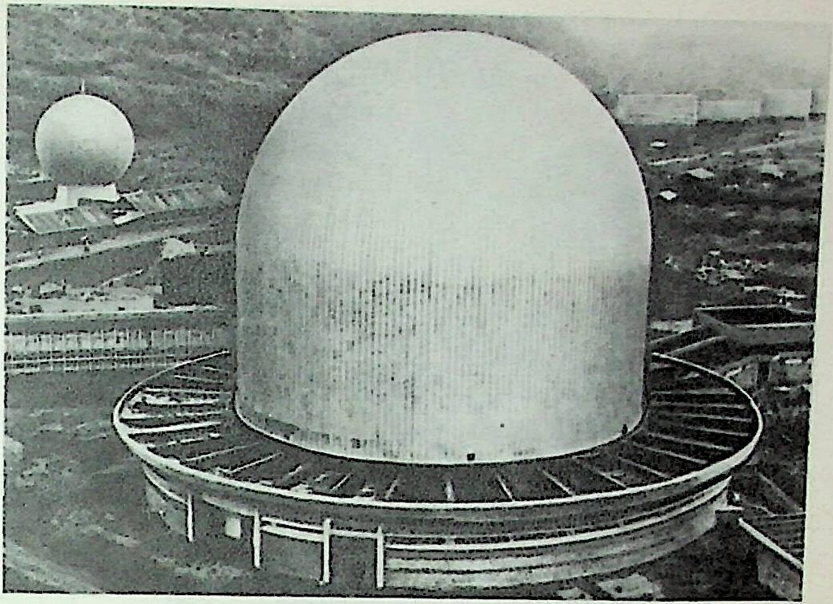

ट्राम्बे। परमाणु रिएक्टर। १९६३

नयी दिल्ली। अशोक होटल की छत
से नगर का एक दृश्य। १९६० का दशक

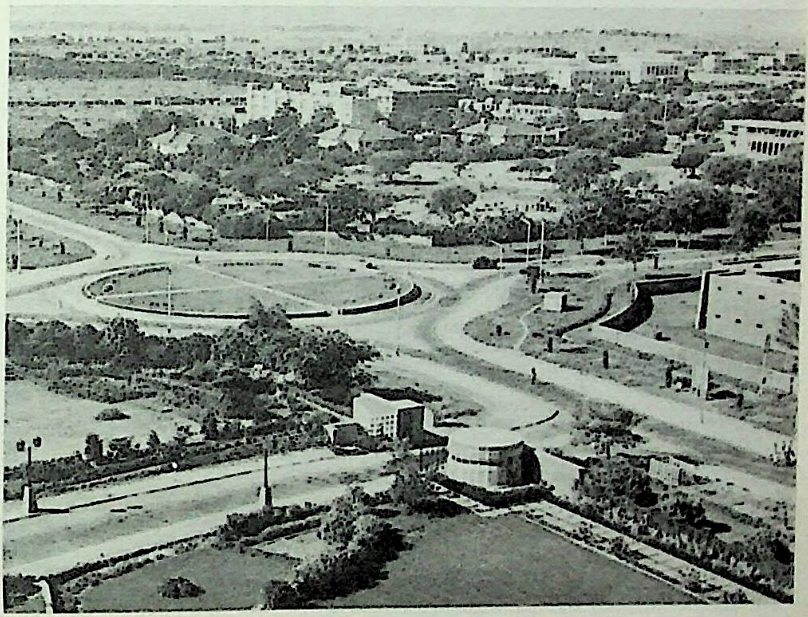

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

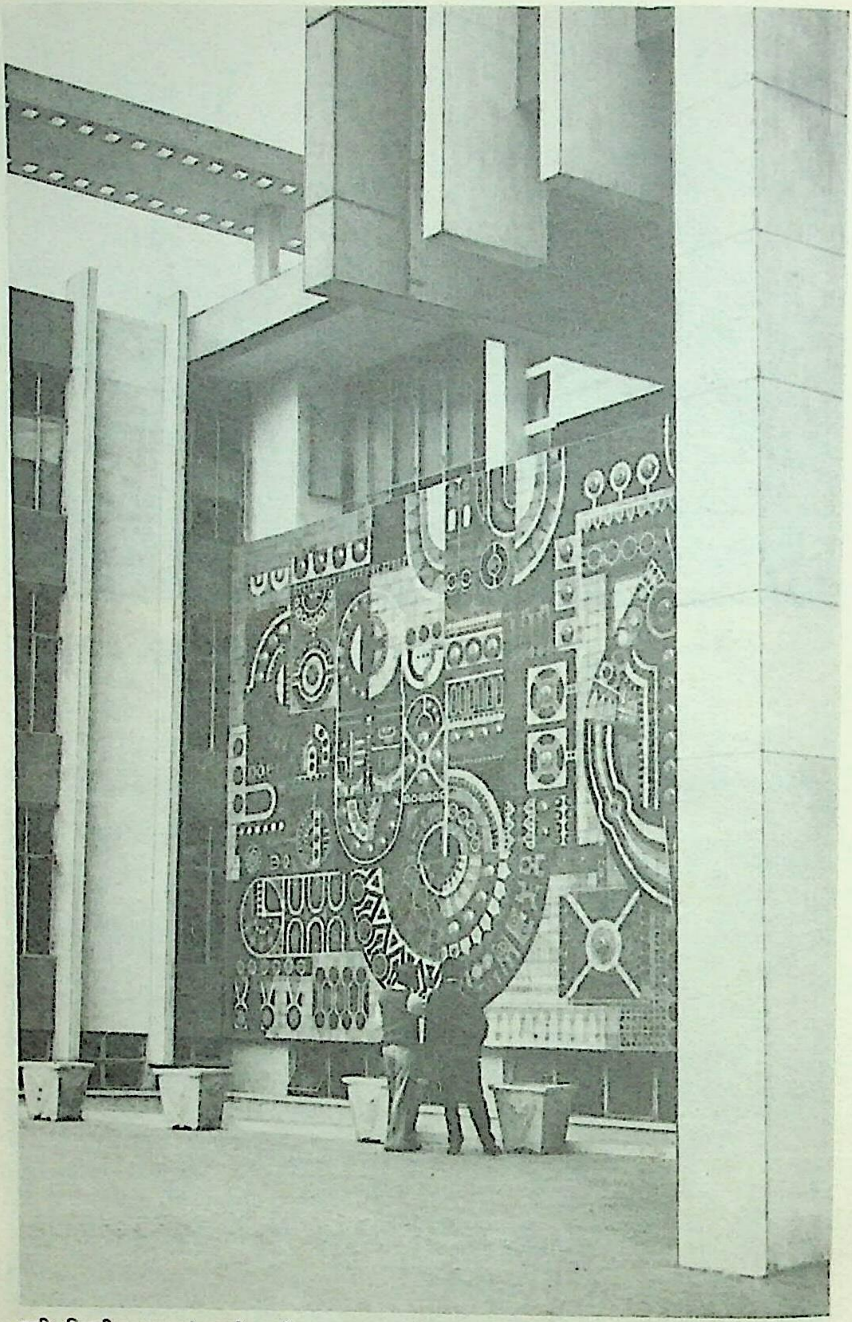

नयी दिल्ली। बाराखंभा रोड की एक व्यावसायिक इमारत। १९७७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

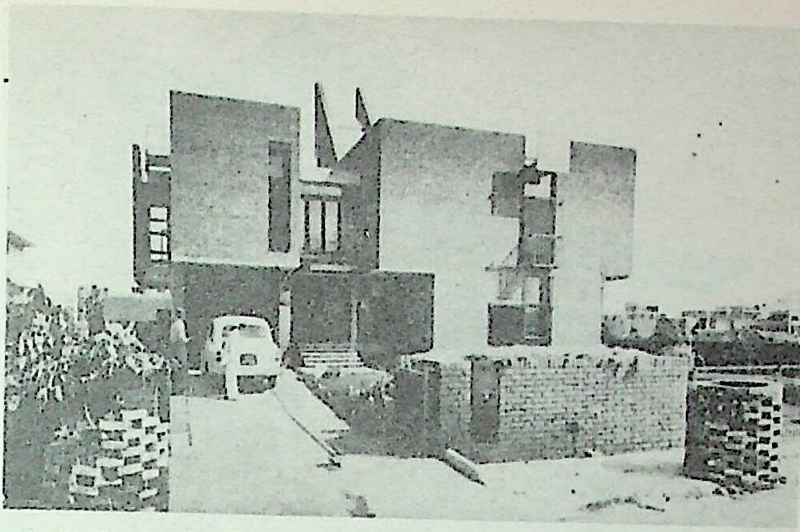

नयी दिल्ली। वास्तुशिल्पी ए० कानविंदे की कोठी १९६० का दशक

नयी दिल्ली। अकबर होटल। १९६७-१९७२। वास्तुशिल्पी – एस० प्रसाद तथा अन्य

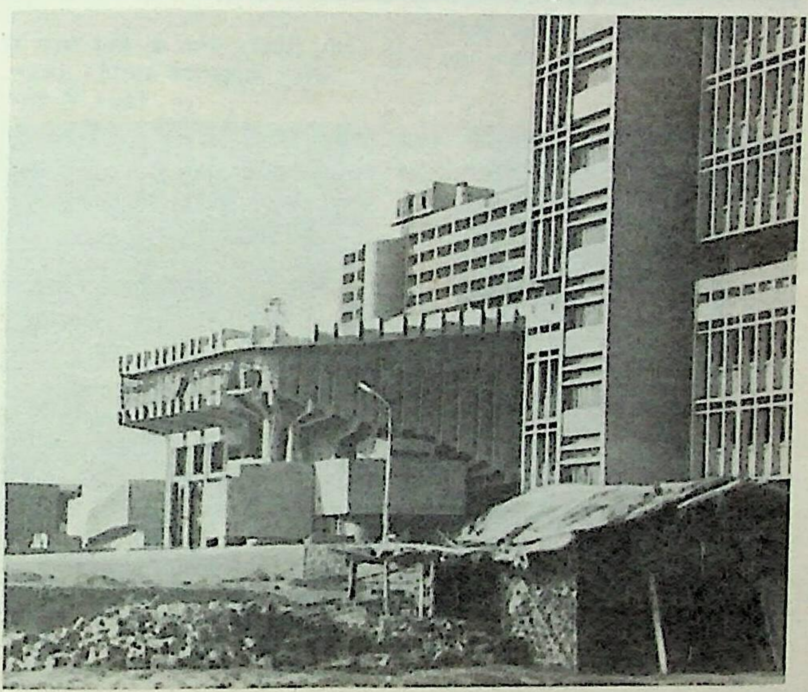

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

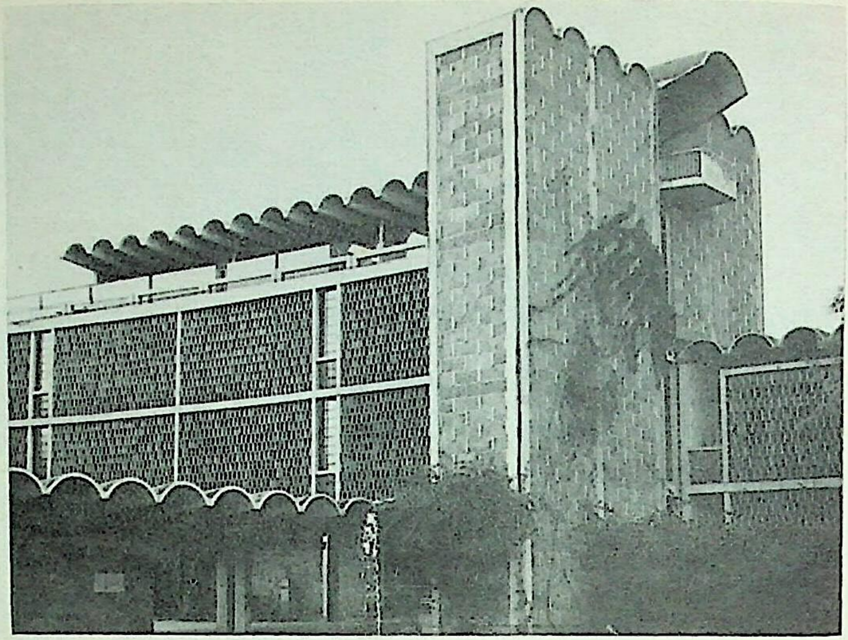

नयी दिल्ली। इंडिया इंटरनेशनल सेंटर। वास्तुशिल्पी – ए० स्टाइन, डी० भल्ला तथा अन्य

नयी दिल्ली। नगर के मध्य भाग में निर्मित व्यावसायिक इमारतें। १९६०-१९७० के दशक

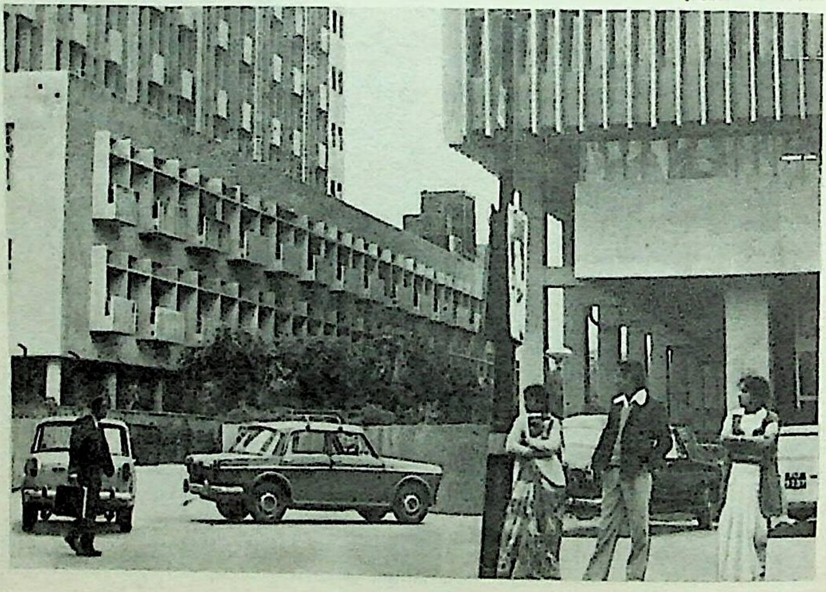

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

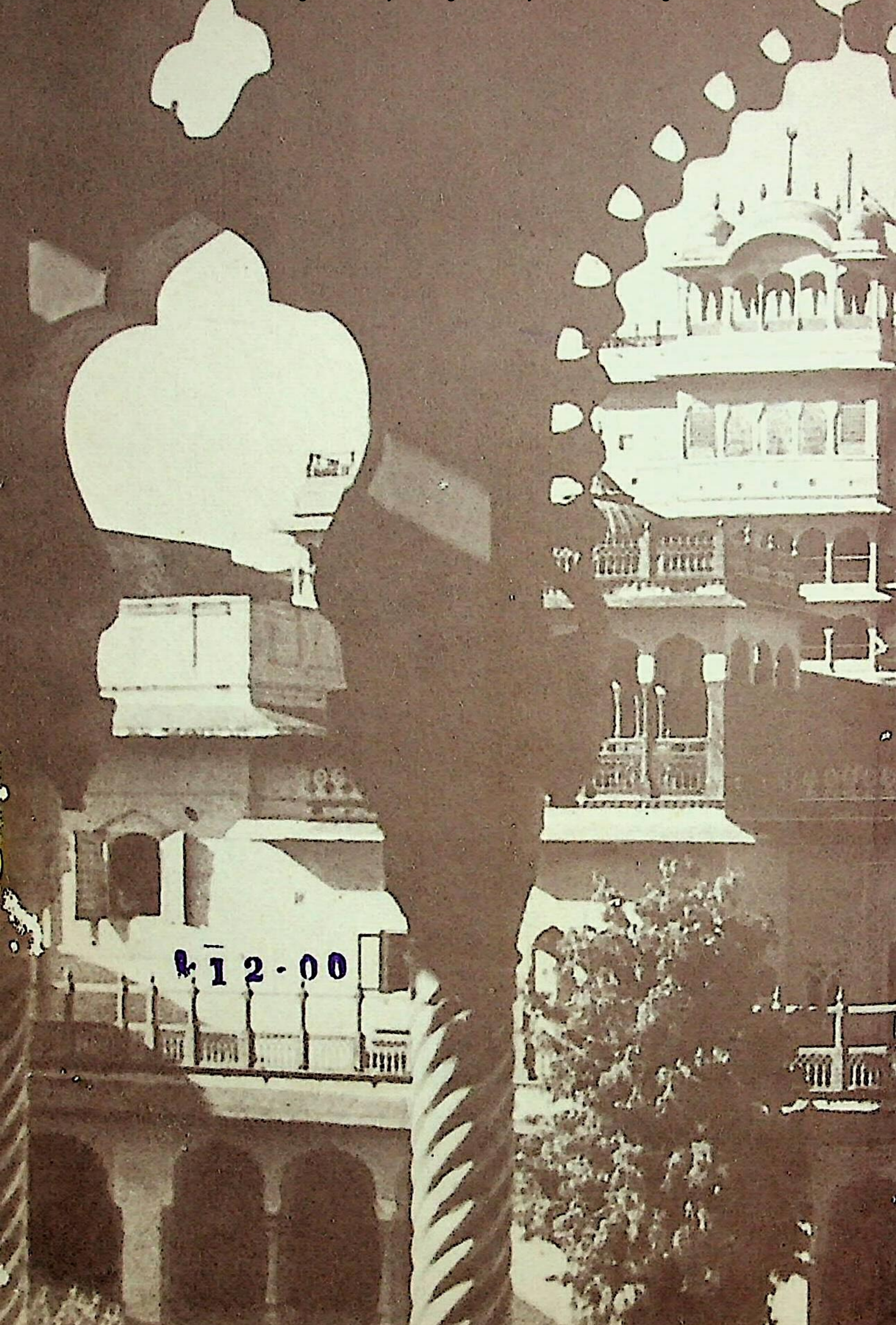

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

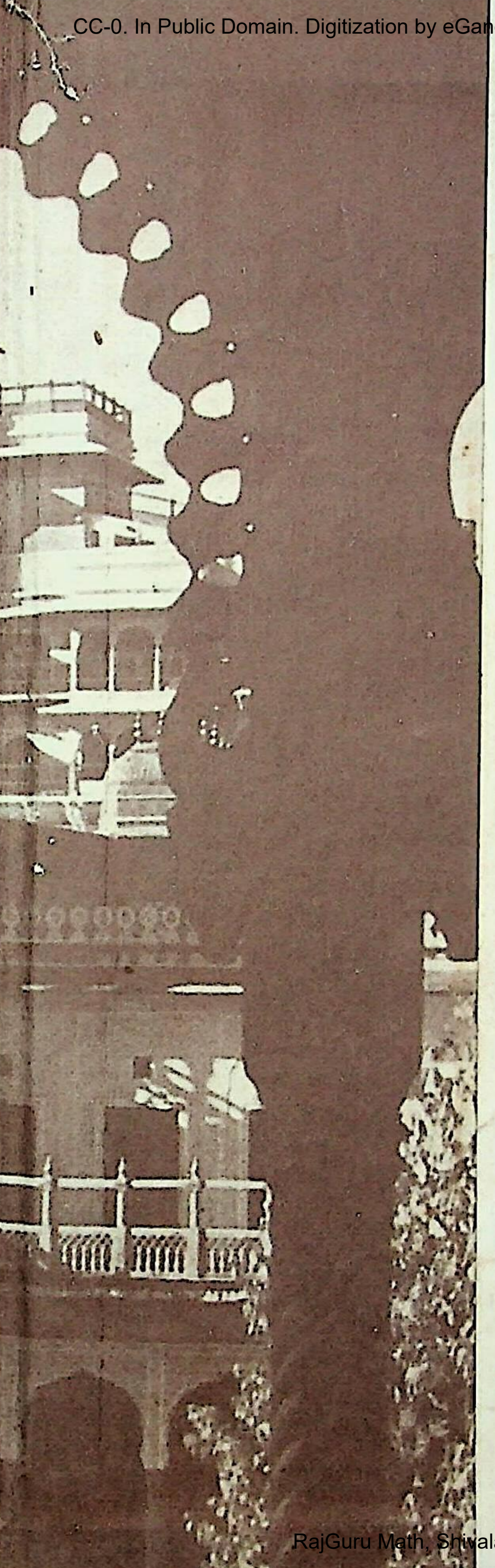

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection